अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय

(एक गवेषणात्मक अध्ययन)

[प्रयाग विश्व-विद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोधग्रन्थ]

[प्रथम भाग]

लेखक

डॉ० दीनदयालु गुप्त, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०

भूतपूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, एवं भूतपूर्व अधिष्ठाता, कला-सकाय
लखनऊ विश्वविद्यालय, भूतपूर्व चेयरमैन हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक

मौलिचन्द्र शर्मा

सचिव, प्रथम शासी निकाय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग

संवत् २०२७ सन् १९७०

मूल्य २६.०० रु०

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

क्रम

समर्पण

नाम रूप गुन भेद जो, सोइ प्रकट सब ठौर ।।

* * *

रूप प्रेम आनन्द रस, जो कछु जग में आहि ।
सो सब गिरिधर देव कौ, निधरक बरनौ ताहि ।।

* * *

भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर्नाम वपु एक ।।

* * *

तुम तजि कौन नृपति पै जाऊँ ?
काके द्वार पैठि सिर नाऊँ, परहथ कहाँ विकाउँ ।
तुम करुनामय त्रिभुवननायक, विश्वंभर जाकौ नाउँ,
सुरतरु, कामधेनु चिन्तामनि, सकल भुवन जाकौ ठाउँ ।
तुमते को दाता, को समरथ, जाके दिये अघाउँ,
परमानन्द हरि-सागर तजि के नदी सरन कत जाउँ ।।

अष्टछाप के आराध्य देव !

नाम-रूप-गुण-भेद से भक्ति-भक्त-भगवन्त-गुरु रूप—आप ही इस कृति मे व्याप्त है। अत यह कृति भी आपकी ही है।

विनीत
दीनदयालु

प्रकाशकीय

'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' के संशोधित, परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष के साथ दुःख इस बात का है कि इस अनुसन्धान-ग्रन्थ के मनीषी लेखक डॉ० दीनदयालु गुप्त इस संस्करण के प्रकाशित होने से पूर्व ही दिवंगत हो गए।

स्व० डॉ० गुप्त ने पुष्टिमार्गीय हिन्दी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवियों का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक अनुशीलन करते हुए उसमें निहित काव्य-सौन्दर्य का अद्वितीय विश्लेषण और विवेचन किया है। यद्यपि अब तक इस विषय से संबंधित विपुल सामग्री समेकित, संकलित और समीक्षित होकर प्रकाश में आ चुकी है, तथापि डॉ० गुप्त ने जिस महत्प्रयास और विस्तृत अध्ययन द्वारा वल्लभ सम्प्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि का समाकलन कर अष्टछापी कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व का सांगोपांग अनुशीलन किया है, उसकी महत्ता हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठापित हो चुकी है। स्व० डॉ० दीनदयालु जी गुप्त अपने इस सारस्वत कर्म के द्वारा यश: शरीर से अजर-अमर रहेंगे और हिन्दी साहित्य में उनका समादरणीय स्थान अक्षुण्ण रहेगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रारंभ से ही ऐसे मानक ग्रन्थों को प्रकाशित करने का उद्देश्य रखे हुए है। हमें प्रसन्नता है कि हमारे इस उद्देश्य का एक पूरक अंग 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' विद्वानों द्वारा समादर प्राप्त कर ग्राह्य और बहुचर्चित बना।

—मौलिचन्द्र शर्मा
सचिव
प्रथम शासी निकाय
हि० सा० स०, प्रयाग

उपोद्घात

हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे अष्टछाप के कवियो का एक विशिष्ट स्थान है। इनमे केवल सूरदास ही होते तब भी इनकी बडी प्रतिष्ठा होती। परन्तु इनमे और भी कई महाकवि की पदवी के योग्य है। हिन्दी-साहित्य के विकास के ज्ञान बिना इनके काव्य को पढकर समझना सभव नही है। व्रजप्रान्त के ये अनमोल रत्न है। इनका प्रभाव समस्त हिन्दी काव्य पर है। सूर की कविता ससार के महान् कवियो की कृति से किसी अश मे न्यून नही है। नन्ददास के काव्य मे माधुर्य प्रचुर मात्रा मे है। इन कवियो के ग्रन्थो मे केवल काव्य-सौन्दर्य ही नही है, संगीत का ज्ञान ही नही है, कृष्णभक्ति का विविध रूप भी इनमे मिलता है। साहित्य-प्रेमी इनके काव्य का रसास्वादन करते है, सगीतमर्मज्ञ इनको सुनकर प्रफुल्लित होते है, और भक्त इनको सुनकर और पढकर परम आनन्द प्राप्त करते है। आश्चर्य की बात है कि भगवान् के कई अवतार हुये, परन्तु व्रज के कृष्ण के व्यक्तित्व का जितना गहरा प्रभाव जनता पर पडा उतना किसी और का नही । बच्चे उनकी लीलाओ की कथाओ और बालकाल की क्रीडाओ को सुनकर उनकी ओर आकर्षित होते है, युवक उनके रासरग और राधिकास्नेह को देखकर उनको प्रेममूर्ति मानते है और प्रौढ गीता के प्रणेता को जगद्गुरु के रूप मे देखते है। सूरदास कहते है—

" जो रस रास रंग हरि कीन्हे वेद नहीं ठहराय्यो।"

और नन्ददास—

"रूप प्रेम आनद रस जो कछु जग मे आहि।
सो सब गिरिधर देव कौ, निधरक बरनौं ताहि॥"

और कृष्ण की आराधना केवल व्रज मे ही नही हुई समस्त भारतवर्ष मे कृष्ण के भक्त पाये जाते है। कृष्ण-काव्य गुजराती, बगला और मैथिली साहित्य का भी प्रधान अग है। किसी और मनुष्य अथवा अवतार के सम्बन्ध मे इतनी कवितायें नही लिखी गई है। इतने प्रेम, वात्सल्य, श्रद्धा और भक्ति से ये कवितायें रची गई है कि इनकी तुलना किसी और काव्य से नही हो सकती है। सस्कृत-साहित्य मे भी कृष्ण की महिमा बखानी गई है। श्रीमद्भागवत की अमृतधारा आज भी हमे प्लावित करती है। जयदेव की मधुर कोमल-कान्त-पदावली से हमे आज भी आह्लाद मिलता है। सस्कृत पढने वाला कौन इन पदो को प्रसन्नता से बार बार नही पढता है?

पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम्।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदंचितपंचमरागम्॥
कापि विलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम्।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम्॥
कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले।
कापि चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले॥
केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले।
मंजुलवंजुलकुंजगतं विचकर्ष करेण दुकूले॥
करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे॥
श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम्।
पश्यति सस्मितचारुतरामपरामनुगच्छति वामाम्॥

परन्तु व्रजभाषा के कृष्णकाव्य में इनमें भी अधिक माधुर्य है। वह इनसे भी अधिक हृदय-ग्राहक है। जैसा कि श्री वियोगी हरि जी ने कहा है, "उस व्रजभाषा के प्राचीन साहित्य में तो अपूर्व ही चीजें मिलेंगी। वह रस, वह भाव, वह माधुर्य मुश्किल से अन्यत्र देखने में आयेगा। उस युग में भक्त-सत्कवियों ने प्रेम-जाह्नवी की दिव्य-दिव्य धाराएँ बहा दी थीं। दसों दिशाओं में जगमोहन की मधुर-मधुर वंशी गूंजने लगी थी। सहस्रों संसार-परितप्त जीव सुशीतल प्रेम-निकुंज की सुखद छाया में विश्राम और शान्ति पाने लगे। सैकड़ों प्रेमोन्मत्त भक्त आपे को भूलकर नाच उठे थे। उसी युग के भक्त अष्टछाप के कवि हैं। 'श्री गोवर्द्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता" में लिखा है—

"जब श्री गोवर्द्धननाथ जी प्रगट भये तब अष्ट सखा हू भूमि में प्रगट भये, अष्टछाप रूप होय कैं सब लीला को गान करत भये। तिनके नाम को छप्पय श्री द्वारकानाथ जी महाराजकृत—

"सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानन्द जानो,
कृष्णदास सो ऋषभ छीतस्वामी सुबल बखानो।
अर्जुन कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, विशाला,
विष्णुदास सो भोजस्वामी गोविंद श्री दामाला।
अष्टछाप आठों सखा श्री द्वारकेश परमान,
जिनके कृत गुनगान करि निज जन होत सुजान।"

श्री उमाशंकर शुक्ल ने यह दिखाया है कि नन्ददास का नाम इस छप्पय में नहीं है, यद्यपि "भावप्रकाश" में गोस्वामी हरिराय नन्ददास के विषय में लिखते हैं कि 'जिनके पद अष्टछाप में गाइयत हैं।"

अष्टछाप के कवि ये हैं—(१) सूरदास, (२) परमानन्ददास, (३) कुम्भनदास, (४) कृष्णदास, (५) नन्ददास, (६) चतुर्भुजदास, (७) गोविन्दस्वामी, (८) छीत-स्वामी। इन पर यह ग्रन्थ डाक्टर श्रीदीनदयालुजी गुप्त ने प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० लिट् उपाधि के लिए लिखा था। इसमें एक विलक्षणता यह है कि पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक वल्लभा-चार्य ने प्रयाग के समीप ही अपना निवास स्थान बनाया था। उनके प्रमुख शिष्यों की कविता

से सभी हिन्दी प्रेमी परिचित है। कृष्ण के जीवन का प्रत्येक अग, उनके अग और आभूपण, उनकी लीलाये, उनकी वाल-क्रीडाये, उनके प्रेम, उनके वात्सल्य, उनकी सुहृद्भवित, उनके वैराग्य-इत्यादि का वृत्तान्त अत्यन्त सरस और मनोरजक रूप मे इस काव्य मे है। सूर की कविता की प्रशसा करना अनावश्यक है। हिन्दी से जो भी परिचित सूर का भक्त है, सूर का प्रेमी है, इन पदो को जो एक वार पढ चुका हो कभी भूल नही सकता है—

"श्याम अंग युवती निरखि भुलानी।
कोउ निरखति कुडल की आभा यतनेहि माँझ विकानी।"
"देखो भाई या वालक की वात।
वन उपवन सरिता सव मोहे देखत स्यामल गात॥"
"मैया, मोहि दाऊ वहुत खिझायो।
मोसो कहत मोल कौ लीनौं तू जसुमति कव जायो॥"
"मेरे कुंवर कान्ह विन सव कछु वैसेहि धर्‌यौ रहै।'
"नैना भये अनाथ हमारे।
मदन गोपाल वहाँ तें सजनी सुनियतु दूर सिधारे।"
"ऊधो, मोहि व्रज विसरत नाहीं।"

नन्ददास के पद भी स्मरणीय है, विशेप कर 'भंवरगीत" के ओर "रासपचाध्यायी" के—

"कोउ कहै ये निठुर, इन्है पातक नहि व्यापै।
पाप-पुन्य के करनहार, ये ही हैं आपै॥
इनके निर्दय रूप मैं नाहिन कोऊ चित्र।
पय-प्यावत प्रानन हरे, पूतना वाल चरित्र॥
मित्र ये कौन के॥"
"कोउ कहै री विस्व माँझ जेते हैं कारे।
कपटी, कुटिल, कठोर, परम मानस मसिहारे॥
एक स्याम तन परसि कै, जरत आज लौं अंग।
ता पाछै फिरि मधुप यह, लायो जोग-भुजग॥
कहा इन कौं दया॥"
"जव दिनमणि श्री कृष्ण दृगन ते दूरि भये दुरि।
पसरि पर्‌यो अंधियार सकल संसार घुमड़घुरि॥
तिमिर ग्रसित सव लोक-ओक-दुख देखि दयाकर।
प्रगट कियौ अद्‌भुत प्रभाव भागवत-विभाकर।"
सकल तियन के मध्य साँवरो पिय सोभित अस।
रत्नावलि-मधि नीलमनी अद्‌भुत झलकै अस॥
नव मरकतमनि स्याम कनक मनिगन व्रजवाला।
वृन्दावन कौ रीझि मनो पहिराई माला॥
मृदुल मधुर-टंकार ताल झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र की तार भँवरगुंजार रली पुनि॥

सूर और नन्ददास के पद वहुत से पाठक जानते है परन्तु शेप सखाओ का काव्य इतने प्रसिद्ध नही हुये। फिर भी औरो की कविता मे भी लालित्य है—

कृष्णदास

"मो मन गिरधर-छवि पै अटक्यो।
ललित त्रिभंग चाल पै चलिकै चिबुक चारु गड़ि ठटक्यो।।
सजल स्यामघन-वरन लीन ह्वै फिर चित अनत न भटक्यो।
'कृष्णदास' किये प्रान निछावर यह तन जग सिर पटक्यो।।"

परमानन्ददास

भली यह खेलिबे की बानि।
मदनगुपाल लाल काहू की नाहिंन राखत कानि।।
अपने हाथ लै देत है बनचर दूध दही घृत सानि,
जो बरजौं तौ आँखि दिखावै पर धन को दिनदानि।
सुन री जसोदा सुतके करतब पहले माँट मथानि,
फोरि डारि दधि डार अजिर में कौन सहै नित हानि।"

कुम्भनदास

केते दिन जु गये बिनु देखैं,
तरुन किसोर रसिक नँद-नन्दन कछुक उठति मुख रेखैं।
वह शोभा, वह कांति बदन की, कोटिक चंद बिसेखैं,
वह चितवन, वह हास मनोहर, वह नटवर वपु भेखैं।
स्यामसुदर-सँग मिलि खेलन की आवति हिये अपेखैं,
कुम्भनदास लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखैं।

इन्ही सन्त कवियो पर यह पुस्तक लिखी गई है। श्री दीनदयालुजी ने इसमे वहुत परिश्रम किया है। और जहाँ कही भी इस विपय पर सामग्री-मुद्रित, हस्तलिखित—मिल सकी है उसका उपयोग किया है। व्रज का भौगोलिक वर्णन, अप्टछाप के समय की राजनीतिक और सामाजिक दशा का वृत्तान्त, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो की विवेचना, कवियो का जीवन चरित्र, कवियों की रचनाओ की समीक्षा, पुप्टिमार्ग का विवरण, वल्लभ-सम्प्रदाय और इन कवियो के दार्शनिक विचार, तथा भक्ति—इससे विदित होगा कि किस प्रकार से यह अध्ययन सर्वागपूर्ण है। मुझे विश्वास है कि यह ग्रन्थ विद्वानो के आदर का पात्र होगा।

—अमरनाथ झा

परिचय

'अष्टछाप' कवियों के इस प्रथम विस्तृत अध्ययन को हिन्दी विद्वानों तथा पाठकों के सम्मुख रखने में मुझे विशेष हर्ष तथा संतोष है। हर्ष इसलिए कि यह मेरे प्रथम शिष्य डा० दीनदयालु गुप्त के वर्षों के परिश्रम का फल है, और संतोष इसलिए कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन से हिंदी-कृष्ण-भक्ति-धारा की खोज विशेष अग्रसर हो सकेगी।

साधारण हिन्दी पाठक भी 'पृष्ठभूमि' शीर्षक अध्याय को रोचक तथा उपयोगी पावेंगे। अष्टछाप कवियों की जीवनी तथा कृतियों के अध्ययन की सामग्री एकत्रित करने में डा० गुप्त ने विशेष परिश्रम किया है। इस सामग्री से जो निष्कर्ष उन्होंने निकाले हैं उन सबसे प्रत्येक विद्वान् सम्मत हो यह आवश्यक नहीं है। इस क्षेत्र के भावी कार्यकर्त्ताओं के लिए 'अध्ययन के सूत्र' शीर्षक अध्याय में संकलित सामग्री सदा सहायक सिद्ध होगी।

ग्रन्थ के दूसरे भाग में असाधारण महत्व की सामग्री है। वल्लभ सम्प्रदाय में सर्वधित मूल संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करके डा० गुप्त ने सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रथम विस्तृत विवेचन उपस्थित किया है, और इस कसौटी पर अष्टछाप-कवियों की दार्शनिक विचारधारा को कसा है। ग्रन्थ का यह अंश अत्यन्त बहुमूल्य है। अंतिम अध्यायों में नंददास और परमानंददास की कृतियों की भाषा तथा काव्यगत आलोचना है। आशा है कि अगले संस्करण में शेष अष्टछाप कवियों की कृतियों की संक्षिप्त आलोचना बढ़ाकर डा० गुप्त इस अंश को पूर्ण कर देंगे।

हिंदी-साहित्य के गंभीर अध्ययन और मौलिक खोज के स्तर को यह ग्रन्थ ऊपर उठावेगा इसका मुझे पूर्ण विश्वास है, अतः इस बहुमूल्य कृति का मैं स्वागत करता हूँ तथा डा० गुप्त को हार्दिक बधाई देता हूँ। आशा है कि भविष्य में भी डा० गुप्त के द्वारा हिन्दी साहित्य अनुशीलन का कार्य इसी प्रकार होता रहेगा।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
विश्वविद्यालय, प्रयाग
कृष्ण जन्माष्टमी, सं० २००४

—धीरेन्द्र वर्मा

प्रस्तावना

इस ग्रन्थ मे हिन्दी-व्रजभापा के प्रसिद्ध अप्टछाप भक्त-कवियो का अध्ययन किया गया है। अप्टछाप-काव्य की महत्ता की प्रगसा हिन्दी के सभी प्रमुख विद्वानो ने की है। स्व० डा० श्याम-सुन्दरदास ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी भापा और साहित्य' मे इन कवियो के विषय मे कहा है—"जीवन के अपेक्षाकृत निकटवर्ती क्षेत्र को लेकर उसमे अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखा देने मे सूर की सफलता अद्वितीय है। सूक्ष्मदर्शिता मे सूर अपना जोड नही रखते   अप्टछाप मे प्रत्येक ने पूरी क्षमता से प्रेम और विरह के सुन्दर गेय पद बनाये।"[1] स्व० प० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—"आचार्यो की छाप लगी आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठी, जिनमे सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वाणी की थी।   मनुष्यता के सौन्दर्य-पूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियो ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया।"[2] इसी प्रकार मिश्रबन्धुओ ने भी हिन्दी के वैष्णव कवियो मे अप्टछाप को सर्वप्रधान माना है।[3] वस्तुत इस वर्ग का अकेला कवि सूर ही इतना महान् भक्त, दार्शनिक कवि और सगीता-चार्य है कि तुलसी को छोड आज तक इसके जोड का कोई कवि नही हुआ। नन्ददास के पद-लालित्य और भावावलि की प्रगसा हिन्दी-ससार मुक्त कण्ठ से करता है। परमानन्ददास का 'परमानन्द-सागर' भी सूर सागर की टक्कर का कहा जाता है। खेद का विषय है कि केवल अल्प उपलब्ध रचनाओ के आधार पर ही, इतनी प्रगसा के अधिकारी माने हुए, इन आठ महान् कवियो की रचनाओ की न तो भली प्रकार अब तक खोज हुई थी, न उपलब्ध रचनाओ की प्रामाणिकता की जाँच हुई, और न उनके काव्य का दर्शन तथा भक्ति की दृष्टि से गम्भीर अध्ययन ही हुआ। इन आठ कवियो मे से केवल सूर और नन्ददास का ही, हिन्दी मे, कुछ अध्ययन हुआ है, परन्तु उसमे भी, इन कवियो के जीवन-चरित्र की खोज, इनके काव्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन, इनके नाम पर गिनाये जाने-वाले ग्रन्थों की परीक्षा तथा काव्य और आध्यात्मिक दृष्टि से इन ग्रन्थो की विस्तृत समालोचना की कमी है। इसी महती आवश्यकता का अनुभव करके, प्रस्तुत अध्ययन मे इन कमियो की पूर्ति का किंचित् प्रयास किया गया है।

ग्रन्थ के सात अध्याय दो भागो मे विभाजित है। चार अध्याय पहले भाग मे है और तीन

१—हिन्दी भाषा और साहित्य, सं० १९९४ संस्करण, पृ० ३१९, ३२२, ३२६ तथा ३२७।

२—भ्रमरगीतसार, प्रथम संस्करण, भूमिका, पृ० २।

३—मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, नवीन संस्करण, पृ० २१६।

दूसरे मे। प्रथम अध्याय मे ब्रजभूमि का परिचय, अष्टछाप मे सम्बन्धित ब्रज के स्थानो का विवरण, ब्रज का मानचित्र, साहित्यिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत इन कवियो की स्थिति का समय-निर्धारण अध्ययन का मौलिक अग है। इसी अध्याय मे धार्मिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत, तुलनात्मक अध्ययन के लिए, अष्टछाप के पूर्ववर्ती तथा समसामयिक ब्रज मे प्रचलित धार्मिक आन्दोलनो—जैसे निम्बार्क, माध्व, विष्णुस्वामी, चैतन्य, वल्लभ, राधा-वल्लभीय, और हरिदासी सम्प्रदायो का परिचय दिया गया है। इन सम्प्रदायो के विवरण के लिए अँगरेजी मे प्रकाशित साहित्य की सहायता के अतिरिक्त लेखक ने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के मूल सस्कृत ग्रन्थो का मुख्य आधार लिया है। द्वितीय अध्याय मे अष्टछाप के जीवन-वृत्त तथा रचनाओ की सूचना देनेवाले सूत्रो (Sources) का अध्ययन है। इन सूत्रो की खोज, उनकी प्रामाणिकता पर विचार, तथा हिन्दी साहित्य मे प्रचलित मतमतान्तरो की आलोचना लेखक का मौलिक प्रयास है। तृतीय अध्याय मे कवियो के जीवन चरित्र दिये गये है। इसमे प्राचीन अप्रकाशित विश्वस्त सूत्रो के आधार पर इन कवियो के चरित्र दिये गये है। अकबरकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थ तथा वल्लभसम्प्रदायी परम्परा तथा उस सम्प्रदाय के ग्रन्थो के आधार पर इन कवियो की जन्म, शरणागति तथा गोलोकवास की तिथियाँ भी निर्धारित की गई है। चतुर्थ अध्याय मे अष्टछाप के ग्रन्थो की प्रामाणिकता पर विचार है। अष्टछाप कवियो द्वारा रचित कही जानेवाली रचनाएँ, 'सूरसागर' तथा नन्ददास के ग्रन्थो को छोडकर, अभी तक प्रकाश मे नही आई थी। नन्ददास के ग्रन्थ भी, प्रयाग विश्वविद्यालय से, इस ग्रन्थ के समाप्ति के दिनो मे ही प्रकाशित हुए। जिसमे बहुत कुछ सामग्री लेखक की दी हुई ही थी। लेखक को नन्ददास के अध्ययन के लिए भी हस्तलिखित तथा अप्राप्य छपी सामग्री ढूंढकर जुटानी पडी। इन कवियो की 'परमानन्दसागर' आदि रचनाओ के सग्रह, लेखक ने श्रीनाथद्वार, कॉकरौली, सूरत, कामवन, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, अलीगढ आदि स्थानो मे स्वय जाकर, खोज के साथ, प्राप्त किये है। हिन्दी के अब तक के लेखको ने, अष्टछाप-कवियो के साथ नाम-साम्य रखनेवाले अनेक कवियो की रचनाएँ अष्टछाप नाम पर, बिना उनकी जॉच किये हुए लिख दी है। लेखक ने इनकी प्रामाणिकता पर भी विचार किया है।

पञ्चम तथा षष्ठ अध्यायो मे वल्लभ सम्प्रदाय तथा इन अष्ट कवियो के दार्शनिक विचार तथा भक्ति का विवेचन है। इन विषयो के ज्ञान के लिए लेखक ने वल्लभ-सम्प्रदायी ग्रन्थो का तथा अन्य भक्ति-ग्रन्थो का अध्ययन किया है। वल्लभ-सम्प्रदाय की सेवा-पद्धति की जानकारी के लिए उनसे उस सम्प्रदाय के प्रमुख मन्दिरो की यात्रा की है, और साम्प्रदायिक महात्माओ तथा विद्वानो के प्रवचनो के सुनने के कुछ अवसर भी प्राप्त किये है। दर्शन-शास्त्र का विषय गहन विवेक और भक्ति का विषय स्वानुभूति की अपेक्षा रखता है। इन दोनो का लेखक मे नितान्त अभाव है। फिर भी उसने अष्टछाप के दार्शनिक विचार तथा उनकी प्रेमानुभूतियो के जानने की चेष्टा की है। अष्टछाप पर अब तक प्रकाशित सामग्री की तुलना मे लेखक का यह अध्ययन भी अपनी क्या देन रखता है, यह विज्ञ पाठक समाज ही जानेगा।

सप्तम अध्याय मे परमानन्ददास और नन्ददास के ग्रन्थो का काव्य की दृष्टि से विशेष

अध्ययन है। परमानन्ददास की सम्पूर्ण काव्य-समीक्षा तथा नन्ददास के ग्रन्थो की विस्तृत व्याख्या इस अध्याय के मौलिक अग है। काव्य-विवेचन के आरम्भ मे आठो कवियो के काव्य-गुणो का केवल परिचयात्मक वर्णन ही है। इसमे आठो कवियो की काव्य-समीक्षा नही की गई। काव्य की दृष्टि से परमानन्ददास तथा नन्ददास के ग्रन्थो का ही विशेष विवरण दिया गया है।

सम्भव है, ग्रन्थ मे आई हुई कुछ पुनरावृत्तियाँ खटकनेवाली प्रतीत हो। उनके विषय मे लेखक का विनम्र कथन है कि लेखक ने परमानन्ददास तथा नन्ददास दोनो कवियो की अलग-अलग काव्य-समीक्षा की है। नन्ददास के प्रत्येक ग्रन्थ की आलोचना भी एक दूसरे ग्रन्थ से स्वतन्त्र रक्खी है। इसलिए प्रत्येक समालोचना मे प्रसगो के शीर्षको की पुनरावृत्ति हो गई है। उधर एक-एक विषय पर आठो कवियो के अलग-अलग विचार दिए हुए है, इसलिए प्रत्येक विषय के शीर्षक के अन्तर्गत अष्टछाप-कवियो के नामो की भी पुनरावृत्ति हुई है। अष्टछाप के दार्शनिक विचार-विवेचन के अन्तर्गत नन्ददास के ग्रन्थोमे आनेवाली आध्यात्मिक विचारधारा का विस्तार-भय से, केवल सकेतमात्र ही हो पाया था। कवि की विचारधारा का उसके अलग-अलग ग्रन्थो मे स्पष्टी-करण किया गया है। इस प्रकार कही-कही नन्ददास की काव्य-समीक्षा मे विषय की पुनरावृत्ति हो गई है। ग्रन्थो की स्वतन्त्र समीक्षा के बाद नन्ददास के काव्य की समष्टि-दृष्टि मे भी आलोचना है।

उपर्युक्त कथन से ज्ञात होगा कि इस ग्रन्थ के दोनो भागो मे जीवन-चरित्र, रचना, दार्श-निक विचार तथा भक्ति-भावना की दृष्टि मे तो आठो कवियो का अध्ययन किया गया है, परन्तु काव्य-समीक्षा के लिए केवल परमानन्ददास तथा नन्ददास दो ही कवि लिये गये है। आगे लेखक का विचार छूटे अगो को भी पूरा करने का है। ग्रन्थ के साथ मे लगी सहायक तथा उद्धृत ग्रन्थो की सूची से ज्ञात होगा कि लेखक ने अध्ययन के मूल सूत्रो पर पहुँचने का प्रयास किया है।

पिछले वर्ष, हरजीमल डालमिया पुरस्कार प्रतियोगिता मे इस पुस्तक की पाडुलिपि पर २१००) रुपये का पुरस्कार मिला था। उक्त पुरस्कार समिति के इस निर्णय ने लेखक के उत्साह को बढाया है। अष्टछाप के अध्ययन, उनकी रचनाओ की प्राप्ति तथा प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन मे जिन सज्जन और सस्थाओ से सहायता मिली है उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी लेखक का कर्त्तव्य है। सर्वप्रथम, लेखक प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डा० श्री अमरनाथ झा, प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत, भारतीय सस्कृति, पाली, प्राकृत आदि भाषा-विभाग के अध्यक्ष प्रो० के० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है, जिनकी देखरेख मे और जिनकी असीम कृपा के प्रसादरूप यह कार्य सम्पादित हुआ है। डा० वर्मा तो लेखक के मुख्य पथ-प्रदर्शक ही थे। महा-महोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज, स्व० आचार्य डा० श्यामसुदरदास तथा विद्वद्वर मिश्रबन्धुओ के प्रति लेखक अत्यन्त कृतज्ञ है, जिन्होने अपना बहुमूल्य समय और अनेक सत्परामर्श दिये है। काँकरौली के गो० श्री व्रजभूषणलाल जी महाराज गो० श्री विट्ठलनाथजी, महाराज श्री जी सूरत, काँकरौली-विद्या-विभाग के सचालक प० कण्ठमणि शास्त्री तथा भगवदीय द्वारिकादासजी,

श्रीनाथद्वार के परम विद्वान् पं० रमानाथ शर्मा शास्त्री काशी-विश्वविद्यालय के प्रो० जीवनशंकर याज्ञिक, हिन्दी के परम हितैषी डा० भवानीशंकर याज्ञिक, मथुरा के पं० जवाहरलाल चतुर्वेदीजी और सोरों जिला एटा के पं० भद्रदत्त शर्माजी के प्रति भी लेखक अपना आभार प्रकट करता है। उसको इन सज्जनों से अष्टछाप की अप्रकाशित सामग्री तथा वल्लभ-सम्प्रदाय सम्बन्धी विशिष्ट बातों की जानकारी प्राप्त हुई है।

आचार्य डा० अमरनाथ झा तथा गुरुवर डा० धीरेन्द्र वर्मा जी ने इस ग्रन्थ के उपोद्घात तथा परिचय लिखकर ग्रन्थ के गौरव को बढ़ाया है। इन दोनों गुरुजनों का लेखक श्रद्धापूर्वक विशेष आभार मानता है। अन्यत्र कई वर्ष की प्रकाशन-प्रतीक्षा के बाद यह ग्रन्थ परम श्रद्धेय माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनजी तथा मित्रवर श्रीरामचन्द्र टण्डनजी की सद्भावना और कृपा द्वारा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रकाशन में छपा है, इनकी महती कृपा और सदिच्छाओं की लेखक किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करे। पुस्तक के छपते समय प्रूफ के शोधन में लेखक के स्नेहभाजन मित्र और शिष्य श्री प्रेमनारायण टण्डन ने बहुत सहायता की है, उनको स्नेहपूर्वक धन्यवाद है। जिन विद्वानों के ग्रन्थों से इस पुस्तक में सहायता ली गई है, उन सबके प्रति भी लेखक अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। अन्त में लेखक अपने आत्मीय पूज्यजन तथा मित्रवर्ग, विशेष रूप से गुरुदेव पं० गोकुलचन्द्र शर्मा तथा बालसखा श्री रघुवंशलाल गुप्त की शुभ कामना, प्रोत्साहन और सहायता के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता है।

ग्रन्थ के विविध भागों में प्रसंगवश जिन विद्वानों की कृतियों की आलोचना हुई है, उनके प्रति लेखक के हृदय में भारी सम्मान है। अष्टछाप-जीवनी और काव्य-सम्बन्धी खोज की सामग्री के आधार पर लेखक ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनको लेखक अन्तिम वाक्य कहने का दावा नहीं करता, परन्तु हिन्दी के विज्ञ आलोचकों से यह विनम्र आशा अवश्य करता है कि वे उक्त सामग्री के निजी परीक्षण और निरीक्षण के बाद लेखक के मत की जाँच करें।

पुस्तक में जहाँ-तहाँ छापे की त्रुटियाँ रह गई हैं। इसका लेखक को खेद है। यदि कृष्ण-भक्ति-रस और हिन्दी-काव्य-रस के मर्मज्ञ रसिक-जनों को इसमें कुछ रोचकता मिली तो लेखक अपने श्रम को सफल समझेगा।

विनीत

संवत् २००४ वि० दीनदयालु गुप्त

विषय-सूची

भाग (१)

प्रथम अध्याय

पृष्ठ भूमि (१—८०)

द्वितीय अध्याय

अध्ययन के सूत्र (८१–१९७)

तृतीय अध्याय

अष्टछाप जीवन-चरित्र (१९८–२७८)

चतुर्थ अध्याय

अष्टछाप के ग्रन्थ (२७९–३९१)

भाग २

पञ्चम अध्याय

दार्शनिक विचार (३९३—५१५)

षष्ठ अध्याय

भक्ति (५१६—६९२)

सप्तम अध्याय

काव्य-समीक्षा (६९३-८१५)

संक्षेप और संकेत

इन ग्रन्थो का विशेष विवरण सहायक ग्रन्थो की सूची मे भी दिया हुआ है।

अष्टछाप	सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा	अष्टछाप, डा० वर्मा
अष्टछाप	प्रकाशक विद्या-विभाग कांकरौली	अष्टछाप, कांकरौली
इम्पीरियल फरमान्स	सम्पादक के० एम० झावेरी बम्बई	इम्पीरियल फरमान झावेरी
कीर्तन-सग्रह	प्रकाशक लल्लूभाई छगनलाल देसाई	कीर्तन सग्रह, देसाई
गीता-रहस्य	लेखक लोकमान्य तिलक	गीता-रहस्य
नन्ददास दो भाग	सम्पादक उमाशकर शुक्ल	नन्ददास, शुक्ल
साहित्य-लहरी	सग्रहकर्त्ता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रकाशक खड्गविलास प्रेस सम्पादक रामदीनसिंह	साहित्य लहरी रामदीनसिंह
भक्तमाल	टीकाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	भारतेन्दु, भक्तमाल
भक्तमाल भक्तिसुधा-स्वादतिलक	टीकाराम श्री सीताराम शरण भगवानदास रूपकला, सस्करण सन् १९३७ ई०	भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला
भँवरगीत	ले० नन्ददास, सम्पादक विश्म्भर नाथ मेहरोत्रा	भँवरगीत, मेहरोत्रा
सूरसागर	प्रकाशक वेकटेश्वर प्रेस, १९६४ वि० सस्करण	सूरसागर, वे० प्रे०
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट	नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी	ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट या खो० रि०
नन्ददास-पदावली	लेखक का निजी सग्रह तथा सग्रह प० जवाहरलाल चतुर्वेदी मथुरा और विद्या-विभाग, काँकरौली	ले० नि० नन्ददास पद-सग्रह
पद-सग्रह कुम्भनदास	लेखक का निजी सग्रह, मूलप्रति	ले० नि० कुम्भनदास

	विद्या विभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार मे	पद-संग्रह
पद-सग्रह कृष्णदास	लेखक का निजी सग्रह, मूलप्रति विद्या-विभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्त-कालय, नाथद्वार मे	ले० नि० कृष्णदास पद-सग्रह
पदसग्रह गोविन्दस्वामी	लेखक का निजी सग्रह, मूलप्रति विद्याविभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार मे	ले० नि० गोविद स्वामी पद-सग्रह
पद-सग्रह चतुर्भुजदास	लेखक का निजी संग्रह, मूलप्रति विद्या विभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार मे	ले० नि० चतुर्भुजदास पद-सग्रह
पद-सग्रह छीतस्वामी	लेखक का निजी सग्रह, मूलप्रति विद्या विभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्तका-लय, नाथद्वार मे	ले० नि० छीतस्वामी पद-सग्रह
पद-सग्रह नन्ददास	लेखक का निज सग्रह, मूलप्रति विद्याविभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार मे	ले० नि० नन्ददास पद-सग्रह
पद-सग्रह परमानन्ददास	लेखक का निजी सग्रह, मूलप्रति विद्याविभाग, कॉंकरौली तथा निज पुस्तकालय, नाथद्वार मे	ले० नि० परमानन्द दास पद-सग्रह
तत्वदीप निवन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण फलप्रकरण, भागवतार्थ प्रकरण	लेखक श्रीमद् वल्लभाचार्य सगोधक प० गोकुलदास कोटा प्रकाशक प० श्रीधर शिवलाल जी, ज्ञान सागर यन्त्रालय वम्वई	त० दी० नि० वम्वई
नाट्य-शास्त्र	लेखक महामुनि भरत सम्पादक एम० रामकृष्ण कवि, प्रकाशक सेंट्रल लाइब्रेरी वरौदा, सस्करण १९३६ ई०	नाट्य शास्त्र, भरत प्र० से० ला० वरौदा
निम्वादित्य दशश्लोकी सिद्धान्त कुसुमाञ्जलिभाष्य	श्री हरिव्यासदेव प्रणीत प्रकाशक निर्णय सागर प्रेस	निम्वादित्य दशश्लोकी हरिव्यासदेव

लघु भागवतामृत	लेखक श्री रूप स्वामी	लघु भागवतामृत
वल्लभ-दिग्विजय	लेखक गोस्वामी यदुनाथ जी, अनुवादक, पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, नाथद्वार से प्रकाशित	वल्लभ-दिग्विजय
श्रीमद्भगवद्गीता	प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर	गीता
श्रीमद्भागवत	प्रकाशक गीताप्रेस, गोरखपुर	भागवत
सिद्धान्तलेश	लेखक अप्पय दीक्षित प्रकाशक अच्युत ग्रन्थमाला, काशी	सिद्धान्त लेश, अच्युत ग्र० माला
अकबर दि ग्रेट मुगल	लेखक विन्सेंट स्मिथ	अकबर दि ग्रेट मुगल स्मिथ
वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रेलिजस सिस्टेम्स्	लेखक सर आर० जी० भण्डारकर	वैष्णविज्म; शैविज्म भण्डारकर

भाग १

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

अष्टछाप का परिचय

हिन्दी व्रज-भापा के निम्नलिखित आठ कवि अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध हैं। सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, कृष्णदास अधिकारी, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविंद स्वामी तथा छीत स्वामी। इनमें से प्रथम चार श्री वल्लभाचार्य जी (सवत् १५३५ वि० से सं० १५८७ वि० तक) के शिष्य थे, और अंतिम चार, आचार्य जी के उत्तराधिकारी गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी (सं० १५७२ वि० से सं० १६४२ वि०) के शिष्य थे। ये आठों भक्त-कवि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सहवास में (लगभग संवत् १६०६ वि० से संवत् १६३५ वि० तक) एक दूसरे के समकालीन थे और व्रज मे गोवर्द्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथ जी के मन्दिर मे कीर्तन की सेवा और वहीं रहकर भगवद्भक्ति-रूप में पद-रचना करते थे। उस समय के वल्लभसम्प्रदायी अनेक कवियो का उल्लेख उक्त सम्प्रदाय की वार्ताओं मे आता है, परन्तु गो० विट्ठलनाथ जी ने अपने सम्प्रदाय के अनुयायी भक्त कवियो में से सर्वश्रेष्ठ भक्त, काव्यकार तथा संगीतज्ञ, इन्ही आठ सज्जनों को छाँटा और इन पर अपनी प्रशंसा और आशीर्वाद की छाप लगाई। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की इस मौखिक तथा प्रशंसात्मक छाप के बाद ही ये महानुभाव 'अष्टछाप' कहलाने लगे थे। इस बात का प्राचीनतम लिखित प्रमाण, लेखक की जानकारी मे, गो०विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र, श्री गोकुलनाथ जी कृत संवत् १६९७ वि० की ८४ वार्ता तथा "गुसाईं जी के चार सेवकन की वार्ताओं" के उल्लेखो में ही मिलता है। ये आठों भक्त-कवि वल्लभसम्प्रदाय में कृष्ण के अष्टसखा भी कहलाते हैं। वल्लभ-सम्प्रदाय की प्राचीन परम्परा

तथा 'अष्टसखान की वार्ता' रूप मे मिलते हुए इन कवियो के जीवन-वृत्तान्त से यही सिद्ध होता है कि अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध भक्तवर्ग के अन्तर्गत उपयुक्त कवि ही आते हैं। जिन सज्जनो ने अष्टछाप के उक्त नामो मे परिवर्तन किया है, जैसे किसी-किसी विद्वान् ने नन्ददास के स्थान पर विष्णुदास रख दिया है,[१] उन्होंने वल्लभसम्प्रदायी परम्परा तथा प्राचीन वार्त्ता-साहित्य की अनभिज्ञता के कारण ही ऐसा किया है।

अष्टछाप के सभी उच्चकोटि के भक्त, कवि तथा संगीतकार थे। अपनी रचनाओ मे प्रेम की बहुरूपिणी अवस्थाओ के जो चित्र इन कवियो ने उपस्थित किये हैं, वे काव्य की दृष्टि से, वास्तव मे उत्कृष्टतम काव्य के नमूने है। वात्सल्य, सख्य, माधुर्य और दास्य भावों की भक्ति का जो स्रोत, अपने काव्य मे. इन भक्तो ने प्रवाहित किया है, वह अत्यन्त सुखकारी है। लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनो अनुभूतियो की दृष्टि से इनका काव्य महान् है।

अष्टछाप काव्य की जन्मस्थली व्रजभूमि

व्रजमडल के विस्तार के विषय मे निम्नलिखित दोहा व्रज मे बहुत प्रसिद्ध है—

व्रज का भौगोलिक विस्तार, उसके वन, पर्वत तथा प्राकृतिक शोभा

'इत बरहद इत सोनहद[२], उत सूरसेन को गाँव ॥
व्रज चौरासी कोस मे मथुरा मडल माँह ।'

ग्राउज महाशय ने अपने 'मथुरा मेमोयर' नामक ग्रन्थ मे इस दोहे के आधार पर व्रज-मंडल की हदो का खुलासा किया है।[३] वे कहते हैं कि "व्रजमंडल के एक ओर की हद 'बर' स्थान है, दूसरी ओर सोन है, और तीसरी ओर सूरसेन का गाँव है। बर, अलीगढ जिले मे बरहद नाम का एक स्थान है।[४] सोन की हद गुड़गाँव जिले तक जाती है और सूरसेन का गाँव यमुना के किनारे पर बसा हुआ वर्तमान

१—श्री गोवर्द्धननाथ जी के 'प्राकट्य की वार्ता', वें०प्रे०, के पृष्ठ २७ पर श्री मोहनलाल विष्णुलाल पांडया ने श्री द्वारकानाथ जी महाराज कृत एक छप्पय दिया है, जिसमें अष्टछाप में नन्ददास के स्थान पर विष्णुदास नाम लिखा है। वल्लभसम्प्रदायी आचार्यो में श्री द्वारिकानाथ नाम के कई आचार्य हुए है। पांडया जी ने यह नहीं बताया कि उक्त छंद कौन से महाराज द्वारिकानाथ जी का है। दूसरे, पांडया जी द्वारा शोधित गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता की इस प्रति के उक्त छप्पय को प्रामाणिक कहना कठिन है।

२—सोनहद के स्थान पर सोन नद शब्द भी प्रचलित है।

३—मथुरा मेमोयर, ग्राउज, पृष्ठ ७९।

४—अलीगढ़ का पुराना नाम 'कोर' है। देहात में आजकल भी अलीगढ़ को 'कोर' ही कहते हैं। अलीगढ़ जिले की तहसील भी 'कोर' है। 'कोर' का अर्थ 'व्रजमंडल के किनारे का स्थान' बताया जाता है।

वटेश्वर[1] स्थान है।" ग्राउज ने उक्त मेमोयर मे नारायण भट्ट-कृत एक 'व्रज-विलास' नामक सस्कृत ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है जिसकी रचना उन्होने सन् १५५३ ई० मे हुई वताई है और जिसका विषय व्रजयात्रा वर्णन बताया है[2]। ग्राउज् के कथनानुसार इस ग्रन्थ के तेरह भाग है और इसमें १०८ पृष्ठ है। इसमे व्रज के १३३ वनो का वर्णन है जिनमे से ९१ यमुना के दाहिनी ओर स्थित तथा ४२ बाएँ किनारे पर स्थित वताए गए है। इस ग्रन्थ से भी व्रजमंडल के विस्तार का एक श्लोक ग्राउज ने अपने मथुरा मेमोयर मे उद्धृत किया है जो इस प्रकार है :—

> पूर्व हास्य-वन नीय पश्चिमस्योपहारिक।
> दक्षिणे जह्नुसंज्ञाक भुवनाख्य तथोत्तरे॥

इस विषय मे ग्राउज महोदय का कथन है कि पूर्व का हास्य वन अलीगढ़ जिले मे स्थित बरहद का वन है। पश्चिम का उपहार वन, गुडगॉव ज़िले मे सोन नदी के किनारे है। दक्षिण में जह्नुवन सूरसेन का गांव वटेश्वर के निकट है। तथा उत्तर का भुवन वन या भूषण वन शेरगढ[3] स्थान के निकट है। नारायण भट्ट द्वारा दी हुई उक्त व्रज की हदो का जो मेल किंवदन्ती रूप मे प्रचलित दोहेवाली व्रज की हदो के साथ, ग्राउज ने किया है वह कहाँ तक ठीक है, निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता। वर्तमान काल मे यात्रा करने वाले कृष्ण भक्त व्रज ८४ कोस की परिक्रमा या व्रज यात्रा मे ऊपर कही हदों के स्थानो को नही छूते। उपर्युक्त किंवदन्ती के आधार से व्रज के मडल का केन्द्रस्थान मथुरा नगर है। मथुरा का प्रदेश प्राचीन-काल से शौरसेन प्रदेश भी कहलाता है और कृष्ण के पितामह शूरसेन के नाम पर उस प्रदेश का नामकरण हुआ कहा गया है। प्राचीन इतिहासवेत्ताओ ने मथुरा नगरी को ही शौरसेन प्रदेश की राजधानी लिखा है। व्रज[4] की हद बतानेवाले पीछे कहे दोहे से ज्ञात होता है कि शूर-सेन का गाव मथुरा के अतिरिक्त कोई अन्य स्थान है। ग्राउज महोदय ने, जैसा कि ऊपर कहा गया है, वर्तमान वटेश्वर को सूरसेन का गांव माना है। आगरा गजेटियर मे वटेश्वर का दूसरा नाम 'सूरजपुर' दिया हुआ है, शूरसेन नगर या गाव नही दिया। दूसरे व्रज के हद को बटेश्वर तक लाने में व्रजमडल का आकार वेडौल हो जाता है, और उसकी एक हद आगरे की 'वाह' तहसील मे दक्षिण पूर्वी कोने की ओर सुदूर निकल जाती है। इस प्रकार व्रजमडल का

१—वर्तमान वटेश्वर, आगरा जिले की तहसील 'बाह' में एक प्रसिद्ध स्थान है जहाँ प्रत्येक वर्ष चौपायों का मेला लगा करता है। सूरसेन का गाँव, बटेश्वर न होकर कोई अन्य स्थान भी हो सकता है। लेखक को ऐसे किसी स्थान का पता नहीं चला।

२—मथुरा मेमोयर, ग्राउज, पृष्ठ ८९।

नोट :—सोन नदी गुड़गाँव जिले की कोई छोटी बरसाती नदी कही जाती है।

३—शेरगढ़, तहसील छाता, जिला मथुरा में एक स्थान है।

४—The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, 1899 A. D. Edition by Nando Lal Dey.

गोलाकार रूप नही रहता। 'मडल'[१] शब्द से गोलाकार का ही वोध होता है। व्रज की धार्मिक स्वरूप-धारणा भी गोलाकार रूप की है।

पीछे कहे दोहे तथा नारायण भट्ट के श्लोक मे व्रज की हदो के वताए हुये सभी स्थानो की ठीक ठीक स्थिति सदिग्ध है। परन्तु हम व्रज के वर्तमान प्रसिद्ध और ज्ञात वनों के तथा व्रज यात्रा के स्थानो के आधार से व्रजमंडल की रूपरेखा का अनुमान कर सकते हैं। प्रसिद्धि है कि व्रज का केन्द्र मथुरा है। इसके चारों ओर आसपास के चौरासी कोस के स्थान मे ८४ वनो मे १२ वन तथा २४ उपवन मुख्य हैं। इस मडल के उत्तर के भुवन-वन तथा कोटवन, जो गुड़गांव जिले के हद पर स्थित है, ज्ञात है। पश्चिम मे भरतपुर राज्य के कामवन तथा चरण-पहाडी भी परिचित है। इन स्थानो तक वर्तमान व्रज यात्रा भी जाती है। व्रज की पूर्व की हद अलीगढ जिले मे वरहद और हास्यवन (वर्तमान हसाइन) मानी जा सकती है। दक्षिण की हद के विषय मे लेखक का अनुमान है कि यह आगरे के निकट तक है।[२]

श्री नदलाल डे ने आगरे का प्राचीन नाम 'अग्रवन' दिया है कि यह वन व्रज के ८४ वनो मे से एक है।[३] यदि मथुरा को केन्द्र मानकर, उक्त स्थानो को स्पर्श करता हुआ एक गोला खीचे तो ८४ कोस (१६८ मील) की परिधि का मडल वनता है, और उसके अन्तर्गत व्रज के सभी प्रसिद्ध स्थान आ जाते हैं। साथ मे लगे नक्शे मे लेखक ने व्रजमडल की रूप रेखाएँ दिखाई है वर्तमान चौरासी कोस की व्रज-यात्रा का मार्ग भी इस नक्शे से ज्ञात होगा। व्रज-भूमि की चौरासी कोस की हद महात्मा सूरदास जी ने भी वाँधी है। सूरसारावली मे वे कहते हैं:—

चौरासी व्रज कोस निरतर खेलत है वल मोहन,
सामवेद ऋग्वेद यजुर मे कहेउ चरित व्रजमोहन।[४]

इस कथन के आगे सूर ने कृष्ण के क्रीडा-स्थल वारह वनो के नाम दिये है। उनसे ज्ञात होता है कि ८४ कोस की परिधि मे मधुवन भी सम्मिलित है। परन्तु जहा सूर आदि इन अष्ट भक्तो ने व्रज छोड कर मथुरा तथा द्वारिका जाने का प्रस ग तथा गोपी-विरह का वर्णन किया है, वहां उन्होंने मथुरा नगर से व्रज-प्रदेश को अलग सा चित्रित किया है। लेखक का अनुमान

१—राजनीतिशास्त्र की शब्दावली में 'मंडल' शब्द का अर्थ "जनपद" रूप में भी लिया जाता है।

२—Cambridge Hiistroy of Ancient India page 336.

३—The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India, 1899 A. D. Edition by Nand Lal Dey, page 2.

४—सूरसागर सारावलि, वें० प्रे० पृ० ३७.

है कि व्रज के मधुवन मे स्थित मथुरा नगर , कंस के आतक से व्रज के अन्य स्थानो से ऐसा अलग हुआ माना जाता होगा , जहा लोगो का वहुधा वेरोक आना-जाना वंद-सा था। अष्ट-छाप काव्य मे 'व्रज' शब्द गोचारण , गोपालन तथा गोप-ग्वालों के निवास-स्थान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अष्टछाप की भाषा मे अक्रूर और उद्धव 'मधुवनियां' तो है लेकिन वे व्रज के वासी नही है । मथुरा के नागरिक लोग गोचारण तथा गोपालन के व्यवसाय और स्थानसे अलग थे । इसलिये उनको घोषवासी अथवा व्रज (गोपालक स्थान) के वासी नही कहा गया ।

'व्रज' शब्द का अर्थ है 'व्रजन्ति गावो यस्मिन्निति व्रज.' जिस स्थान पर नित्य गाएँ चलती है अथवा चरती है, उस स्थान को व्रज कहते है। व्रज को कृष्णभक्त,'गोलोक' भी कहते है। 'व्रज' शब्द की व्युत्पत्ति तथा उसके अर्थ के क्रमिक विकास पर डा०धीरेन्द्र वर्मा का नीचे लिखा लेख महत्त्व का है !'व्रज' का संस्कृत तत्सम रूप 'व्रज' है। यह शब्द सस्कृत धातु 'व्रज''जाना' से वना है । व्रज का प्रथम प्रयोग ऋग्वेद सहिता (जैसे ऋग्वेद मत्र २, मू० ३८, मं० ८, म० ५, सू० ३५, म० ४, मं० १०, सू० ४, म० २ इत्यादि) मे मिलता है परन्तु वह शब्द ढोरो के चरा-गाह या वाडे अथवा पशु-समूह के अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है । संहिताओं तथा इतिहास ग्रन्थ रामा-यण-महाभारत तक मे यह शब्द देशवाचक नही हो पाया था । हरिवशादि पौराणिक साहित्य में भी इस शब्द का प्रयोग मथुरा के निकटस्थ नद के व्रज अर्थात् गोष्ठ विशेष के अर्थ मे मिलता है, किन्तु इस प्रदेश की भाषा के अर्थ मे यह शब्द हिन्दी-साहित्य मे भी वहुत वाद को प्रयुक्त हुआ है । 'धार्मिक दृष्टि से व्रजमडल मथुरा जिले तक ही सीमित है किन्तु व्रज की वोली मथुरा के चारों ओर दूर दूर तक वोली जाती है ।''[१]

वर्तमान व्रज मे कृष्ण-चरित्र से सम्वन्ध रखने वाले जो स्थान आजकल जहाँ स्थित है, वे वहाँ वहुत पुराने वसे हुए नही है । कृष्ण के समय का भूगोल तथा अष्टछाप और आज के व्रज के भूगोल में वहुत अन्तर हो गया है । कौन कह सकता है कि यमुना, जिस रास्ते पर आज वहती है उसी पर सूर के समय मे तथा उससे सुदूर कृष्ण के समय मे वहती होगी । यमुना ने न जाने कितनी स्थितियाँ वदल ली है । वही हाल वहुत से प्राचीन स्थानो का भी है ।

कृष्ण-भक्ति के साथ व्रजभूमि का अटूट सम्वन्ध है । जव से कृष्ण-भक्ति का भारतवर्ष मे प्रचार हुआ तभी से व्रज-मंडल का महत्त्व भी वढा । कृष्णोपासक लाखो यात्री, सम्पूर्ण भारत से खिंच कर, व्रजयात्रा को प्रत्येक वर्ष व्रज मे आते है । कृष्णभक्तों के लिये व्रज की रज, व्रज के वन, नदी, पहाड, पशु-पक्षी, पुरुष-स्त्री, सभी प्रेम-भाव की पुनीतता के उद्रेक करने वाले है । अनेक भाषा-कवियो ने व्रज की इस पुनीतता का वर्णन किया हैं ।

१—नाम-माहात्म्य, श्री व्रजांक, अगस्त १९४०, 'व्रजभाषा' लेख, डा० धीरेन्द्र वर्मा ।

कृष्णोपासना की दृष्टि को अलग रखकर साधारण भौतिक सौन्दर्योपासना की दृष्टि को ही लेकर, यदि हम ब्रज के ८४ कोस के दायरे मे भ्रमण करे तो हमे ज्ञात होगा कि अब भी, प्राचीन काल से प्रशसित ब्रज-भूमि एक रमणीक प्रदेश है। पर्वत, टीले, कछार आदि, खंडित भूमि-भाग, चौरस मैदान, झील, कुड, पोखर आदि जलाशय, कदम, करील, हीस, छोकर, कीकर, ढांक, पलाश, वृन्दा, आम, जामुन आदि वृक्ष तथा लता वनो की कुंज गली, पपीहा, मोर, कोकिल, खजन आदि पक्षी, यमुना की कछारो मे चरनेवाली पुष्ट दुधारी गाय, सुखद जल-वाहिनी यमुना और वहाँ की सुन्दर ऋतुएँ, इन सम्पूर्ण प्राकृतिक रूपो को लेकर ब्रज की जिस शोभा का वर्णन समस्त भारतवर्ष के कवि-वर्ग ने मुक्त कठ से किया है, वह ब्रज की प्राकृतिक शोभा उक्त रूपो मे अब भी बहुत अश मे वर्तमान है। अष्टछाप के कवियो ने भी ब्रज के इस प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया है।[1] सरकार के प्रोत्साहन से ब्रज के जमीनदारो ने आजकल सुन्दर-सुन्दर वनो को काट कर भूमि को जोत मे ले लिया है और बहुत से प्राकृतिक दृश्यो को नष्ट कर दिया है। पश्चिमीय सयुक्त प्रान्त की सिंचाई ने भी नहरो द्वारा यमुना के जल को चूसकर इस भूमि के कुछ भाग को राजपूताने के रेगिस्तान से मिला दिया है, और इधर देहात की गरीबी और अशिक्षाजन्य आपस की कलह ने, ब्रजजनो को तथा उनके गो, गोवत्स आदि पशुवर्ग को सुखा डाला है। इस विषम स्थिति के बीच मे भी ब्रज-शोभा की झाँकी अब भी लुभावनी है। यमुना की कछारो मे वन गायो के झुड और मोरो के समूह अब भी विद्यमान है। कोसी की दुधारी गाएँ अब भी प्रसिद्ध है।

सावन और भादो के महीनो मे प्रत्येक वर्ष भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के कृष्णोपासक भक्त और जन-समुदाय ब्रज ८४ कोस की यात्रा किया करते है। ब्रज-यात्रा के पथ-प्रदर्शन करने वाली, वैष्णव भक्तो द्वारा लिखी हुई पुस्तके मथुरा वृन्दावन मे, इन यात्राओ के समय मे बिका करती है। यात्रा के बीच मे जो कृष्णोपासना के धार्मिक स्थान, कुज, कुड, पर्वत, वन और मन्दिर पडते है उनके नाम और उनका माहात्म्य उक्त पुस्तको मे दिये होते है। इन पुस्तको मे ब्रज के १२ वन, २४ उपवन, ५ टीले (पर्वत), ४ झील और चौरासी कुड बताये गये है।

१—सूरदास

मल्हार

शोभा माई अब देखन की बहार
गोवर्धन पर्वत के ऊपर मोरन की पतवार।

× × ×

घन गरजत और दामिनी दमकत नेन्हीं नेन्ही परत फुहार।
सूरदास प्रभु तौऊ न अघैहै अखियाँ हों लख चार।
वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह, भाग २, देसाई, पृष्ठ २७५।

वर्तमान समय मे मान्य १२ वन और २४ उपवनो के नाम नीचे दिये जाते हैं। महात्मा सूरदास ने भी ब्रज के वनों दिये है।[1]

ब्रज के वर्तमान समय में बताए हुए १२ वन[2] :

मधुवन, तालबन, कुमुदवन, वहुलावन, कामबन, खदिरबन, वृन्दावन, भद्रवन, भांडीरवन, वेलबन, लोहबन और महावन।

वर्तमान समय के २४ उपवन[3] :

गोकुल, गोवर्धन वरसाना, नदगाँव, संकेत, परममन्द्र, अरीग, शेपशायी, माट, ऊँचागाँव, खेलवन, श्रीकुण्ड, गन्धर्ववन, परसौली, विलछू, वछवन, आदिवद्री, करहला अजनोख, पिसायोवन, कोकिलावन, दधिवन, कोटवन, रावलवन,

जैसा कि ऊपर कहा गया है, वर्तमान काल मे वहुत से वन काट डाले गए है और वहाँ वन का कोई चिह्न तक नही है, परन्तु उक्त वनो के नामधारी गाँव उन स्थानो पर अव भी मौजूद है जिनमे से कई स्थान लेखक के देखे हुए है। महात्मा सूरदास ने ब्रज के जिन वारह वनो के नाम दिये है वे इस प्रकार हैं —

नोट—कालिदास ने रघुवंश के छठे सर्ग में गोवर्द्धन के मोरों का वर्णन किया है।

नंददास :

जहाँ तहाँ वोलत मोर सुहाए।
श्रवन, रमन, भवन वृंदावन घोर घोर घन आए।
नेंन्हीं नेंन्हीं वुंदन वरषन लागे ब्रज मंडल में छाए।
नंददास प्रभु संग सखा लिये कुंजनि मुरलि वजाए।
'नंददास', शुक्ल, पृष्ठ ३८१।

चतुर्भुजदास :

ब्रज पर नीकी आजु घटा।
नान्हीं नान्हीं बूंद सुहावन लागीं चमकत बीजु छटा।
गरजत गगन मृदंग वजावत नाचत मोर नटा।
श्रवन देत गावत चातक पिक प्रगटयो मदन भटा।
सव मिलि भेंट देत नंदलालहि वैठे ऊँचि अटा।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधरनलाल सिर कुसुमी पीत पटा।
लेखक के निजी चतुर्भुजदास पद संग्रह से, पद नं० ७४।

१—सूरसागर, सारावलि, वे० प्रे०, पृ० ३७, छंद नं० १०८८ तथा १०८९।
२—मथुरा मैमोयर, ग्राउज, तृतीय संस्करण, पृ० ८०:८१।
३—मथुरा मैमोयर, ग्राउज, तृतीय संस्करण, पृ० ८०:८१।

यहि विधि क्रीडत गोकुल में हरि निज वृन्दावन (१) धाम,
मधुवन (२) और कुमुदवन (३) सुन्दर, बहुलावन (४) अभिराम,
नन्दग्राम (५) सकेत (६) ,खिदर (७) वन और कामवन (८)धाम,
लोहवन(९)माट(१०)वेलवन(११)सुन्दर, भद्रवृहद(१२)वन ग्राम।*

सूरदास द्वारा दिये हुए इन वारह वनो के नामो मे वर्तमान समय के नंदगाँव, संकेत तथा माट उपवनो के नाम निम्नलिखित हैं। सम्भव है, सूर के समय का ८४ कोस का व्रज-मडल इन्ही वारह वनो से युक्त व्रजमडल रहा हो।

अष्टछाप से सम्वन्धित व्रज के कुछ स्थान

व्रज के पाँच पर्वत या टीले ये है :

गोवर्द्धन, वरसाना, नन्दीश्वर, और चरण पहाडी।

गोवर्धन—मथुरा से पच्छिम की ओर लगभग १२ मील की दूरी पर 'गोवर्धन' कृष्ण-भक्तो का एक परम पवित्र तीर्थ-स्थान है। गोवर्धन का साधारण अर्थ है, 'गौओ की वृद्धि करने वाला'। यहाँ पर गायो के चरने के लिए पर्वतीय वड़े-वडे चरागाह है। गोवर्द्धन पर्वत का विस्तार पूर्व की ओर लगभग ४ मील तक है। इसकी ऊँचाई सौ या सवा सौ फीट से अधिक नही है। गोवर्द्धन गाँव, पवर्त के दो हिस्सो के वीच में वसा है। इस पर्वत के विषय मे कथा है कि कृष्ण ने व्रज को रक्षा इसी को उठा कर की थी। लोग कहते हैं कि जैसे जमुना जल घटता जाता है उसी प्रकार गोवर्द्धन भी पृथ्वी में घुसता जाता है। इस पर्वत के दक्षिण की ओर अन्यौर तथा जीतापुरा दो और गाँव है। अकवर के शाही फरमानो मे जीतपुरा परगने का उल्लेख है। पहाडी के उतार पर वसे हुए जतीपुरा के निकट की पर्वत भूमि सवसे अधिक ऊँची हो गई है। यही पर श्री वल्लभाचार्यजी द्वारा निर्मित प्रसिद्ध श्रीनाथ जी अथवा गोवर्द्धननाथजी का मन्दिर है जिसका निर्माण सवत् १५७६ वि० मे समाप्त हुआ था। इस स्थान को गोपालपुर तथा गोवर्द्धन पर्वत को गोपाचल और गिरिराज भी कहते हैं। अष्टछाप के भक्त-कवियो ने इसी स्थान पर रहकर भक्ति और काव्य की पीयूषधारा वहाई थी। श्री वल्लभाचार्यजी तथा श्री गो० विट्ठलनाथजी की यहाँ वैठके वनी हुई हैं। व्रज मे, वल्लभ-सम्प्रदाय का 'गोकुल' के वाद यही मुख्य स्थान था। कहा जाता है कि प्राचीन काल मे गोवर्धन के निकट ही वृन्दाविपिन था और उसी के निकट यमुना वहती थी। वर्तमान वृन्दावान, जो गौडीय गुसाँइयो का वृन्दावन कहलाता है, गोवर्धन से लगभग १८ कोस की दूरी पर है।

---

*सूरसागर, सारावली, वें० प्रे०, पृ० ३७।

गोवर्धन पर स्थित श्रीनाथ जी के वैभवशाली मन्दिर को औरङ्गजेव ने नष्ट किया था, उसी समय सं० १७२६ वि० मे श्री हरिरायजी तथा अन्य वल्लभ-सम्प्रदायी गोस्वामी श्रीनाथजी के भव्य स्वरूप को उदयपुर राज्य मे ले गये और वहाँ तव से अव तक 'श्रीनाथद्वार' स्थान में वह स्वरूप स्थित है। गोवर्धन पर श्रीनाथजी का मन्दिर अव रिक्त पडा है। इसी के एक ओर आन्योर और दूसरी ओर जतीपुरा गाँव है। पर्वत के अन्तिम भाग के स्थान का नाम 'पूछरी' है। इन सभी स्थानो का उल्लेख ८४ तथा २५२ वार्ताओ मे आया है, और अष्ट-छाप कवियो के जीवनी-भाग मे आवेगा।

गोवर्धन गाँव के निकट एक वहुत वडा तालाव है, जिसको मानसी गङ्गा कहते हैं। कहा जाता है कि श्री वल्लभाचार्य जी के समय मे अकवर के मत्री राजा मानसिंह ने इस प्राचीन तालाव का जीर्णोद्धार किया था तालाव सूखा पडा रहता है। वन-यात्रा के समय वर्षा का जल इसमे भर जाता है। गोवर्धन मे वहुत सी कन्दराएँ है। लोग कहते है कि इसकी कन्दराओ के भीतरी छोर का आज तक किसी को पता नही चला। भीतर ही भीतर मीलो सुरगे गई है। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने इन्ही कन्दराओ मे मे एक मे प्रवेश कर अपनी इहलोकलीला समाप्त की थी।

मथुरा

व्रजभाषा कवियो ने इस नगर के मथुरा, मधुपुरी, तथा मधुवन ये तीन नाम लिखे है। मधुवन स्थान वर्तमान मथुरा से चार मील दूरी पर है। कहा जाता है कि शत्रुघ्न ने 'मधु' नामक दैत्य तथा लवणासुर को मारकर 'मधुपुरी' नाम की नगरी वसाई थी। पीछे इसी शब्द का अपभ्रंश रूप मथुरा हुआ। पुरानी मथुरा उस स्थान पर वताई जाती है जहाँ आजकल केशवदेव जी का मन्दिर स्थित है। प्राचीन काल से ही मथुरा एक पवित्र स्थान माना जाता रहा है। बौद्धधर्म के ह्रास के वाद, वैष्णव-धर्म के पुनरुत्थान के साथ मथुरा नगर की धार्मिक महत्ता और उसकी पवित्रता की वृद्धि हुई। वैष्णवधर्म के उत्थान ने निम्नलिखित सात नगरो की विशेष वृद्धि की थी। वैष्णव लोग इन नगरो को अव तक मोक्ष-दाता कहते है। वे नगर ये है[२]—

काशी (वाराणसी) काञ्ची (कांजी) माया (हरिद्वार)
अयोध्या, द्वारावती (द्वारका) मथुरा तथा अवन्ती।

१—अष्टछाप, कॉकरौली पृ० ३२१।

२—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायका:।
एवं सप्त पुरीणान्तु सर्वोत्कृष्टन्तु माथुरम्।
लघुभागवतामृत, श्रीरूपगोस्वामी, वें० प्रे०, पृष्ठ २५०।

हिन्दू इतिहास काल मे मथुरा नगर बहुत काल तक चन्द्रवंशी राजाओ की राजधानी रहा। इस नगर पर मुसलमानो के अनेक आक्रमण हुये और कई बार यह नष्ट-भ्रष्ट भी किया गया। महमूद गज़नी ने मथुरा की सम्पत्ति को खूब लूटा[1] और यहाँ के सुन्दर स्थानो को नष्ट किया। सन् १५०० ई० मे सिकन्दर लोदी सुलतान ने इस नगर को तबाह किया और यहाँ तलवार के बल पर हज़ारो हिन्दुओ को मुसलमान बनाया। श्री यदुनाथ जी कृत 'वल्लभ-दिग्विजय' मे सिकन्दर लोदी के इस स्थान पर रहनेवाले राजकर्मचारियो द्वारा किये गये अत्याचारो का उल्लेख आता है।[2] सन् १६६९ ई०[3] मे औरङ्गजेब ने यहाँ के मन्दिरो को तुड़वाया और उनके स्थानो पर मसजिदे बनवाई। इतनी आपत्तियो के बीच भी मथुरा का महत्व तथा वैष्णवो मे उनके प्रति पुनीतता का विश्वास बना ही रहा।

मथुरा के प्राचीन टीले खँडहर, तालाब तथा कुँओ मे बहुत प्राचीन ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तुएँ पाई गई हैं। इसलिये संयुक्त-प्रान्त की सरकार की ओर से वहाँ एक बहुत बड़ा पुरातत्त्व-विभाग का 'म्यूजियम' स्थापित किया गया है। मथुरा के चारो ओर चार शैव मन्दिर हैं। नगर के पश्चिम मे भूतेश्वर जी, पूर्व मे पिप्पलेश्वर, दक्षिण मे रंगेश्वर और उत्तर मे गोकर्णेश्वर—ये चार शिवमन्दिर है। कहा जाता है कि वैष्णव प्रभाव से पहले मथुरा पर शैवोपासक भक्तो का प्रभाव था। यहाँ का केशवराय जी का मन्दिर अष्टछाप के समय मे ही बना था। आज कल मथुरा मे कई सुन्दर मन्दिर हैं जो वस्तुत: बहुत पुराने नही है—जैसे, श्री द्वारकाधीश जी का मन्दिर, श्री गोविन्ददेव जी का मन्दिर, श्री बिहारी जी का मन्दिर, श्री मदनमोहन जी का मन्दिर आदि। श्री द्वारकाधीश जी के मन्दिर के आगे निम्बार्कसम्प्रदायी श्री राधाकान्त जी का मन्दिर है, तथा प्रयागघाट पर श्री वेणीमाधव जी का रामानुज-सम्प्रदायी मन्दिर है। गऊघाट पर विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय का श्री राधाविहारी जी का मन्दिर है। ये सभी मन्दिर १९ वी शताब्दी के बने हुए है।[4]

यमुना के संसर्ग मे आसपास के खादर के वन्य दृश्यो से मथुरा-प्रदेश की प्राकृतिक शोभा भी दर्शनीय है। अष्टछाप कवियो मे से श्रीछीतस्वामी मथुरा के ही निवासी चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। जिनके वंशज अब भी मथुरा मे हैं। छीत स्वामी के वंशजो का एक घराना श्यामघाट पर रहता है लेखक की इस वंश के एक सज्जन से मथुरा मे वार्तालाप भी हुई थी।

१—सन् १०१८ ई० 'इतिहास प्रवेश', जयचन्द्र विद्यालंकार, पृष्ठ २११ तथा २१२।

२—वल्लभ दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृष्ठ ५०।

३—मथुरा मैमोयर, ग्राउज़, तीसरा संस्करण, पृष्ठ १२०।

४—मथुरा मैमोयर, ग्राउज तृतीय संस्करण, पृष्ठ १७८।

इस नगर का भी धार्मिक महत्त्व बहुत है। व्रज-भूमि मे कृष्ण-भक्ति के प्रचारक आचार्यो के समागम का मुख्य स्थान, अष्टछाप कवियो के समय मे, वृन्दाव नही था। यहाँ पर कई मन्दिर उसी समय के स्थित है। कृष्ण-पूजा के जितने

वृन्दाबन

सम्प्रदाय अष्टछाप के समय प्रचलित थे अथवा हुए उन सबके साम्प्रदायिक मन्दिर अथवा स्थान इस नगर मे विद्यमान है। स्वामी हरिदास जी का 'बाँके बिहारी जी' का मन्दिर है, और श्री स्वामी हितहरिवंश जी का 'राधा-वल्लभ जी' का मन्दिर है, जिसकी स्थापना श्री हितहरिवंशजी ने संवत् १५६५ वि० मे की थी। अष्टछाप के समकालीन श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी[1] के सम्प्रदाय का 'श्री राधा-रमणजी' का मन्दिर है जिसकी स्थापना श्री चैतन्य महाप्रभु जी के शिष्य श्री गोपाल भट्ट ने की थी। श्री चैतन्य महाप्रभु के समय के बने हुए इस सम्प्रदाय के और भी कई मन्दिर यहाँ है जैसे, श्री गोविन्ददेव जी के मन्दिर को अष्टछाप के समकालीन श्री रूपगोस्वामी तथा श्री सनातन गोस्वामी जी ने संवत् १६४७ वि० मे स्थापित किया था। श्री गोकुलानन्द जी का मन्दिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु के समय का ही बना हुआ है। श्री रामानुज-सम्प्रदाय का 'श्रीरंगजी' का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध और वैभवशाली है। परन्तु यह मन्दिर पुराना नही है, संवत् १९०८ वि० का बना हुआ है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के गोस्वामी विट्ठलनाथ जी तथा श्री गोकुलनाथ जी महाप्रभु की बैठको के स्थान भी यहाँ बने हुये है, परन्तु इस सम्प्रदाय का यहाँ कोई वैभवशाली मन्दिर नही है। अष्टछाप भक्त कभी-कभी इस स्थान पर भी आते-जाते थे। वृन्दावन की महिमा तथा इस स्थान के वन के प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन अष्टछाप तथा अन्य कृष्ण-भक्तो ने बहुत किया है। मथुरा और वृन्दावन के बीच मे वृन्दावन बडा जंगल है। प्राचीन वृन्दावन किस स्थान पर था, इस विषय मे अनुमान से लोग कई स्थान बताते है। कहा जाता है कि जमुना के किनारे का वर्तमान वृन्दावन माध्वसम्प्रदाय के किसी आचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु जी ने बसाया था।

गोवर्धन पर स्थित इस स्थान का विवरण पीछे 'गोवर्धन' के साथ दिया जा चुका है। इस गाँव के पास लगभग एक मील पर एक ' बिलछू कुण्ड ' नाम का सरोवर है, जहा,गोपाल पुर में रहते हुए नन्ददास जी नहाया करते थे[2]। गोपालपुर से ढाई

गोपालपुर

मील पर 'मानसी गङ्गा' सरोवर है। '२५२ वार्ता' के अनुसार नन्ददास जी इसी मानसी गङ्गा स्थान पर अकबर से मिले

१—कल्चरल हेरिटेज आफ इंडिया सीरीज़, भाग २, पृष्ठ १३१ तथा १५३।
जन्म संवत् १४४२ वि०, निधन संवत् १५९१ वि० (सन १४७६:१५३३ ई०) तथा मथुरा मैमोयर, ग्राउज, तृतीय संस्करण, पृष्ठ १६७।

२—'२५२ वैष्णवन की वार्ता' के अन्तर्गत 'रूपमंजरी की वार्ता,' वें० प्रे०, पृ० ४६२।

थे[1] और बादशाह के समक्ष उनका देहावसान हुआ था। श्रीनाथ जी के मन्दिर के इन आसपास के स्थानो का सम्बन्ध अष्टछाप कवियो से बहुत रहा है।

जमुनावतौ

यह स्थान भी गोवर्धन के निकट ही है। कहते है कि पहले यमुना इस गाँव के पास मे होकर ही बहती थी। इसीलिये यमुना के निकटवर्ती इस स्थान का नाम 'जमुनावतौ' पडा। अष्टछाप कवियो मे से श्री कुम्भनदास जी यही के रहने वाले थे। कुम्भनदास जी के नाम की एक पोखर और एक 'खिरक' '(बाडा) आज तक प्रसिद्ध है।

परसौली

यह स्थान भी गोवर्धन के पास ही है और आजकल मथुरा परगने मे है। कृष्ण की 'परम रासस्थलि' होने से यह स्थान अपभ्रंश रूप मे परसौली या पारसौली कहलाता है। कहते है कि कृष्ण ने यही पर गोपी-कृष्ण-रास किया था और प्राचीन वृन्दावन इसी के कही आसपास था। इस स्थान पर श्री वल्लभाचार्य जी, श्री गो० विट्ठलनाथ जी तथा श्री गोकुलनाथ जी की बैठके बनी हुई है। ये आचार्य वहाँ रहकर साम्प्रदायिक व्याख्यान दिया करते थे। एक बार, अष्टछाप के भक्त कवि तथा श्रीनाथ जी के मंदिर के अधिकारी कृष्णदास जी ने श्री गो० विट्ठलनाथ जी को श्रीनाथ जी के दर्शनो से वंचित कर दिया था। उस समय गुसाई जी इसी परसौली स्थान पर कुछ समय रहे थे और वही से, दूर से, श्रीनाथ जी के मन्दिर के दर्शन कर लिया करते थे। गुसाई जी ने श्रीनाथ जी के विरह मे, यही रहकर 'विज्ञप्ति' नामक रचना बनाई थी। अष्टछाप भक्तो मे प्रमुख भक्त सूरदास का देहावसान इसी स्थान पर हुआ था। इस स्थान के निकट 'चन्द्र सरोवर' नाम का तालाब है जो बहुत पवित्र समझा जाता है। इसलिए परसौली को 'चन्द्र सरोवर' भी कहते है। अष्टछाप के परम भक्त कवि कुम्भनदासजी की परसौली तथा 'चन्द्रसरोवर के निकट भूमि थी, जहाँ वे अपनी जीविका रूप मे खेती किया करते थे।

पूछरी

यह स्थान गिरिराज गोवर्धन का अन्तिम भाग है। इसके निकट कई कुण्ड है, जैसे अप्सरा कुड, नवल कुण्ड, रुद्र कुण्ड आदि। इसी स्थान पर अकबर तथा अष्टछाप के समकालीन प्रसिद्ध गवैये तथा भक्त, रामदास की गुफा है, जहाँ वे रहा करते थे। पूछरी के थोडी दूर आगे रुद्र कुण्ड पर अष्टछाप के कवि कृष्णदास अधिकारी का बनवाया हुआ कुँआ है जिसमे गिरकर उनकी मृत्यु हुई थी। पूछरी के पास ही 'श्याम ढाक' नामक एक और स्थान है, जहाँ पर, ८४ वार्ता के कथनानुसार[2], कृष्ण दास अधिकारी मरने के बाद भूत-योनि मे रहते थे और जहाँ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनका उस योनि से उद्धार किया था। श्याम ढाक के निकट ही अष्टछाप के भक्त श्रीगोविद

१—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ३४८ तथा ३५१।

२—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० २३९ से २४५ तक।

स्वामी का स्थान, उन्ही के नाम पर 'गोविन्द स्वामी की कदम खण्डी' और 'गोविन्द स्वामी की गुफा' प्रसिद्ध है। 'कदम खण्डी' कदम वृक्षो के घने समूह को कहते है। गोविन्द स्वामी जी वल्लभ सम्प्रदाय मे आने के वाद यही रहते थे और यही से गोवर्द्धननाथ जी की कीर्तन-सेवा करने जाते थे।

जतीपुरा

गोवर्द्धन के परिचय के साथ इस स्थान का कुछ परिचय पीछे दिया जा चुका है। जतीपुरा गोवर्द्धन पर्वत के नीचे उतार पर पहाडी से लगा हुआ एक गाँव है। इस स्थान पर श्रीवल्लभाचार्य जी के वंशज गुसाइयो की गद्दियो के सात-सात मन्दिर है। यही पर श्रीनाथ जी की मूर्ति (वल्लभ-सम्प्रदाय की भाषा मे स्वरूप) का प्राकट्य हुआ था जिसका स्मारक यहाँ बना हुआ है। श्री आचार्य जी की यहाँ प्रसिद्ध बैठक है। इस स्थान पर अनेक गुफाएँ है।

गाँठ्योली और टोड़ का घना

गाँठचोली स्थान भी गोवर्धन से थोडी ही दूर पर है। कहा जाता है कि यही पर राधा और कृष्ण का ग्रन्थि-बंधन हुआ था, इसी से यह स्थान 'गाँठचोली' कहलाता है। अष्टछाप-कवि जब श्रीनाथ जी के मन्दिर मे कीर्तन करते थे तो उनके साथ ग्यामकुमार[1] पखावजी, पखावज बजाता था तथा उसकी लडकी ललिता, वीणा बजाया करती थी। यह ग्यामकुमार पखावजी इसी गाँठचोली गाँव का रहने वाला था।

महावन

यह स्थान मथुरा से पाँच मील दूर यमुना की दूसरी ओर स्थित है। अब तक महावन मथुरा जिले की एक तहसील था कुछ दिन हुए यह तहसील तोड़ दी गई है। महावन और वर्तमान गोकुल मे लगभग एक मील का अन्तर है। कहा जाता है कि कृष्ण के समय मे महावन को ही गोकुल कहते थे। आज कल महावन और गोकुल के निकट कोई बडा वन नही है। महावन स्थान का महत्त्व बौद्धकाल ही से बहुत रहा है। पुरातत्ववेत्ताओ को वहाँ के स्थानो के खोदने से बौद्धकालीन वस्तुएँ मिली है। ग्राउज महोदय[2] का कहना है कि मुगल सम्राट् बाबर महावन के जगलो मे शिकार खेलने आता था। इस स्थान पर भी वल्लभ-सम्प्रदायी गुसाई रहते है। यहाँ का एक अस्सी खम्भा स्थान भी बहुत प्रसिद्ध है जहाँ ये अस्सी खम्भे बहुत प्राचीन काल के बने बताए जाते है। अष्ट-छाप-कवियो मे प्रसिद्ध भक्त कवि गोविन्दस्वामी, जो आँतरी गाँव के रहने वाले थे, कृष्ण-प्रेम-भक्ति मे घर छोड महावन मे आ बसे थे। वहाँ वे पद गाने मे बहुत प्रसिद्ध थे। गोकुल और

१—वैष्णव वार्ताओं में 'श्यामकुमार' नाम दिया है।
'८४ वैष्णवन की वार्ता' के अन्तर्गत कृष्णदास अधिकारी की वार्ता तथा अष्टछाप कांकरौली, पृष्ठ २०२, अष्टछाप, डा० वर्मा, पृष्ठ २६।

२—मथुरा मैमोयर, ग्राउज, पृष्ठ २७२।

महावन के पास एक यशोदा घाट यमुना के किनारे का स्थान था। गोविन्द स्वामी इसी घाट पर बैठकर राग अलापा करते थे।

वल्लभ सम्प्रदाय का यह मुख्य स्थान रहा है और अब भी है। वस्तुतः गोकुल स्थान को श्रीवल्लभाचार्य जी तथा श्री गो० विट्ठलनाथ जी ने ही बसा कर नगर का रूप दिया था।[1]

गोकुल

इसलिये गोकुल को गुसाइयों की गोकुल तथा वल्लभ सम्प्रदायी गोस्वामियों को गोकुल गुसाईं कहा जाता है। वर्तमान गोकुल में अनेक मन्दिर हैं, परन्तु सबसे प्राचीन मन्दिर यहाँ पाँच हैं। ये मन्दिर वस्तु-कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर नहीं है और न इन पर ऊँचे ऊँचे गुम्बद हैं। विट्ठलनाथ जी का मन्दिर, गोकुलनाथ जी का मन्दिर, मदनमोहन जी का मन्दिर बालकृष्ण जी का मन्दिर तथा नवनीतप्रिय जी का मन्दिर, ये बहुत मान्य है। इनमें से कुछ अष्टछाप कवियों के जीवन काल के ही बने हुए हैं। श्री गोकुल नाथ जी का मन्दिर आजकल सबसे अधिक वैभवशाली है, इसका निर्माण[2] सन् १५११ ई० मे तथा बालकृष्णजी के मन्दिर का निर्माण सन् १५३६ ई० मे हुआ था। नवनीतप्रिय जी के मन्दिर की स्थापना गोकुल मे संवत् १६२८ वि० मे हुई थी, जहाँ सूरदास जी कभी-कभी कीर्तन के लिए आते थे। गोकुल मे श्रीवल्लभाचार्य जी भागवत तथा अपने अन्य धार्मिक ग्रन्थों पर व्याख्यान दिया करते थे। प्रयाग के पास स्थित अडैल से जब वे व्रज मे आते थे तो उनके ठहरने का यही मुख्य स्थान था। संवत् १६२३ वि० मे गो० विट्ठलनाथ जी अडैल छोडकर सपरिवार गोकुल आ गये, परन्तु थोडे दिन वहाँ रहकर वे मथुरा चले गए। उसके बाद संवत् १६२८ वि० के लगभग वे सपरिवार गोकुल फिर आए और स्थायी रूप से वही रहने लगे। इसी स्थान पर अष्टछाप के कवि नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविंद स्वामी तथा छीतस्वामी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य बने थे।

गोकुल मे वल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्यों मे से, श्री वल्लभचार्य जी, श्री विट्ठलनाथ जी

१—श्री विट्ठलनाथ से प्रभु भए न ह्वैहै।

.. ..

... . .

को कृतज्ञ करुना सेवक तन कृपा सुदृष्टि चितैहै।

गाय ग्वाल सँग लैकें को फिर गोकुल गाँव बसैहै।

. . ...

लेखक के निजी, चतुर्भुजदास-पद-संग्रह से, पद नं० ७१।

२—मथुरा मैमौयर, ग्राउज, पृष्ठ २६१।

नोट—वल्लभ सम्प्रदाय में आने के पहले सूरदास के निवासस्थान गऊघाट और रुनकता का परिचय सूर की जीवनी में दिया गया है।

तथा श्री गोकुलनाथ जी की बैठके बनी है, जहाँ अब भी वार्ता आदि साहित्यो पर वल्लभ-सम्प्रदायी विद्वानो के प्रवचन हुआ करते है। गोकुल और गोवर्धन पर श्री विट्ठलनाथ जी के देहावसान के बाद उनके सात पुत्रो के सात मन्दिर बने, जिनमे कृष्ण के सात स्वरूप स्थापित थे मुसलमान बादशाहों के उत्पीडन मे इनमे से छः स्वरूप तो अन्य स्थान, रजवाडो मे ले जाकर स्थपित कर दिये गए, केवल श्री गोकुलनाथ जी का प्राचीन स्वरूप वापिस गोकुल मे आया और वह अब तक वही है।

व्रज के पीछे दिये हुये स्थानो के अतिरिक्त और भी बहुत से स्थान है जिनका सम्बन्ध व्रज मे प्रचलित भिन्न-भिन्न कृष्णभक्ति के सम्प्रदायो से है। श्रावण भादो की व्रज-यात्रा मे यात्री इन स्थानो मे होकर जाते है। ऊपर उन्ही स्थानो का संक्षिप्त विवरण दिया गया है जिनका अष्टछाप भक्तो से सम्बन्ध था। ये आठो कवि वैसे व्रज के और भी अनेक स्थानो पर गए होंगे परन्तु उन स्थानो का वार्ता-सहित्य तथा अष्टछाप-जीवनी से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थ मे उल्लेख नही है।

अष्टछाप काव्य की पृष्ठभूमि

किसी कवि के काव्य का सम्वन्ध उसके पूर्व और उसके समकालीन युग से घनिष्ठ होता है। प्रत्येक कवि अपने युग के प्रभावो को किसी न किसी अश मे लेता हुआ ही अपनी कृति से अपने ही युग को अथवा आगामी युगो को प्रभावित करता है। इसलिये उस कवि के अध्ययन के लिये उसके पूर्व और समकालीन युग का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा मे ही हम उस कवि के काव्य की सहानुभूतिपूर्ण आलोचना कर सकते है। अपने जीवन और युग के लिए तो हम उसकी कृति के मूल्य को विना उसके युग का परिचय प्राप्त किये ही आक सकते है परन्तु कवि के दृष्टिकोण और उसके विचारो की तह पर पहुँचने के लिये उसके समय की विचारधारा का सहारा लेना परम आवश्यक है। अस्तु, अप्टछाप-काव्य के अध्ययन मे पहले उनके पूर्ववर्ती तथा उनके समय की साहित्यिक,कुछ अ श मे राजनैतिक और सामाजिक, तथा धार्मिक परिस्थितियो का परिचय लेना समीचीन होगा। इन ग्रन्थ मे सम्पूर्ण देश और सम्पूर्ण भापाओं की तत्कालीन परिस्थितियो को न देकर, उन्हे केवल हिन्दी भापा और अप्टछाप-काव्य की जन्म भूमि व्रजमण्डल तक ही, अधिक अ श मे, सीमित रक्खा गया है। अप्टछाप काव्य-रचना का समय लगभग स० १५५५ वि० से सवत् १६४२ वि० तक का है। गोवर्धन पर श्रीनाथ जी के मन्दिर मे लगभग सवत् १६०६ से सवत् १६३५ तक आठो कवियो की स्थिति थी।

अष्ट छापके समक्ष हिन्दी के साहित्यिक रूपमें आई हुई काव्य-परम्परा, साहित्यिक परिस्थिति

अप्टछाप के पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य का परिचय उन्ही सहित्यिक विचारधाराओ के आधार पर लेने का प्रयत्न किया जायगा जिसको हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहासकारो ने अपनाया है और जिनसे हम अव सुपरिचित हो गए है। इतिहास-कारो ने अप्टछाप-काल तक के हिन्दी-साहित्य के इतिहास को मुख्यत. पाँच धाराओ मे विभाजित किया है। १—वीर गाथाकाव्य, २—योगी और ज्ञानियो का संत-काव्य ३—सूफियो का प्रेम गाथा काव्य। ४— रामकाव्य तथा ५— कृष्णभक्ति-काव्य। छठी काव्यधारा एक प्रकीर्णक भी कही जा सकती है जिसके अन्तर्गत विविध प्रकार के लौकिक विपय और मनोरजन से सम्बन्ध रखनेवाले काव्य को गिना जा सकता है।

१—ये तिथियाँ आठों कवियो के जीवनचरित्र-विषयक तिथियों के आधार पर, जिनको लेखक ने सप्रमाण, जीवनी भाग में, निर्धारित किया है, दी गई है।

हिन्दी साहित्यके इतिहासकारो ने पुष्य (सम्वत् ७७०) से लेकर अष्टछाप के काल मे होने वाले 'क्रिसन रुक्मिणी री वेल' के रचयिता[1] पृथ्वीराज (रचना काल स० १६३७ वि०) तक के अनेक वीरगाथा और वीरगीत लेखकों के नाम दिये है । उनमे से बहुत से कवियो के ग्रन्थ अभी तक मिले भी नही है । इस काव्य-धारा के प्रमुख कवि, जिनकी कृतियाँ उपलब्ध है, दो है :—'बीसल देव रासो' के रचयिता नरपति नल्ह तथा 'पृथ्वीराजरासो' के रचयिता चन्द । वीरो के पराक्रम और उनके यश का, वीर और शृंगार-रस-पूर्ण वर्णन वीर गाथाओ का विषय है । बहुधा यह काव्य दोहा, कवित्त, छप्पय तथा कुछ अन्य गेय छदो मे लिखा गया है । ये वीर गाथाएँ सम्पूर्ण हिन्दी प्रान्त मे भाषा के कुछ रूपान्तर के साथ अवश्य प्रचलित रही होगी । जगनिक का 'आल्हा खण्ड,' यद्यपि इसकी मूल भाषा के रूप को अलग खडा करके दिखाना अत्यन्त कठिन है, इस बात का प्रमाण है । यह वीर-काव्य सम्पूर्ण हिन्दी-प्रान्त मे अभी तक प्रचलित चला आता है ।

वीरगाथा-काव्य

चन्द आदि वीर-गाथा-लेखको की डिंगल भाषा मे व्रजभाषा के रूप भी हमे मिलते है जो आगे चलकर पिंगल नाक से एक स्वतन्त्र और प्रबल साहित्यिक भाषा बनी । वीर-गाथाओ से अष्टछाप भक्तिकवि भी परिचित अवश्य रहे होगे, क्योंकि नर-काव्य, राजाओ की सेवा और उनके आश्रय की निन्दा सूर और परमानन्ददास ने अपने दो चार पदों मे की है, जिसको उनकी 'भक्ति' के प्रसङ्ग में भी दिखाया गया है । सम्भव हो सकता है कि अष्टछाप ने दोहा, कवित्त आदि कुछ छन्दो को उस काव्यपरम्परा से लिया हो । परन्तु इस रासो-काव्य की वीर शैली का, भाव और भाषा की दृष्टि से, अष्टछाप-काव्य मे कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही दिखाई देता ।

अष्टछाप समय तक की सन्त-काव्य की परम्परा गुरु गोरखनाथ (वि० की तेरहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध) से चल कर सिख पन्थ के प्रवर्तक गुरु नानक तक आती है । इस परम्परा के मुख्य कवि है—हठयोगी गुरु गोरखनाथ, स्वामी रामानन्द जी के शिष्य पीपा, सेना, धना रैदास तथा कबीर, नानक , महाराष्ट्र-कवि त्रिलोचन और नामदेव । इन सन्तो मे से लगभग सभी ने अपने स्वतन्त्र धार्मिक पन्थ चलाये थे। इन पन्थों मे से सबसे अधिक प्रभावशाली और प्रचार पाने वाले पन्थ , गुरु गोरखनाथ जी का शून्यवादी

सन्त काव्य

१—'कृष्ण रुक्मिणी री वेल,' के रचयिता, बीकानेर के राजा पृथ्वीसिंह जी का वर्णन २५२ वार्ता में भी दिया हुआ है, जो गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक कहे गये हैं ।

और हठयोग का अनुयायी नाथ-पन्थ शब्द-ब्रह्मवादी तथा ज्ञान और योग का अनुयायी कबीर-पन्थ, तथा निर्गुण-ईश्वर और नाम का उपासक रैदासी पन्थ थे। सन्त-साहित्य की भाषा का रूप एक अनिश्चित तथा मिश्रित भाषा का रूप था। इसमें पूर्वी अवधी, भोजपुरी, खडी बोली ब्रजभाषा और पंजाबी का मिश्रण मिलता है। सन्त काव्य के विषय, वैराग्य, ससार की असारता, गुरुमहिमा, मानसिक परिष्कार के उपाय, सदाचार, मन के प्रति प्रबोध, ज्ञान और योग की व्यक्तिगत अनुभूतिया, इन रहस्यात्मक अनुभूतियो का रतिभाव की अन्योक्तियो मे व्यक्तीकरण आदि है। इस काव्य का मुख्य रस शान्त है, यह मुक्तक शैली और छन्द तथा पद, दोनो साहित्यक रूपो मे लिखा गया है।

नाथ-पन्थ के शून्यवाद और हठयोग, तथा कबीर आदि सन्तो के केवल निर्गुण'ब्रह्म-वाद' की निन्दा, ज्ञान और योग मार्गो की अनुपयुक्तता तथा इन मार्गो के सिद्धान्तो के प्रति उपेक्षा के भावो का व्यक्तिकरण सूरदास, परमानन्ददास तथा नन्ददास ने अपने कई पदो मे किया है।[१] इनके 'गोपी-उद्धव-सम्वाद,मे इस विषय से ही सम्बन्ध रखनेवाला वादविवाद वर्णित है, है, जो इस बात की साक्षी देता है कि ज्ञान और योग के तथा केवल निर्गुण ब्रह्म और शून्य के माननेवाले, उस समय मे प्रचलित पन्थो के सिद्धातो से ये कवि परिचित थे। सन्तो की वाणी मे तथा अष्टछाप-काव्य मे कुछ वर्णित विषय तथा शैली की भी समानता पाई जाती है जैसे, सूरदास ने वैराग्य[२], ससार की असारता[३] नाम महिमा[४], सन्त महिमा[५] गुरु महिमा[६], आदि सन्त-काव्य, के अनेक वपयो के समान ही विविध विषयो पर बहुत पद लिखे है।गुरु-महिमा और सन्त-महिमा का वर्णन तो आठो कवियो ने किया है। सन्त-काव्य की साखो और पद-शैली तो अष्टछाप काव्य मे है ही, प्रेम की सयोग-वियोगात्मक अनुभूति की मधुर भक्ति-पूर्ण उक्तियाँ भी, सन्तो की प्रेम-अन्योक्तियो के समान, इस काव्य मे विद्यमान है। कबीर की उल्टबासियो की पेचीदगी और अर्थगोपन के गुण सूर के दृष्टि-कूट पदो मे मिलते है। इन समानताओ के आधार पर इस निष्कर्ष का .अनुमान किया जा सकता है, कि अष्टछाप कवि सन्त-काव्य से परिचित होने के साथ-साथ, उससे किसी अश मे प्रभावित भी हुये थे। इस विषय मे एक बात यह न भूलनी चाहिये कि जिन वर्णित विषयो की समानता हमे अष्टछाप और सन्त-काव्यो मे मिलती है उन सभी विषयो का सक्षेप मे समावेश अष्टछाप-काव्य के मूल आधार-ग्रन्थ श्रीमद्भागवत मे भी है तथा पद-शैली का समावेश जय देव से आती हुई कृष्ण-काव्य-परम्परा मे है। इन दोनो काव्यो मे मुख्य समानता विचारो की उतनी नही जितनी पद-शैली की कही जा सकती है जिसके अग्र-प्रचारक हिन्दी मे सन्त कवि थे।

१—सूरसागर, पृष्ठ ५१२, ५१६, ५२४, ५४६ तथा ५४७।

२— ,, ,, २७। ३—सूरसागर, पृष्ठ ३२ तथा ३३।

४— ,, ,, ३७। ५— ,, ,, ५६ तथा ५७।

अष्टछाप-काव्य मे यह पद-शैली सन्तकाव्य की पद-शैली मे अधिक परिष्कृत और कला-पूर्ण है। इसका कारण यही है कि अष्टछाप के कवि स्वयं उच्चकोटि के सङ्गीतज्ञ, कला-विवेकी और विद्वान् थे, उधर सन्त कवि बहुधा अनपढ तथा सङ्गीत और काव्य- कला के शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ थे।

सन्त-काव्य-धारा के अन्तर्गत कहे गए कवियों मे से, सन्त नामदेव (वि० की चौदहवी-शताब्दी) का प्रभाव अष्टछाप पर अवश्य पडा होगा। महाराष्ट्र तथा हिन्दी[1] के कवि, और 'विठोबा' के परम भक्त, नामदेव की बानी का प्रचार उनके जीवनकाल मे ही दूर दूर फैल गया था। पण्ढरपुर मे श्री विट्ठल भगवान् (विठोबा अथवा कृष्ण) की मूर्ति के समक्ष ही, जिनके[2] उपासक नामदेव जी भी थे, श्री वल्लभाचार्य जी ने भक्ति की प्रेरणा ली थी। उस समय उन्होंने नामदेव जी के प्रेम और ज्ञान भरे अभङ्ग तथा व्रजभाषा मे लिखे पद, सोरठ और साखियों को अवश्य सुना होगा। नामदेव ने स्वय भारतवर्ष के तीर्थस्थानो की यात्रा की थी। उन्होंने व्रज मे अपनी मधुर वाणी का प्रभाव भी छोडा होगा। व्रज मे अष्टछाप के प्रथम चार भक्तो ने नामदेव जी की कृष्ण-भक्ति और उनके ज्ञानोपदेशो के विषय मे अपने गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी के मुख से अवश्य सुना होगा।

अष्टछाप -काव्य की भाषा पर सन्त-काव्य की मिश्रित भाषा का हमे कोई उल्लेखनीय प्रभाव नही मिलता। हाँ, यदि नामदेव जी के नाम से हिन्दी साहित्य के ग्रन्थो मे उद्धृत की जानेवाली भाषा का व्रजभाषा-रूप नामदेव जी ही द्वारा लिखित है, तब तो उनकी भाषा मे व्रजभाषा के एक ऐसे साहित्यिक रूप का नमूना मिल जाता है जिसको सूर और परमानन्ददास की परिष्कृत साहित्यिक व्रजभाषा की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। परन्तु उस भाषा के नामदेव-कृत होने मे सदेह है। कदाचित् व्रजभाषा की मौखिक परम्परा ने उसे इस प्रकार की भाषा का रूप दे दिया है।

अष्टछाप के प्रथम चार कवियो के काव्य से पहले लिखि हुई दो प्रेम-कहानियो का उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो मे मिलता है। एक, मुल्ला दाऊदकृत 'नूरक चन्दा की की कहानी' और दूसरी, दामो-कृत 'लक्ष्मण सेन पद्मावती'।

दोहा-चौपाई मे लिखा हुआ सूफी प्रेम- काव्य

इन दोनो कहानियो का हिन्दी के इतिहासकारों ने कोई परिचय नही दिया। मलिक मुहम्मद जायसी, जिन्होंने सवत् १५९७ वि० मे 'पद्मावत' नामक प्रेम-कहानी की रचना की थी, अष्टछाप के कई भक्तो के समकालीन थे। जायसी से कुछ ही पहले की लिखी हुई मृगावती

१—ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट, १९१२, नं० ६५। नामदेव की साखी. तथा रिपोर्ट नं० २१७, नामदेव जी का पद। तथा हिन्दी भाषा और साहित्य, पृष्ठ २६२ तथा मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १ पृष्ठ, १८३ सं० १९९४ वि० का संस्करण।

२—भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृष्ठ ३१६-३१७।

और मधुमालती भी सूर के जीवनकाल की ही रचनाएँ है। इन प्रेमगाथाओ की भाषा अवधी है और ये दोहा चौपाई की प्रबन्ध-शैली मे लिखी हुई है। सूफियो के सिद्धान्तो मे प्रेम और विरहानुभूति की बहुत महिमा कही गई है। उसी प्रेम और 'प्रेम की पीर' की सूचक ये प्रेम-कहानियाँ है।

अष्टछाप-काव्य के साथ उक्त सूफी प्रेम-काव्य की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि अष्टछाप-काव्य मे भी प्रेम की विरहानुभूति की व्यञ्जना है। अष्टछाप-काव्य पर उस भारतीय प्रेम-भक्ति-परम्परा का प्रभाव मुख्य है, जो भारतवर्ष मे सूफियो के धर्म-प्रचार के पहले से ही चली आती थी और जिसको अष्टछाप ने अपने गुरुओ से पाया था। सूफियो ने, जैसे, अपने दार्शनिक सिद्धान्त-पक्ष मे भारतीय वेदान्त से विचार लिये थे, उसी प्रकार वे साधन-पक्ष मे भारतीय उपासना-विधि के साधन प्रेम-भक्ति से प्रभावित हुए थे। वल्लभसम्प्रदायी प्रेम-भक्ति का रूप तो, जिसका अनुकरण अष्टछाप ने किया था ,गीता, भागवत, नारद-भक्तिसूत्र, शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र, नारदपाञ्चरात्र आदि भक्तिशास्त्र के ग्रन्थो मे प्राचीनकाल से ही विद्यमान था। इस प्रकार अष्टछाप की राधाकृष्ण की प्रेम-कथा का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत ही है, सूफियो की प्रेम-कहानियाँ नहीं है। नन्ददास-कृत 'रूपमञ्जरी' प्रेम-कहानी मे भी, सूफियो द्वारा, मसनवी ढङ्ग पर लिखी प्रेमगाथाओ की किसी विशेषता अथवा आदर्श के अनुकरण का कोई चिह्न नही है। हाँ, इन प्रेम-गाथाओ की दोहा-चौपाई की छन्द-शैली का नमूना अष्ट भक्तों के समक्ष अवश्य था, जिसका प्रभाव नन्ददास की, दशमस्कन्ध-भाषा, रूपमञ्जरी आदि की छन्द-शैली पर माना जा सकता है। इस ओर भी नन्ददास महात्मा तुलसीदास के रामचरितमानस की भाषा-शैली से अधिक प्रभावित माने जाने चाहिये, क्योंकि '२५२ वार्ता' मे लिखा है कि नन्ददास ने 'भागवत भाषा दशमस्कन्ध' को, तुलसी के रामचरितमानस से प्रेरणा लेने के बाद लिखा था।[1]

दोहा-चौपाईवाली छन्द-शैली के नमूने के लिये, सूफियो की प्रेमगाथा तथा तुलसी के रामचरितमानस के अतिरिक्त, नन्ददास से पहले की इसी शैली मे लिखी हुई एक भागवत-भाषा भी मिलती है। मिश्रबन्धु-विनोद मे रायबरेली निवासी एक लालचदास हलवाई नामक कवि द्वारा स० १५८७ वि० मे दोहा-चौपाई की शैली मे लिखी इस भागवत का उल्लेख है।[2] राय-बरेली के इस लालचदास कवि द्वारा लिखित 'हरिचरित्र' नामक एक और ग्रन्थ का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[3] मे भी दिया हुआ है और इस कवि की विद्यमानता का सवत्, उक्त रिपोर्ट मे सवत् १५९५ वि० लिखा है। मिश्रबन्धुओ ने 'विनोद' मे लालच-दास हरिचरित्र का भी उल्लेख किया है। वस्तुत भागवत-भाषा तथा हरिचरित्र दोनो एक ही

१—'अष्टछाप', डा० वर्मा, पृष्ठ ९९।

२—मिश्रबन्धु-विनोद भाग १, संवत् १९८३ वि० संस्करण, पृ० २८९।

३—नागरी प्र० स० खोज रिपोर्ट सन् १९०६:७:८ ई० नं० १८९।

ग्रन्थ के दो नाम हैं। लालचदास हलवाई-कृत भागवत भाषा की जो हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक ने देखी हैं उनमें ग्रन्थ का नाम 'भागवत भाषा हरिचरित्र' भी दिया हुआ है। इसका विवरण आगे दिया जायगा। 'विनोद' में मिश्रबन्धुओं ने उक्त भागवत भाषा ग्रन्थ से उद्धरण देते हुए उसके विषय में इस प्रकार लिखा है—

'यह पुस्तक लाला भगवानदीन जी 'दीन,' अध्यापक, हिन्दी, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, के पास है।" उद्धरण इस प्रकार है .—

"पन्द्रह सौ सत्तासी जहियाँ, समय विलंबित बरनों तहियाँ।
मास असाढ़ कथा अनुसारी, हरिबासर रजनी उजियारी।।
सकल संत कहँ नावइ माथा, बलि बलि जैहों जादवनाथा।
रायबरेली बरनि आवासा, लालच राम नाम कै आसा।।'

लालचदास हलवाई द्वारा दोहा-चौपाई की छन्द-शैली में रचित 'भागवत भाषा' 'हरि-चरित्र' दशमस्कन्ध की दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक ने मयाशङ्कर याज्ञिक-संग्रहालय में देखी हैं। ये प्रतियाँ अवधी भाषा में लिखी हुई हैं, परन्तु कहीं-कहीं व्रज भाषा के शब्दों के रूप भी इसमें मिलते हैं। मिश्रबन्धु-विनोद के उद्धरण कुछ पाठ-भेद से याज्ञिक संग्रहालय की भागवत से मिलते हैं जिससे निश्चित होता है, कि स्व० लाला भगवानदीन जी की प्रति तथा याज्ञिक संग्रहालय की प्रति, दोनों एक ही ग्रन्थ की प्रतिलिपियाँ हैं। याज्ञिक संग्रहालय की प्रतियों में एक प्रति के आरम्भ के पत्र खोए हुए हैं और दूसरी प्रति के कुछ अन्त के। दोनों के मिलाने से ग्रन्थ बहुत अंश में पूरा हो जाता है। इन दोनों ग्रन्थों में 'भागवत भाषा' के साथ कई स्थानों पर अध्याय की समाप्ति में हरिचरित्र 'शब्द' भी लगा है। इन दोनों प्रतियों में से एक में ग्रन्थ-रचना का संवत् दिया हुआ है। लेखक का नाम तो, लालचदास, लालच, जन लालच आदि कई रूपों में दोनों प्रतियों में आया है। यहाँ की प्रति में एक बात विशेष विचारणीय है कि इस ग्रन्थ का रचना काल सं० १५०० वि० दिया हुआ है। रचनाकाल-सम्बन्धी उद्धरण यहाँ दिया जाता है।

"संवत् पन्द्रह सै भौ जहियाँ, समय विलम्ब नाम भा तहियाँ,
मास असाढ़ कथा अनुसारी, हरिबासर रजनी उजियारी।
सोनित नग्र सुधर्म निवासा, लालच तुअ नाम की आसा
सब संतन कहँ नावौं माथा, बल बल जैहौं जादोनाथा।"

आरम्भिक चौपाइयों में से उद्धृत नीचे की एक चौपाई में कवि अपने को हलवाई कहता है—

"विघ्नहरण संतन, सुखदाई, चरण गहे लालच हलवाई।"

उक्त दोनो स्थानो की लालच-कृत 'भागवत भाषा' की प्रतियो के उद्धरणो से दो बातो मे अन्तर दिखाई देता है, ग्रन्थ का रचना काल, तथा कवि का निवासस्थान। सम्भव है, रायबरेली का प्राचीन नाम स्रोनित (श्रोनित) नगर हो। प्रयत्न करने पर भी 'दीन' जी वाली पूरी प्रति लेखक को देखने को न मिल सकी। याज्ञिक-संग्रहालय की तिथिवाली प्रति दो ढाई सौ वर्ष पुरानी अवश्य होगी। इसलिए सम्भव हो सकता है कि यह ग्रन्थ स० १५०० वि० का ही रचा हुआ हो। दोनो संवतो मे से उक्त ग्रन्थ किसी भी संवत् का हो, इतना तो अवश्य सिद्ध है कि यह नन्ददास की 'भागवत भाषा' नामक रचना से चालीस-पचास वर्ष पहले की रचना अवश्य है। इस ग्रन्थ का व्रज-प्रांत मे भी प्रचार था, क्योंकि स्व० मयाशङ्कर जी को ये प्रतियाँ व्रज मे ही मिली थी, सम्भव है इसकी प्रतिलिपियाँ वहाँ और भी विद्यमान हो, इसलिये नन्ददास जैसे भागवत-भक्त ने इस भागवत भाषा को पढा हो, इसमे कोई आश्चर्य की बात नही है।

सूरदास और परमानन्ददास ने भी चौपाई और दोहा छन्द बहुत लिखे है। दोहा और चौपाई सूफियो की हिन्दी रचना से पहले के ही छन्द है। हिन्दी-साहित्य के आदिकाल के जैन साहित्य मे दोहा, चतुष्पदी (चौपाई), ढाल, कवित्त आदि कई छन्दो का प्रयोग मिलता है। इसलिए यह कहना कि इन छन्दो के प्रयोग के लिए अष्टछाप कवि सूफी कवियो के ऋणी है, अनुचित होगा। समय समय पर सूफी प्रेमी लोग कृष्ण-प्रेम-भक्ति से भी प्रभावित होते रहे है। रसखान[1] और आलम[2] जैसे सूफी भक्तो मे से रसखान तो कृष्ण के ही अनन्य भक्त बन गये थे और आलम ने यद्यपि अपना मत नही बदला था, परन्तु उसने कृष्ण प्रेम-लीला के अनेक छन्द लिखे है। पीछे कहा गया है कि सूफी प्रेमगाथाओ की भाषा अवधी है। अष्टछाप के काव्य मे जो अवधी भाषा के शब्दो का कही-कही प्रयोग मिलता है वह इन प्रेम-गाथाओ के अध्ययन का प्रभाव प्रतीत नही होता, वरन् व्रज-प्रान्त मे सन्त-साहित्य द्वारा प्रचलित किये गये अवधी भाषा के गीत और व्रज-प्रान्त मे व्रजवास अथवा यात्रा की कामना से रहने और आनेवाले पूर्व देशो के कृष्ण-भक्तो के विचार-विनिमय के प्रभाव-रूप जान पडता है।

१—रसखान-कृत 'प्रेम वाटिका' में पुस्तक का रचनाकाल संवत् १६७१ वि० दिया हुआ है। यह रचना कवि के उत्तर-जीवन काल की है। '२५२ वार्ता' मे रसखान पठान को श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का शिष्य कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि रसखान अष्टछाप का समकालीन व्यक्ति था।

२—आलम—आलम-कृत माधवानल कामकंदला का रचनाकाल उक्तग्रन्थ में सन् ९५१ हिज्री अथवा सन् १५४४:४५ ई० दिया हुआ है। इस संवत् वाली इस ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि लेखक ने पं० मायाशङ्कर याज्ञिक-संग्रहालय में देखी है।

अष्टछाप के प्रथम चार कवियो से पहले की रामकाव्य-परम्परा में, केवल दो कवियो का उल्लेख हमे हिन्दी साहित्य के इतिहासो मे मिलता है, एक भगवतदास, दूसरे भूपति कवि।[1]

रामकाव्य-परम्परा

कवि भगवतदास के हिन्दी मे लिखे 'भेदभास्कर' ग्रन्थ के नाम के अतिरिक्त डा० रामकुमार वर्मा ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उक्त ग्रंथ का और कोई परिचय नही दिया। "हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण, भाग१" नामक पुस्तक मे आचार्य डा० श्यामसुन्दर दास ने भी कवि भगवतदास के विषय मे लिखा है—"इनके विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है[2]" इसलिए इस कवि की रचना के विषय में यहाँ कुछ नही कहा जा सकता।

सन् १९०२ ई० की खोज रिर्पोट मे, भूपति कवि का उल्लेख "भागवत भाषा दशम-स्कन्ध" के रचयिता के रूप मे तथा सन् १९०६ ई० की खोज रिर्पोट मे "रामचरित रामायण" के रचयिता के नाम से हुआ है। सन् १९०२ ई० की रिर्पोट मे "भागवत भाषा" का रचना-काल स० १३४४ वि० दिया हुआ है। और रामचरित रामायण का रचनाकाल दूसरी रिर्पोट मे सं० १३४२ वि० है। डा० रामकुमार वर्मा ने भूपति कृत "रामचरित रामायण" का निर्माण-काल सन् १९०६ ई० की खोज रिपोर्ट के आधार पर तुलसीदास से पहले स० १३४२ वि० लिखा है।[3]

"हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण, पहला भाग" नामक ग्रन्थ मे ग्रन्थ के सम्पादक आचार्य डा० श्यामसुन्दर दास जी ने, एक ही व्यक्ति "भूपति" को पीछे कहे दोनो ग्रन्थों "भागवत भाषा दशम स्कन्ध" तथा "रामचरित रामायण" का रचयिता लिखा है और भूपति कवि की स्थिति स० १७४४ वि० मे लिखी है।[4] उक्त सक्षिप्त विवरण की प्रस्तावना से आचार्य जी ने इस बात को और भी स्पष्ट प्रमाण देकर खोला है कि "भागवतभाषाकार भूपति की स्थिति स० १३४४ वि० न होकर १७४४ मे थी।" लेखक का भी विचार है कि 'रामचरित रामायण' भागवत के नवम स्कन्ध का भाषानुवाद है, और इस ग्रन्थ और भागवत भाषा दशम स्कन्ध का एक ही लेखक भूपति कवि है। इसकी रचना और दशम स्कन्ध भाषा की समाप्ति की रचना मे खोज रिर्पोट ने दो साल का अन्तर बताया है। दशम स्कन्ध के अनुवाद मे दो साल का लगना बहुत सङ्गत बात है। पण्डित मयाशङ्कर याज्ञिक सग्रहालय मे भी भूपति-कृत भागवत दशमस्कन्ध की स० १९०९ वि० की लिखी एक प्रति लेखक की देखी हुई है। उसके पाठ, खोज रिपोर्ट मे दिये हुये उदाहरणो से मिलते है। उसमे भी ग्रन्थ-रचना का काल स्पष्ट रूप से सं० १७४४ वि० दिया हुआ है।

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ३४५:३४६।

२—हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, श्यामसुन्दर दास, पृ० १०८।

३—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ३४५-३४६।

४—हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, श्यामसुन्दर दास, पृ० १२१।

"संवत सत्रह मे भये चार अधिक चालीस ।"

उक्त विवेचन के आधार से, डा० श्यामसुन्दर दास जी के मत तथा याज्ञिक-संग्रहालय की प्रति के आधार पर भूपति का समय संवत् १७४४ वि० ही प्रमाणित ठहरता है।

इस प्रकार अष्टछाप के प्रथम चार कवियो से पहले, रामकाव्य-परम्परा में आनेवाला कोई ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला। सूरसागर के नवम स्कन्ध मे सूरदास द्वारा वर्णित रामचरित भागवत नवम स्कन्ध का अनुकरण है, राम-भक्ति-परम्परा के किसी हिन्दी कवि का प्रभाव नही है। नन्ददास आदि दूसरे वर्ग के अष्टछाप चार भक्तो के समक्ष अवश्य उनके जीवन काल ही मे तुलसी का रामचरितमानस आ गया था। नन्ददास के ऊपर, जिनके प्रभाव के विषय मे पीछे[1] कहा ही जा चुका है, अवश्य तुलसीदास जी के रामचरितमानस की शैली का प्रभाव पडा था।

अष्टछाप के प्रथम चार कवियो से पहले के, हिन्दी मे कृष्णभक्ति पर काव्य लिखने वाले, केवल तीन नाम हमारे सामने आते है—१. जयदेव, जो वस्तुत: संस्कृत का कवि है, २. विद्यापति जो मैथिली भाषा का कवि है और ३. नामदेव, महाराष्ट्र-कवि, जिसकी व्रजभाषा परिवर्तित रूप मे हमारे सामने आती है और जिसकी मूलभाषा का इस समय ठीक अनुमान नही लगाया जा सकता।

अष्टछाप से पहले हिन्दी में कृष्ण-भक्ति-काव्य की परम्परा

जयदेव ने राधाकृष्ण की विलास लीलाओ का वर्णन संस्कृत भाषा की सरस और सङ्गीतमयी पदावली मे किया। गीत-गोविन्द का प्रभाव हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियो पर विशेष पड़ा है। जयदेव ने हिन्दी मे भी कुछ पद लिखे थे जिनमे से केवल दो पद 'ग्रन्थ साहब' मे मिलते है। उन पदो के देखने से ज्ञात होता है कि वे भाव और भाषा की दृष्टि से महत्त्व के नही हैं। गीत-गोविन्द की अनेक प्रतिलिपियाँ, हिन्दी की प्राचीन पुस्तको के साथ बँधी, व्रज के वैष्णव घर तथा मन्दिरो मे मिलती हैं। इससे ज्ञात होता है कि गीत-गोविन्द का, चाहे सङ्गीत की दृष्टि से हो, चाहे इसमे निहित भावो की दृष्टि से हो, हो, व्रज मे बहुत प्रचार था। अष्टछाप की मधुर पदावली के देखने से पता चलता हैउस पर गीत-गोविन्द की भावमयी भाषा तथा सङ्गीतमयी शब्दावली का अवश्य प्रभाव पडा था।

काव्य की दृष्टि से विद्यापति के पदो का महत्त्व बहुत ऊँचा है। विद्यापति का काव्य अष्टछाप के समय मे बहुत लोकप्रिय था। महात्मा चैतन्य[2] और उनके अनुयायियो ने भी

१—इसी ग्रन्थ का पृष्ठ २२ तथा २३।

२—समय—जन्मकाल १४८५ ई०, कल्चरल हैरिटेज ग्राफ इण्डिया सीरीज, भाग २ पृ० १३१।

इनके गीतो को अपनाया था तथा चैतन्य महाप्रभु के, व्रज मे रहने वाले अनुयायी इनको बडी तल्लीनता के साथ गाते थे। स्वय महाप्रभु जी इनके पदो को गाते-गाते मूर्छा मे आ जाते थे। उनकी जीवनी से यह बात विदित है। विद्यापति के पद बहुत काल तक बंगाल मे गाये जाते रहे यहां तक कि कुछ समय पहले तक बंग-साहित्य विद्यापति को बंगला भाषा का कवि कहता था। चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रचार अष्टछाप के समय मे श्री रूपगोस्वामी जी[1] के प्रभाव से बहुत हुआ था, उसके साथ व्रज में विद्यापति का भी मान बढ़ा। इस प्रकार विद्यापति की काव्य-शैली ने भी जयदेव की तरह अष्टछाप काव्य-शैली को अवश्य प्रभावित किया होगा।

कृष्ण-काव्य-परम्परा में तीसरा भक्त कवि नामदेव हैं जिसका उल्लेख पीछे हो चुका है। अष्टछाप के द्वितीय वर्ग नन्ददास आदि के लिए तो कृष्ण-भक्ति-काव्य का सबसे बडा आदर्श, अष्टछाप के प्रथम वर्ग के (सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास तथा कृष्णदास अधिकारी के) उस अपूर्व काव्य का था जो सदियो तक हिन्दी का आदर्श काव्य बना रहा और जिसकी समता का, काव्य की दृष्टि से अब तक किसी व्रजभाषा कवि का काव्य नही है। अष्टछाप से पहले की कृष्ण-भक्ति-परम्परा में लालचदास हलवाई का 'भागवत भाषा दशमस्कन्ध' भी आता है, जो यदि अष्टछाप के प्रथम वर्ग के पहले नही तो, दूसरे वर्ग के पहले तो अवश्य रक्खा जा सकता है। इस ग्रन्थ का भी परिचय पीछे दिया जा चुका है !

ब्रह्मचारी विहारीशरण जी, सम्पादक, निम्बार्क माधुरी, ने 'नाम-महात्म्य' नामक मासिक पत्र के 'श्रीव्रजाङ्क' में, "श्री व्रज के बानी कर्ता सन्तो का सूक्ष्म परिचय" नामक एक लेख लिखा था। उसमे उन्होंने व्रज के भक्त, श्री युगल-शतक के रचयिता श्री भट्ट जी का समय सं० १३५२ वि० तथा श्री हरिव्यास देव जी का समय स० १३२० वि० दिया है, इन कवियो का परिचय उन्होंने अपने एक ग्रन्थ, निम्बार्क माधुरी, मे भी दिया है। इस हिसाब से ये भक्तकवि सूर और परमानन्ददास से पहले के ठहरते हैं। वस्तुतः ब्रह्मचारी जी ने इन दोनो भक्तो की विद्यमानता का संवत् गलत दिया है। निम्बार्कसम्प्रदायी तथा युगलशतक के रचयिता श्री भट्ट[2] केशव काश्मीरी के शिष्य माने जाते हैं। इनका रचनाकाल लगभग सं० १६१० वि० है। श्री हरिव्यास देव का रचनाकाल भी सूरदास के समय का ही है। वैसे निम्बार्कसम्प्रदायी हरि-व्यास देव जी आयु मे सूरदास से बड़े थे।

ऊपर कही हुई काव्य की विचारधाराओ के अतिरिक्त प्रकीर्णक काव्य-परम्परा के अन्तर्गत अष्टछाप से पहले के कवियो मे अमीर खुसरो (अलाउद्दीन का समकालीन) ही केवल

१—समय—श्री रूपगोस्वामी जी ने शाके १४६२ (संवत् १५९७ वि०) में 'हरिभक्त रसामृत सिन्धु' ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ की पुष्पिका के लेख से यह संवत् सिद्ध है।

२—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, संवत् १९९४ वि० संस्करण, पृ० २९४।

अष्टछाप से पहले प्रकीर्णक काव्य की परम्परा

एक प्रमुख कवि है। इन्होने विविध प्रकार के लौकिक ज्ञान, अनुभव तथा मनोवृत्तियो से सम्बन्ध रखने वाले काव्य की हिन्दी मे रचना की थी। हिन्दी मे इस कवि की प्रसिद्धि मनोरंजक साहित्य, जैसे मुकरियाँ, पहेलियाँ, अन्तर्लापिका, दोसखुने आदि, के लिखने के लिए है। अमीर खुसरो की महत्ता संगीत समाज मे भी मान्य थी और अब भी है। वह स्वयं एक उच्चकोटि का गवैया था, गाने के 'कव्वाली' ढग के आविष्कार का श्रेय इसी को दिया जाता है। अमीर खुसरो की भाषा व्रज भाषा की माधुरी से मिश्रित खडी बोली है, जिसमे अरबी-फारसी के शब्दो का प्रयोग पर्याप्त मात्रा मे है। इनकी भाषा को न तो शुद्ध खडी बोली और न शुद्ध व्रजबोली ही कह सकते है। खुसरो की मुकरियो और पहेलियो की भाषा, खडी और व्रज, दोनो बोलियो की आगे प्रस्फुटित होने वाली साहित्यिक क्षमता का सकेत अवश्य करती है। अमीर खुसरो की रचना और सम्पूर्ण अष्टछाप काव्य मे, सङ्गीत पक्ष को छोड़कर अन्य कोई भारी साम्य नही प्रतीत होता। सूर के दृष्टकूट पदो मे अर्थ को मानसिक दृष्टि से छिपाने का जो भाव है, उसकी समता मे खुसरो की पहेली, अन्तर्लापिका आदि कही जा सकती है। जिस प्रकार सूर ने अनेक दृष्टकूटो मे यमक और श्लेष के सहारे दो-दो अर्थ दिये हैं। मानसिक एकाग्रता का अभ्यास तथा अभिमानी पडितो को बुद्धपरीक्षा की चुनौती देने वाले दृष्टकूटो की क्लिष्टकल्पना की प्रेरणा सूर ने, सम्भव है, खुसरो के 'पहेली' आदि साहित्य से ली हो।

पीछे दिये हुये विवेचन के आधार पर सक्षेप मे कहा जा सकता है कि विषय और भक्ति-भाव की दृष्टि से अष्टछाप के काव्य का मूल आधार श्रीमद्‌भागवत ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा श्री वल्लभाचार्य जी के प्रवचन है। काव्य की दृष्टि से अपने से पूर्व स्थित राजस्थानी, अवधी और मैथिली काव्य से उन्होंने केवल प्रेरणा मात्र ही ली, आदर्श-रूप मानने योग्य, उनके सामने कोई कवि न था। पद-शैली का आदर्श उनके समक्ष जयदेव, विद्यापति, नामदेव और कबीर के पदो ने रक्खा। भाषा की दृष्टि से सूर और परमानन्ददास के पहले व्रजभाषा मे रचना करने वाले, किसी भी कवि का परिचय इतिहास नही देता।[1] नामदेव की व्रजभाषा भी परिवर्तित रूप मे हमारे सामने आती है। इस प्रकार अष्टछाप का प्रथम वर्ग ही व्रजभाषा का आदि कवि-वर्ग है और उसमे भी सबसे अधिक श्रेय सूर को है। मौखिक रूप मे प्रचलित तथा तत्कालीन हिन्दी-साहित्य मे जहा तहां असस्कृत रूप से बिखरी हुई व्रजभाषा की शिथिल शक्तियो को इन्ही कवियो ने समेटा और उन्हे अपनी प्रतिभा के बल से एक काव्य-गुण-सम्पन्ना भाषा का रूप दिया। सूर की प्रतिभा इस ओर वास्तव मे आश्चर्य मे डालने वाली है। अष्ट-छाप का प्रथम वर्ग सचमुच हिन्दी-साहित्य में एक युग-प्रवर्तक कवि-वर्ग हुआ है। इस विषय मे

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ७१६

डा० धीरेन्द्र वर्मा का कथन अवलोकनीय है—"सूरदास जी ने आजीवन श्री गोवर्द्धननाथजी के चरणों में बैठकर ब्रजभाषा-काव्य के रूप में जो भागीरथी बहाई उसका वेग आज तक भी क्षीण नहीं हो पाया है। सोलहवीं शताब्दी के पहले भी कृष्ण-काव्य लिखा गया था, लेकिन वह सब का सब या तो संस्कृत में है, जैसे जयदेव-कृत गीत-गोविन्द, या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में, जैसे मैथिली-कोकिल-कृत पदावली। ब्रजभाषा में लिखी हुई सोलहवीं शताब्दी से पहले की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं है।"[1]

अष्टछाप के समक्ष सङ्गीत का आदर्श उपस्थित करनेवाले सङ्गीतकलाविद् उत्तरी भारत में अवश्य रहे होंगे। अष्टवर्ग ने अपनी सङ्गीत-प्रणाली में किस प्रणाली को अपनाया है यह खोज का एक स्वतन्त्र विषय है। सङ्गीत के इतिहास तथा सङ्गीत की दृष्टि से अष्टकाव्य का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी के लिये यह एक पृथक रूप से अपनी महत्ता रखता है। कहते हैं कि अकबर के समय में ध्रुपदिये गवैये बहुत थे और यही प्रणाली उस समय प्रचलित थी। खुसरो का कव्वाली ढङ्ग भी प्रचलित रहा होगा। सम्भव है, अष्टछाप, ध्रुपदवालों में हों। अष्टछाप की सङ्गीत-कला उनके समय में इतनी प्रसिद्ध थी कि बडे-बडे गवैये इन्हें आदर्श मानकर इनका गाना सुनने आते थे। तानसेन जैसे प्रमुख गवैये को भी स्वामी हरिदास जी के अतिरिक्त अन्त में गोविन्दस्वामी की शिष्यता ग्रहण करनी पड़ी थी।[2]

अष्टछाप के समकालीन कवियों और कलाविदों के बहुत से नाम इतिहासकारों ने दिये हैं। हिन्दी के कवियों में इनके समकालीन प्रमुख कवि 'जायसी', महात्मा तुलसीदास जिनका रचनाकाल अष्टछाप के प्रथम वर्ग के प्रौढ रचना-काल के बाद आता है, रहीम, गङ्ग और श्री हितहरिवंश जी थे। केशवदास का कविताकाल अष्टछाप के बाद आता है। अष्टछाप के उक्त समकालीन कवियों में सूर की समता करनेवाले तथा कुछ अंश में समता से सूर से आगे बढ़नेवाले कवि केवल तुलसीदास ही हैं।

उत्तरी भारत के माध्यमिक काल में इतिहास से विदित है, उत्तर भारत की राजकीय सत्ता का मुख्य केन्द्र दिल्ली रहा था। दिल्ली पर शासन करनेवाला राजा उत्तरी भारत का मुख्य राजा समझा जाता था। उस समय दिल्ली को जीत लेने पर छोटे-छोटे राज्यों का वश में करना बहुत अधिक कठिन कार्य न था। अष्टछाप के समय (लगभग सन् १४९८ ई० से सन् १५८५ इ० तक) का ब्रजमंडल दिल्ली की राज-सत्ता के ही अधीन था। मुहम्मद गोरी ने जब अन्तिम बार सन् ११९२ ई० में पृथ्वीराज को हराकर हिन्दू-राज्य का

अष्टछाप के समय दिल्ली की राजशक्ति और देश की राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था

१—नाम-माहात्म्य, श्री व्रजाङ्क, अगस्त सन् १९४० 'ब्रजभाषा' नामक लेख, लेखक डा० धीरेन्द्र वर्मा।

२—'२५२ वार्ता' में तानसेन की वार्ता।

अन्त किया, तब से विदेशियो के हाथ मे दिल्ली-साम्राज्य ने अनेक राजनीतिक परिवर्तन देखे। दिल्ली के कई मुसलमान बादशाह समस्त भारत के शासनकर्ता भी हुए तथा निर्बल बादशाहो के शासन मे कई बार प्रान्तीय सूबेदार स्वतन्त्र भी हुए, परन्तु ब्रजप्रदेश दिल्ली और आगरे की सल्तनत के अधीन ही रहा। अष्टछाप के समय मे दिल्ली और आगरे के सिंहासन पर निम्न-लिखित बादशाहो ने राज्य किया।

१—बहलोल लोदी	सन् १४५१ ई० : १४८७ ई०
२—सिकन्दर लोदी।	सन् १४८९ ई० : १५१७ ई०
३—इब्राहीम लोदी।	सन् १५१७ ई० : १५२६ ई०
४—बाबर।	सन् १५२६ ई० : १५३० ई०
५—हुमायूं।	सन् १५३० ई० : १५३९ ई०
६—शेरशाह सूरी।	सन् १५३९ ई० : १५४५ ई०
७—इसलाम शाह।	सन् १५४५ ई० : १५५४ ई०
८—मुहम्मद आदिलशाह तथा ९—सिकन्दर शाह।	सन् १५५४ ई० : १५५५ ई०
१०—हुमायूं (फिर से)	सन् १५५५ ई० : १५५६ ई०
११—अकबर।	सन् १५५६ ई० : १६०५ ई०[1]

अंग्रेज भारतीय इतिहास-कारो ने दिल्ली पर, माध्यमिक काल मे, राज्य करनेवाले अनेक वश और घरानो के सुल्तानो की राजनीति, उनके प्रबन्ध, उनके युद्ध तथा हारजीत, राज्य-विस्तार, फौज तथा परिवारिक जीवन का विवरण विस्तार के साथ दिया है। परन्तु उस समय देश की आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियो का परिचय उतने विस्तार के साथ उन्होंने नही दिया। उधर कुछ भारतीय इतिहासकारो ने इन विषयो पर भी, मुसलमानी सल्तनत के समय के ही पुराने लेखों तथा इतिहासो के आधार से, ग्रन्थ लिखे है। देश की भिन्न-भिन्न परिस्थितियो के अध्ययन से, कवियो की विचारधारा की पृष्ठभूमि का ज्ञान होता है, दूसरे इन कवियो तथा आचार्यो द्वारा अपने ग्रन्थो मे प्रकट किये गए तत्कालीन परिस्थिति-सम्बन्धी उल्लेखो की सत्यासत्यता का भी हमे पता चल जाता है।

अष्टछाप से पहले मुसलमानकालीन भारत की प्रजा दो प्रकार की थी। एक मुसलमानी बादशाह पक्ष की और दूसरी, शासित हिन्दू पक्ष की। इतिहास से पता चलता है कि अकबर से पहले के खिलजी, तुगलक, सैयद, लोदी तथा मुगल वंशो के दो-तीन बादशाहो को छोडकर सभी बादशाहो की शासन-नीति क्रूरता, धर्मान्धता तथा पक्षपातपूर्ण थी। मुसलमान मतावलम्बी प्रजा

१—ऊपर कही तिथियों के लिए देखिये—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग ३ व ४ क्रोनोलाजी।

तथा कुछ शाही 'जी हुजूरी' मे पलनेवाले हिन्दू-राजकर्मचारी, जो बहुधा छोटे दर्जे के हुआ करते थे, सुखी और समृद्ध थे, बाकी प्रजा की दशा सदियों तक बहुत हीन ओर कष्टमय रही। उक्त वंश के बादशाहो तथा उनके कर्मचारियो द्वारा हिन्दू प्रजा के साथ किये गये व्यवहार का वर्णन वर्तमानकालीन सभी इतिहासकारो ने दिया है। सुल्तान-काल की हिन्दू जनता की आर्थिक राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक दशा का वर्णन करते हुए डा० ईश्वरी प्रसाद अपने ग्रन्थ 'मैडीवियल इण्डिया' मे कहते हैं—

"भारतवर्ष मे इसलाम धर्म का प्रचार उसके सरल सिद्धान्तो के कारण नही हुआ, किन्तु इसीलिए हुआ कि वह एक राजशक्ति का धर्म था जो कभी-कभी विजित प्रजा मे तलवार तथा दण्ड द्वारा बलपूर्वक प्रसारित किया जाता था। स्वार्थ-लाभ तथा दरबार मे उच्चपद-प्राप्ति के लोभ मे भी लोग अपने धर्म को छोडकर इसलाम को अङ्गीकार कर लेते थे। परन्तु पद-प्राप्ति का लोभ तथा राज्य की ओर से आर्थिक पुरस्कार उस वर्ग के प्रति हिन्दुओ के हृदय की कसक-भरी शत्रु-भावना को दबाने मे कभी सफल नही हुए, जिसने उनकी स्वतन्त्रता छीनी थी और जो उनके धर्म को घृणा की दृष्टि से देखता था।[1] धार्मिक तथा राजनीतिक, दोनो दृष्टियो से हिन्दू सताये जाते थे। उधर हिन्दुओ की ओर भी प्रतिज्ञापूर्ण विरोध था।[2] मूर्तियो का खण्डन करना, सब प्रकार के विपरीत विश्वासो का हनन करना, तथा काफिरो (हिन्दुओ) को मुसलमान बनाना—ये कृत्य, एक आदर्श मुसलमान राज्य के कर्तव्य समझे जाते थे।[3] सिकन्दर लोदी के समय मे तो हिन्दुओ पर अत्याचार करने का एक आन्दोलन-सा चल गया था। राज्य की ओर से मुसलमान धर्म को न माननेवाली प्रजा पर बडे-बडे प्रतिबन्ध लगे थे। बलपूर्वक उसे मुसलमान बनाना तो साधारण-सी बात थी, उसे एक प्रकार का कर, जो 'जज़िया' कहलाता था, राज्य को देना होता था।[4] यद्यपि कुरान मे इस प्रकार के बलात्कार का कोई विधान नहीं है।[5]………… ‥ ‥मुसलमान राज्यो मे शाही लोगो मे विलासिता का पोषण था। राज्य के उच्चपद मुसलमानों को ही मिलते थे। योग्यता की पूछ न थी। बादशाह की इच्छा ही सबसे बडा नियम था। जिन लोगो को सुदृष्टि से सम्पत्ति और अधिकार मिले थे, उनमे विलासिता तथा बडे-बड़े दुर्व्यसन घुस गये जिसके फलस्वरूप ईसा की चौदहवी शताब्दी के अन्त मे मुसलमानो मे बल और स्फूर्ति का ह्रास होने लगा।[6] … … … ‥

१–हिस्ट्री आफ मैडीवियल इण्डिया, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० ४६५।
२– " " " ४६६।
३– " " " ४६७।
४– " " " ४६८।
५– " " " ४६९।
६– " " " ४७०।

हिन्दू लोग निर्धनता, हीनता, तथा कठिनता का जीवन व्यतीत करते थे। उनकी आय उनके परिवार के लिए कठिनता से ही पर्याप्त होती थी। विजित प्रजा मे रहन-सहन की दशा बहुत निम्न श्रेणी की थी और राजकीय कर का भार उन्ही पर विशेष रूप मे था। ऐसी दुर्दशा मे उन्हे अपनी राजनीतिक बल-सम्बन्धी प्रतिभा को प्रखर करने का कभी अवसर न मिल सका।[1]"

भारत के उक्त सुल्तानो मे फिरोज तुगलक तथा शेरशाह सूरी ऐसे बादशाह अवश्य हुये जिन्होने सम्पूर्ण प्रजा की आर्थिक दशा को सुधारा था और प्रजा-हित के कार्य किये थे। शेरशाह के बाद शक्तिहीन बादशाहो के समय मे यद्यपि राजकीय प्रबन्ध मे शिथिलता आ गई थी और सूबे स्वतन्त्र होने लगे थे, तथापि राजकीय शक्तिहीनता के कारण भारतीय धार्मिक आन्दोलनो को अवसर मिल गया। शेरशाह सूरी तथा सूरीवश के अन्य बादशाहो के समय मे कई धार्मिक सम्प्रदाय प्रबल होकर बढे।

श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने समय के देश की परिस्थिति के विषय मे 'कृष्णाश्रय' ग्रन्थ मे स्पष्ट शब्दो मे कहा है—"देश म्लेच्छो से (मुसलमानो से) आक्रान्त है, म्लेच्छो से दबा हुआ देश पाप का स्थान बन गया है। सत्पुरुषो को पीडा दी जाती है। सम्पूर्ण लोक इस पीडा से पीडित है, ऐसे देश मे भगवान् कृष्ण ही हमारे रक्षक है। गङ्गा आदि सब उत्तम उत्तम तीर्थ भी दुष्टो से आक्रान्त हो रहे है। इसलिये इन आधिदैविक तीर्थो का महत्त्व भी तिरोहित हो गया है। ऐसे समय मे केवल कृष्ण ही मेरी गति है। अशिक्षा और अज्ञान के कारण वैदिक तथा अन्य मन्त्र नष्ट हो रहे है, ब्रह्मचर्यादि व्रत से लोग रहित है। ऐसे लोगो के पास रहने से वेद-मन्त्र हीन हो गये है। उनके अर्थ और ज्ञान विस्मृत हो गये है। ऐसी दशा मे केवल कृष्ण ही मेरी गति है।"[2]

मुसलमान बादशाहो मे अकबर एक पराक्रमी, बुद्धिमान्, प्रजापालक, कला-प्रेमी तथा उदार शासक हुआ था। उसके समय मे यद्यपि हिन्दुओ ने पूर्ण रूप से अपनी राजनीतिक

१—हिस्ट्री आफ मैडिवियल इंडिया, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० ४७१।

२— म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च,
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु, कृष्ण एव गतिर्मम।
गंगादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह,
तिरोहिताधिदेवेषु, कृष्ण एव गतिर्मम।

× × ×

अपरिज्ञाननष्टेषु, मंत्रेष्वव्रतयोगिषु,
तिरोहितार्थवेदेषुकृष्ण एव गतिर्मम।

कृष्णाश्रय, षोडश ग्रन्थ, भट्ट रमानाथ शर्मा, श्लोक नं० २, ३ तथा ५।

अकबर के राजत्वकाल में देश की राजनीतिक व्यवस्था (सन् १५५६ ई० : १६०५ ई०)

स्वतन्त्रता खो दी थी, परन्तु उनके हृदय मे जो पिछली राजकीय सत्ता की ओर कटु भावना थी, उसके व्यवहार से जाती रही और हिन्दू रजवाडे मुगल सम्राट् अकबर की ही राजशक्ति बढाने मे लग गये। अकबर ने अपनी बुद्धिमत्ता तथा उदार शासन-नीति से एक-एक करके लगभग सभी भारतीय प्रान्तो को अपने शासन मे ले लिया। उसने जान लिया था, जब तक वह हिन्दू प्रजा की सहानुभूति नही प्राप्त कर लेगा तब तक पूरे देश के जीतने पर भी मुगल साम्राज्य की नीव दृढता के साथ नही बैठ सकती। उसने पिछले बादशाहो की कठोर दमन और पक्षपात की नीति को छोड दिया और सम्पूर्ण प्रजा को उदार दृष्टि से देखना शुरू कर दिया। प्रजाहित के उसने अनेक सुधार किये। बडे-बडे पदो पर हिन्दू राजकर्मचारी नियुक्त किये। अकबर के शासन की सुव्यवस्था तथा अनेक सुधारो का श्रेय उसके हिन्दू-मन्त्रिमण्डल को ही है। कई शताब्दियो के बाद लोगो को इस राजत्वकाल मे पेट की तुष्टि के साथ मानसिक तुष्टि मिली थी। सुल्तानत्व-काल की हिन्दू जनता पर जितने प्रजापीडक तथा अनुचित कर और प्रतिबन्ध लगे थे वे सब अकबर ने उठा लिये।

पठान-काल मे मुसलिम-शासन से बचने को एक ओर राजपूतो ने अपनी जान लडाई थी तो दूसरी ओर भारतीय समाज और धर्म की रक्षा यहाँ के कुछ धर्माचार्यो ने की थी। उस समय स्वधर्म की हानि केवल विदेश से आनेवाले धार्मिक आन्दोलन से ही नही हो रही थी वरन् यहाँ घर में ही धार्मिक युद्ध मायावाद, शून्यवाद, आस्तिक-नास्तिक, अनेक वाद-विवादो के रूप मे भीषण अग्नि की तरह चल रहा था, और वैराग्य-प्रधान वादो के प्रभाव मे आकर जनता घर छोड-छोड कर उदासीन होती चली जा रही थी। स्वदेश और स्वधर्म के ऊपर आई हुई सङ्कट की आँधी मे कुछ धर्माचार्यो ने स्तम्भ बन कर समाज के धैर्य को नष्ट होने से बचाया और पराधीन होकर, प्रतिकूल परिस्थितियो के बीच मे ही भारतीय धर्म और सभ्यता की बुझती ज्योति को उन्होने सम्हाला।

अकबर के समय मे उसकी सर्व धर्म-प्रसार-सबंधी स्वतन्त्रता की उदार नीति से प्रोत्साहित हो, ये धार्मिक आन्दोलन वेग के साथ चल पडे। उस समय सभी भारतीय धर्मो की वृद्धि हुई। अकबर स्वय मुसलमान-धर्म को मानते हुए भी कट्टरवादी नही था। उसके जीवन-काल में एक ऐसा समय भी आया था जब वह सभी धर्मो की बातो को जानने के लिए धर्माचार्यो को बुलाकर उनसे धर्मोपदेश लेता था। फतेहपुर सीकरी मे उसने एक इबादतखाना[1] (प्रार्थना-भवन) बनवाया था जहाँ सभी धर्म के लोग जा सकते थे। यद्यपि वह स्वय बहुत पढा-लिखा नही था, परन्तु उसने जैन, पारसी, ईसाई, हिन्दू आदि अनेक धर्मो की बातो का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। हिन्दू धार्मिक आचार्यो तथा महात्माओ का वह केवल सम्मान ही नही

१—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग ४, पृ० ११३ तथा १२०।

करता था, प्रत्युत उनकी आर्थिक सहायता भी करता था। सूरदास, कुम्भनदास आदि भक्तो से अकबर के मिलने की कथाएँ वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ताओ मे भी हुई है।

अकबर की उदारता तो यहाँ तक प्रसिद्ध है कि उसने व्रजभूमि मे मोर और गोहत्या तक का निषेध कर दिया था। गायो के चरागाहो से कर उठा दिये गये थे। धर्माचार्यो की धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रमाणो मे ऐतिहासिक प्रमाणो के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के यहाँ अकबर के दिये हुये कुछ सुरक्षित फरमान भी हैं। श्री वल्लभाचार्य जी के बाद उनकी गद्दी पर बैठने वाले गो० विट्ठलनाथ जी के नाम भी उसने कई फरमान जारी किये थे। उनमें से दो का भाषान्तर नीचे दिया जाता है—

(१) तरजुमा फरमान आतिये जलाउद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी

"इस वक्त मे हमने हुक्म फरमाया कि विट्ठलराय बिरहमन जो बिला शुबह हमारा शुभचिन्तक है, उसकी गाये जहाँ कही हो, वे चरे। खालसा व जागीरदार कोई उनको तकलीफ न देवे, न रोके टोके व चरने से मुमानत न करे, छोड देवे कि उनकी गाये चरती रहे और वह आजादी से गोकुल मे रहे। चाहिए कि हुक्म के मुताबिक तामील करे और कदामत रक्खे और हुक्म के खिलाफ न करे।"

तहरीर तारीख ३ सहर सफर सन् ९८९ हिजरी मुताबिक सन् १५८१ ई० संवत् १६३८ विक्रमी।[1]

(२) तरजुमा फ़रमान आतिये जलाउद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी

"क्रोडी व जागीरदारान परगने मथुरा, सहारा, मिगोय व टोड जो हर तरह पुश्त पनाही मे हैं व उम्मेदवार रहते हैं जाने कि जहान की तामिल करनेवाला हुक्म जारी किया गया कि इसके बाद ऊपर लिखे परगनो के इर्द-गिर्द मोर जिव्ह न करें और शिकार न करे, आदमियो की गायो को चरने से न रोके। इसलिए जागीरदारान व क्रोडी ऊपर लिखे हुए को ठैराव जान कर हुक्म मजकूर मे पूरा बन्दोबस्त रक्खे कि कोई शख्स इसके खिलाफ करने की हिम्मत न कर सके, इस बात को अपना फर्ज जाने। तहरीर बतारीख रोज दी महर ११ खुरदाद।"

माह इलाही सन् ३८ जलूसी
दारुल सल्तनत लाहौर।

पीछे कहा गया है कि पठान शासन-काल मे देश मे चारो ओर अशान्ति और कष्ट

1—ईम्पीरियल फरमान्स, झावेरी।

फरमान, अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी
तारीख ३ महर सन् ९८९ हिजरी अथवा संवत् १६३८ वि०

'इम्पीरियल फरमान्स'
सम्पादक, के० एम० झावेरी बम्बई से उद्धृत

फरमान, अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर बादशाह गाजी

माह इलाही सन् ३८ जलूसी, दारुस्सल्तनत, लाहौर

'इम्पीरियल फरमान्स'

सम्पादक, के० एम्० झावेरी, बम्बई, से उद्धृत

फैल रहे थे। हिन्दू जनता मे कोई सङ्गठन न था। शिक्षा का अभाव था। राज्य की ओर से शिक्षा प्रचार का हिन्दुओ के लिए कोइ प्रवन्ध न था, ब्राह्मणो की कुछ पाठशालाएँ धनिक वणिको की उदारता के वल पर चलती थी। मुसलमानो के 'मकतव' वहुत थे जिनको राजकीय सहायता मिलती थी। हिन्दुओ मे जाति-पाँति का भेदभाव वहुत था जो मुसलमान-काल के पहले से ही चला आ रहा था। भारतवर्ष मे अनेक जातियाँ समय समय पर वाहर से आती रही हैं। यद्यपि धर्म की दृष्टि से वे एक अवश्य हो गईं, परन्तु उनके रहन-सहन और कुछ प्राचीन संस्कारो ने उन्हे भिन्न-भिन्न वर्गो मे ही वनाए रक्खा। धार्मिक स्वतन्त्रता तथा मतभेद के कारण भी भारत मे फिरके-वन्दी और साम्प्रदायिकता रही है। इससे भी हिन्दुओ मे जाति-पाँति का भेद था, मुसलमानी-काल मे आकर जाति-पाँति का भेद और भी वढ गया। मुसलमानी धार्मिक अत्याचार से वचने के लिए हिन्दुओ को खान-पान, व्याह-शादी, आदि के कडे वंधन वढ़ाने पडे, जिससे अपने अपने वर्ग को प्रत्येक जाति नये वाहरी प्रभावो से वचाती रहे। जो कार्य स्वधर्म-रक्षा और उन्नति के लिए किया गया था, उसके फलरूप, दिनो के फेर से, हिन्दू-सभ्यता मे प्रगतिशीलता के स्थान पर स्थिर-रूढिवाद तथा कठोरता ने पैर जमा दिया। समय समय पर वाहरी प्रभाव के वचाव के साथ आपस मे छुआ-छूत पहले से ही घुस आई थी। अव पीडित और अशिक्षित जनता मे अन्धविश्वास, साहसहीनता, कलह, भय, आदि कुत्सित भाव और भी अधिक प्रवल हो गये। यह माना जा सकता है कि अन्धविश्वास ने अन्धकार के समय मे भारतीय सभ्यता के वचाने मे वहुत कार्य किया था, परन्तु यह वात भी माननी पडेगी कि मुसलमान धर्म के अन्धविश्वास ने उनको सङ्गठित शक्ति का वल दिया और हिन्दू अन्ध-विश्वास ने हिन्दुओ की शक्ति को कभी सङ्गठित नही होने दिया।

अष्टछाप के समय में सामाजिक दशा

समय-समय पर देश की सामाजिक दशा सुधारने के लिए धर्माचार्य भी हुए, जैसे १४ वी (ई०) शताब्दी मे स्वामी रामानन्द ने भक्ति के प्रचार के साथ समाज-सुधार का भी कार्य किया था। उन्होंने अछूत और दलित हिन्दू-जातियो को भी अपनाया। स्वामी रामानन्द के वाद कवीर ने साम्प्रदायिक कट्टरता तथा जाति-पाँति के वन्धनो को तोड़ना चाहा। कृष्ण भक्ति के सम्प्रदायो मे भी श्री वल्लभाचार्य तथा श्री विट्ठलनाथ जैसे उदार आचार्य हुये जिन्होंने भङ्गी, चमार, नाई, धोवी, वैश्य, क्षत्री, ब्राह्मण, हिन्दुओ की सभी जातियो को यहाँ तक कि मुसलमानो को भी, वैष्णव हिन्दू कहलाने का अधिकारी वना कर सवको एक भगवान् के प्रसाद का, विना छुआछूत के, भागी वनाया।[१] अष्टछाप भक्तों ने अपनी रचनाओ के अनेक स्थलो

---

१. "८४ तथा २५२ वैष्णवन" की वार्ता में दिये हुये वैष्णवो का नाम सूचीः—
"८४ वार्ता," यादवेन्द्र कुम्हार, पृ० ११८, विष्णुदास छीपी, पृ० २१२।
"२५२ वार्ता," रसखान पठान, पृ० ४३२। मेहा धीमर, पृ० ३२६। चूहड़ों, ३१६। एक धोवी, पृ० २७४।

पर जाति-पाँति के प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया है। परन्तु इस प्रकार के असङ्गठित तथा साम्प्रदायिक धर्म की क्रियाओ से प्रतिबन्धित इन उदार आन्दोलनो का प्रभाव इतने विस्तृत देश तथा अशिक्षित, छिन्न-भिन्न हिन्दू समाज को जोडने मे कभी भली-भाँति कारगर नही हुआ। फलत· न तो अष्टछाप के समय मे आपस की फिर्केबन्दी ने हिन्दू समाज मे एकता की भावना आने दी, और न उसके बाद आज तक वह भावना आई है। महात्मा तुलसीदास ने रामचरित-मानस के उत्तरकाण्ड मे जो कलियुग के धर्म और समाज का वर्णन किया है, उसमे उन्होंने वस्तुतः अपने समय के हिन्दू-समाज का ही चित्र अङ्कित किया है।

अष्टछाप के समय मे देश की धार्मिक दशा

सुल्तान बादशाहो की राज-व्यवस्था के विवरण मे ज्ञात होता है कि उन्होंने राज्य का सचालन 'तलवार' तथा धार्मिक आज्ञाओ के बल पर किया। उनका ध्येय राज्य-प्रसार के साथ मुसलमान धर्म का प्रसार करना भी था। इसलाम धर्म के प्रचार के लिए प्रचारको को राजकीय सहायता मिलती थी। उधर राजनीतिक स्वतन्त्रता खोकर छिन्न-भिन्न हिन्दू-समाज ने अपना धर्म और अपनी सभ्यता बचाने के लिए दबे रूप मे आन्दोलन भी खडे किये थे। मुसलमान काल के धार्मिक आन्दोलनो के प्रतिफल हमे जितने ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमे एक बडी विशेषता यह ज्ञात होती है कि जहाँ उन्होंने देश मे स्थित अनेक धार्मिक मतो, पन्थो का खण्डन-मण्डन किया है वहाँ उन्होने मुसलमान धर्म के विरुद्ध एक शब्द भी नही कहा। हाँ, सूफी मुसलमान ऐसे कुछ अवश्य हुए हैं जिन्होंने हिन्दू-धर्म को उदार भावना से देखा तथा हिन्दू और मुसलमान दोनो धर्मों की आलोचना की थी, हिन्दी के हिन्दू-लेखको मे से किसी ने भी यह साहस नही किया। सम्भव है, आचार्य और पण्डितो को राजदण्ड का भय रहा हो, और ज्ञानी महात्मा तथा भक्तो की, व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नति के ध्यान मे, मुसलमान धर्म की ओर से उदासीनता रही हो। इस प्रकार देश मे एक ओर मुसलमान धर्म का प्रचार था तथा दूसरी ओर हिन्दू धर्म मे भिन्न-भिन्न प्रकार के धार्मिक आन्दोलन हो रहे थे। हिन्दू धर्म के ये आन्दोलन अन्तर्प्रदेशीय आने-जाने की असुविधाओ के कारण तथा जनता की अशिक्षा के कारण अनेक धर्माचारियो के हाथ मे तथा उनके चलाये हुये मत-पथो के रूप मे थे।

मुसलमान तथा भारतीय धर्मो के पारस्परिक भेद-भाव के बीच अष्टछाप-काल के पूर्व कुछ ऐसे महात्मा भी हुए जिन्होने यह अनुभव किया कि मुसलमान भारत से जा नही सकते और हिन्दू-जाति का नाश असम्भव है। उन्होंने इन दोनो धर्मो की कडी आलोचना की और दोनो धर्म और जातियो को मिलाने का प्रयत्न किया। भारतीय मुसलमान धर्म के अन्तर्गत ऐसे महात्मा 'सूफी फकीर' कहलाते थे और हिन्दू धर्म मे सन्त। प्राचीन मुसलमानी सूफी मत, भारत मे आकर यहाँ के तत्त्वज्ञान तथा यहाँ के आचार-विचारो से प्रभावित होकर फैला, उधर हिन्दू सन्त-मत भी अनेक पन्थो मे चला। इन सूफी और सन्त-मतो ने एक ओर वेद-उपनिषद्

आदि श्रुति तथा अनेक स्मृति-ग्रन्थो की अवहेलना कर दी थी तो दूसरी ओर उन्होंने 'कुरान की शरीयत' की उपेक्षा भी की। भारतीय धार्मिक आन्दोलन मुसलमान धर्म-प्रचार की प्रतिक्रिया रूप में होने के अतिरिक्त, जैन, मायावाद, शून्यवाद, शैव, शाक्त, वैष्णव, ज्ञानी, योगी, भक्त अनेक रूपो मे एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्विता में भी फैल रहा था। अष्टछाप के समय मे आकर इन भिन्न-भिन्न मतो में से धार्मिक क्षेत्र में भक्ति के आन्दोलन ने वहुत प्रवलता पायी थी। और अकवर के राजत्वकाल मे तो यह भक्ति का आन्दोलन देश-व्यापी हो गया था।

ईसा की दसवी शताब्दी तथा उसके आगे वौद्ध-धर्म के पूर्ण निर्वासन के वाद शङ्कर के मायावाद, संन्यास, ज्ञान तथा योग के मार्गो का देश के धार्मिक क्षेत्र मे इतना प्रचार हुआ कि जनता लोक-धर्म से उदासीन होने लगी। धर्म ने लोक-धर्म का सामूहिक रूप छोड़ कर व्यक्तिगत साधन का रूप ले लिया। अधिकारी साधको की देखा-देखी साधारण वुद्धिवाले लोग, जो वुद्धि के परिष्कार और ज्ञान के साधन के लिए वहुत अंश मे अयोग्य थे, अपने को व्रह्म समझने तथा परम तत्त्व के पहचानने का ढोग भरने लगे। इस प्रवृत्ति ने एक ओर तो समाज मे दम्भ को जन्म दिया और दूसरी ओर देश मे इसके कारण अकर्मण्यता[1] फैली। फिर भी मुसलमान काल तक तो इन पन्थो में से अधिक पन्थ तात्त्वि दृष्टि से गम्भीर शास्त्रीय मनन और अभ्यास के फल रहे तथा उनका आचार भी सद् रहा, परन्तु मुसलमान काल मे जव वुद्धि का विकास कुण्ठित हो गया और धर्म के दार्शनिक तत्त्व को समझने की क्षमता अशिक्षा के कारण कम हो गई तथा चित्तका निरोध और इद्रियो के निग्रह का मानसिक वल घट गया, वुद्धिप्रधान धर्मो का उनके सच्चे रूप मे चलना कठिन था। उस समय कुछ ऐसे मत-पन्थ भी चल पडे जिनके धर्माचार्यो को वेदशास्त्र का ज्ञान तक न था और जो इधर-उधर से धर्म की दस-पांच वाते समेट कर तथा मूढ जनता मे एक पन्थ खडा कर सिद्ध गुरु वनने का दावा करते थे। श्री वल्लभाचार्यजी ने अपने कृष्णाश्रय ग्रन्थ मे अनेक वादी के रूप में प्रचलित पाखण्ड पंन्थो का उलेख किया है। वे कहते है कि नास्तिको के अनेक वादो के प्रभाव से सम्पूर्ण कर्म और व्रत नष्ट हो गये। जो कर्म और व्रत किये जाते है वे पाखण्ड के लिए ऐसे समय मे केवल कृष्ण ही रक्षा करनेवाले है।[2] अष्टछाप कवियो ने भी अपने समय के पूर्व की धार्मिक अवस्था तथा भिन्न-भिन्न मत-पन्थो का अल्प उल्लेख किया है। परमानन्ददास जी ने कहा है कि इस कलियुग मे पाखण्डदम्भ से युक्त धर्म का प्रचार है, सवसे वड़ा दुःख तो इस वात का है कि वेदपाठी व्रह्मण जो अपने को वेद-ज्ञान का अधिकारी कहते हैं वे ही विगड गए

१—गीता-रहस्य, पृ० ५०१।

२—नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु।
पाषंडैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम।६।
कृष्णाश्रय, षोडश ग्रन्थ, भट्ट रमानाथ, पृ० ६८।

हैं। फिर और किस पर क्रोध किया जाय[१]।

भारतवर्ष मे धर्म के साधन-पक्ष मे बहुत प्राचीन काल से ही तीन मुख्य मार्ग प्रचलित रहे--कर्म, ज्ञान तथा उपासना। इनमे से कभी प्रधानता कर्म की, कभी ज्ञान की और कभी उपासना-मार्ग की रही है। इन तीनो मार्गो का मूल स्रोत वेद है। बौद्ध धर्म, ब्राह्मण-काल के कर्मकाण्ड के विरुद्ध ज्ञान और वैराग्य-प्रधान होकर उठा था। जब ज्ञान-मार्ग के बौद्धिक परिश्रम से जनता ऊब उठी तब उपासना और कर्म-प्रधान धर्म पुनर्जीवित हो उसके विरुद्ध खडे हुए। ईसा की आठवी शताब्दी मे बौद्ध-धर्म को निर्वासित कर श्री शङ्कराचार्यजी ने वेद-सम्मत धर्म की पुन: स्थापना की थी। उसी समय कुमारिल भट्टाचार्य ने वेदोक्त कर्म-काण्ड को जगाना चाहा तथा श्रीनाथ मुनि ने दक्षिण भारत मे उठकर भागवद्-धर्म का उत्थान किया। इन सब आचार्यो मे श्री शङ्कराचार्य अपने कार्य मे अधिक सफल हुए, क्योकि उन्होंने वैदिक धर्म के ज्ञान-काण्ड को लिया था जिसे ज्ञानप्रधान बौद्ध-धर्म-मतावलम्बी जनता ने परिवर्तन-रूप मे अपना लिया। श्री शङ्कराचार्य जी के भीषण प्रयत्न ने बौद्ध-धर्म का देश मे अन्त कर दिया, परन्तु आगे चल कर ज्ञान और वैराग्य के बौद्धिक सस्कारपूर्ण शङ्कर के सन्यास-धर्म को भी लोगो ने छोडना आरम्भ कर दिया उस समय उपासनधर्मा-प्रबल हुआ और बाद को इसी धर्म ने, सम्पूर्ण भारत मे प्रचार पाया।

उत्तरी भारत मे वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान तथा १६ वी शताब्दी ई० मे व्रज में भक्ति का प्रचार

उपासना धर्म मुख्यत: दो रूपो मे प्रचलित हुआ--१ निर्गुण ब्रह्मोपासना और २ सगुण ब्रह्मोपासना। सगुण ब्रह्मोपासना के अन्तर्गत, पञ्चोपासना, ईश्वर के लीला-विग्रह की उपासना चतुर्व्यूहोपासना, ऋषि देवता, पितृगण की उपासना तथा क्षुद्रदेव और प्रेतादि की उपासना सम्मिलित हुई। पञ्चोपासना मे सगुण ईश्वर के इन पाँच रूपो--शिव, शक्ति, सूर्य, विष्णु और

१--माधो, या घर बहुत धरी।
कहन सुनन को लीला कीनी, मर्यादा न टरी।
जो गोपिन के प्रेम न होतो, अरु भागवत पुरान।
तो सब औघड़ पंथिहि होतो, कथत गमैया ज्ञान॥
बारह बरस कौ भयो दिगम्बर, ज्ञानहीन संन्यासी।
खान पान घर घर सबहिन के, भसम लगाय उदासी॥
पाखण्ड दम्भ बढ़यो कलियुग में, श्रद्धा धर्म भयो लोप।
परमानन्द वेद पढ़ि बिगरयो, का पर कीजै कोप॥
--परमानन्ददास जी के पद-संग्रह से

गणेश—की उपासना रही है। तत्त्वज्ञान की दृष्टि से भारतवर्ष के आस्तिक मतो मे, अद्वैतवाद शाङ्कर वेदान्त, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, द्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद आदि अनेक मत प्रचलित है। इस देश के भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायो की पृथकता तत्त्व-ज्ञान, ब्रह्म, जीव, जगत् सम्बन्धी विचार-वैषम्य तथा साधन और आचार-क्रियाओ की विभिन्न प्रणाली के कारण रही है। कुछ सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जो तात्त्विक सिद्धान्तो की दृष्टि से तो एक मत हैं, परन्तु केवल साधन और आचार-क्रिया की दृष्टि से उनमें पृथकता है।

सगुणोपासना के अन्तर्गत वैष्णवभक्ति तथा उसके भिन्न-भिन्न रूपो का विकास किस-किस समय और किस प्रकार भारतवर्ष मे हुआ, यह भारतीय धार्मिक इतिहास का कठिन विषय है।

वैष्णव-भक्ति

डा० भण्डारकर, लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक, श्री हेमचन्दराय चौधरी आदि आधुनिक विद्वानो के इस विषय पर महत्त्वपूर्ण लेख हैं। यहाँ वैष्णव भक्ति के क्रमिक विकासवाले विषय के विवेचन में नही घुसा जायगा। यहाँ केवल उत्तरी भारत मे भागवत धर्म अथवा वैष्णव भक्ति के पुनरुत्थान का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयत्न ही अभीष्ट है।

ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी के अर्द्धभाग तक गुप्तवंश के राजाओ ने भारतवर्ष मे वैष्णव भक्ति तथा भागवत-धर्म का प्रचार किया। गुप्त-साम्राज्य के समाप्त होते ही उत्तरी भारत में शैव और बौद्ध धर्म की प्रबलता हो गई; भागवत धर्म, उत्तर भारतीय सम्राटों से जैसे हर्षवर्धन (सन् ६३० ई०) से[१] उपेक्षित होकर बहुत निर्बल रूप मे रह गया। उस समय यह उत्तरी भारत मे तो दब गया, परन्तु दक्षिण भारत मे इसका प्रचार बढ़ने लगा। दक्षिण भारत मे भागवत धर्म की विद्यमानता आडवार भक्तों के तमिल गीतो के रूप मे मिलती है।[२] आडवार भक्ति के उत्कर्ष का समय ईसा की सातवी शताब्दी से नवी के आरम्भ तक बताया जाता है। ये आडवार भक्त बारह हुए हैं जिन्होंने भागवत धर्म (वैष्णव भक्ति) का दक्षिण भारत मे प्रचार किया था। इन भक्तो में स्त्री-प्रचारिकाएँ भी थी। इन्होंने लगभग चार हज़ार गीत तमिल भाषा मे लिखे थे जो 'प्रबन्धम्' के नाम से संगृहीत मिलते हैं। इन गीतो का सग्रह तथा सम्पादन 'प्रबन्धम्' रूप मे एक भागवत धर्मावलम्बी 'नाथमुनि' नामक विद्वान् ने ईसा की दशवी शताब्दी मे किया था। इन आडवारभक्तों के सिद्धान्त, उनके बाद मे प्रचार पानेवाले भिन्न-भिन्न वैष्णव-सम्प्रदायो की पृष्ठभूमि है।

१—हिस्ट्री आफ ऐंशेंट इण्डिया, डा० रामशङ्कर त्रिपाठी, १९४२, पृ० २९७।

२—दि कल्चरल हैरिटेज आफ इण्डिया सीरीज़, भाग २, पृ० ७२।

आडवार भक्तों के सिद्धान्त[1] सक्षेप मे यहाँ दिये जाते है।

आडवार भक्त सांसारिक विपयो को अनित्य कहते थे। उनका विचार था,—'भक्ति के सावन और प्रपत्ति (पूर्ण आत्मसमर्पण) द्वारा ससार के आवागमन से मुक्ति तथा विष्णु भगवान् का सम्मिलन मिलता है'। वे केवल विष्णु के ही उपासक ऐकान्तिक धर्म को माननेवाले थे। वे विष्णु को वासुदेव, नारायण, भगवद् पुरुप आदि नामो से भी पुकारते थे। उनके मतानुसार भगवान विष्णु नित्य, अनन्त और अखण्ड है। वे सत् चित् और आनन्द-स्वरूप हैं, और जीवो पर कृपा कर अवतार भी लेते हैं। परन्तु अवतार लेने पर भी उनकी अनन्त आदि और सतत सत्ता ज्यो की त्यो रहती है। वे मूर्ति रूप मे भी अवतार लेते है। राम और कृष्ण उन्ही के रूप में है। कृष्ण की आनन्द-क्रीडाओ के रूप मे वह विष्णु जीवो को आनन्ददान देते है। गोपियो के साथ की लीलाओ द्वारा वह पूर्णानन्द की अनुभूति कराते है। आडवार भक्त विष्णु तथा उसके अवतार कृष्ण और राम की भक्ति, वात्सल्य, दास्य तथा कान्ता भावो से करते थे, जिन भावो पर उन्होंने अनेक गीत लिखे है। उनके विचारानुसार भगवद्भक्तो की सेवा भी भगवान् की सेवा का एक अङ्ग है। भक्ति के अन्तर्गत प्रपत्ति को उन्होंने वडा स्थान दिया था। उनका विश्वास था कि विष्णु भगवान् की कृपा, उनके प्रति प्रेम और आत्मसमर्पण मे मिलती है। सवसे वडी वात इस धर्म की यह थी कि आडवारो का यह धर्म सभी जाति और सभी श्रेणी के मनुष्यो के लिए खुला हुआ था।

आडवार भक्तो के उपरान्त दक्षिण भारत में कुछ आचार्य हुए जिन्होंने विष्णु-भक्ति की प्रेरणा उक्त आडवारो के गीतो से ली और भागवत-धर्म के प्रचार को उत्तरी भारत में भी ले गये। आचार्यों ने आडवारो के प्रबन्धम्' से लिये हुए विचारो का प्रतिपादन वहुधा वेद, उपनिषद् तथा ब्रह्म-सूत्रो के प्रमाणो के आधार पर किया। उन्होंने वैष्णव-धर्म मे एक विशेषता यह भी की कि आडवारो की ऐकान्तिक भक्ति मे कर्म और ज्ञान का समावेश भी कर दिया और इस प्रकार उन्होंने 'प्रवन्धम्' तथा ब्रह्मसूत्रो के कथनो का समन्वय करने का प्रयत्न किया। आचार्यों मे प्रथम आचार्य नाथमुनि[2] हुए जिनका समय सन् ८२४ ई० से सन् ६२४ ई० तक वताया जाता है। इनके पूर्वज उत्तरी भारत मे आये हुए एक भागवत धर्मावलम्बी वैष्णव थे। नाथमुनि के वाद इस धर्म के प्रचारक आचार्य पुण्डरीकाक्ष, राम मिश्र तथा श्रीयामुनाचार्य हुए।

१—कल्चरल हैरिटेज श्राफ इण्डिया सीरीज, के भाग २, के, तथा" The Historical Evolution of Sri Vaishnavism in South India by V. Rangacharya, M A Lecturer in History & Economics, Govt College Palghat, के श्राधार पर दिये है।

२—दि कल्चरल हेरिटेज श्राफ इण्डिया, भाग २, पृष्ठ ८१।

श्री यमुनाचार्य, नाथमुनि के पौत्र थे। इन्होंने ही श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत की नींव तैयार की थी। निम्बार्कसम्प्रदाय के भेदाभेदवाद की पृष्ठिभूमि तैयार करनेवाले एक आचार्य श्री भास्कराचार्य भी थे जिन्होंने ब्रह्मसूत्रो पर महत्त्वशाली भाष्य लिखा था। महामहोपाध्याय श्री पं० गोपीनाथ कविराज जी ने अपने एक लेख मे बताया है कि भास्कराचार्य ई० नवी शताब्दी मे प्रादुर्भूत हुए थे। वे श्री रामानुज के पूर्ववर्ती थे, क्यो कि रामानुज के श्री भाष्य मे उनके नाम का उल्लेख मिलता है।[1] न्यायाचार्य उदयन द्वारा रचित न्यायकुसुमाञ्जलि, द्वितीय स्तवक में भास्कर का उल्लेख है और उनकी समालोचना है। उदयन का अविर्भाव-काल सन् ९८४ई० माना जाता है। भास्कराचार्य शङ्कर के परवर्ती और उदयाचार्य के पूर्ववर्ती थे, कुछ लोगो ने श्री भास्कराचार्य तथा निम्बार्काचार्य को एक ही व्यक्ति माना है। श्री कविराज जी का मत है कि वस्तुतः ये दो भिन्न-भिन्न आचार्य थे। इन आचार्योंके बाद ईसा की ग्यारहवी शताब्दी के आरम्भ मे श्री रामानुजाचार्य हुये जिन्होंने शङ्कराचार्य के मायावाद का खण्डन कर विशिष्टाद्वैत मत की स्थापना की और उत्तरी भारत मे विष्णु भक्ति का पुनरुत्थान किया। उत्तरी भारत मे विष्णुभक्ति की अधिक प्रवलता तो वस्तुतः ईसा की १५ वी और १६ वी शताब्दियो मे हुई थी, परन्तु दक्षिण भारत से आनेवाले आचार्यो, श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य, के प्रयत्न से ईसा की १२वी शताब्दी से लेकर १५वी शताब्दी तक यह धर्म उत्तरी भारत में फैल गया था।

व्रज-प्रान्त मे, कुशनवशी राजाओ के राजत्व-काल ईसा की प्रथम शताब्दी मे, जो वहुधा बौद्ध-मतावलम्बी थे, भागवत-धर्म वहुत शिथिल था। कुशनवशी राजा कनिष्क[2] ने बौद्ध धर्म को ही प्रोत्साहन दिया। इसके अनन्तर गुप्तवश के राजत्वकाल मे वैष्णव धर्म फिर प्रवल हुआ, परन्तु गुप्तसाम्राज्य के ह्रास के साथ (ईसा की छठी शताब्दी का अन्त) इस धर्म का भी ह्रास हो गया। पीछे कहा गया है कि हर्षवर्धन ने बौद्ध धर्म को अपनाकर उसी का प्रचार किया। उस समय एक प्रकार से व्रज मे भागवत-धर्म का लोप ही हो गया था, और बौद्ध-धर्म की प्रवलता थी[3], उत्तरी भारत के शैव-धर्म के प्रचार के साथ व्रज मे 'शैवोपासना' का भी प्रचार था। मथुरा नगर की चारो दिशाओ मे चार प्राचीन शैवमन्दिरो की विद्यमानता इस वात का अनुमान देती है। इसके वाद दक्षिण भारत से आनेवाले आचार्यो द्वारा वैष्णव-धर्म के प्रचार ने, व्रज-प्रान्त मे भी फिर से बौद्ध और शैव धर्मो को हटाकर भागवत धर्म का उत्थान कर दिया। पीछे कहे चार

१—गौडीय वैष्णव-दर्शन, गोपीनाथ कविराज, उत्तरा, अगहन, बँगला संवत् १३३२।

२—हिस्ट्री आफ ऐंशिएंट इण्डिया, डा० रामशङ्कर त्रिपाठी, पृ० २२३ से २२८।

३—पुरातत्त्व वेत्ताओं को महावन के निकट के स्थानो को खोदने से बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी अनेक वस्तुएँ मिली है, जो आजकल मथुरा म्यूजियम में सुरक्षित हैं।

आचार्यो मे से तीन आचार्य माध्वाचार्य, विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य, विष्णु के कृष्ण रूप के उपासक थे। इसलिए चारो आचार्यो के मतो मे से व्रजभूमि मे कृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण माध्वाचार्य, विष्णु स्वामी और निम्वार्क-सम्प्रदायो की भक्ति-पद्धति का ही, १५वी शताब्दी तक विशेष प्रचलन रहा। १५वी और १६वी शताब्दी मे आकर वहाँ कृष्ण-भक्ति के अनेक और सम्प्रदाय भी चले जिनका प्रभाव वहाँ आज तक है।

जिन आचार्यो ने श्रुति और स्मृति ग्रन्थो के आधार पर वैष्णव-धर्म का पुनरुत्थान दक्षिणी भारत से आकर उत्तरी भारत मे किया था, वे और उनके चलाये सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं—

१—श्री रामानुजाचार्य और उनका विशिष्टाद्वैतवादी श्रीसम्प्रदाय। समय—सन् १०३७:११३७ ई०[1]।

२—श्री विष्णुस्वामी तथा उनका शुद्धाद्वैतवादी रुद्रसम्प्रदाय।

३—श्री निम्बार्काचार्य तथा उनका द्वैताद्वैतवादी निम्बार्कसम्प्रदाय। समय—११६२-ई०[2]।

४—श्री मध्वाचार्य और उनका द्वैतवादी माध्वसम्प्रदाय। समय—११९७:१२७६ ई०।

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, उक्त चारो आचार्यो ने तथा इनके अनुयायी अन्य वैष्णव आचार्यो ने वैष्णव भक्ति, और अपने तात्विक सिद्धान्तवाद की स्थापना के साथ शङ्कराचार्य के मायावाद तथा विवर्तवाद का भी खण्डन किया। उक्त चार आचार्यों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर जो पृथक् सम्प्रदाय ईसा की १४वी शताब्दी से लेकर १६वी शताब्दी के अन्त तक बने, उनमे से मुख्य वैष्णव-सम्प्रदाय निम्नलिखित है—

१—श्री रामानन्द जी का रामानन्दीसम्प्रदाय (विशिष्टाद्वैतवादी)।

२—श्री चैतन्य महाप्रभु का चैतन्यसम्प्रदाय, (गौडीय सम्प्रदाय), (अचिन्त्य भेदाभेद-वादी)।

३—श्री वल्लभाचार्य जी का पुष्टिमार्ग (शुद्धाद्वैतवादी)।

४—राधावल्लभीय सम्प्रदाय।

५—हरिदासी सम्प्रदाय।

व्रजप्रान्त मे इन पाँच भक्ति-सम्प्रदायो मे से अन्तिम चार का ही अष्टछाप के समय मे प्रचार हुआ था और इन्ही की विद्यमानता का प्रमाण उस समय के व्रजसाहित्य से मिलता है।

१–कल्चरल हैरिटेज आफ इण्डिया सिरीज भाग २, पृ० ८६।

२–वैष्णविज्म, शैविज्म. भाण्डारकर पृ० ६३ फुटनोट।

विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय

श्री वल्लभाचार्य जी से पहले विष्णुस्वामी नाम के कई आचार्य हुये थे। वल्लभसम्प्रदाय के एक ग्रन्थ 'सम्प्रदाय-प्रदीप', द्वितीय प्रकरण मे वल्लभमत के एक पूर्व आचार्य विष्णुस्वामी का वृत्तान्त दिया हुआ है। उसमे लिखा है,— "युधिष्ठिर-राज्य-काल के पश्चात् एक क्षत्रिय राजा द्राविड देश मे राज्य करता था। उसका एक ब्राह्मण मन्त्री था। उसी ब्राह्मण मन्त्री का एक, बुद्धिमान्, तेजस्वी तथा भगवद्भक्ति-परायण पुत्र विष्णुस्वामी था जिसने वेद, उपनिषद्, स्मृति, वेदान्त, योग आदि समस्त ज्ञान-साहित्य का अध्ययन करने के बाद आचार्य की पदवी पाई। भगवान के साक्षात्कार से उसे ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान तथा भक्तिमार्ग की अनुभूति हुई।" इस ग्रन्थ मे, भगवद्-प्रबोधन रूप मे दिये हुए विष्णुस्वामी के तात्त्विक सिद्धांत बहुत करके वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत के समान ही है। इस ग्रन्थ मे लिखा है—"विष्णुस्वामी ने बहुत समय तक भक्तिमार्ग का प्रचार किया और भक्ति को मुक्ति से भी अधिक महत्ता द है। इन्होंने वेद तन्त्रोक्त विधान, वेदान्त, साङ्ख्य, योग, वर्णाश्रमधर्मादि सम्पूर्ण कर्तव्य भक्ति के ही साधन बताये है। इनके बाद इस मार्ग के सात सौ आचार्य हुए। कालान्तर मे इसी सम्प्रदाय के एक आचार्य बिल्वमङ्गल जी हुए जो द्राविड-देशीय थे। बिल्वमङ्गलाचार्य के समय मे भी भक्ति का बहुत प्रचार हुआ। उसी समय श्री शङ्कराचार्य तथा श्री कुमारिल भट्टाचार्य जी हुए जिन्होंने भिन्न-भिन्न मार्गो का अवलम्बन किया। बिल्वमङ्गलाचार्य के बाद श्री रामानुजाचार्य आदि और कई भक्तिमार्ग के आचार्य हुए जिनमे से विष्णुस्वामी तथा बिल्वमङ्गलाचार्य के मार्ग को श्री वल्लभाचार्य जी ने ग्रहण किया और उसी का परिष्कार कर अपना मत चलाया।"[१]

'गौडीय दशम खण्ड'[२] के लेख मे, श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज का कहना है— "एक देवतनु विष्णु स्वामी ई० सन् से ३०० वर्ष पहले हुए जो मथुरा मे रहते थे। इनके पिता का नाम देवेश्वर भट्ट था। इन विष्णुस्वामी के ७०० वैष्णव त्रिदण्डी संन्यासी इनके मत का प्रचार करते थे। इस मत के सबसे अन्तिम संन्यासी श्री व्यासेश्वर थे। दूसरे एक और विष्णु स्वामी का नाम राजगोपाल विष्णुस्वामी था। इनका जन्म सन् ८३० ई० में हुआ। यह काञ्ची नगर मे रहते थे। काञ्ची मे उन्होंने श्री राजगोपालदेवजी अथवा श्री वरदराज की मूर्ति की स्थापना की। यह भी प्रसिद्ध है कि इन्होंने ही द्वारका मे रणछोर जी, तथा सप्त नगरियो मे से अन्य छः नगरियो मे भी विष्णु-मूर्तियो की स्थापना की थी"। श्री सरस्वती महाराज ने बिल्व मङ्गलाचार्य को इन्ही का शिष्य बताया है। "तीसरे एक और विष्णुस्वामी हुए थे। श्रीवल्लभाचार्यजी के पूर्व पुरुष इन्ही तीसरे विष्णुस्वामी के गृहस्थ शिष्य थे।"[३]

१—सम्प्रदाय प्रदीप, पृ० १४ : ३०।

२—गौडीय दशम खण्ड, पृष्ठ ६२४:६२६।

३—गौडीय दशम खण्ड, पृष्ठ ६२४:६२६।

रायबहादुर श्री अमरनाथराय जी का इस विषय पर 'भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऐनल्स' मे एक लेख है, जिसमे कहा गया है कि माधवाचार्य तथा सायनाचार्य के गुरु श्री विद्याशङ्कर थे और विद्याशङ्कर का ही दूसरा नाम विष्णुस्वामी था।[1]

इस प्रकार के विभिन्न मतो के बीच मे, यह पता लगाना कि "विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय" के प्रवर्तक आचार्य विष्णुस्वामी की स्थिति कब और कहाँ थी, कठिन है। वल्लभसम्प्रदायी ग्रन्थो से तथा किवदन्तियो से यह पता चलता है कि श्री वल्लभाचार्य जी विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर बैठे और उन्होंने इसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के आधार पर अपने सिद्धातो को निर्धारित किया। यह भी जनश्रुति है कि महाराष्ट्र सन्त श्री ज्ञानदेव, नामदेव, केशव,त्रिलोचन हीरालाल और श्रीराम, विष्णुस्वामी-मतावलम्बी थे। महाराष्ट्र मे प्रचार पाने वाला भागवत-धर्म, जो पीछे 'वारकरी' सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जिसके अनुयायी ज्ञानदेव तथा नामदेव आदि उक्त भक्त थे, विष्णुस्वामी-मत का ही रूपातर है।

निम्बार्क-सम्प्रदाय

श्री निम्बार्काचार्य के समय के बारे मे विद्वानो ने अनिश्चित मत प्रकट किया है। और अनुमान से इनको श्री रामानुजाचार्य (सन् १०३७ ई० : ११३७ई०) के बाद श्री मध्वाचार्य का समकालीन माना है। डा० भण्डारकर ने इनका समय सन् ११६२ ई० दिया है[2]। निम्बार्काचार्य भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत वेदान्त मत के प्रचारक थे। दार्शनिक साहित्य मे इनके निम्बार्काचार्य, निम्बादित्य, निम्बभास्कर, नियमानन्दाचार्य आदि कई नाम मिलते है। इनमे से इनका सबसे अधिक प्रसिद्ध नाम निम्बार्काचार्य ही है। यह भी कहा जाता है कि भेदाभेदवादी श्री भास्कराचार्य तथा निम्बार्काचार्य दोनो एक ही व्यक्ति थे। परन्तु दर्शनशास्त्र के विद्वान् इतिहासकारो ने सिद्ध किया है कि ये दोनो आचार्य भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे[3]। श्री भास्कराचार्य श्री शङ्कराचार्य के परवर्ती थे निम्बार्काचार्य से बहुत पहले हुये थे।

निम्बार्काचार्य का जन्म बिलारी जिले के निम्बापुर स्थान मे हुआ बताया जाता है। इनके विषय मे एक कथा यह भी कही जाती है कि इनका नाम पहले नियमानन्द था। एक

1—Article by Rai Bahadur Amarnath Rai, Bhandarkar Resscarch Institute annals, 1933, April to July, Vol 14, parts III, IV, pages 116-118.

२—वैष्णविज्म, शैविज्म... ..भण्डारकर, पृ० ६३, फुटनोट।

३—गोपीनाथ, कविराज, 'उत्तरा,' अगहन, बङ्गाली संवत् १३३२।

समय कुछ साधु सायङ्काल को इनके पास आये जो दिन छिपने के वाद भोजन नही करते थे। नियमानन्दाचार्य ने अपने आश्रम के निकट स्थित एक निम्ब वृक्ष पर भगवान् कृष्ण के चक्र-सुदर्शन का आवाहन किया जिसकी ज्योति सूर्यवत् चमकती थी। अतिथियों ने उसे सूर्यप्रकाश जान कर भोजन कर लिया। परन्तु भोजन समाप्त होते ही सुदर्शन के चले जाने पर अँधेरा हो गया। अतिथि-वर्ग आश्चर्य मे पड गया। इस अपूर्व घटना का श्रेय नियमानन्दाचार्य की चमत्कार-शक्ति तथा सिद्धि को दिया गया। इस घटना के वाद से ही इनका नाम निम्वार्क अथवा निम्वादित्य चल पडा। पीछे इनका चलाया मत भी निम्वार्कसम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दक्षिण मे विद्याध्ययन करने के वाद तथा संन्यासग्रहण के उपरान्त ये वहुत समय तक भारत की यात्रा करते रहे। इनके दो ग्रन्थ वहुत प्रसिद्ध हैं—'वेदान्त पारिजात सौरभ' तथा 'दश श्लोकी'। 'वेदान्त पारिजात सौरभ' ब्रह्म सूत्रों पर भाष्य ग्रन्थ है तथा 'दश श्लोकी' मे संक्षिप्त रीति से ज्ञेय पंचविधि पदार्थ का निरूपण है। "सविशेप निर्विशेप श्रीकृष्णस्तवराज" नामक २५ श्लोकात्मक स्तोत्र भी निम्वार्काचार्य द्वारा रचित हैं। निम्वार्क-सम्प्रदाय को 'सनक-सम्प्रदाय' अथवा 'हस-सम्प्रदाय' भी कहते है। इस सम्प्रदाय के अनुयायियो का विश्वास है कि सनक, सनन्दन आदि ऋपि इस सम्प्रदाय के आदि आचार्य है।

दश श्लोकी मे श्री निम्बार्काचार्य ने निम्नलिखित पाँच पदार्थ ज्ञेय बताए है—१—उपास्य का स्वरूप। २—उपासक का स्वरूप। ३—कृपाफल। ४—भक्तिरस तथा ५—फलप्राप्ति मे विरोधी। इन्ही पाँच विपयो के अन्तर्गत निम्वार्क के

मत

ब्रह्म, जीव, जगत्, मोक्ष तथा मोक्ष-साधन आदि सम्वन्धी सिद्धान्त निहित हैं। पीछे कहा गया है कि इस सम्प्रदाय का तात्त्विक सिद्धान्त द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद-वाद है। निम्वार्क के मत मे जीव और जगत् का ब्रह्म से सम्वन्ध द्वैत भी है तथा अद्वैत भी। निम्वादित्य दश-श्लोकी के भाष्य मे श्री हरिव्यासदेव जी कहते हैं,—"वस्तुतः विज्ञान-स्वरूप एक ही ब्रह्म सर्व जीव-जगत् का नियन्ता है। जीव और ब्रह्म में अभेद रहते हुए भी जीव तथा ब्रह्म का विलक्षण व्यवहार है, जैसे अवतार और अवतारी, गुण और गुणी मे अभेद है, परन्तु दृष्टिमात्र से भेद दिखाई देता है, वस्तुतः भेद नही है।"[२] इसीसे इस मत मे भेदाभेद का समर्थन किया गया है। ब्रह्म, चित्, जीव तथा अचित् (जड) से भिन्न है,

---

१—उपास्यरूपं तदुपासकस्य च, कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम्।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्तेर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः॥
निम्वादित्य दश श्लोकी, हरिव्यासदेव, श्लोक १०।

२—एकत्वेव ब्रह्म विज्ञानरूपं वस्तुतः सर्वाकारम्। जीवब्रह्मणोरभेदेऽपि वैलक्षण्य-व्यवहारोऽवताराविणोरिव नित्यस्तेन न क्वापि वाक्यव्याकोपो भक्तिसिद्धिश्च न च धर्मसाङ्कर्यम्। घटकपालयोर्गुणगुणिनोश्च सत्यप्यभेदे तददर्शनात्।
निम्वादित्य दश श्लोकी, हरिव्यासदेव, पृ० २८।

परन्तु चित् तथा अचित् दोनो ही तत्त्व ब्रह्मात्मक है। जैसे वृक्षो के पत्र, प्रदीप की प्रभा, ये वृक्ष और प्रदीप से पृथक् भाव मे रह कर कार्य करने मे समर्थ नही है, वृक्ष और प्रदीप-ज्योति के अश-रूप पत्र और प्रभा वृक्षादि से अभिन्न है। उसी प्रकार चित्-अचित् भी ब्रह्म के अश है। मुक्ति-अवस्था मे जीवो की स्थिति ब्रह्म से भिन्न नही है। प्रत्येक मुक्त आत्मा, आपस मे भिन्न रहते हुए भी परमात्मा से अपने को अविभक्त अनुभव करता है। इस मत मे जीव ईश्वरात्मक तथा उससे अविभाज्य कहा गया है। अचेतन पदार्थ का भी ब्रह्म से अविभाग है। जैसे मकडी का तन्तु मकडी से अलग भी स्थित है तथा उसके भीतर भी, इसी तरह जगत् भी ब्रह्म मे स्थित है तथा ब्रह्म जगत् से अतीत भी स्थित है। "इस प्रकार विभाग-सहिष्णु अविभाग ही जीव, जगत् तथा ब्रह्म का परस्पर सम्बन्ध है।"[1]

निम्बार्क मतानुसार तत्त्व के तीन भेद है—चित्, अचित् तथा ब्रह्म। ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ तथा अच्युत विभव से पूर्ण है। ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है और ब्रह्म ही निमित्त कारण है। वही कर्त्ता है तथा कृति का विषय है। इसलिए उसे अभिन्ननिमित्तोपादान कहा गया है। ब्रह्मपराख्या शक्ति, जीवाख्या शक्ति तथा मायाख्या शक्ति, तीन प्रकार की शक्ति मे रहनेवाली अनन्तशक्ति से पूर्ण है।[2] वह स्वाधिष्ठित अपनी शक्ति को विक्षिप्त करके जगदाकार मे अपनी आत्मा को परिणत करता है। ब्रह्म की शक्ति का विक्षेप ही परिणाम का स्वरूप है। और यह परिणाम जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, मकडी के तन्तु की सृष्टि के समान है।

ब्रह्म

निम्बार्क के मत मे श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है। वे दोषहीन, कल्याण-गुण की राशि, व्यूह-समूह मे अङ्गी तथा 'पर' है।[3] श्री हरिव्यासदेव जी 'दश श्लोकी' के भाष्य मे ब्रह्म को अद्वैत बताते हुए कहते है कि कृष्ण की शक्ति व्यक्त और अव्यक्त, तथा अंश और अशीरूप से व्याप्त है। इसलिए उसमे द्वैत नही है।[4] वह जीव-जगत् से विलक्षण है

१—'गौडीय वैष्णव दर्शन' गोपीनाथ कविराज, "उत्तरा", अगहन, बङ्गाली संवत् १३३२।

२— ... .इत्यादिश्रुतिवर्णिताभिः पराख्या-जीवाख्या-मायाख्याभिः शक्तिभिश्च यः पूर्णस्तमित्यर्थः —निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० २०।

३—स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्मपरं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥
निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ४।

४—एकस्यैव ब्रह्मणः कृष्णस्य शक्तिव्यक्त्यव्यक्तिभ्यामंशांशित्वव्यपदेशान्न तस्मिन् द्वैतगन्धोऽपि। अतः श्राव्यते "एकोऽपि सन् बहुधा योऽवभाति।"
निम्बादित्य दशश्लोकी हरिव्यास देव, पृ० २१।

इसलिए द्वैत भी है। कृष्ण की शक्ति अचिंत्य तथा अनन्त है। वे ऐश्वर्य तथा माधुर्य दोनो के आश्रय है। उनकी 'रमा', 'लक्ष्मी' या 'भू' शक्ति उनके ऐश्वर्य रूप की अधिष्ठात्री हैं तथा गोपी और राधा उनके प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री है। भगवान मुक्त, गम्य, योगी, कृपालभ्य तथा स्वतन्त्र सत्तावान् है। श्री हरिव्यासदेव जी कहते है—"उनका सच्चिदानन्दात्म् विग्रह है। व्रजधाम मे नित्य स्थित है। व्रज मे वे द्विभुज रूप है और द्वारावति मे चतुर्भुज है। वे सर्वज्ञ, सर्व ऐश्वर्य-पूर्ण, सर्वकारणत्व, सर्वशक्तित्व, सौहार्द, मृदुलता, करुणा आदि गुणो के रत्नाकर तथा भक्तवत्सल है।[1] यही व्रजकृष्ण, जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य आह्लादिनी गोपी-स्वरूप शक्तियो से परिवेष्टित रहते है, निम्बार्क-सम्प्रदाय के उपास्य देव है।"[2]

जीव

चित् तत्व जीवात्मा, देहादि अचित् पदार्थो से भिन्न, ज्ञान-स्वरूप होते हुये भी नित्य ज्ञाता और ज्ञान का आश्रय है। जीव अणु परिमाण है और कर्ता है। प्रत्येक शरीर मे जीव भिन्न-भिन्न है तथा प्रत्येक जीवन-वन्धन और मोक्ष की योग्यता से युक्त है। जीव मात्र भगवान् का व्याप्य है तथा सर्वदा भगवान् के अधीन है। ईश्वर प्रेरक है तथा जीव प्रेर्यमान है। जीव अनन्त है[3] ब्रह्म अंशी है और जीव अंश है, इसलिए वे सदैव भगवान् के अधीन रहते है।[4] जीव अनादि माया से युक्त है। 'निम्बार्क दश श्लोकी' मे जीव दो प्रकार के कहे गये है—एक मुक्त जीव तथा दूसरे वद्ध जीव।[5] मुक्त जीव भी श्री हरिव्यास देव ने अपने भाष्य मे दो प्रकार के कहे

१—उपास्यस्य कृष्णस्वामिनो रूपं सच्चिदानन्दविग्रहं स्वमहिमसंव्योमपुरशादिव्रजादिनित्यपदस्थितं व्रजे द्विभुजं गोपवेषं द्वार्वत्यां चतुर्भुजं च सार्वज्ञयसार्वैश्वर्य-सर्वकारणत्वसर्वशक्तित्वसौहार्दमार्दवाकारुणिकत्वादिगुणरत्नाकरं भक्तवत्सल-मित्येतत्। —निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास, पृ० २८

२—वृषभानुजाविशिष्टं कृष्णस्य स्वरूपं सदोपासनीयं नितरां एकान्तभावेन श्रवणा-दिभिरनुकूलनीयमित्यर्थः। —निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यासदेव, पृ० ३२।

३—ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं, ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः।
—निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास, श्लोक १।

४—सर्वेश्वरस्य हरेरंशोऽयमतो हरेरधीनमित्यर्थः।
—निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० ५।

५—अनादिमायापरियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात्।
मुक्तं च भक्तं किल वद्धमुक्तप्रभेदबाहुल्यमथापि बोध्यम्।
—निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यासदेव, श्लोक २।

हैं—नित्य मुक्त तथा साधन मुक्त। इस प्रकार निम्बार्क मत मे जीव की तीन कोटि हैं—एक बद्ध जीव, एक मुक्त जीव तथा एक नित्य मुक्त जीव।[१]

बद्ध जीव

देव-मनुष्यादि देह मे तथा उससे सम्बन्धित वस्तु मे, अनादि कर्मरूपिणी अविद्या से बद्ध जीव आत्मा तथा आत्मीय वस्तु का जब अभिमान करता है, उसे बद्ध जीव कहते हैं। बद्ध जीवो की अवस्था मे तारतम्य है। संसार-क्लेशाग्नि के विनाश होने पर मुक्ति होती है। सद्गुरु के आश्रय मे उनके बताये मार्ग के अनुसरण से भगवान् की अहेतुक कृपा अथवा प्रसाद प्राप्त होता है। फिर, जीव भगवान् की कृपा के फलस्वरूप मुक्ति पाता है।

मुक्ति तथा मुक्त जीव

श्री हरिव्यास देव जी ने 'निम्बादित्य दश श्लोकी' के भाष्य मे, मुक्ति दो प्रकार की कही है—क्रम मुक्ति तथा सद्योमुक्ति।[२] ये ही दो प्रकार की मुक्ति श्री वल्लभाचार्य जी ने भी बताई हैं। जो निष्काम-कर्म तथा विधिपूर्वक अर्चनादि करके स्वर्गादि लोको के अनुभव लेते हुये सत्य-लोक मे स्थित होते हैं और प्रलय-प्राप्ति पर ब्रह्म मे सायुज्यलाभ करते हैं, वे क्रम मुक्ति पाते हैं। और श्रवणादि भक्ति मे जिनका संसार-बन्धन-टूट गया है, और जो भगवान् की कृपा के भागी हो गये हैं वे सद्योमुक्ति मे 'हरिपद' या कृष्ण-लोक मे जाते हैं। निम्बार्कसम्प्रदाय मे भगवद्-सेवा-भक्ति तथा उनकी कृपा द्वारा प्राप्य मुक्ति ही इष्ट-फल कहा गया है। श्री हरिव्यास जी ने परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण के दो स्वरूपो के अनुसार भगवान् के लोकादि-प्राप्ति की मुक्ति भी दो प्रकार की कही है—एक, ऐश्वर्यानन्द प्रधान, दूसरी सेवानन्द-प्रधान[३]। जो जीव निष्काम भाव से भगवान् की सेवा तथा उनसे प्रेम करते है उन्हे भगवान् के नैकट्य मे भगवान् की सेवा के आनन्द की मुक्ति मिलती है और जो जीव सकाम भक्ति करते हैं उनको भगवान् के ऐश्वर्यादि मिलते हैं और वे भगवान् के लोक मे ऐश्वर्यादि का आनन्द पाते हैं।

जो मुक्त जीव भगवद्-सामीप्य लाभ करते है, उनके भी वैसे ही भगवान् के समान गुण हो जाते हैं। मुक्त जीवो के देह का संस्थान भगवान् की अनादि तथा अनन्त-रूपिणी इच्छाशक्ति ही करती है। जीवात्मा जैसे नित्य है उसी प्रकार उसका विग्रह भी नित्य है। कर्मादि बन्धन की अवस्था मे जीव की नित्य-देह आवृत्त रहती है। जब जीव भगवान् के प्रसाद से उनका सामीप्य पाता है, उस समय वह प्रकृति के बन्धन से मुक्त होकर अपने नित्य सिद्ध-देह को लाभ करता है। भगवत्-प्रसाद द्वारा प्राप्त देह निर्विकार तथा भगवान् की सेवा के योग्य होती है।

१—निम्बादित्य दशश्लोकी, श्री हरिव्यास देव, पृ० १४।
२—निम्बादित्य दशश्लोकी, श्री हरिव्यास देव, पृ० १२।
३—निम्बादित्य दशश्लोकी, श्री हरिव्यास देव, पृ० १३।

नित्य सिद्ध जीव सदा ससार-दुःख से मुक्त भगवत्स्वरूप गुणादि का सर्दव अनुभव करनेवाले तथा स्वभावतः भगवद्-अनुभावित होते हैं। गरुड-सनकादि नित्य-सिद्ध अथवा नित्य-मुक्त जीव हैं। समाविनिष्ठ योगियो को भी उक्त प्रकार के अनुभव का आनन्द मिलता है, परन्तु उनका अनुभव नित्य-सिद्ध जीवो के तुल्य सदाकालीन तथा स्वाभाविक नही होता।

नित्य सिद्ध जीव

अचित् तत्व—अचित् तत्व तीन प्रकार का है—प्राकृत, अप्राकृत तथा काल।[1]

प्राकृत

तीन गुणों का आश्रय-तत्त्व प्राकृत है जो अपने कारण-रूप में नित्य तथा कार्य-रूप मे अनित्य है। कारण अवस्था मे यह तत्त्व माया-प्रधान अथवा अव्यक्त भी कहलाता है। महत् तत्त्व से लेकर ब्रह्माण्ड तक जगत्-रूप 'प्राकृत' का कार्यरूप है। तीनों प्रकार के अचित की सत्ता भगवान् की अपेक्षा रखती है, उनकी स्वतन्त्र सत्ता नही है। प्रकृति नित्य कालाधीन तथा परिणाम आदि के विकार को लेनेवाली है। सत्त्व, रज, तथा तम इन तीन गुणो के द्वारा प्रकृति, आत्मा की देह, देहेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि आदि रूप में परिणत होकर जीव का बन्धन करती है। प्राकृत का यह कार्य जीव के मोक्ष का प्रतिबन्धक है।[2] यह त्रिगुणात्मिका है।

अप्राकृत

अचित् तत्त्व का अप्राकृत अंश विशुद्ध सत्त्व है। यह प्रकृति तथा काल से अलग तथा प्रकृति-राज्य के बाहर स्थित है। यह तत्त्व सूर्य के समान उज्ज्वल है नित्य विभूति, विष्णुपद, परमव्योम, परमपद, ब्रह्मलोक, इसी अप्राकृत सत्व के दूसरे नाम हैं। यह भगवान के सङ्कल्प मात्र से अनेक रूप लेनेवाला है। भगवान् और उनके आश्रित नित्य तथा मुक्त जीवो के भोग का उपकरण तथा उनके निवास-स्थान के रूप मे अनेक रूप इस शुद्ध तत्व के होते हैं। काल के प्रभावसे अलग होने के कारण यह परिणाम आदि विकार से भी रहित है।

काल

काल जड़-तत्व सृष्टि का सहकारी तथा प्राकृत सम्पूर्ण पदार्थों का नियामक है। काल सर्वदा भगवान् के अधीन है। यह तत्व नित्य तथा विभु है और भूत, भविष्य तथा वर्तमान आदि व्यवहार का हेतु है।

१—अप्राकृतं प्राकृतरूपकं च, कालस्वरूपं तदचेतनं मतम्।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र।
निम्बादित्य दशश्लोकी, श्री हरिव्यासदेव, श्लोक ३।

२—'उत्तरा' नामक बंगला मासिक पत्र, अगहन, १३३२ बंगला संवत्, 'गौडीय-वैष्णव दर्शन' गोपीनाथ कविराज।

'दशश्लोकी' में श्री निम्बार्काचार्य जी ने कहा है कि ब्रह्मा शिवादी से वन्दित कृष्ण के चरणारविन्द को छोड़कर अन्य गति मनुष्य की नहीं है।[१] जिस भाव से भक्त भगवान् की उपासना

मुक्ति लाभ का साधन

करता है, भगवान् भक्त को उसी भाव से मिलते हैं। वे अपनी अचिन्त्य शक्ति से सहज मे भक्त के कष्ट दूर करनेवाले हैं श्रीहरिव्यास देव जी का कहना है कि अन्य को छोड कर केवल कृष्ण ही उपास्य देव हैं।[२] जिस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय आदि कई वैष्णव मतो मे भक्ति तथा प्रेम की उत्पत्ति तथा प्रेरणा प्रभु-कृपा से मानी गई है उसी प्रकार निम्बार्क मत मे भी ईश्वर-कृपा को बडा महत्व दिया गया है। निम्बार्काचार्य जी 'दशश्लोकी' में कहते हैं कि भगवान् की कृपा से ही दैन्यादि भाव उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार भगवान् की कृपा से ही प्रेम-रूपा भक्ति मिलती है। अनन्य भक्त महात्मा द्वारा की जाने वाली भक्ति ही उत्तम उपाय है जो दो प्रकार की होती है—साधनरूपा तथा परारूपा।[३] भगवान् की कृपा का फल, लगभग सभी वैष्णव वर्ग ने भगवान् की शरण अथवा उनके प्रति प्रेम-प्राप्ति बताया है। निम्बार्क मत मे प्रभु की कृपा का फल प्रभु की शरण प्राप्ति लाभ करना है।[४]

भगवान् की कृपा-बल से उनकी शरण मिलने के बाद भक्त भक्तिरस का आस्वादन करता है। नवधा भक्ति के अभ्यास से भगवान् के प्रति प्रेम अथवा रति मिलती है। प्रेमभक्ति इस सम्प्रदाय मे पाँच भावो से पूर्ण कही गई है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल।[५]

शान्त रस के उदाहरणस्वरूप भक्त वामदेवादि है। दास्य के रक्तक, पत्रक उद्धवादि हैं। सख्य के श्रीदामा, सुदामा, अर्जुन हैं। वात्सल्य भाव के यशोदा, नन्दादि हैं। तथा उज्ज्वल रस के भक्त गोपी और राधा हैं। वल्लभ तथा चैतन्य सम्प्रदायो की तरह इसी उज्ज्वल अथवा

१—नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्, संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्।
—निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ८।

२—तस्मात् कृष्ण एव परो देवस्तं ध्यायेत्तं रसेत्तं यजेदों तत् सदिति।
—निम्बादित्य दशाश्लोकी 'हरिव्यास देव पृ० ३६।

३—कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते, यया भवेत् प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिका परा।
—निम्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ६।

४—कृपाफलं च तत्प्रपत्तिलाभलक्षणमित्येतत्।
—म्बादित्य दशश्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० ३८।

५—निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० ३८, ३६, नि० सा० प्रे०।

मधुर भाव को इस सम्प्रदाय मे भी उत्कृष्टता दी गई है। श्री निम्बार्काचार्य ने 'दशश्लोकी' में सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली श्री कृष्ण के वामाङ्ग में विराजित तथा सहस्रों सखियों से सेवित श्री राधादेवी की स्तुति भी कृष्ण की स्तुति के साथ की है।[1] इससे ज्ञात होता है कि श्री निम्बार्काचार्य ने युगल उपासना के साथ भगवान् की माधुर्य तथा प्रेमशक्ति-स्वरूपा राधा की उपासना पर विशेष बल दिया था, क्योंकि वे (राधा) ही सकल कामनाओं को पूर्ण करा सकती हैं।

निम्बार्क-मत मे भक्त को राधाकृष्ण की भक्ति-सेवा के साथ साधु-निंदा आदि सेवा-अपराधो को भी जो फल-प्राप्ति के ३२ विरोधी हैं, जानना चाहिए तथा उनसे बचना चाहिए।[2]

माध्व सम्प्रदाय[3]

श्री माध्वाचार्य का आविर्भाव-काल श्री रामानुजाचार्य के बाद था। इनके दूसरे नाम आनन्दतीर्थ तथा पूर्ण-प्रज्ञ भी है। मद्रास प्रान्त के उडीपी जिले मे 'विल्व' नानक ग्राम में इनका जन्म हुआ। इन्होंने शङ्कर के मायावाद तथा अद्वैतवाद का खण्डन, विष्णु की प्रधानता का प्रचार तथा द्वैत-सिद्धान्त की स्थापना की। इनकी मृत्यु का समय सन् १२७६ ई० बताया जाता है। इनके मत का उत्तरी भारत मे भी प्रचार हुआ।

मत माध्व मत में 'भेद' स्वाभाविक तथा नित्य है। यह स्वाभाविक भेद पाँच प्रकार का है—

१—ईश्वर और जीव-भेद—जीव ईश्वर से तथा ईश्वर जीव से नित्य भिन्न है।

२—ईश्वर और जड़-भेद—जड़ ईश्वर से तथा ईश्वर जड़ से नित्य भिन्न है।

३—जीव और जड़-भेद—जीव जड़ से तथा जड़ जीव से नित्य भिन्न है।

१—अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिषेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।
—निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, श्लोक ५।

२—निम्बादित्य दश श्लोकी, हरिव्यास देव, पृ० ३९।

३—इस लेख में 'उत्तरा' नामक बँगला मासिक पत्र में प्रकाशित, श्री गोपीनाथ कविराज जी कृत 'गौडीय वैष्णव दर्शन' नामक लेख के अन्तर्गत दिये हुये 'माध्व मत' लेख से विशेष सहायता ली गई है। देखिए 'उत्तरा', पौष १३३२ तथा वैशाख, १३३३ बँगला सं०।

४—जीव-जीव-भेद—एक जीव अपर जीव से भिन्न है।

५—जड-जड़-भेद—एक जड़ दूसरे जड से भिन्न है।

भगवान् का जैसे सर्वगुण सत्य है, उसी प्रकार जीव और ईश्वर आदि ये भेद भी सत्य हैं। यह जगत् सत्य है और उक्त पञ्च भेद-युक्त जगत् का प्रवाह भी सत्य है। उक्त पाँच भेदों के कारण इस जगद् को 'प्रपञ्च' कहते है। जीव को जव तक इन पञ्चभेदो का ज्ञान नही होता तव तक उसकी मुक्ति नही होती।

माध्वमत मे पदार्थ दश प्रकार के कहे गये है—१द्रव्य, २—गुण, ३—कर्म, ४—सामान्य, ५—विशेष, ६—विशिष्ट, ७—अशी, ८—शक्ति, ९—साद्दश्य तथा १०—अभाव।

१—द्रव्य पदार्थ वीस प्रकार का है, यथा परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्त्व, अहङ्कार, वुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्रा (पञ्चतन्मात्रा), भूत (पञ्चभूत), व्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल, प्रतिविम्व।

२—गुण-पदार्थ, रूप-रस, सौन्दर्य, धैर्य, शौर्य आदि अनेक प्रकार के हैं।

३—कर्म—तीन प्रकार के हैं—विहित कर्म, निषिद्ध कर्म तथा उदासीन कर्म। नित्य और अनित्य दो प्रकार के भी कर्म होते हैं।

४—सामान्य—सामान्य पदार्थ दो प्रकार का है—जाति, तथा उपाधि, जो नित्य तथा अनित्य भेद से दो प्रकार के हैं। देवत्व-जीवत्व जिसमे मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्षादि अनेक जातियाँ हैं। भौतिक शरीर से सम्वन्धित जातियाँ अनित्य हैं, क्योकि शरीर की उत्पत्ति तथा विनाश है; परन्तु मुक्तावस्था मे जो वस्तुभाव रहता है वह नित्य है। माध्वमत मे जीवो की भिन्न-भिन्न स्थितियों का इस संसार मे व्यतिक्रम होता रहता है, परन्तु ससार से निवृत्त होने पर जिस जीव का जो स्वाभाविक स्वरूप है उसे वही मिल जाता है। मुक्तवर्ग मे स्थावर, जङ्गम, वर्ण-आश्रम आदि सभी जातिबोधक विभाग है जो नित्य है।

५—विशेष—भेद के निर्वाहक पदार्थ का नाम विशेष है।

६—विशिष्ट—विशेषणयुक्त विशेष्य को विशिष्ट कहते हैं। यह भी नित्यानित्य दो प्रकार का है।

७—अंशी—अंश से अतिरिक्त अंशी भी पृथक पदार्थ है।

८—शक्ति—यह चार प्रकार की है—

क-अचिन्त्य शक्ति, ख-आधेय शक्ति, ग-सहज शक्ति, घ-पदशक्ति।

क—अचिन्त्य शक्ति—यह एक मात्र ईश्वर मे ही पूर्ण रूप में है, अन्यत्र वह भगवान् की आपेक्षिक मात्रा में ही रहती है। भगवान् की अचिन्त्य शक्ति का ही नाम ऐश्वर्य है। ईश्वर मे विरुद्ध-धर्मत्व का कारण यही अचिन्त्य शक्ति है।

ख—आधेय शक्ति—यह स्वाभाविक शक्ति नही है। जैसे किसी मूर्ति मे जब किसी देवता का प्राण-प्रतिष्ठा करते है तब उस मूर्ति में जो देवशक्ति का आह्वान अथवा आरोप है, वही आधेय शक्ति कहलाती है।

ग—सहज शक्ति—स्वभाव का नाम सहज शक्ति है। नित्य पदार्थ की सहज शक्ति नित्य तथा अनित्य की अनित्य होती है।

घ—पद शक्ति—पद तथा पदार्थ के वाच्य-वाचक सम्बन्ध को पद शक्ति कहते है। यह स्वर, ध्वनि, वर्ण, पद तथा वाक्य से सम्बन्वित है।

९ तथा १०—सादृश्य तथा अभाव भी दो पृथक् पदार्थ है।

परमात्मा

माध्व मत मे परमात्मा अनन्त गुणपूर्ण है और उसका प्रत्येक गुण असीम है। वह सब प्रकार से पूर्ण है। वह नित्य है। जैसे उसके ऐश्वर्यादि गुण निस्सीम है उसी प्रकार उसके आनन्दादि गुण भी अपरिमित हैं। वह आठ प्रकार के कार्यकर्त्ता है—(१) सृष्टि, (२) स्थिति, (३) संहार, (४) नियम, (५) आवरण (अज्ञान), (६) बोधन, (७) बन्धन, (८) मोक्ष। इन आठ कार्यो में परमात्मा के अतिरिक्त और किसी चेतन का अधिकारी नही है। उसकी देह ज्ञानानन्दात्मक, अप्राकृत तथा नित्य है। उसके अङ्ग चिदानन्द के है। जीव परतन्त्र है और परमात्मा स्वतन्त्र है, वह अद्वितीय है। इसलिए वही एक है। परमात्मा मे अनेक रूप धारण करने की शक्ति है। जीव मे वह शक्ति नही है। परमात्मा का प्रत्येक रूप उसके सर्व गुणो से पूर्ण होता है। उसके मूल रूप तथा अवतरित रूप में कोई भेद नही है। सुख-दुखः, विद्या-अविद्या, बन्ध-मोक्ष आदि सब उसकी इच्छा पर निर्भर रहते हैं।

लक्ष्मी

लक्ष्मी परमात्सा से भिन्न चेतन द्रव्य है, जो एकमात्र परमात्मा के ही अधीन रहती है। परमात्मा के इशारे से शक्ति पाकर, लक्ष्मी ही विश्व की सृष्टि आदि ऊपर कहे आठ कार्यो का सम्पादन करती है। सृष्टि-रचयिता ब्रह्मा की उत्पत्ति लक्ष्मी से ही होती है। लक्ष्मी नित्य तथा सर्वगुण पूर्ण है, परन्तु वह सदैव भगवान् की सेवा मे ही रहती है। वह मुक्त-भक्तो मे आदर्श स्वरूपा है।

जड़ तथा अजड़ भेद से प्रकृति दो प्रकार की है। अजड़ प्रकृति चित्स्वरूपा है और वही लक्ष्मी-रूप मे स्थित रहती है। भगवान् लक्ष्मी में स्वस्त्रीभाव रखते हैं, 'श्री', 'भू', 'ह्री', दक्षिणा, सीता, भ्रीनी, सत्या, रुक्मिणी आदि सब लक्ष्मी के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं।

प्रकृति

जड़ प्रकृति आठ प्रकार की होती है।

जीवो के तीन प्रकार के वर्ग हैं—१. मुक्ति योग्य, २. नित्य संसारी, ३. तमोयोग्य। जीव की सङ्ख्या अनन्त है। जितने परमाणु हैं उनसे अनन्त गुणी सङ्ख्या जीवों की है। संसारी जीव अज्ञान, भय-दुःख-मोहादि दोषों से युक्त रहता है।

जीव

१—मुक्ति-योग्य जीव—ब्रह्मा, अग्नि, वायु आदि देव, नारदादि ऋषि, विश्वामित्रादि पितृगण, रघु, अम्बरीष आदि चक्रवर्ती तथा उत्तम मनुष्य, ये ही मुक्त जीव होने के अधिकारी है।

२—नित्य संसारी जीव—उत्तम मनुष्यो को छोड मध्यम मनुष्य नित्य ससारी जीव हैं। ये निरन्तर पृथ्वी, स्वर्ग, नरक आदि लोको मे संचरण करते हुये सुख-दुःख का भोग करते है।

३—तमो-योग्य जीव—दैत्य, राक्षस, पिशाच आदि तमोमय जीव हैं।

जैसा कि पीछे कहा गया है, संसार से मुक्ति पाने पर भी जीव और ईश्वर तथा जीव और जीव में, आपस मे, भिन्नता रहती है, क्योकि माध्व मत मे भेद स्वभावसिद्ध है।

जड़प्रकृति काल, सत, रज, तम, तीन गुण तथा महदादि तत्त्वों का उपादान कारण है। यह जड़-स्वरूपा प्रकृति तीन गुणो से भिन्न परिणाम धारण करनेवाली तथा नित्या है। प्रकृति की अधिष्ठात्री लक्ष्मी है। जब भगवान् सृष्टि की रचना की इच्छा करते हैं तब वे लक्ष्मी द्वारा उसे सत्, रज, तम तीन भागो में विभाजित करते है। इन्ही त्रिगुणो के अंशों से महत् तत्त्व, अहङ्कार, बुद्धि तथा मन आदि की उत्पत्ति होती है।

जड़ प्रकृति

इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती है—नित्य तथा अनित्य। परमात्मा, लक्ष्मी तथा जीव मात्र की स्वरूपगत इन्द्रियाँ नित्य हैं। इनमें भी परमात्मा तथा लक्ष्मी की दशो इन्द्रियाँ रूप-रस आदि से युक्त सर्व पदार्थ को ग्रहण करती हैं। परन्तु जीव की इन्द्रियाँ अलग-अलग अपने योग्य पदार्थ के गुण को ही ग्रहण करती है।

इन्द्रियाँ

इन्द्रियाँ ज्ञान तथा कर्म-भेद से दो प्रकार की हैं।

अविद्या—माध्व मतानुसार पञ्चभूतों की सृष्टि के बाद अविद्या की सृष्टि होती है। अविद्या ब्रह्मा के शरीर मे होकर आती है, इसी से इसे ब्राह्मी सृष्टि भी कहते हैं। इससे प्रभावित ब्रह्मा नारदादि भी हुए हैं।

अविद्या के निम्नलिखित प्रकार हैं—

१. जीवाच्छादिका। २. परमाच्छादिका। ३. शैवला। ४. माया। अविद्या प्रत्येक जीव मे पृथक्-पृथक् होती है। जीवमात्र में अविद्या का अधिष्ठान नही है। संसार-क्लेश का कारण अविद्या है।

परमात्मा के अनुग्रह से ही जीव को ज्ञान मिलता है और भगवान् के अनन्त कल्याण-गुण- समूह का ज्ञान उत्पन्न होता है। फिर भगवान् के प्रति अखण्ड प्रेम होता है। इस प्रेम का नाम परमभक्ति है। भगवान् के अनुग्रह तथा प्रेम द्वारा ही जीव इस दुखः-रूप संसार से मुक्तिलाभ करता है। भगवान् के परम अनुग्रह से जीव परमात्मा के लोक मे तथा अपने स्वरूप मे पहुंचता है तथा मध्यम और अधम अनुग्रह से वह स्वर्ग तथा अन्य ऊर्ध्वलोकों मे सुखभोग करता है। प्रकृति तथा अविद्या के बन्धन से मुक्ति का एकमात्र उपाय भगवान् की कृपा तथा उनसे प्रेम करना है।

मोक्ष-लाभ के उपाय

मुक्ति चार प्रकार की है—कर्मक्षय, उत्क्रान्तिलय, अर्चिरादिमार्ग तथा भोग।

कर्मक्षय—अपरोक्ष ज्ञान से सञ्चित पाप और पुण्य का क्षय होता है। परन्तु प्रारब्ध-कर्मो का क्षय नही होता ; वे भोग से ही कटते हैं। प्रारब्ध-कर्म क्षय के बाद जीव ब्रह्मनाडी का अवलम्बन लेकर उत्क्रमण करता है। ब्रह्म नाड़ी को सुषुम्ना भी कहते हैं।

उत्क्रमणलय—जो सुषुम्ना-पद को पार करते हैं उनको जीवत्व का बोध नही रहता। उस समय विष्णु-तेज स उस जीव के हृदय का द्वार खुल जाता है। इसी को ब्रह्म-द्वार कहते हैं। फिर हृदयस्थ भगवान् ब्रह्म-द्वार से बाहर आकर जीव को ऊँचे की ओर ले जाते हैं। वैकुण्ठ-लोक मे पहुंचकर जीव को भगवान् के तुर्य-रूप का साक्षात्कार होता है। यही उत्क्रमणलय की अवस्था है।

अर्चिरादिमार्ग—जो देहादि के प्रतीक का सहारा लेकर ज्ञान-लाभ करते है उनकी भी अन्त काल मे भगवत्-स्मृति जागृत हो जाती है। अज्ञानी की भगवत्-स्मृति जागृत नही होती।

जिन ज्ञानियो के प्रारब्ध-कर्म का क्षय नही हुआ उनको भी भगवत्-स्मृति नहीं होती । ऐसे ज्ञानी सुषुम्ना की पार्श्ववर्ती नाडी से उर्ध्व गमन करते है और उनको अर्चिरादि लोको की प्राप्ति होती है । फिर वे वायुलोक होते हुए ब्रह्माके लोक मे जाते हैं । ये जीव ब्रह्मा के भोगावसान के वाद ही ब्रह्माके साथ परम पद का लाभ करते हैं ।

भोग—एक गुणोपासक ज्ञानी प्रारब्ध के अवसान के वाद देह त्याग कर पृथ्वी आदि स्थानो मे ही परमानन्द का भोग करते है । यह भोग मुक्ति की अवस्था है । उंनको श्वेत-द्वीप में नारायण का दर्शन होता है और वे श्वेत-द्वीपस्थ नारायण की आज्ञा से पृथ्वी पर विचरण करते हैं ।

उक्त अवस्थाओ के साथ-साथ माध्व-मत में मुक्ति-भोग चार प्रकार का कहा गया है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य । सालोक्य मुक्ति-भोग की अवस्था मे मुक्त जीव भगवान् के लोक में पहुंचता है और वहाँ रहकर इच्छानुकूल भोग करता है । सामीप्य मुक्ति की अवस्था में जीव भगवान् के समीप सम्बन्ध मे रह कर आनन्द भोग करता है । सारूप्य मुक्ति अवस्था मे मुक्त जीव ईश्वर के समान गुण और रूप लाभ करता है । परन्तु भगवान् की समानरूपता को धारण करके भी वह परमानन्द भोग में कभी समर्थ नही होता । सायुज्य मुक्ति अवस्था में, इस मतानुसार, भगवान् में प्रविष्ट होकर भगवद् देह द्वारा जो भोग-साधन होता है वही सायुज्य मुक्ति है । देवगण ही सायुज्य मुक्ति के अधिकारी हैं । प्रलयकाल में सभी को भगवद्-देह मे प्रविष्ट करना पडता है, केवल लक्ष्मी रह जाती हैं । अन्य कालो मे मुक्त जीव सालोक्य, सामीप्य तथा सारूप्य मुक्ति-अवस्थाओ मे अनेक प्रकार से, भगवद्-इच्छा-प्रदत्त शरीरो मे आनन्द का भोग करते हैं । कोई स्त्रियो के साथ जल-केलि में निरत है तो कोई प्रसादो मे आनन्द-भोग करता है । कोई यज्ञादि क्रियाओ मे संलग्न रहता है तो कोई सारूप्य अवस्था में शुद्ध सत्त्व-मय लीला-शरीर से क्रीडा करता है । कोई भगवान् के गुणगान मे मग्न है तो कोई उनके समीप नृत्य कर प्रेम-विभोर होता है ।

चैतन्य सम्प्रदाय[1]

अष्टछाप के समय में वल्लभ-सम्प्रदाय के साथ ही साथ चैतन्य का भी प्रादुर्भाव हुआ । इस सम्प्रदाय को चलानेवाले महात्मा श्री चैतन्य महाप्रभु थे । चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् १४-

---

१—इस लेख में लेखक ने श्री राधागोविन्दनाथ के 'कल्चरल हेरिटेज आफ़ इण्डिया सीरीज', भाग २, में छपे लेख 'ए सरवे आफ़ श्री चैतन्य मूवमेण्ट' से भी सहायता ली है।

१४८५ ई०[1] से बंगाल के नवद्वीप स्थान मे हुआ। उस समय बंगाल मे विष्णु-भक्ति का बहुत ही कम प्रचार था। बहुधा लोग काली और मनसा देवी के उपासक थे। शाक्तों का उस समय बंगाल मे ज़ोर था। बाईस वर्ष की अवस्था तक श्री चैतन्य की विद्वत्ता की ख्याति नवद्वीप के बाहर बंगाल मे फैल गयी थी। एक बार वे अपने पिता का पिण्डदान करने 'गया' गये और वहाँ उन्हें एक 'ईश्वरीपुरी' नाम के परम वैष्णव मिले जिन्होंने कृष्ण चैतन्य को भक्ति मार्ग मे प्रविष्ट कराया। उस समय वे गृहस्थ थे। कुछ समय बाद उन्होंने अपनी माता और स्त्री को छोड़कर संयास ले लिया और रामेश्वर, वृन्दावन आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा की। वे कृष्ण का नाम सङ्कीर्तन मे करते-करते प्रेम मे मस्त होकर नाचा करते थे, और इनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहा करते थे। इनकी प्रेमभक्ति और भक्ति के प्रवचनों को सुनकर इनके अनेक अनुयायी हो गये। फिर इन्होने, भक्ति और कीर्तन का जगह-जगह प्रचार किया। श्री नित्यानन्द तथा अद्वैत आचार्य, ये दो विद्वान भक्त श्री चैतन्य-महाप्रभु के सहकारी शिष्य थे। महाप्रभु ने इन दोनों महात्माओं को बगाल मे वैष्णव-धर्म प्रचार के लिए नियत किया था तथा इनके छह शिष्य वृन्दावन में धर्म-प्रचार के लिये रहा करते थे, जिनमे श्री रूपगोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी और श्री जीवगोस्वामी, मुख्य रूप से प्रचार-कार्य करते थे। ये तीनों महात्मा अष्टछाप कवियो के समकालीन थे। इन तीनो भक्तो की प्रशंसा, नाभादास ने अपने ग्रन्थ 'भक्तमाल' मे की है[2] जिससे पता चलता है कि श्रीकृष्ण चैतन्य और उनके अनुयायी, राधाकृष्ण-युगल-रूप के चरणों के उपासक थे। कृष्ण चैतन्य जिस समय व्रज में गये उस समय वर्तमान वृन्दावन में दो चार घरो के अतिरिक्त कोई बस्ती न थी। चारो ओर जमुना के कछारों के जगल थे। श्रीकृष्ण चैतन्य ने उस स्थान को एक तीर्थ-स्थान बना दिया और तब से अब वृन्दावन एक बड़ा तीर्थ-स्थान समझा जाता है।

श्री जीव गोस्वामी जी ने वृन्दावन मे श्री राधादामोदर के मन्दिर की स्थापना की तथा श्री गोपाल भट्ट ने श्री राधारमण जी का मन्दिर बनवाया। ये दोनो मन्दिर अब तक

१—कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया सीरीज, भाग २, पृ० १३१।

२—श्री रूप सनातन भक्ति जल (श्री) जीव गुसाईं सर गँभीर।
बेला भजन सुपक्व कषायन कबहूं लागी।
वृन्दावन दृढ़वास जुगल चरननि अनुरागी।
पोथी लेखन पान अघट अक्षर चित दानौ।
सद् ग्रन्थन को सार सबै हस्तमाल कीनौ।
संदेह ग्रन्थ छेदन समर्थ, रस रास उपासक परमधीर।
श्रीरूप सनातन भक्ति जल (श्री) जीव गुसाईं सर गँभीर।

—भक्तमाल, भक्तिसुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, छन्द ९३, पृ० ६१६।

वैभवशाली हैं।[1] भक्तमाल मे गोपाल भट्ट के राधारमण जी इष्ट होने का वृत्त तथा उनके साथ अन्य चैतन्य-सम्प्रदायी भक्तो के नाम दिये हुए है जो नाभादास जी के समय तक उस सम्प्रदाय के मुख्य भक्त तथा प्रचारक समझे जाते थे। श्री चैतन्य महाप्रभु का गोलोकवास सन् १५३३ ई० (संवत् १५६० वि०) मे हुआ।[2]

श्री ईश्वरपुरी गोस्वामी जिनसे श्रीकृष्णचैतन्य ने राधाकृष्ण की भक्ति का मार्ग ग्रहण किया था, माधवेन्द्रपुरी गोस्वामी के शिष्य थे।[3] श्रीमाधवेन्द्रपुरी का उल्लेख वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ताओ मे भी आता है। '२५२ वार्ता' से ज्ञात होता है कि जिन माधवेन्द्रपुरी की भक्ति-पद्धति की शिक्षा चैतन्य महाप्रभु ने ली थी, वे श्रीविट्ठलनाथजी के भी, उनके बाल्य-काल मे, विद्यागुरु थे।[4] इस कथन मे कुछ भी सत्यता हो अथवा न हो, परन्तु वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ता-साहित्य से यह बात सिद्ध है कि श्री वल्लभाचार्य तथा श्रीकृष्ण चैतन्य का समागम तो हुआ ही था, वे एक दूसरे की भक्ति से भी प्रभावित हुए थे। श्रीवल्लभाचार्यजी ने, सम्भव है, श्रीकृष्णचैतन्य की भक्ति से प्रभावित होकर ही बगाली वैष्णवो को श्रीनाथजी की सेवा मे रक्खा हो।

श्रीवल्लभाचार्यजी तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुजी लगभग समवयस्क थे। अष्टछाप के प्रथम चार कवियो के जीवन-काल मे ही श्रीवल्लभाचार्यजी ने अपने सम्प्रदाय का, सिद्धान्त और साधन, दोनो दृष्टियो से, एक स्वतन्त्र-रूप खडा कर दिया था। श्रीविट्ठलनाथजी ने, उनके बाद, केवल उपासना-विधि मे, कुछ अधिक आयोजन बढ़ाकर, परिवर्तन अवश्य किये, परन्तु उन्होने आचार्यजी के सिद्धान्तो मे कोई परिवर्तन नही किया। चैतन्य सम्प्रदायी राधाकृष्ण की युगल-भक्ति का, तथा नाम और लीला-कीर्तन का भी चैतन्य महाप्रभु के जीवन-काल में ही भली प्रकार प्रचार हो गया था और श्रीकृष्ण चैतन्य के मौखिक उपदेश लेकर उनके अनेक

१—श्रीवृन्दावन की माधुरी इनि मिलि आस्वादन कियो।
सरबस राधारमन भट्ट गोपाल उजागर।
हृषीकेष भगवान् विपुल बीट्ठल रस सागर।
थानेश्वरी जगन्नाथ, लोकनाथ महामुनि मधु श्रीगंग।
कृष्णदास पंडित उभै अधिकारी हरि अंग।
घमंडी जुगलकिशोर भृत्यु भूगर्भ जीव दृढ़ व्रत लियो।
वृन्दावन की माधुरी इनि मिलि आस्वादन कियो।
—भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, छन्द ६४, पृष्ठ ६१८।

२—दि कल्चरल हेरिटेज आफ़ इण्डिया सीरीज, पृ० १५३

३—चैतन्य-चरितामृत, पृष्ठ ६।

४—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० ५०४।

अनुयायी भी हो गये थे । श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने कोई सिद्धान्त तथा साधन-सम्बन्धी ग्रन्थ नहीं लिखा । वैष्णव आचार्यों की बहुधा यह प्रथा चली आती थी कि किसी सम्प्रदाय को चलाने से पहले वे प्रस्थानत्रयी अथवा केवल ब्रह्मसूत्रों पर ही, भाष्य लिख कर अपने दार्शनिक सिद्धान्तो का व्याख्यान पण्डित-मण्डली में कर देते थे । इस प्रथा को श्रीवल्लभाचार्य जी ने निवाहा था । उनके समकालीन अन्य जितने कृष्ण-पूजा के सम्प्रदाय चले, जैसे राधावल्लभीय सम्प्रदाय तथा हरिदासी सम्प्रदाय, उन्होंने केवल साधन-मेक्ष अथवा भक्ति और पूजा-विधि पर ही अधिक जोर दिया, दार्शनिक सिद्धान्त पक्ष मे उन्होंने संकेत मात्र ही किया था, यहाँ तक कि उनके समकालीन अनुयायी भक्तों ने भी इस विषय मे बहुत ही थोड़ा लिखा । इसलिए ऐसे सम्प्रदायों के विषय मे यह निश्चयपूर्वक कहना कि ये अपने आरम्भिक काल मे अमुक वेदान्त (दार्शनिकवाद) के अनुयायी थे, कठिन है ।

श्री चैतन्य महाप्रभु के बाद श्री रूप गोस्वामी जी ने भक्ति-शास्त्र पर तीन बहुत महत्त्वशाली ग्रन्थ संस्कृत मे लिखे—१—भक्तिरसामृत सिंधु, २—उज्ज्वल नीलमणि तथा ३—लघु भागवतामृत । इन गोस्वामी जी के बड़े भाई तथा समकालीन भक्त श्री सनातन गोस्वामी जी ने, 'श्रीमद्भागवत दशमस्कंध की टीका' तथा 'वृहद् भागवतामृत' नामक ग्रन्थ लिखे । श्री रूप गोस्वामी जी के भतीजे श्री जीव गोस्वामी जी ने, रूप गोस्वामी के उक्त दोनों ग्रन्थों की संस्कृत टीका, दशम भागवत की टीका, 'षट् संदर्भ' तथा 'गोपाल चम्पू,' ग्रन्थ लिखे । इन सब ग्रन्थों में चैतन्य-सम्प्रदायी भक्ति का स्वरूप-विवेक है तथा इनमे भक्ति शास्त्र की बड़ी सुन्दर व्याख्या है । भक्ति-रसामृत-सिंधु तथा उज्ज्वल नीलमणि, इन दोनो ग्रन्थो ने भक्ति के भाव और उसके रस का बहुत ही विशद वर्णन है । काव्य-रस शास्त्र की परिपाटी पर भक्ति रस के भावो का सविस्तार वर्णन करनेवाले, कदाचित् ये ही दो प्रथम ग्रन्थ हैं । भक्ति-भाव को प्रकट करनेवाले अनेक भाषा-कवियों ने अपने भाव रस-शास्त्र मे बताई हुई प्रेम की विविध परिस्थितियों के अन्तर्गत ही व्यक्त किया है । सूरदास और परमानन्ददास ने भी, गोपीकृष्ण के संयोग-वियोगात्मक प्रेम का वर्णन रस-शास्त्र में कही हुई प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं के रूप मे ही किया है । नन्ददास ने तो नायक-नायिका-भेद पर 'रसमञ्जरी' नामक एक ग्रन्थ ही लिखा है । उन्होंने इस ग्रन्थ के आरम्भ में यह भी कहा है,—"रति के भेदों को जाने बिना प्रेम-रस का परिचय और उसके अभ्यास में सिद्धि नहीं मिल सकती ।" इससे लेखक का विचार है कि श्री रूपगोस्वामीजी के भक्ति-रस-शास्त्र की बातों का यदि अष्ट भक्तों ने श्रवण किया हो और उनसे किसी अंश मे प्रभावित भी हुए हों तो कोई आश्चर्य की बात नही है ।

चैतन्य-सम्प्रदायी उक्त ग्रन्थों का विशेष प्रचार सन् १६०० ई० (संवत् १६५७ वि०) के लगभग, श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी के शिष्य, श्री श्रीनिवासाचार्य द्वारा, जिन्होंने श्री जीव गोस्वामीजी से भक्तिशास्त्र का अध्ययन किया था, हुआ । उसी समय चैतन्य सम्प्रदाय को

एक संगठित रूप देकर उसके दार्शनिक सिद्धान्तो का भी पूर्ण स्पष्टीकरण किया गया। इसके बाद चैतन्य-सम्प्रदायी, सस्कृत तथा बँगला के कई लेखक हुये। १८ वी शताब्दी ई० के आरम्भ मे एक बलदेव विद्याभूषण[1] नामक विद्वान् भक्त ने पहले-पहल ब्रह्मसूत्रो पर अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से 'गोविन्द भाष्य' लिखा और तभी से चैतन्य-सम्प्रदाय वेदान्त-दर्शन-शास्त्र के भिन्न-भिन्न वादो को लेकर चलनेवाले सम्प्रदायो मे गिना गया और एक स्वतंत्र सिद्धान्तवादी मत बना।

चैतन्य सम्प्रदाय के इस इतिहास से तथा उसके दार्शनिक सिद्धान्तो के अवलोकन से पता चलता है कि अष्टछाप के काव्य पर चैतन्य-सम्प्रदायी दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रभाव नही पडा। भक्ति के साधन पक्ष मे श्री वल्लभाचार्यजी के सम्प्रदाय पर श्रीरूप गोस्वामी द्वारा विवेचित भक्ति पद्धति का किसी हद मे प्रभाव, श्री विट्ठलनाथजी के समय मे, अवश्य हुआ। श्री वल्लभाचार्यजी ने नवधा भक्ति के 'कीर्तन'-साधन मे, नाम और लीला-कीर्तन के साथ वाद्य-पूर्ण सङ्गीत का भी समावेश किया था। इस कीर्तन की आयोजना को श्री विट्ठलनाथजी ने और अधिक बढाया। उधर, श्री चैतन्य महाप्रभुने लीला-कीर्तन के साथ नामसङ्कीर्तन का विशेष प्रचार किया और उन्होंने भी कीर्तन के साथ गान और वाद्यका प्रयोग रक्खा। सम्भव है, श्रीवल्लभाचार्यजीने अथवा गोस्वामी विट्ठलनाथजीने गान और वाद्यकी महत्ता, श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा से ली हो। चैतन्यसम्प्रदाय के दार्शनिक तथा भक्ति-सम्बन्धी सिद्धान्तो के देखने से पता चलता है कि उसमे भक्ति के चारो भावो को लेते हुये भी मधुर-भाव पर विशेष बल दिया गया है। और वल्लभ-सम्प्रदाय मे चारो भावो को मानते हुये तथा मधुरभाव को सर्वोत्कृष्ट भाव बताते हुये भी, बाल-भाव पर अधिक जोर दिया गया है। इसलिए यह कहना कि अमुक सम्प्रदाय का अमुक पर निश्चयपूर्वक ऐसा प्रभाव पड़ा कठिन है। वस्तुतः भक्ति का पूर्ण विकसित रूप तो जैसा कि पीछे बताया गया है, श्रीमद्भागवत के आधार पर चार पूर्व आचार्यो के समय मे ही स्थापित हो गया था। उसी को लेकर श्रीवल्लभाचार्य, श्री चैतन्य महाप्रभु आदि के सम्प्रदाय १५वी शताब्दी मे चले थे।

तात्त्विक सिद्धात की दृष्टि से चैतन्य-सम्प्रदाय अचिन्त्य-भेदाभेदवादी सम्प्रदाय कहलाता है। इस सम्प्रदाय के मतानुसार परम तत्त्व एक है। वह तत्त्व सच्चिदानन्द-स्वरूप

मत

अनन्त-शक्ति से सम्पन्न तथा अनादि है। जैसे रूप-रसादि गुणो का आश्रय एक पदार्थ दुग्ध, पृथक्-पृथक् इन्द्रियो द्वारा पृथक्-पृथक् रूप मे दिखाई देता है उसी प्रकार एक ही परमतत्त्व, उपासना-भेद से, अलग अलग

१—कल्चरल हेरिटेज आफ इन्डिया सीरीज़, भाग २, पृ० १६१।

प्रकार से अनुभूत होता है।[1] तत्त्ववेत्ता एक अद्वितीय तत्त्व को ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कह कर निर्दिष्ट करते हैं।[2] परम तत्त्व की अनन्त शक्ति अचिन्त्य है। इसलिए वह एकत्व,पृथक्त्व, अंशत्व तथा अंशित्व धारण करने में समर्थ है।[3] अचिन्त्य शक्ति का आश्रय यह परब्रह्म परस्पर विरुद्ध शक्ति का आश्रय भी है। यह परम तत्त्व स्वय श्रीकृष्ण ही हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की अनन्त शक्ति जब प्रकट है तब उन्हे भगवान् कहते हैं, जब उनकी अनन्त शक्ति अप्रकट है, उन्ही मे प्रच्छन्न रहती है तब उन्हे ब्रह्म कहते हैं और जब उनकी यह अनन्त शक्ति प्रकट और कुछ अप्रकट होती है तब उन्हे परमात्मा कहते है। ब्रह्म विशुद्ध ज्ञान का विषय है, ज्ञान-मार्गीय ब्रह्म में सायुज्य-मुक्ति-लाभ करते है। परमात्मा, योग का लक्ष्य है और भगवान् का भक्ति से साक्षात्कार होता है। श्रीरूप गोस्वामी जी ने 'लघुभागवतामृत' ग्रन्थ मे कहा है,—"श्रीकृष्ण में अनन्त गुण हैं, वे असङ्ख्य अप्राकृत गुणशाली और अपरिमित शक्ति से विशिष्ट हैं और पूर्णानन्द-घन उनका विग्रह है। जो ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष और अमूर्त कहा गया है वह सूर्य-तुल्य श्रीकृष्ण के प्रकाश-तुल्य है।[4]"

परब्रह्म के तीन स्वरूप है—स्वयंरूप, तदेकात्मरूप तथा आवेशरूप।[5] परब्रह्म स्वयंरूप श्री कृष्ण हैं। वे सर्वकारणों के कारण हैं, उनका रूप किसी की अपेक्षा करके प्रकट नहीं होता। वे स्वतः सिद्ध हैं। उनका स्वयंरूप भी पूर्ण, पूर्णतर तथा पूर्णतम रूप से तीन प्रकार का है। श्रीकृष्ण का द्वारका-रूप पूर्ण हैं, मथुरा रूप पूर्णतर है और वृन्दावन, व्रजलीला रूप पूर्णतम है।

तदेकात्मरूप—परब्रह्म श्रीकृष्ण का तदेकात्म रूप दो प्रकार से प्रकाशित होता है— विलास रूप तथा स्वांश रूप। उनका जो रूप लीला-विशेष के लिये व्यक्त होता है वह विलास रूप है जैसे भगवान् का विलास रूप वैकुण्ठवासी नारायण हैं तथा नारायण का विलास रूप वासुदेव रूप है। अपने स्वयंरूप से जब भगवान् अपनी थोडी शक्ति का प्रकाश करते हैं तब उनका वह अंश शक्ति रूप स्वांश होता है, जैसे भगवान् के भिन्न-भिन्न मत्स्यादि लीलावतार।

१—तत्रात् श्री भगवत्येव स्वरूपं भूरि विद्यते।
उपासनानुसारेण भाति तत्तदुपासके॥
यथा रूपरसादीनां गुणानामाश्रयः सदा।
क्षीरादिरेक एवार्थो जायते बहुधेन्द्रियैः॥
—लघुभागवतामृत, पृ० १५९।

२—वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
—ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते। ९४। लघु० भा०, पृ०१५८।

३—लघु भागवतामृत, श्लोक ५०, पृष्ठ १२४, १२५।

४—लघुभागवतामृत, श्लोक ९८-९९ पृष्ठ १६३. १६४।

५—लघुभागवतामृत, श्लोक ११, पृष्ठ ९, वें० प्रे०

आवेशरूप—जब भगवान ज्ञान, शक्ति की कला के विभाग से महान् जीवो में प्रकट होते हैं तब वे महान् जीव भगवान् के आवेशरूप होते हैं जैसे, नारद, शेष, सनकादि ऋषि भगवान् के आवेश रूप हैं।

भगवान के तीन प्रकार के अवतार हैं—पुरुषावतार, गुणावतार तथा लीलावतार।[१] परब्रह्म श्रीकृष्ण का आदि अवतार पुरुष है जिसे वासुदेव भी कहते है। आदि पुरुषावतार वासुदेव के तीन प्रकार के भेद हैं—प्रथम पुरुष सङ्कर्षण, द्वितीय पुरुष प्रद्युम्न तथा तृतीय पुरुष अनिरुद्ध। वासुदेव माया-प्रकृति के अधिष्ठाता हैं। ये प्रकृति के वीक्षण-कर्ता हैं। जब वासुदेव वीक्षण से प्रकृति मे क्षोभ उत्पन्न करते हैं तब वे अपने सङ्कर्षण रूप से गण क्षोभ द्वारा उसमे महत्त्व का प्रादुर्भाव करते हैं। उसके बाद अहङ्कार, मन तथा इन्द्रियादि और पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के रच जाने पर जो जीव समष्टि के अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करता है वह द्वितीय पुरुष प्रद्युम्न है। प्रत्येक देह के पृथक् पृथक् रूप से अन्तर्यामी पुरुष को तृतीय पुरुष कहते हैं। इसका नाम अनिरुद्ध है। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध, चतुर्व्यूह का स्थान नारायण के धाम—वैकुण्ठ राज्य में है।

गुणावतार[२]—द्वितीय पुरुष से विश्व के पालन, सृष्टि तथा संहार के लिये प्रकृति के तीन गुण सत, रज, तम के अधिष्ठाता तीन गुणावतार विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र उत्पन्न होते हैं। ये श्रीकृष्ण के स्वांश हैं।

लीलावतार—सनकादि, नारद, आदि भगवान् के आवेश रूप अवतार तथा वाराह, मत्स्य, से लेकर रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि तक उनके स्वांशरूप भगवान् के लीला-अवतार हैं।

जीव　　　पीछे कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त शक्ति-सम्पन्न हैं। उनकी शक्तियाँ तीन प्रकार की हैं—

अन्तरङ्गा शक्ति—यह उनकी स्वरूप शक्ति है।

वहिरङ्गा शक्ति—यह माया या जड़शक्ति है।

१—लघुभागवतामृत, श्लोक ३, पृष्ठ १७।

२—लघुभागवतामृत, पृष्ठ २४।

तटस्थ शक्ति—यह जीव शक्ति है।

भगवान् की अन्तरङ्गा स्वरूप शक्ति सत्, चित् तथा आनन्द, तीन रूपिणी है। जीव, इन तीनों शक्तियों से प्रकटित नही है। वल्लभसम्प्रदाय में जीव भगवान् की चित्-शक्ति के ही अंश कहे गये हैं। भगवान् की स्वरूपसत्-शक्ति को चैतन्य सम्प्रदाय में 'सन्धिनी' शक्ति भी कहते हैं। इस शक्ति से भगवान् स्वयं स्थित है और इसी के प्रसार से सब को स्थित करते हैं। स्वरूप चित्शक्ति से जिसे 'संवित्शक्ति' भी कहते हैं, भगवान् स्वयं प्रकाशवान् हैं तथा समग्र जगत् को प्रकाशित करते है। स्वरूप आनन्दशक्ति से, जिसे आह्लादिनी शक्ति भी कहते हैं, भगवान् स्वयं आनन्दमग्न रहते हैं और अन्यत्र भी आनन्द-वितरण करते हैं। ये तीनों स्वरूप-शक्तियाँ भगवान् से प्रसूत होकर इस प्रकार विस्तरित हैं जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशित होते हुए अपनी किरणों के प्रसार से अन्यत्र प्रकाश फैलाता है। ये भगवान् के स्वरूप से अभिन्न हैं; इसलिये उन्हे स्वरूपशक्ति कहा जाता है। इस प्रकार भगवान् की सच्चिदानन्दमयी स्वरूपशक्ति से इतर भगवान् की तटस्थशक्ति से जीव की उत्पत्ति है। जैसे सूर्य से किरणें निकली हैं उसी प्रकार भगवान् की तटस्थशक्ति से जीव भी प्रसूत है। जीव अणु है और भगवान् की नित्यशक्ति से प्रसूत होने के कारण नित्य हैं। जीव नित्य भगवान् के स्वरूप में लीन भी हो सकता है।

जीव भगवान् की अन्तरङ्गा तथा बहिरङ्गा दोनों शक्तियों के बीच की तटस्थशक्ति से सम्बन्ध रखता है। इसलिये इसे दर्पण-तुल्य कहा गया है। वह न वहिरङ्गाशक्तिरूपा माया रूप है और न भगवत्स्वरूप है। वह मायाशक्ति तथा स्वरूपशक्ति के वीच में है; कभी माया को छूता है तो कभी भगवान् के स्वरूप के प्रकाश को। जीव आदि काल से माया के उन्मुख हैं, इसलिये भगवान् की स्वरूपशक्ति से अलग विमुख हैं, माया राज्य में आकर जीव अनेक संसृति में भ्रमता है। यदि वह स्वरूपशक्ति की ओर मुख कर ले, क्योकि स्वभावतः वह माया-राज्य का निवासी नही है, तो वह दुखः से मुक्ति पाकर आनन्द का भागी हो जाय। माया और जीव का सम्बन्ध अनादि है, परन्तु सान्त भी है। भगवत्-स्वरूपशक्ति और जीव का सम्बन्ध सादि है परन्तु अनन्त है।

भगवान् की वहिरङ्गा माया के, जिससे जड-प्रकृति प्रसूत है, दो रूप है—द्रव्य-माया तथा गुणमाया। द्रव्यमाया, जगत् का उपादान कारण है और गुणमाया, जो भगवान् के सङ्कल्प अथवा इच्छा रूप मे प्रकट होती है, जगत् का निमित्त कारण है

जगत्

भगवान् की स्वरूपशक्ति प्रकाश-तुल्य है. और मायाशक्ति छाया-तुल्य है। पीछे कहा गया है कि माया या प्रकृति के साथ आदि पुरुष के संसर्ग से सृष्टि की उत्पत्ति और प्रसार होता है।

परब्रह्म श्रीकृष्ण अपने तीन स्वयंरूपों से तीन[1] धामो मे सर्वदा रहते हैं। पूर्ण रूप से द्वारिका धाम नें, पूर्णतर रूप से मथुरा मे तथा पूर्णतम रूप से गोकुल, गोलोक अथवा वृन्दावन धाम मे। मथुरा-द्वारिका मे भगवान् श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य रूप है तथा गोलोक अथवा व्रज-वृन्दावन मे उनका मधुर-रस रूप है। गोलोक की अपेक्षा गोकुल में उनका सर्वाधिक माधुर्य रूप है। गोलोक गोकुल की ही विभूति है।[2] इस प्रकार पूर्णतम भगवान् का धाम गोकुल, गोलोक है, नारायण का निवास विरजा से परिवेष्टित वैकुण्ठ नगर मे है तथा वासुदेव तथा अवतार आदि का स्थान वैकुण्ठ राज्य मे है।

भगवान् के धाम

ब्रह्म स्वरूप जीव ज्ञान द्वारा जड माया से मुक्त होकर ब्रह्म सायुज्य कैवल्य मुक्ति पाता है। और भगवान् की भक्ति द्वारा जीव स्वरूपानुभव से वैकुण्ठ और भगवान् के गोलोक धाम में जाता है। परन्तु जीव को भक्ति, भगवन् की कृपा से ही मिलती है। भक्ति दो प्रकार की है—वैधी तथा रागानुगा। वैधीभक्ति भगवान् के ऐश्वर्य का मार्ग है। इस भक्ति के अनुगामी जीव भगवान् के मथुरा द्वारका धाम मे प्रवेश पाते है और राग-भक्ति का मार्ग माधुर्य मार्ग है, इसके अनुकरण से जीव भगवान् के मधुर रूप के पास गोलोक धाम मे जाते हैं। भक्त जीव का स्थूल शरीर उसकी मृत्यु पर छूटता है। फिर वह सूर्य मण्डल मे जाता है, वहाँ उसका सूक्ष्म शरीर रह जाता है। तव वह विरजा नदी मे निमग्न होता है, वहाँ उसका कारण-शरीर छूटता है। इसके वाद वह दिव्य स्वरूप धारण कर वैकुण्ठ नगर मे पहुँचता है वहाँ से भगवान् उसे अपने निज धाम मे लेते हैं।

मोक्ष तथा मोक्ष मार्ग

चैतन्य-सम्प्रदायी भक्ति-ग्रन्थ 'भक्ति-रसामृतसिन्धु' मे वैधी तथा रागानुगा भक्ति के शास्त्र पर वडे विस्तार से लिखा गया है। भगवान् श्रीकृष्ण की भावमयी गोलोक-लीला चार भावो से सम्बन्ध रखती हैं—दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। इन्ही चार भावो से कृष्ण चैतन्य सम्प्रदाय मे प्रेम-भक्ति होती है। इन भावो मे सवसे अधिक उत्कर्ष माधुर्य-भाव का है क्यो कि इस प्रेम के अन्तर्गत अन्य प्रेम-भावों का भी समावेश हो जाता है।

१—इति धामत्रये कृष्णो विहरत्येव सर्व्वदा।
तत्रापि गोकुले तस्य माधुरी सर्वतोऽधिका।
—लघुभागवतामृत, पृष्ठ २५४।

२—धामास्य द्विविधं प्रोक्तं माथुरं द्वार्व्वती तथा।
माथुरं च द्विधा प्राहुर्गोकुलं पुरमेव च॥
यत्तु गोलोक नाम स्यात्तच्च गोकुलवैभवम्।
—लघु भागवतामृत, पृ० २४६।

भगवान् के गोलोक[1] धाम की लीला नित्य तथा अप्राकृत है । वहाँ के गोप, गोपी गोवत्स आदि भी आप्रकृत हैं । प्रेम और आनन्द की शक्ति-स्वरूपा गोपियो मे राधा 'महाभाव' स्वरूपा हैं । मधुर भाव की रति तीन प्रकार की होती है—साधारणी रति, समञ्जसा रति तथा समर्था रति । साधारण रति का दृष्टान्त कुब्जा है, इस भक्ति से भगवान् का मथुरा-धाम का रूप मिलता हैं । ऐसे भक्त भगवान् से प्रेम और उनकी सेवा अपने आनन्द-लाभ के लिये करते हैं । यह काम रूपा भक्ति हैं । दूसरी समञ्जसा रति का उदाहरण रुक्मिणी, जामवन्ती आदि महिषी वर्ग है । इस भाव को धारण करनेवाले भक्त भगवान् से रति अपना कर्तव्य अथवा जीव का धर्म समझ कर करते हैं । ऐसे भक्तों को भगवान् का द्वारका रूप मिलता है । तीसरी समर्था रति का दृष्टान्त व्रजगोपी हैं जिस भाव को धारण कर भक्त भगवान् से प्रेम और उनकी सेवा भगवान् से आनन्द के लिये करते है । इसमे शास्त्र-मर्यादा का ध्यान नहीं है । भगवान् की सेवा के लिये यदि शास्त्र-मर्यादा का भी उल्लङ्घन करना पडे तो उस उल्लङ्घन के करने मे इस प्रकार के मधुर भाव को रखनेवाला भक्त विना सङ्कोच के करता है । यही भाव अपने उत्कर्ष पर पहुँच कर महाभाव अथवा 'राधा' भाव मे परिणत हो जाता है ।

अन्य भक्ति-सम्प्रदायो के समान चैतन्य सम्प्रदाय मे भी सत्सङ्ग, नाम तथा लीला कीर्तन, व्रजवृन्दावन-वास, कृष्ण-मूर्त्ति की सेवा-पूजा आदि भक्त के साधनो पर बल दिया गया है ।

महात्मा चैतन्य ने श्रीवल्लभाचार्य जी की तरह प्रत्येक जाति के लोगों को भगवद्-भक्ति का समान अधिकार दिया था । समस्त जाति के लोगो को, यहाँ तक कि मुसलमानो को भी दोनो आचार्यो ने दीक्षा दी थी ।

चैतन्य महाप्रभु जी की प्रशंसा, भक्त नाभादास ने अपने ग्रन्थ 'भक्तमाल' मे निम्न-लिखित शब्दो मे की है—

> गौड़ देश पाखंड मेटि कियो भजन परायन ।
> करुणा सिन्धु कृतज्ञ भये अगनित गति दायन ।
> दशधा रस आक्रान्ति महत जन चरन उपासे ।
> नाम लेत निहपाप दुरित तिहि नर के नासे ।
> अवतार विदित पूरब मही' उभै महत देही धरी ।
> श्रीनित्यानन्द कृष्ण चैतन्य की भक्ति दसो दिसि बिस्तरी[2] ?

१—लघु भागवतामृत, श्लोक १५२, पृष्ठ २२६ ।

२—भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद तिलक, रूपकला, छन्द ७२, पृ० ५५९ ।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय

अष्टछाप कवियो के समकालीन व्रज मे कृष्ण-पूजा का एक सम्प्रदाय राधावल्लभीय भी प्रचार पा रहा था। इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री स्वामी हितहरिवंश जी थे। राधावल्लभ पूजा-विधि चलाने से पहले श्री हित जी का नाम हरिवंश था। ये सहारनपुर जिले के देववन गाँव के रहने वाले गौड ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम श्री व्यास था। इनके वंशज आजकल, देवबन और वृन्दावन दोनों स्थानो पर रहते है। इनका जन्म[1] संवत १५५९ वि० मे हुआ था। ये पहले माध्व सम्प्रदायी थे, वाद को ये निम्बार्क स्वामी की श्रीकृष्ण-भक्ति-पद्धति का अनुसरण करने लगे। एक वार जब वे वृन्दावन को आ रहे थे तो एक ब्राह्मण ने इनको अपनी दो कन्याएँ और एक कृष्ण मूर्ति दी। इन्होंने वृन्दावन मे आकर इस राधावल्लभ जी की मूर्ति की स्थापना की और एक मन्दिर वनवाया। वृन्दावन मे रह कर फिर ये इसी मन्दिर मे अपने आराध्य देव राधावल्लभ की भक्ति और पूजा करने लगे। संवत् १५९१ वि० मे इस मन्दिर का प्रथम 'पट-महोत्सव' हुआ और कुछ समय वाद इन्होंने अपनी चलाई हुई कृष्ण-भक्ति-पद्धति का प्रचार करना आरम्भ किया। इन्होंने कर्म और ज्ञान के साधनो का खण्डन कर प्रेम-भक्तिमार्ग का प्रचार किया। और राधा और कृष्ण दोनो की युगल उपासना का

१—मिश्रबन्धु विनोद संवत् १९९४ संस्करण के पृ० २४० पर इनका जन्म संवत् १५३० वि० दिया हुआ है। हितहरिवंश सम्प्रदायी एक भगवत्‌मुदित भक्त द्वारा लिखा हुआ 'हितहरिवंश चरित्र' नामक ग्रन्थ लेखक ने पं० मयाशङ्कर याज्ञिक-संग्रहालय में देखा है। यह ग्रन्थ संवत् १८१७ वि० की प्रतिलिपि है। इसमें हितहरिवंश जी का जन्म संवत् तथा सम्प्रदाय के 'पट-महोत्सव' का संवत् जब इन्होंने अपनी पूजा-विधि मन्दिर में आरम्भ की थी, दिये हुये है। इसमें हित जी तथा उनके शिष्यों का भी परिचय है। लेखक ने उक्त संवत् इसी ग्रन्थ के आधार से दिया है।

जन्म संवत् इस प्रकार दिया हुआ है।

पन्द्रह सौ उनसठ संवतसर, वैसाखी सुदि ग्यार सोमवार।
तहँ प्रगटे हरिवंश हित, रसिक मुकुट मणिमाल।
कर्म ज्ञान खंडन करन, प्रेम भक्ति प्रतिपाल।

मन्दिर-निर्माण के बाद पट-महोत्सव—

पंद्रह सै इक्यानबे सुहायो, कातिक सुदि तेरस सुख छायो।
पट महोत्सव तादिन कियो, याचक गुनियन बहु धन दियो।

इस ग्रन्थ से पता चलता है कि हितहरिवंश जी ने युगल उपासना को ही ग्रहण किया था और इसी का उन्होने प्रचार किया था।

नोट—'मिश्रबन्धु विनोद' पृ०४५५ पर भगवत् मुदित द्वारा कृत 'हितचरित्र' का उल्लेख है।

उपदेश दिया। राधाकृष्ण की प्रेम और आनन्द लीला के ध्यान और मनन मे तथा युगल की पूजा मे परमानन्द प्राप्ति का साधन इन्होंने बताया। कृष्ण से राधा की पूजा और भक्ति को इन्होंने अधिक महत्त्वशालिनी और शीघ्र फलदायिनी माना था। इसी भक्ति-पद्धति का अनुकरण आज तक इनके अनुयायी करते है।

जैसा कि पीछे कहा गया है, यह सम्प्रदाय केवल एक साधन मार्ग था, तात्त्विक सिद्धांत की दृष्टि से वेदान्त के भिन्न-भिन्न वादो के अन्तर्गत आनेवाला कोई 'वाद' नही था। इसके अनुयायियों ने भी बहुत काल तक इस सम्प्रदाय के तात्त्विक सिद्धातो की ओर ध्यान नही दिया। श्री हितहरिवंश जी के लगभग समकालीन भक्त नाभादास जी ने 'भक्तमाल' में इनकी कृष्णोपासना विधि का एक छन्द मे इस प्रकार वर्णन किया है—

श्री हरिवश गुसाईं भजन की रीति सकृते कोउ जानि है।
श्री राधाचरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी।
कुज केलि दम्पति तहाँ की करत पवासी।
सर्वसु महा प्रसाद प्रसिद्धता के अधिकारी।
विधि निषेध नहि दास अनन्य उत्कट व्रत धारी।
श्री व्यास सुवन पथ अनुसरै सोई भलै पहिचानि है।
श्री हरिवश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानि है।[1]

इस छन्द मे नाभादास जी ने हरिवंश गुसाईं की राधावल्लभीय भजन-पद्धति को समझने मे दुरूह बताया है और कहा है कि जो इनके शिष्य होकर मार्ग के अनुगामी बन जायँ वे भले ही जान ले। राधाकृष्ण, दम्पति की शृङ्गारिक केलि मे आनन्द लेते हुए और विधि निषेध का ध्यान न रखते हुए अपनी मानसिक वृत्ति को लौकिक वासनाओ से बचाए रखना, वास्तव मे बड़ा कठिन योग है। साधारण लोगो को तो 'दम्पति कुञ्जकेलि' के मनन से वासना के कूप से उभरने के बजाय उसमे और डूबने की सम्भावना रहती है। इसीसे नाभादास जी ने इसे समझने मे कठिन कहा है। इस प्रकार की शृङ्गारमयी भक्ति कृष्ण-पूजा के सभी सम्प्रदायो ने अपनाई है। जिन लोगो की मनोवृत्ति लौकिक रति की वासना मे इतनी लिप्त हो गई हैं, जिनके मन मे अन्य दास्य आदि भाव बैठने की गुञ्जाइश ही नही है, उनके लिए, सम्भव है, यह उपदेश लाभकर हो कि वे अपनी लौकिक वासनाओ को अपने कृत्यो म देखने. के बजाय, कृष्ण और राधा की शृङ्गार लीलाओ मे देखे। इस अभ्यास से धीरे-धीरे वे वासनाएँ लुप्त हो जायँगी और 'परमानन्द' प्राप्त हो जायगा। चैतन्य और वल्लभ सम्प्रदायो मे इस प्रकार की भक्ति के साथ, मधुर भक्ति का साधन कान्ता अथवा परकीय भाव से भी माना गया है। हितहरिवंश जी के यहाँ केवल राधाकृष्ण-केलि की खवासी

१—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद तिलक, रूपकला, पाठान्तर 'सुकृत' छन्द नं० ९० पृष्ठ ६०५।

अथवा परिचर्या करने का ही आदेश था। इस भक्ति-पद्धति को प्रियादास जी ने कुछ अधिक स्पष्ट किया है—

श्री हित जू की रति कोऊ लाषनि में एक जाने।
राधाई प्रधान माने पाछे कृष्ण ध्याइये।
निपट विकट भाव, होत न सुभाव ऐसो
उनही की कृपा दृष्टि नेकु क्योहूँ पाइये।
विधि और निषेध छेद डारै, प्रान प्यारे हिये
जिये निजदास निस दिन वहै गाइये।
सुषद चरित्र सब रसिक विचित्र नीके
जानत प्रसिद्ध कहा कहि कै सुनाइये।[1]

इस सम्प्रदाय के अनुयायी भक्तो ने प्रेम-शृङ्गार की केवल संयोग लीलाओ का ही अवलम्बन लिया है, वियोग-भावना इस सम्प्रदाय मे नही है। इस राधाकृष्ण की कुञ्ज-लीला के मनन के आनन्द को इस सम्प्रदाय मे 'परम रस माधुरी भाव' कहा गया है। इस सम्प्रदाय के भक्त कवियो ने इस माधुरी भाव का चित्रण व्रजभाषा पदो मे बहुत किया है। अष्टछाप भक्तो ने भी इस प्रकार का वर्णन किया है। सम्भव है, हित जी के शृङ्गारिक पदो का प्रभाव अष्टछाप पर भी पडा हो। सिद्धान्त की दृष्टि से वैसे वल्लभसम्प्रदाय मे प्रेम-शृङ्गार के सभी भावो की भक्ति श्रीवल्लभाचार्य जी के उत्तर जीवन काल तथा श्रीविट्ठल नाथ जी के काल मे ही मान्य हो गई थी।

हित जी के लिखे हुए दो ग्रन्थ प्रसिद्ध है— एक 'राधा सुधानिधि' जो संस्कृत मे है और दूसरा 'चौरासी पद' अथवा 'हितचौरासी' जो व्रजभाषा मे है। इनमे सम्प्रदाय के सिद्धांतो का कोई शास्त्रीय विवेचन नही है। इनमें राधाकृष्ण के विहार और प्रेम-लीलाओ का शृङ्गारिक वर्णन तथा उस भाव की अनुभूति का आनन्द वर्णित है। इस वर्णन में हित जी की युगल उपासना तथा राधा-उपासना का भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। हितचौरासी पदो मे से कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जाते है—

आजु प्रभात लता-मदिर मे, सुष बरषत अति जुगलवर।
गौर श्याम अभिराम रग रग भरे, लटकि लटकि पग धरत अवनि पर।
कुच कुम कुम रजित मालावलि, सुरत नाथ श्रीश्याम धामवर।
प्रिया प्रेम अक अलंकृत चित्रित, चतुर सिरोमणि निजकर।

1—भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ६०५।

दम्पति अति अनुराग मुदित कल, गान करत मन हरत परस्पर।
जै श्री हित हरिवंश प्रसंस परायन, गाइन अलि सुर देत मधुरतर।

तथा—

राग विभास

जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावे,
भावै मोहि जोई सोई सोई करे प्यारे।
मोको तो भावती ठौर प्यारे के नैनन में,
प्यारो भयो चाहै मेरे नैननि के तारे।
मेरे तो तन मन प्राण हूँ में प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे।
जै श्रीहित हिरवंश हस हंसिनी साँवल गौर,
कहौ कौन करे जल तरंगनि न्यारे।

धार्मिक भक्ति-भावना के अतिरिक्त हित जी के पदो में काव्य-कला का भी समावेश है। हित जी के परम प्रिय शिष्य व्यासदेव (हरिराम व्यास) जी थे जो ओरछा के रहनेवाले थे। इनकी समाधि अब तक वृन्दावन मे मौजूद है। ब्रजभाषा मे व्यास जी के पद भी बहुत प्रसिद्ध है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के एक और परम भक्त और कवि श्री ध्रुवदास जी हुये हैं जिन्होंने ४२ ग्रन्थो की रचना की थी। इन्होंने अपने ग्रन्थो द्वारा हित सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का, स्पष्टीकरण किया था। इनके कुछ ग्रन्थो के नाम नीचे दिये जाते हैं—

जीव दशा, वेदज्ञान, मनशिक्षा, वृन्दावन सत्, भक्त नामावली, वृहद्वामन पुराण, ख्याल हुलास, सिद्धान्त विचार, प्रीतितोपनी, आनन्दाष्टक, भजनाष्टक, भजन कुण्डलिया, भजन सत्, श्रृङ्गार सत्, मन श्रृङ्गार, हित श्रृङ्गार, सभा मण्डल, रस मुक्तावलि, रस हीरावलि, रस रत्नावलि, प्रेमावलि, श्री प्रिया जी की नामावलि, रहस्यमञ्जरी, सुखमञ्जरी, रतिमञ्जरी, नेहमञ्जरी, मन विहार, रास बिहार, रङ्ग हुलास, रङ्ग विनोद, आनन्द दशा, रहस्य लता, आनन्द लता, अनुराग लता, प्रेमलता, रसआनन्द, जुगल ध्यान, नृत्य विलास, दानलीला, मानलीला, ब्रजलीला।

इस सम्प्रदाय के अन्य लेखको द्वारा लिखित ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है जैसे सेवकवाणी, वल्लभ रसिक की वाणी, दामोदरदास कृत गुरु प्रताप, तथा हरिनाम महिमा। श्री हितहरिवश सम्प्रदाय के कृष्णभक्त कवियो ने भी प्रेमभक्ति और काव्य, दोनो के भावो की रसधारा प्रवाहित की है, परन्तु इस सम्प्रदाय के कवियो की रचनाओ मे भाव की वह प्रभावात्मकता नही है जो अष्टछाप-काव्य मे है।

स्वामी हरिदास जी का हरिदासी अथवा सखी सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास जी भी अष्टछाप कवियों के समकालीन भक्त और धर्म-प्रचारक थे। यह सम्प्रदाय भी भक्ति का एक साधन-मार्ग है, और अपने आरम्भिक काल मे वेदान्त के किसी वाद अथवा किसी अन्य दार्शनिक सिद्धान्त का प्रचारक मत नही था। स्वामी हरिदास जी ने राधाकृष्ण की युगल उपासना का केवल सखी-भाव से प्रचार किया। स्वामी हरिदास जी के ही समय का बना हुआ, इस सम्प्रदाय का बिहारी जी का मन्दिर वृन्दावन में बहुत प्रसिद्ध है। हरिदास जी के समकालीन भक्त नाभादास जी, भक्तमाल मे, इनकी, और इनकी उपासना-पद्धति का वर्णन करते हुये कहते हैं—

"स्वामी हरिदास जी 'रसिक' नाम की छाप से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने आसधीरजी के नाम को प्रकाशित किया। आपकी प्रेम-भक्ति का नियम राधाकृष्ण युगल-पूजा का था। ये कुञ्ज-विहारी कृष्ण का नाम सदैव जपा करते थे। राधाकृष्ण के आनन्द-विहार का अवलोकन सदा सखी-भाव से किया करते थे और इसी भाव से युगल-केलि के रस को लूटा करते थे। गान-विद्या मे ये गन्धर्व थे और अपने गान से, सखी की तरह सेवा करते हुए श्याम और श्यामा को तुष्ट किया करते थे। भगवान् का उत्तम भोग लगाते थे और उसे बन्दर और मोरो को खिलाया करते थे। ये इतने प्रसिद्ध और उच्चकोटि के महात्मा थे कि दर्शनो के लिए राजा लोग भी आपके द्वार पर खडे रहते थे।"[1] स्वामी हरिदास जी के विषय की कुछ चारित्रिक घटनाओं का वर्णन भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी ने भी एक छन्द में किया है। अकबर के दरबार का प्रसिद्ध गवैया, तानसेन इन्ही स्वामी हरिदास जी का शिष्य था और इन्ही से उसने गान-विद्या सीखी थी। अकबर भी इनकी भक्ति, इनके सङ्गीत-शास्त्र तथा कला के गुणों की प्रशंसा सुनकर इनसे मिलने गया था।

प्रोफ़ेसर विलसन[2] ने अपने ग्रन्थ 'ऐसेज़ ओन द रिलिजन्स आफ़ द हिंदूज', भाग १,

---

१—आसधीर उद्योतकर, रसिक छाप हरिदास की।
जुगल नाम सौं नेम जपत नित कुंज बिहारी।
अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी।
गान कला गन्धर्व स्याम स्यामा कों तोषै।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषै।
नृपति द्वार ठाढ़े रहैं दर्शन आसा जास की।
आस धीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की।
—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद, रूपकला, पृ० ६०७॥

2. Essays on the religions of the Hindus Vol I. by H. H. Wilson, pp. 159

में एक हरिदास को चैतन्य महाप्रभु का शिष्य वताया है। हरिदासी सम्प्रदाय के गोस्वामी लोग चैतन्य महाप्रभु को श्रीहरिदास जी का गुरु अथवा अपने सम्प्रदाय से सम्बन्धित गुरु नही मानते। और न इस सम्द्प्राय की लिखित गुरु-परम्परा में चैतन्य महाप्रभु का कही नाम आता है। इसलिये विल्सन द्वारा कथित हरिदास कोई बंगाली भक्त, स्वामी हरिदास जी से भिन्न व्यक्ति रहे होंगे। हरिदासी सम्प्रदाय के एक 'सहचरि शरण', नाम के परम भक्त विक्रम की १९वी शताब्दी में हो गये हैं। उन्होने व्रजभाषा में पदों के अतिरिक्त दो स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं, एक 'ललित प्रकाश' और दूसरा 'सरसमञ्जावलि।' ललित प्रकाश' में हरिदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्त, स्वामी हरिदास जी का चरित्र इस सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा दी हुई है। इस गुरु-परम्परा की उन्होंने श्रीआसधीर जी तथा उनके शिष्य स्वामी हरिदास जी से आरम्भ कर श्रीललितकिशोरी जी तक दिया है। इस प्रकरण का नाम 'गुरु प्रणालिका' है। इस प्रणालिका के अनुसार इस सम्प्रदाय के प्रथम गुरु अलीगढ निवासी आसधीर हुये, उनके वाद इस भक्ति-पद्धति को एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय का रूप देनेवाले गुरु, अलीगढ के निकट स्थित हरिदासपुर स्थान के निवासी स्वामी हरिदास जी हुये। इनके वाद, श्रीविट्ठल विपुल जो स्वामी हरिदास जी के मामा थे और जो कदाचित् पहले चैतन्य सम्प्रदायी थे, इस गद्दी पर आये। इनके वाद मथुरानिवासी विहारिनीदास, सरस देव जी, नरहरिदेव जी, बुन्देलखण्ड के रसिकदेवी जी तथा ललित किशोरी जी ये पाँच गुरु हुये। यह गद्दी और सम्प्रदाय वर्तमान काल में भी व्रज में प्रचलित है।

श्रीग्राउज़[१] महाशय ने आसधीर जी को स्वामी हरिदास जी का पिता माना है, और इन दोनों को अलीगढ़ के निकट स्थित हरिदासपुर गाँव का रहनेवाला कहा है। लेखक ने 'हरिदासपुर' स्थान को अनेक वार देखा है। वहाँ आजकल महादेव जी का मन्दिर है, आसपास के यात्री शिवजी पर जल चढाने आया करते हैं। यह स्थान और गाँव हरदासपुर और हरिदासपुर दोनों नामों से प्रसिद्ध है। वृन्दावनवाले स्वामी हरिदास जी के इसी स्थान के निवासी होने की भी लेखक ने वहाँ कथा सुनी है। वस्ती मे ब्राह्मणों के चार-पाँच घर ही हैं।

स्वामी हरिदास जी ने तथा उनके सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों ने व्रजभाषा मे ही रचना की है जो भक्ति-भाव की द्योतक होने के साथ-साथ काव्य-गुण भी रखती हैं। स्वामी हरिदास जी ने दो छोटे-छोटे ग्रन्थ वनाये थे— एक, 'साधारण सिद्धांत' और दूसरा, 'रास के पद।' 'सिद्धान्त' ग्रन्थ मे भक्ति-पद्धति का ही विवेचन है, किसी दार्शनिकवाद का प्रतिपादन नही है। इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध कवि, श्रीविहारिनी दास जी, श्रीभगवत रसिक तथा श्रीललितकिशोरी जी हुए हैं।

---

१. Growse, Muttra Memoir, PP 219.

श्री वल्लभाचार्य जी और उनका सम्प्रदाय

विक्रम की १६वी शताब्दी मे विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर श्रीवल्लभाचार्य जी वैठे और उन्होंने श्री विष्णुस्वामी के सिद्धांतो से प्रेरणा लेकर शुद्धाद्वैत सिद्धांत तथा भगवद्-अनुग्रह अथवा पुष्टि द्वारा प्राप्त प्रेम-भक्ति के मार्ग की स्थापना की। हिन्दी व्रज भाषा के अष्टछाप कवि इसी सम्प्रदाय के भक्त थे। श्रीवल्लभाचार्य जी के पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था। वे एक दक्षिणी तैलग ब्राह्मण थे और कृष्ण के परम भक्त थे। एक वार ये अपने परिवार सहित तीर्थ-यात्रा को निकले और काशी मे आये। यहाँ आकर उन्होंने देखा कि काशी पर मुसलमानों का आक्रमण हो रहा है। इस उपद्रव के कारण उन्हे काशी से भागना पडा और वे चम्पारन पहुँचे। वही रास्ते में श्रीवल्लभाचार्यजी का जन्म, संवत् १५३५[1] वि० के वैसाख मास मे, हुआ। जव काशी का उपद्रव समाप्त हो गया तव लक्ष्मण भट्ट जी नवजात शिशु को लेकर काशी वापिस आ गये और वही हनूमान घाट पर रहने लगे। वल्लभाचार्य जी की प्रतिभा का विकास वाल्यकाल ही से होने लगा था। आठ वर्ष की अवस्था मे इनका यज्ञोपवीत हुआ और फिर कई आचार्यो के शिष्यत्व मे इनके पिता ने इन्हें विद्याध्ययन के लिए रक्खा। १३ वर्ष की अवस्था तक वेद,वेदाङ्ग, पुराण आदि ग्रन्थ इन्होंने पढ़ लिये।

कुछ समय वाद ही इनके पिता का गोलोकवास हो गया। इसके वाद ये अपनी माता-सहित अपने मामा के घर विद्यानगर (विजयनगर, दक्षिण भारत) मे गये। वहां से लौटते-लौटते इनके अनेक शिष्य वन गये। सोरो गंगा का रहनेवाला एक क्षत्री कृष्णदास मेघन, उसी समय काशी मे, इनका सेवक हो गया।

काशी में विद्याध्ययन और ब्रह्म-ज्ञान के शास्त्रो का पारायण करने के वाद माता की आज्ञा से वल्लभाचार्य जी ने देश की यात्रा आरम्भ की। इन यात्राओ मे इनका सोरो निवासी शिष्य कृष्णदास मेघन इसके साथ अवश्य रहता था। प्रथम यात्रा मे विद्यानगर (विजयनगर) में आचार्य जी ने वहाँ के राजा कृष्णदेवराज की आज्ञा से जोड़ी हुई पण्डितों की सभा मे शङ्कर के मायावाद का खण्डन किया। उसी समय आचार्य की उपाधि से ये विभूषित किये गये। उसी घटना के वाद विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के प्रचारक भक्त हरि स्वामी तथा शेप स्वामी द्वारा विष्णुस्वामी की उच्छिन्न गद्दी पर आचार्य बनाये गये।[2] राजा ने इनका स्वर्णमुद्राओ से अभिषेक किया। वल्लभ-दिग्विजय मे लिखा है कि आचार्य जी ने सव द्रव्य धर्मार्थ मे लगवा दिया तथा वहाँ के ब्राह्मणो में बँटवा दिया। वल्लभ-

---

१—वल्लभ दिग्विजय, पृ० ७।

२—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० १३।

सम्प्रदाय मे यह घटना आचार्य जी का 'कनकाभिषेक' नाम से प्रसिद्ध है। उसी समय से उन्होंने शुद्धाद्वैत मत का प्रचार करना आरम्भ किया।

वल्लभाचार्य जी ने सम्पूर्ण भारतवर्ष के तीर्थ तथा मुख्य-मुख्य स्थानो की कई वार यात्राएं की थी। ये यात्राएँ वल्लभ-सम्प्रदाय मे आचार्यजी की 'पृथ्वी-प्रदक्षिणाएँ' कहलाती हैं।[1] संवत् १५४९ वि० मे आचार्य जी व्रज मे आये और उन्होंने गोवर्द्धन से श्रीनाथजी के स्वरूप को निकाल कर वही उन्हे एक छोटे मन्दिर में स्थापित किया। उसी समय उन्होंने अष्टछाप के भक्त कवि कुम्भनदास जी को शरण मे लिया। मन्दिर की सेवा रामदास क्षत्री को सौंप कर वे फिर यात्रा को चल दिये। उनकी माता जी बहुधा इनके साथ मे अथवा कभी इनके मामा के पास रहती थी। एकबार ये दक्षिण यात्रा करते हुये महाराष्ट्र देश मे 'पण्ढरपुर' मे पहुँचे तथा श्री विट्ठल मूर्ति के भव्य दर्शनों से ये बहुत प्रभावित हुये। वही इन्हे प्रेरणा हुई कि विवाह करना चाहिए, परन्तु वहां से लौटने पर भी इन्होने कुछ समय तक विवाह नही किया और ये देश में घूम घूमकर लोगों को वैष्णव भक्ति का उपदेश देते रहे।

एक बार यात्रा करते-करते उन्हे व्रज और श्रीनाथजी की सेवा की प्रेरणा हुई। हरिद्वार आदि स्थानो मे होते हुये वे गोवर्द्धन पर आये। इसी अवसर पर अम्बाले के एक सेठ पूरनमल्ल ने श्रीनाथ जी का बड़ा मन्दिर बनवाने के लिए इन्हे द्रव्य दिया और उसी समय आचार्य जी ने उसे अपने सम्प्रदाय में लिया। और तभी वैशाख शुक्ल तृतीया सवत् १५५६ वि० मे इस मन्दिर की नीव गोवर्द्धन पर डाली गई।[1] इसके बाद आचार्य जी अनेक शिष्यो को प्रबोधन देते हुये फिर अलर्कपुर (अड़ैल) वापिस चले गये। इस समय तक उन्होंने कई शिष्यो को कृष्ण-स्वरूप सेवा के लिए दे दिये थे जिनमे मुख्य ये हैं—गोकुल के नारायण ब्रह्मचारी को श्री गोकुलचन्द्रमाजी, गज्जन धावन को नवनीत-प्रियजी, दामोदर सेठ को श्री द्वारिकानाथ जी और पद्मनाभदास को श्री मथुरेश जी।

इसके बाद आचार्य जी ने लगभग २८ वर्ष की अवस्था मे काशी जाकर अपना विवाह किया। उस समय तक इनकी माता दक्षिण देश मे रहती थी। विवाह करने के बाद अपने कुटुम्ब को काशी छोड़ ये फिर यात्रा को चल दिये। इसी यात्रा मे इन्होंने प्रयाग के पास अलर्कपुर (अड़ेल) को अपना निवासस्थान बनाया और अपने कुटुम्ब को यही ले आये। अपने द्विरागमन के बाद एक बार ये अड़ेल से व्रज को फिर गये। वहाँ आगरे से मथुरा जानेवाली सड़क पर स्थित गऊघाट स्थान पर सारस्वत ब्राह्मण सूरदास जी को अपने सम्प्रदाय मे लिया और वहाँ से गोकुल होते हुए गोवर्द्धन पहुँचे। वहाँ अष्टछाप के एक और भक्त कृष्णदास को शरण मे लिया। उसी समय वैसाख शुक्ल तीज को श्रीगोवर्द्धन नाथ

१—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ६।

(श्रीनाथ जी) की, अर्द्धनिर्मित नवीन मन्दिर मे स्थापना हुई । उस समय आचार्य जी ने वृन्दावन के महन्त भी बुलाए थे[1] । यह घटना लगभग संवत् १५६६ वि० की है । उसी समय आचार्य जी ने मन्दिर मे कीर्तन की आयोजना की थी और कुम्भनदास जी को कीर्तन-सेवा का कार्य सौंपा था । उन दिनो मथुरा मे बहुत से हिन्दू मुसलमान बनाये जा रहे थे । यह समय सिकन्दर लोदी के राजत्व काल का था । इस विषय मे 'वल्लभदिग्विजय' मे एक कथा इस प्रकार आती है,[2]—"मथुरा मे बादशाह के एक राजकर्मचारी ने विश्रान्त घाट पर ऐसा यन्त्र लगा रक्खा था कि जो हिन्दू उसके नीचे होकर निकलता था वह मुसलमान हो जाता था । श्रीवल्लभाचार्य जी ने यह बात देखकर नगर के द्वार पर ऐसा यन्त्र बाँधा कि मुसलमान फिर हिन्दू होने लगे । सिकन्दर लोदी आचार्य जी के इस चमत्कार से प्रभावित हुआ ।" इस कथा से ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य जी ने जबरदस्ती बने हुए मुसलमानों को फिर से हिन्दू धर्म मे वापिस ले लिया था । इसके बाद आचार्य जी अड़ैल को वापिस चले गये ।

अड़ैल मे सवत् १५६७ वि० आश्विन कृष्ण द्वादशी को आचार्य जी के बड़े पुत्र श्री गोपीनाथ जी का जन्म हुआ । इसके कुछ समय बाद ये सकुटुम्ब जगदीश-यात्रा को गये । वहाँ से काशी होते हुये चरणाद्री (चुनार) पहुँचे । उस जगह सवत् १५७२[3] वि० मे इनके दूसरे पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का जन्म हुआ । वहाँ से नवजात शिशु को लेकर ये अड़ैल पहुँचे और वहीं बालक का सस्कार हुआ । इसी समय इन्होंने फिर व्रजयात्रा की और व्रज मे ही गोपीनाथ जी के यज्ञोपवीत का उत्सव किया और श्रीविट्ठलनाथ जी के पैदा होने पर गोकुल मे नन्दोत्सव मनाया गया । उस समय सूरदास जी ने श्री विट्ठलनाथ जी के जन्म की बधाई गाई थी । वहाँ से आचार्य जी जगदीश्वर-यात्रा को फिर गये और वहाँ इनकी भेंट श्रीचैतन्य महाप्रभु से हुई, इसके बाद ये अड़ैल वापिस गये । वहाँ पर अष्टछाप के भक्त परमानन्ददास[4] कान्यकुब्ज को शरण मे लिया । इसके बाद आचार्य जी चातुर्मास, प्रत्येक वर्ष, व्रजमे बिताया करते थे । इस समय तक उनके अनेक अनुयायी हो गये थे जिनमे से मुख्य ८४ भक्तो का वृत्तान्त वल्लभसम्प्रदायी '८४ वैष्णवन की वार्ता' मे दिया हुआ है ।

सवत् १५८० वि० मे श्रीविट्ठलनाथ जी का यज्ञोपवीत अड़ैल में हुआ । श्रीवल्लभाचार्य जी ने कई भक्तो के घर कृष्ण के स्वरूप (मूर्तियाँ) स्थापित किये थे, इन भक्तो ने

१—वल्लभ-दिग्विजय, पृष्ठ ५० ।

२— " " " ५० ।

३— " " " ५२ ।

४—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० ५२, तथा श्रीद्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, बें० प्रे०, पृ० ५४ ।

अपने अन्तिम काल में ये कृष्ण-मूर्तियाँ श्री वल्लभाचार्य जी के पास ही अडैल मे पहुँचा दी। संवत् १५७६ वि० में जब दामोदरदास सम्भलवाले का देहान्त हुआ, उस समय अड़ैल मे आचार्य जी के घर पाँच स्वरूपों की पूजा होती थी—श्रीनवनीत प्रिय जी, श्रीमदनमोहन जी, श्रीविट्ठलनाथ जी, श्रीद्वारिकानाथ जी तथा श्रीगोकुलनाथ जी।[1] सवत् १५८७ वि० मे आचार्य जी का काशी मे गङ्गा-प्रवाह-अवस्था मे गोलोकवास हुआ। इस समय आचार्य जी की अवस्था ५२ वर्ष की थी।

श्रीवल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैतसिद्धान्त तथा भक्तिमार्ग पर अनेक ग्रन्थो की रचना की थी। 'वल्लभ-दिग्विजय' ग्रन्थ मे लिखा है कि आचार्य जी ने ८४ ग्रन्थो[2] की रचना की; परन्तु इनके केवल ३० छोटे-वडे ग्रन्थ ही वल्लभसम्प्रदाय मे प्रसिद्ध है, और कदाचित् इतने ही उपलब्ध है। इनके समस्त उपलब्ध ग्रन्थो का विषय शङ्कर-वेदान्त के मायावाद का खण्डन, अपने मत ब्रह्मवाद, अविकृत परिणामवाद तथा शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादन तथा प्रेम-भक्ति के सिद्धान्तों का कथन है। परम विद्वान श्रीनटवर लाल गोकुलदास शाह ने श्रीवल्लभाचार्य जी का सक्षिप्त जीवन चरित्र अँग्रेजी मे लिखा है। उन्होने उक्त ग्रन्थ मे तथा श्रीगुरुप्रसाद टण्डन ने 'मेटिरियलस् फार स्टडी आफ़ दी पुष्टिमार्ग' मे श्रीवल्लभाचार्य जी के ग्रन्थों के नाम दिये है। इसमें कुछ टीका ग्रन्थ है और कुछ मौलिक है। आचार्य जी ने अपने सब ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही लिखे हैं।

आचार्य जी द्वारा लिखित ये ग्रन्थ हैं—

१—तत्त्वदीप निबन्ध—इस ग्रन्थ के तीन भाग है, शास्त्रार्थ प्रकरण, सर्व निर्णय प्रकरण, भागवतार्थ प्रकरण।

२—पूर्व मीमांसा भाष्य अथवा जैमिनी सूत्र भाष्य।

३—प्रकरणानि—यह ग्रन्थ अप्राप्य है।[3]

४—भागवत टीका—कहा जाता है कि वल्लभाचार्य जी ने 'तत्त्वदीप निबन्ध' के 'भागवतार्थ' प्रकरण को लिखने से पहले यह टीका लिखी थी; परन्तु ग्रन्थ का केवल प्रथम अध्याय ही प्राप्त है, पूर्ण ग्रन्थ नही मिलता।

१—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० ५५, तथा श्रीद्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें, प्रे०, पृ० ६२।
२—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० ५६।
३—इस ग्रन्थ के विषय में कुछ पुष्टिमार्गीय विद्वानों का मत है कि आचार्यजी के षोडश ग्रन्थों का नाम ही प्रकरणानि है।

५—अणु भाष्य—यह श्रीवादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्रों पर लिखा भाष्य है। वेदान्त सूत्रों पर आचार्य जी से पहले कई आचार्य भाष्य लिख चुके थे, शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य तथा मध्वाचार्य। इस ग्रन्थ मे वल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैत मत की स्थापना की है।

६—सुबोधिनी—यह ग्रन्थ श्रीमद्भागवत की टीका है। परन्तु यह पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नही हैं। इसके प्रथम, द्वितीय, तृतीय दशम तथा एकादश स्कन्ध ही उपलब्ध हैं।

७—२२—षोडश ग्रन्थ—श्रीआचार्य जी के १६ ग्रन्थो का यह एक सग्रह है जिसमे निम्नलिखित ग्रन्थ हैं:—

७—यमुनाष्टक। ८—बालबोध। ९—सिद्धान्त-मुक्तावली। १०—पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा-भेद। ११—नवरत्न। १२—सिद्धान्त-रहस्य। १३—अन्त.करण-प्रबोध। १४—विवेक-धैर्याश्रय। १५—कृष्णाश्रय। १६—चतुःश्लोकी। १७—भक्ति-वर्धिनी। १८—जलभेद। १९—पञ्च पद्य। २०—सन्यास-निर्णय। २१—निरोध-लक्षण। २२—सेवा-फल।

२३—पत्रावलम्बन।
२४—शिक्षा-श्लोक—इसमे केवल पाँच श्लोक हैं।
२५—मधुराष्टक।
२६—न्यासादेश।
२७—प्रेमामृत।
२८—पुरुषोत्तम-सहस्रनाम।
२९—त्रिविध नामावली।
३०—सेवाफल-विवरण।

श्रीवल्लभाचार्य जी के शुद्धाद्वैत वेदान्तवाद तथा पुष्टि-भक्ति-मार्ग का प्रचार व्रज-मण्डल, राजस्थान तथा गुजरात मे सबसे अधिक हुआ। इस सम्प्रदाय के दार्शनिक विचार तथा इसकी भक्ति-पद्धति का विवरण आगे, अष्टछाप-दर्शन तथा भक्ति के विवेचन के साथ दिया जायगा।

श्रीनटवरलाल गोकुलदास शाह ने अपने अँग्रेजी मे लिखे "श्रीवल्लभाचार्य जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र" नामक ग्रन्थ[1] के ११वे अध्याय मे श्रीवल्लभाचार्य जी के एक पुराने चित्र का हवाला दिया है। वे कहते हैं कि वल्लभाचार्य जी का समकालीन दिल्ली का बादशाह सिकन्दर लोदी उनका बहुत सम्मान करता था। बादशाह ने उस समय के एक प्रसिद्ध चित्रकार 'होनहार' से उनका एक चित्र खिचवाया था। श्री शाह ने इस चित्र के

---

1. Short Biographical Sketch of Shrimad Vallabhacharya's life.

निर्माण का संवत् १५६७ दिया है। सिकन्दर लोदी से यह चित्र मुग़ल बादशाहो के अधिकार मे आया और शाहजहाँ ने उसे कृष्णगढ राज्य के निर्माता श्रीरूपसिंह जी को पुरस्कार में दिया। अभी तक यह चित्र कृष्णगढ़ मे विद्यमान है। इस चित्र का निर्माण-काल तथा आचार्य जी के मथुरा मे मुसलमान बने हिन्दुओं को फिर से हिन्दू बनाने के लिये यन्त्र लगाने का समय, जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, दोनो मिलते हैं।[1] सम्भव है, सिकन्दर लोदी आचार्य जी के प्रभाव तथा चमत्कार से प्रभावित हुआ हो और उधर बादशाह के बुलाने पर आचार्य जी भी उससे विनम्र भाव से मिले हो और तभी बादशाह आचार्य जी पर प्रसन्न हुआ हो।

श्रीगोपीनाथ जी तथा गो० श्री विट्ठलनाथ जी

श्रीवल्लभाचार्य जी के गोलोकवास (सवत् १५८७ वि०) के बाद, उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गोपीनाथ जी आचार्य हुये और उन्होंने वैष्णव धर्म का प्रचार किया। उनके प्रचार का मुख्य क्षेत्र गुजरात प्रान्त था। गोपीनाथ जी के केवल एक पुत्र, श्री पुरुषोत्तम जी थे जिनका देहान्त उन्ही के जीवन-काल मे ही हो गया। पुत्र-निधन के कुछ समय बाद संवत् १५९५ वि० में, लगभग २८ वर्ष की अवस्था में श्री गोपीनाथ जी का भी देहान्त हो गया। इसके बाद श्री वल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी आचार्य पद पर आसीन हुये और उन्होंने इस सम्प्रदाय के वैभव को बहुत बढ़ाया।

पीछे कहा गया है कि गो० विट्ठलनाथ जी का जन्म संवत् १५७२ वि० में हुआ। इनकी आरम्भिक शिक्षा 'अडैल' मे ही हुई। विट्ठलनाथ जी के दो विवाह हुये थे। प्रथम विवाह लगभग सवत् १५८९ वि० मे और दूसरा सवत् १६२४ वि० के लगभग हुआ। इनकी प्रथम पत्नी का नाम रुक्मिणी तथा दूसरी का नाम पद्मावती था। प्रथम पत्नी से छै पुत्र तथा दूसरी से केवल एक पुत्र, घनश्याम जी हुये। 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' तथा 'काँकरौली का इतिहास' नामक ग्रन्थों के अनुसार श्रीगोस्वामी जी के सात पुत्रो के नाम तथा उनकी जन्म और विवाह-तिथियाँ इस प्रकार हैः—

नाम	जन्म संवत्	विवाह संवत्
१—श्री गिरिधर जी	१५९७ वि०	१६०६ वि०
२—श्री गोविन्द राय जी	१५९९ ,,	१६०९ ,,
३—श्री बालकृष्ण जी	१६०६ ,,	१६१५ ,,

१—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० ५०।

नाम	जन्म संवत्	विवाह संवत्
४—श्री गोकुल नाथ जी	१६०८ ,,	१६१५ ,, [1]
५—श्री रघुनाथ जी	१६११ ,,	१६१५ ,,
६—श्री यदुनाथ जी	१६१५ ,,	...
७—श्री घनश्याम जी	१६२८ ,,	...

श्री विट्ठलनाथ जी के ग्रन्थ:—[2]

श्री विट्ठलनाथ जी ने अपने पिता श्री वल्लभाचार्य जी के ग्रन्थों का अध्ययन कर उन पर टीकाएँ लिखी तथा कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे। उनके रचित ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:—

१—विद्वन्मण्डन।
२—निबन्ध-प्रकाश टीका।
३—अणुभाष्य का अन्तिम डेढ़ अध्याय।
४—सुबोधिनी पर टिप्पणी।
५—भक्ति हंस।
६—भक्ति हेतु।

१—काँकरोली का इतिहास, पृ० ६४:६५।

गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ तथा उनके सात पुत्रों का उल्लेख भक्त नाभादास जी ने 'भक्तमाल' में इस प्रकार किया है :—

श्रीविट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यों, लाड़ लड़ाय के सुख लियो।
राग भोग नित विविध रहत परिचर्या तत्पर।
सज्या भूषन बसन रचित रचना अपने कर।
वह गोकुल वह नंद सदन दीक्षित को सोहै।
प्रगट बिभौ जहाँ घोस देखि सुरपति मन मोहै।
वल्लभ सुत बल भजन के, कलियुग में द्वापर कियौ।
श्री विट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यों लाड़ लड़ाय कै सुख लियौ।

भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, छन्द ७६, पृ० ५७५।

श्री विट्ठलेश सुत सुहृद श्री गोवरधनधर ध्याइये।
श्री गिरिधर जू सरस सील गोविंद जु सार्थहि।
बालकृष्ण जसवीर धीर श्री गोकुल नार्थहि।
श्री रघुनाथ जू महाराज श्री यदुनाथहि भजि।
श्री घनश्याम जु पगे प्रभु अनुरागी सुधि सजि।
ए सात प्रगट विभु भजन जग, तारन तम जस गाइये।
श्री विट्ठलेस सुत सुहृद, श्री गोवरधनधर ध्याइये।

भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, छन्द ८०, पृ० ५७६।

२—काँकरौली का इतिहास, पृ० ९१।

७—भक्ति-निर्णय ।
८—षोडश ग्रन्थ पर टीका ।
९—विज्ञप्ति ।
१०—शृङ्गार रस मण्डन ।
११—निर्णय ग्रन्थ ।
१२—स्फुट स्तोत्रादि तथा टीकाएँ ।

लगभग संवत् १६२३ वि० में गो० विट्ठलनाथ जी ने अड़ैल स्थान को छोड़ दिया और व्रज में आकर सपरिवार निवास करने लगे। गोकुल में कुछ महीने रहने के बाद वे मथुरा में लगभग चार साल रहे। संवत् १६२८ में उन्होंने गोकुल को अपना स्थायी निवास-स्थान बनाया[1] गोकुल को स्थायी निवास-स्थान बनाने से पहले श्री गोस्वामी जी, अड़ैल से व्रज आकर प्रत्येक वर्ष गोकुल में कुछ महीने रहा करते थे। इसी संवत् में आकर उन्होंने श्री वल्लभाचार्य जी के सेव्यस्वरूपों को गोकुल में स्थापित किया। सवत् १६२३ वि० के लगभग उन्हें, अकबर से फरमान द्वारा, गोकुल की ज़मीन मिली थी। इसके बाद भी सम्राट् की ओर से गोस्वामी जी को गोकुल में निर्भय-पूर्वक रहने के कई फरमान मिले थे। गोस्वामी जी ने अपने उत्तर जीवन काल में, अपने सातों पुत्रों को सात स्वरूपों की सेवा देकर उनका बटवारा कर दिया। वल्लभसम्प्रदायी जिन सात पीठों की बाद में स्थापना हुई उनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के भी अनेक भक्त हुये जिनमें से २५२ वैष्णव भक्त सम्प्रदाय में बहुत प्रसिद्ध हुये। आचार्य जी के शिष्यों की तरह इन भक्तों में भी भाषा के उच्चकोटि के कवि और गवैये हुये। उन्होंने चार सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि अपने, तथा चार अपने पिता के, मिलाकर अष्टछाप भक्त कवियों की स्थापना की। जैसा कि पीछे कहा गया है, ये आठों भक्त 'अष्टसखा' भी कहलाते थे। श्री वल्लभाचार्य जी की तरह श्री गो० विट्ठलनाथ जी ने भी अपने सम्प्रदाय की भक्ति का, सभी जाति के व्यक्तियों को अधिकार दिया। उनका परिचय भारत के सम्राट् अकबर तथा उसके दरबार के उच्च पदाधिकारी राजा मानसिंह, बीरबल आदि से भी था जो उनका भारी सम्मान करते थे। वार्ता-साहित्य से पता चलता है कि बीकानेर के राजा पृथ्वीसिंह[2], राजा आसुकरण[3], रानी दुर्गावती[4] आदि कई राजा भी उनके शिष्य हो गये थे।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने गुजरात तथा उत्तरी-भारत की यात्रा भी कई बार

१—अब्देऽष्टनेत्रांकमहीप्रनाशे (संवत् १६२८) तपस्यमासस्य तमिस्रपक्षे।
दिने दिनेशस्य शुभे मुहूर्ते श्रीगोकुलग्राम निवास आसीत्। १२।
श्रीमधुसूदन कृत वंशावली।
तथा, इम्पीरियल फरमान्स, झावेरी, विट्ठलनाथ जी का जीवन चरित्र। तथा, कांकरौली का इतिहास, पृ० १०२।
२—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ४८२।
३—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० १६१।
४—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ४८४।

थी। गोकुल को निवास-स्थान बनाने के[1] बाद दो बार संवत् १६३१ वि० तथा संवत् १६३८ वि० मे ये धर्म प्रचार के लिये गुजरात गये थे। संवत् १६४२ मे गोवर्द्धन की एक कन्दरा मे प्रवेश कर इन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। अष्टछाप के कुछ भक्त तो इनके गोलोक-वास से पहले ही देह-त्याग कर चुके थे और कुछ ने इनकी मृत्यु के थोडे समय बाद ही देह का त्याग किया।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के नित्य-लीला-प्रवेश की सवत् १६४२ वि० की तिथि वल्लभसम्प्रदाय के विद्वानो तथा गोस्वामियो मे बहुमत से मान्य है। सम्राट् अकबर ने उक्त गोस्वामी जी से प्रसन्न होकर उनको गोवर्द्धन और गोकुल की भूमि माफी मे भेट की थी। उसने गोस्वामी जी तथा उनके वशजो के लिये, इस भेट के तथा माफी के फरमान भी जारी किये थे, जिनमे से कुछ का उल्लेख इस ग्रन्थ मे पीछे हो चुका है। सम्राट् अकबर ने ही नही, शाहजहाँ तथा अन्य मुगल बादशाहो ने भी इस प्रकार के आज्ञापत्र गोस्वामी आचार्यों को दिये थे। इन फरमानो की खोज करके बम्बई हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज श्रीकृष्णलाल मोहनलाल झावेरी ने इनको, अनुवाद-सहित इनका सम्पादन कर, प्रकाशित किया है।

कुछ विद्वान् अकबर के फरमानो के अधार पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की स्थिति सवत् १६५१ वि० तक ले गये हैं। अकबर और शाहजहाँ के फ़रमान गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के नाम सवत् १६५१ तक ही नही वरन् सवत् १६६० के कुछ समय बाद तक जारी होते रहे है। यदि मुगल बादशाहो के फरमानो मे विट्ठलनाथ का नाम देखकर ही उनकी स्थिति उस समय मान ली जाय तब तो उन्हे शाहजहाँ के समय मे सवत् १६६० के कुछ समय बाद तक जीवित मानना पडेगा जो बात असङ्गत सी है। संवत् १६३८ के पहले तथा इसके बाद के फरमानो मे यह अन्तर है कि सवत् १६३८ के अकबर के फरमानो मे केवल विट्ठलनाथ जी का ही नाम है। इसके बाद के जो शाही फरमान उनके नाम जारी हुये उनमे उनके वशजो के लिये "नसलन बाद नसल" शब्दो का प्रयोग है। इससे पता चलता है कि यद्यपि फरमान गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के नाम ही जारी हुये; परन्तु वे उनकी मृत्यु के बाद उनके वशजो पर लागू थे। बहुधा देखा जाता है कि किसी व्यक्ति के मरने के बाद, जब तक उसके उत्तराधिकारियो के नाम उसकी सम्पत्ति के काग़जो मे दाखिल-खारिज नही होता, तब तक सरकारी कागज़ उसी के नाम जारी होते रहते है।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के बाद उनकी भूमि तथा गद्दी उनके सात पुत्रो मे विभाजित हो गई। यद्यपि गिरधर जी उनके बडे पुत्र थे, परन्तु सम्प्रदाय मे वे विख्यात व्यक्ति न थे। उनके चौथे पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ जी अधिक विख्यात आचार्य हुये। गोस्वामी जी के बाद जब तक सम्प्रदाय का मुख्य आचार्यत्व सात पुत्रो मे से किसी एक के नाम स्थापित नही हुआ, तब तक शाही फरमान गोस्वामी विट्ठलनाथ अथवा विट्ठल राय जी के नाम ही जारी होते रहे। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, उन फरमानो मे 'नसलनदर नसल' शब्द और

१—कॉकरौली का इतिहास, पृ० ६६।

लगा दिये गये । अकबर के संवत् १६५१ के तथा शाहजहाँ के सवत् १६९० विक्रमी के फरमानो मे से एक एक का अनुवाद श्री झावेरी जी के 'इम्पीरियल फारमास' नामक सग्रह ग्रन्थ से नीचे उद्धृत किया जाता है । ये दोनो फरमान गो० विट्ठलनाथ जी के ही नाम है । संवत् १६३८ वि० के फरमान उनके मूल रूप सहित पीछे दिये जा चुके है ।

तरजुमा फरमान वालशाय अतिये जलालुद्दीन मोहम्मद अकवर वादशाह गाजी

इस मुवारिक वक्त मे फरमान जारी हुआ कि गुसाई विट्ठलराय साकिन गोकुल मौज़े जतीपुरा मुत्तसिल व परगने गोवर्द्धन मे जमीदारो को रुपया देकर खरीदकर मकानात व वागात, व गायो के खिडक व मन्दिर गोवर्द्धननाथ के कारखाने तैयार करा कर रहता है, इसलिये हुक्म जारी हुआ कि ऊपर लिखे मौजे को गुसाई मजकूर के कब्जे मे **'नसलनदर नसल'** माफ व वागुजागत छोडा गया । इस मौजूदा व आइन्दा होनेवाले हाकिम आमिल, मुहिम्मो के मुतसद्दी क्रोडी जागीरदार व जमीदार इस वड़े हुक्म की तामील कर मौजे मे **'नसलन वाद नसल'** रहने देवे और वजहात व कुल अवारिज़ात व सर दरखती वहाँ के वावत मुज़ाहम न होकर ऐतराज़ न करे और हर साल नया फरमान व परवाना न मागे व इसके खिलाफ न करे ताके, मारफत आगाह यानी ईश्वर को पहचाननेवाला गुसाई वादशाही महरवानियो से मशकूर होकर इस सल्तनत के हमेशा कयाम की दुआ करता रहे । तारीख ९ खुरदाद माह इलाही सन् ६८ जलूसी, मुताविक सन् १५९४ ई० व संवत् १६५१ विक्रमी ।[1]

तरजुमा फ़रमान अतिये अव्वुल मुज़फर शाहवुद्दीन मोहम्मद साहिव किरान सानी शाहजहाँ वादशाह गाज़ी ।

परगने सिहार के मौजूदा व आइन्दा होनेवाले मुतसद्दियो को मालूम हो कि इस वक्त मालूम हुआ है कि गुसाई साकिन गोकुल विट्ठलराय टिकैत गोवरधननाथ मौज़े जतीपुरा उर्फ़ गोपालपुर मुतसिल गोवरधन में जमीदारो को रुपया देकर जमीन खरीद करके मकानात व गायो के खिड़क व वागात, व ठाकुर गोवरधननाथ के कारखानेजात तैयार कराकर वहाँ रहता है । लिहाज़ा हुक्म शादिर फ़रमाया गया कि मौज़े मज़कूर जमीन ठाकुरद्वारे के खर्च वास्ते हुज़ूर मे से माफ़ और वागुज़ागत की गई । चाहिये कि हाकिम आमिल व जागीरदार लोग मौजूदा व आइन्दा होनेवाले, इस हुक्म की तामील कर मज़कूर के कब्जे में **'नसलनदरनसल'** छोडे और इसमे जरा भी अदला वदली न करे । मोजे मजकूर की इल्लत माल व जहात व इखराजात पेशकश सरकार दहनीमी, मुकद्दमी, सद्दही, कानूंगोई व कुल तकालीफ दीवानी व मतालवात मुल्तानी, मौजे मजकूर वावत मुजाहमत न करे । और इस वारे मे नया फ़रमान व परवाना न माँगे और हुक्म के खिलाफ़ न करे । तहरीर ता० १७ महर माह इलाही सन् ६ जलूसी, मुताविक सन् १६३३ ई० व संवत् १६९० विक्रमी[2]

१–फरमान नं० ४, नागरी अनुवाद, इम्पीरियल फरमांस–के० एम० झावेरी, वम्वई ।

२–फरमान नं० ६ नागरी अनुवाद, इम्पीरियल फरमान्स–के० ए० झावेरी, वम्वई ।

श्रीकृष्णलाल मोहनलाल झावेरी जी ने उक्त अनेक फरमानो को प्रकाशित करते हुये गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का, अँग्रेजी मे संक्षिप्त जीवनचरित्र भी दिया है। इसमें उन्होंने भी, श्री तेलीवाला की सहमति मे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का निधन-समय सवत् १६४२ वि० के लगभग ही माना है। पीछे कहा गया है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की निधन-तिथि का, अप्टछाप के कई कवियो की निधन-तिथि से सम्वन्ध है। लेखक ने आगे के पृष्ठो मे अष्ट-छाप की निधन-तिथि के आकलन मे इसी तिथि संवत् १६४२ वि० का प्रयोग किया है। यदि यह तिथि किन्ही सवल प्रमाणो द्वारा, जो अभी तक उपलव्ध नही हुये है, किसी अन्य संवत् की वल्लभसम्प्रदायी विद्वानो से सिद्ध की जाती है तो, अष्टछाप के कवियो की निधन-तिथिया भी बदली जा सकती है।

गो० गोकुलनाथ जी तथा श्री हरिराय जी महाप्रभु

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के वाद इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिधर जी इस सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य हुए और उन्होंने अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया। यद्यपि मुख्य आचार्यत्व का पद श्री गिरिधर जी को मिला था,परन्तु, जैसा कि पीछे कहा गया है, सम्प्रदाय के मर्म को समझा-नेवाले विद्वान् तथा सम्प्रदाय के प्रचार को वढानेवाले उपदेशक श्री विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र श्री गोस्वामी गोकुलनाथ जी हुये। वल्लभसम्प्रदाय मे श्री वल्लभाचार्य के वाद 'महाप्रभु' अथवा 'प्रभुचरण' की उपाधि से इन्ही को विभूपित किया गया है। लेखक ने आगे वार्ता-साहित्य के परिचय मे कहा है, कि इन्होने ही, 'वैष्णवन की वार्ता' कहने, सुनने तथा लिखने की प्रथा चलाई थी। इस सम्प्रदाय मे श्री गोकुलनाथ जी का समय संवत् १६०८ से संवत् १६६७ वि० तक माना गया है।

गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी के द्वितीय पुत्र श्री गोविन्द राय जी थे। श्री हरिराय जी इन्ही श्री गोविन्दराय जी के पुत्र श्री कल्याणराय जी के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६४७ आश्विन कृष्ण पचमी मे, तथा देहावसान सवत् १७७२ में हुआ। इन्होने लगभग १२५ वर्ष की अवस्था पाई थी। ये सस्कृत, गुजराती तथा व्रजभाषा के परम विद्वान् थे। अपने सम्प्रदाय की भक्ति से सम्वन्ध रखनेवाले अनेक ग्रन्थ उन्होंने बनाये है। वल्लभसम्प्रदायी आचार्यो में भी श्री वल्लभाचार्य, गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ, गोस्वामी श्री गोकुलनाथ तथा गो० श्री हरिराय जी परमोच्च कोटि के आचार्य हुये है। श्री वल्लभाचर्य और गोकुलनाथ जी की तरह, श्री हरि-राय जी को भी 'महाप्रभु' तथा 'प्रभुचरण' की पदवी दी जाती है। ८४ तथा २५२ 'वैष्णवन' की वार्ताओ पर इन्ही ने 'भावना' लिखी थी। ये केवल ब्रजभाषा वार्ता-साहित्य के ही रच-यिता नही है, वरन्-सस्कृत, गुजराती तथा व्रजभापा के भक्ति-ग्रन्थो के भी निर्माता, विवरण-कर्ता, टीकाकार तथा अपने सम्प्रदाय के उन्नायक व्यक्ति हुये है। इन्होंने कई नामो से रचना की थी, रसिक. रसिकराय, हरिधन हरिदास आदि। जब श्रीनाथजी को वैष्णव लोग औरङ्ग-जेव के भय से श्री गोवर्धन से उदयपुर रियासत मे ले गये, उस समय, हरिराय जी भी श्रीनाथजी के साथ गये थे।

द्वितीय अध्याय

अध्ययन के सूत्र

अष्टछाप-कवियों की जीवनी तथा रचनाओं के अध्ययन की आधारभूत सामग्री

क—आन्तरिक आधार—अष्टछाप काव्य मे कवियो की जीवनी तथा रचना के आत्मविषयात्मक उल्लेख। (मुख्य सामग्री)

ख—प्राचीन बाह्यआधार। (मुख्य सामग्री)

ग—आधुनिक बाह्यआधार। (गौण सामग्री)

क—अष्टछाप-काव्य में कवियों की जीवनी तथा रचना के आत्म-विषयात्मक उल्लेख।

अष्टछाप कवियों के जीवन तथा उनकी रचना से सम्बन्ध रखनेवाले जो कुछ भी अल्प उल्लेख उनकी रचनाओ मे मिलते है वे उनके सम्पूर्ण काव्य में जहाँ-तहाँ बिखरे हुये हैं। नीचे की पंक्तियो में आठों कवियों के आत्मचारित्रिक वृत्तान्त दिये जाते हैं।

सूरदास

लेखक ने सूर के केवल तीन ग्रन्थ सूरसागर, सूरसारावली तथा साहित्यलहरी ही प्रामाणिक ग्रन्थ माने हैं। सूर के नाम से कहे जानेवाले कई छोटे छोटे ग्रन्थो का समावेश सूरसागर में ही हो जाता है। उक्त तीन-ग्रन्थों के आधार से ही यहाँ कवि के आत्मविषयक उल्लेख दिये गये हैं।

सूरसागर—सूरसागर के कई पदो मे कवि ने अपने अन्धे होने का उल्लेख किया है। जैसे—

कहावत ऐसे दानी ।

× × ×

विप्र सुदामा कियो अयाची प्रीति पुरातन जानी ।
सूरदास सों कहा निठुर भये नैनन हू की हानी ।[1]

तथा—

मेरी तो गति पति तुम अन्तहि दुख पाऊँ ।
हौं कहाइ तिहारो अब कौन को कहाऊँ ।

× × ×

सागर की लहर छाँड़ि खार कत अन्हाऊँ ।
सूर कूर आँधरो मैं द्वार परयो गाऊँ ।[2]

सूरदास ने अपनी रचनाओ मे यह उल्लेख तो अनेक स्थलो पर किया है। कि वे अन्धे थे, परन्तु उनके जन्मान्ध होने के प्रमाण उनकी रचनाओ मे नही मिलते । सूर के पदों मे दृश्यों के वर्णन और भावो के स्वाभाविक चित्रणो से यही ज्ञात होता है कि वे जन्मान्ध नही थे, इस संसार को देखने के बाद किसी अवस्था मे वे अन्धे हो गये थे ।

निम्नलिखित पद मे कवि कहता है कि जिस भागवत का श्रीशुकदेव जी ने बखान किया था उसी को मैं गुरु की कृपा से गाता हूँ । इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने भागवत के अनुसार पद की रचना की थी ।

धनि शुक मुनि भागवत बखान्यो ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन तब रसना कहि गान्यो ।
धन्य श्याम वृन्दावन को सुख संत मया ते जान्यो ।
जो रस रास रंग हरि कीन्हे वेद नही ठहरान्यो ।
सुर नर मुनि मोहित सब कीन्हे शिवहि समाधि भुलान्यो ।
सूरदास तहँ नैन बसाए और न कहूं पत्यान्यो ।[2]

सूरदास ने भागवत के क्रमानुसार अपने पदो की रचना की, इस बात का उल्लेख उन्होंने अपने और भी कई पदो मे किया है; यथा—

१—पद नं० ७७, सूर सागर, वें० प्रे०, पृष्ठ १३, संवत् १९६४ संस्करण ।
२—सूरसागर, वे० प्रे०, पृष्ठ १७, सं० १९६४ संस्करण ।
३—पद नं० ५७, सूरसागर, वे० प्रे०, पृष्ठ ३६०, सं० १९६४ संस्करण ।

श्री मुख चारि श्लोक दिये ब्रह्मा को समुझाइ।
ब्रह्मा नारद सों कहे नारद व्यास सुनाइ।
व्यास कहै शुकदेव सों द्वादश स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहै पद भाषा करि गाइ।[1]

तथा—

सुक ज्यों नृप सों कहि समुझायो।
सूरदास त्यो ही कहि गायो।
जैसे सुक कौ व्यास पढ़ायो।
सूरदास तैसे कहि गायो।[2]

कहौ कथा सुनो चित धार सूर कह्यो भागवत अनुसार।[3]

हीनता तथा आत्मग्लानि भाव भी उनके अनेक पदों मे व्यक्त हैं।

यथा—

सो कहा जु मै न कियो जो पै सोई चित धरिहौ।
पतितपावन विरद साँच कौन भाँति करिहौ।
× × ×
साधुनिंदक स्वादलंपट कपटी गुरुद्रोही।
जितने अपराध जगत लागत सब मोही।
गृह गृह गृह द्वार फिरचो तुमको प्रभु छाँड़े।
अंध अंध टेक चलै क्यों न परे गाढ़े।
कमल नैन करुनामय सकल अंतर्यामी।
विनय कहा करै सूर कूर कुटिल कामी।[4]

कृष्ण के बाल-रूप तथा गोप-विहारी सखा-कृष्ण के उपासक होने के साथ-साथ सूरदास जी राधाकृष्ण के युगल रूप के भी उपासक थे, इस बात को उन्होंने अपने अनेक पदो में प्रकट किया है—

१—सूरसागर, पद नं० ११३, पृ० १७, वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण।
२—सूरसागर, १ स्कंध, पद नं० ११४, पृ० १८, वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण
३—सूरसागर, चतुर्थ स्कंध, पृ० ४७, वें० प्रे०, संवत् १९६४ संस्करण
४—सूरसागर, प्रथम स्कंध, पृ० ११, वें० प्रे०, संवत् १९६४ संस्करण।

जाको ध्यान धरें सुर मुनि जन शंभु समाधि न टारी हो,
सो ठाकुर है सूरदास को गोकुल गोप विहारी हो। १७[1]

रास रस रीति नहि बरणि आवै

× × ×

यहै निज मंत्र यह ज्ञान यह ध्यान दरश दम्पति भजन सार गाऊँ।
इहै माँग्यों बार बार प्रभु सूर के नैन द्वौ रहै, नर देह पाऊँ।[2]

मैं कैसे रस रासहिं गाऊँ।
श्री राधिका श्याम की प्यारी तुव बिन कृपा बास ब्रज पाऊँ।
अन्य देव सपनेहु न जानौ दम्पत्ति को सिर नाऊँ।
भजन प्रताप सरन महिमा ते गुरु की कृपा दिखाऊँ।
नव निकुज बन धाम निकट इक आनन्द कुटी रचाऊँ।
सूर कहा विनती करि बिनवै जन्म जन्म यह ध्याऊँ। ५७[3]

निम्नलिखित पद मे सूर श्याम और बलराम दोनो मे अपनी अनन्य भक्ति प्रकट करते है—

श्याम बलराम को सदा गाऊँ।
श्याम बलराम बिनु दूसरे देव को स्वप्न हू माँहि हृदय न लाऊँ।[4]

अनन्य भाव से केवल कृष्ण-भक्ति में ही कवि को सन्तोष है। इस भाव के साथ कवि ने अपने भक्त-रूप का बाह्य वेश भी नीचे लिखे पद में दिया है—

हमें नन्दनन्दन मोल लिये।
यम के फंद काटि मुकराए अभय अजात किये।
भाल तिलक श्रवननि तुलसी दल मेटे अंक बिये।
मूड़े मूड़ कंठ बनमाला मुद्रा चक्र दिये।
सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये।
सूरदास को और बड़ो सुख जूठनि खाइ जिये।[5]

१—सूरसागर, पृष्ठ ११७, वें० प्रे०, संवत् १९६४ संस्करण।
२—सूरसागर, पृष्ठ ३४०, वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण।
३—सूरसागर, पृष्ठ ३६३, वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण।
४— " " १७ " " "
५— " " १७ " " "

भक्ति के आवेश में आकर कवि कहता है—"मैंने अपनी जाति भी छोड़ दी।" वास्तव में देखा जाता है कि परम भक्त लोग जाति-पाँति के बन्धन को छोड़ देते हैं। वल्लभाचार्य के शिष्यों में सभी जाति के भक्त थे।

मन बच क्रम सन भाउ कहत हों मेरे स्याम धनी।
सूरदास प्रभु तुमरी भक्ति लगि तजी जाति अपनी।[1]

सूर-सारावलि—सूर-सारावलि ग्रन्थ में सूरदास ने इस ग्रन्थ की रचना के समय अपनी आयु का उल्लेख किया है—

गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरष प्रवीन।[2]

इस पंक्ति से विदित होता है कि कवि ने 'सूरसागरसारावलि' को अपनी ६७ वर्ष की आयु में लिखकर समाप्त किया था। इसी ग्रन्थ के अन्त में कवि लिखता है —

सरस समतसर लोला गावै युगल चरण चित लावै।
गर्भवास बंदीखाने में सूर वहुरि नहि आवै।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में सूरदास ने ग्रन्थ की रचना के संवत् को 'सरस' संवत् कहा है। बाबू राधाकृष्णदास ने सूरसागर की भूमिका में स्व० पंडित सुधाकर द्विवेदी के मत से 'सरस' के स्थान पर 'षरस'[4] पाठ का अनुमान किया और उसके अनुसार उन्होंने इस ग्रन्थ का रचना-काल संवत् १५६० अनुमान किया, परन्तु उन्होंने फिर स्वयं इस मत को अस्वीकार कर दिया।[5]

संवत्सरों के ६० नामों में से 'सरस' नाम का कोई सवत्सर नही होता। 'सरस' के अर्थ यदि ६० ही लिये जायँ तो उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ यह भी हो सकता है,—'साठों संवत्सरो में यानो सदैव (जैसे आठो पहर का अर्थ निरन्तर होता है) भगवान् की लीला गावे गे।' लेखक का विचार है कि 'सरस संवत्सर' कह कर सूर ने किसी सवत् विशेष का निर्देश नही किया।

कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सव ही भ्रम भरमायो।
श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद वतायो।

१—सूरसागर, पृष्ठ १७ वें० प्रे०, सं० १९६४ संस्करण।
२—सूरसागर, सारावलि, पृ० ३४, वें०, संस्करण सं० १९६४।
३—सूरसागर, सारावलि, पृ० ३८, वें० प्रे०, संस्करण सं० १९६४।
४—सरस-षरस, (ष—० रस—६)—६०।
५—सूरसागर की भूमिका, सूरदास का जीवन-चरित्र, पृष्ठ २, राधाकृष्णदास-कृत।

ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बन्द ।
ताको सार सूरसारावलि गावत अति आनन्द ।[1]

इन पक्तियो मे कवि कहता है,—"आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के कर्म, योग, ज्ञान और उपासना के जितने मार्ग है, उन सब मे मैं भ्रमता फिरा, किसी से मेरा भ्रम नही गया। जब श्री वल्लभाचार्य गुरु ने मुझे भगवान् की लीला का रहस्य समझाया तब मुझे शान्ति मिली। तभी से मैंने हरि की लीला का गान किया और एक लाख पदो की रचना की। उन्ही पदो के सारस्वरूप यह सारावलि है जिसको मैं आनन्दपूर्वक गाता हूँ।"

इससे विदित होता है कि सूरदास के गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी थे तथा उन्होंने एक लाख पद लिखने के बाद सूरसारावलि की रचना की।

साहित्यलहरी—साहित्य लहरी ग्रन्थ मे सूरदास जी का नीचे लिखा एक आत्म-विषयात्मक पद है जिससे 'साहित्यलहरी' की रचना का सवत् ज्ञात होता है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख,
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल संवत् पेख।
नन्दनन्दन मास छै ते हीन त्रितिया वार।
नन्दनन्दन जनम ते है बान सुख आगार।
तृतीय ऋक्ष सुकर्म योग विचारि सूर नवीन।
नन्दनन्दन दास हित साहित्यलहरी कीन। १०९[2]

१—सूरसागर, वें० प्रे०, सूर सारावलि पृ० ३८।

२—मुनि = ७, रसन = रसना = १, रसना के रस = ६, दसन गौरी नन्द को = १, क्योंकि संवत्-गणना में संख्या की गति उल्टी ली जाती है, इसलिए सं० १६१७ हुआ। नन्दनन्दन मास = वैशाख मास, छै ते हीन तृतीया = अक्षय तृतीया। नन्दनन्दन जनम ते है बान = कृष्ण जन्म के दिन बुधवार से पाँचवाँ (बान = ५) दिन-रविवार। तथा तृतीय ऋक्ष = तीसरा नक्षत्र कृत्तिका। सुबल = बहुत शक्तिवान = प्रभव। देखिये साहित्यलहरी, छन्द नं० १०९, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संगृहीत।

नोट—हिन्दी के कुछ विद्वानों ने "मुनि पुनि रसन के रस लेख, दसन गौरीनन्द को सुबल संवत् पेख" पंक्तियों का अर्थ संवत् १६०७ किया है। रसन का अर्थ रस + न = रस से हीन = छूँछ = शून्य उन्होने किया है। कुछ विद्वानो ने 'पुनि' पाठ के स्थान पर 'सुन' पाठ लेकर उसका अर्थ शून्य लिया है और 'रसन के रस' के अर्थ ६ लेते हुए 'रसन' को केवल रसों की संख्या का संकेतकर्ता ही माना है। पण्डित

इस पद मे दी हुई सूचना के अनुसार सूरदास ने सुबल संवत् १६१७, वैसाख मास अक्षय तृतीया तिथि, रविवार को कृत्तिका नक्षत्र मे साहित्यलहरी ग्रन्थ 'नन्दनन्दन दास हित' बनाया।

'नन्दनन्दन दास हित' के दो अर्थ हो सकते है—१—कृष्ण के भक्तो के लिए, २—दूसरा अर्थ नन्दनदास के लिए। कॉकरौली, विद्या—विभाग के भगवदीय श्री द्वारिका दास जी का मत है कि जब नन्ददास गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण आये, तब गोस्वामी जी ने उन्हे सूरदास जी का सत्सग दिया। तभी नन्ददास के पाण्डित्य के मद को चूर्ण करने तथा उनको मानसिक एकाग्रता प्राप्त कराने के लिए सूरदास ने दृष्टकूट पदो का सग्रह बनाकर उनको दिया। इस अनुमान का कोई विशेष प्रमाण नही है, परन्तु 'नन्दनन्दनदास' शब्द नन्ददास नाम का अनुमान अवश्य देता है। सम्भव हो सकता है कि नन्ददास जी अपने सम्प्रदाय मे नन्दनन्दनदास के नाम से भी सम्बोधित किये जाते रहे हो, वैसे नन्ददास, नन्दनन्दनदास तो थे ही।

मुंशीराम शर्मा जी ने 'सूर सौरभ' में, 'रसन' का अर्थ २ लेते हुए उक्त पंक्ति में से संवत् १६२७ वि० निकाला है। उन्होंने यह भी कहा है कि गणना से संवत् १६२७ में वैसाख मास शुक्ल तीज को 'रविवार' दिन पडता है तथा 'सुबल' का अर्थ वृषभ है जो संवत् १६२७ मे पड़ा था : इस प्रकार साहित्यलहरी ग्रन्थ की रचना शर्मा जी ने संवत् १६२७ में मानी है।

लेखक ने भी उक्त पंक्ति का तात्पर्य पहले संवत् १६०७ से ही समझा था। परन्तु लखनऊ विश्व-विद्यालय के गणित-विभाग के विद्वान् पंडितों से गणना कराने पर तथा इण्डियन कलेण्डर के देखने पर, बाद को उसे ज्ञात हुआ कि उक्त पंक्ति का तात्पर्य संवत् १६१७ से है। ग्रहलाघव (ग्रह लाघवकारण—गणेश दैवज्ञ निर्मित, प्रकाशक वें० प्रेस बम्बई, संवत् १६८१ वि० पृ० ८ तथा ११) के अनुसार 'अहर्गण' की गणना करने पर ज्ञात होता है कि १६१७ विक्रमी संवत् में वैसाख शुक्ल अक्षय तृतीया, 'रविवार' के दिन पड़ी थी तथा इण्डियन कलेण्डर (Indian Calendar by Robert Sewell and Sankara Bal Krishna Dikshit–London 1896 Tables, Table No. I, page LXXX) टेबल नं० १ पृ० ८० के अनुसार संवत् १६१७ का नाम "प्रभव" था जिसका अर्थ 'शक्तिशाली' अथवा सुबल है। ग्रहलाघव ग्रन्थ के अनुसार गणना से यह भी ज्ञात होता है कि सम्वत् १६०७ के वैसाख शुक्ल में तृतीया तो रविवार को थी, परन्तु सम्वत् का नाम पिङ्गल था जिसका किसी भी प्रकार से सुबल अर्थ नहीं होता। इसी गणना से संवत् १६२७ वि० में वैसाख शुक्ल तृतीया का दिन बृहस्पतिवार आता है और संवत् 'ईश्वर' नाम का पड़ता है जिसका अर्थ 'सुबल' लेना बहुत अच्छा और स्पष्ट नहीं जँचता। 'सुबल' का अर्थ प्रभव स्पष्ट है।

सूरदास के दृष्टकूट पदो मे एक पद उनके वंश और उनकी जाति का परिचय देनेवाला भी साहित्यलहरी के सम्पादको ने दिया है। उस पद में बताया गया है कि सूरदास जी चन्द्र कवि के वंशज थे। उस पद का अर्थ है,—"पहले एक पृथु (विशाल) अथवा पृथु के यज्ञ से एक महान् अद्भुत पुरुप उत्पन्न हुआ।[1] ब्रह्मा ने विचारपूर्वक उसका नाम ब्रह्मराव रखा। देवी ने उसे दुग्धपान कराया। शिवादि देवताओ ने देवी पर प्रसन्न होकर कहा कि यह पुत्र अत्यन्त श्रेष्ठ होगा। देवताओ के आर्शीर्वाद से उसी वंश में चन्द नाम का एक प्रशंसनीय व्यक्ति हुआ जिसको पृथ्वीराज चौहान ने ज्वाला देश दान मे दिया। उस जगत्-प्रसिद्ध कवि चन्द के चार पुत्र हुये। दूसरे पुत्र गुणचन्द के शीलचन्द और शीलचन्द के पुत्र वीरचन्द हुये जो रणथम्भौर के राजा हम्मीरदेव के राजकवि बने। इनके वंश मे हरिचन्द हुये। उसके पुत्र ने आगरे आकर गोपाचल[2] मे निवास किया; उसके सात पुत्र हुये—कृष्णचन्द, उदारचन्द, रूपचन्द, बुधचन्द, देवचन्द, प्रकाशचन्द[3] और सूरजचन्द। इनमे से प्रथम छै बादशाह के साथ लडाई मे वीर-गति को प्राप्त हो गये और सातवे सूरज चन्द जो अन्धे थे, रह गये। 'एक दिन मैं', सूरजचन्द कहता है, 'कुएँ मे गिर गया। मेरी पुकार किसी ने न सुनी। सातवे दिन यदुपति श्रीकृष्ण ने आकर मुझे निकाला और मेरे नेत्र खोलकर मुझसे वरदान माँगने को कहा। मैने कहा—'प्रभु ! मैं आपका रूप देखकर और कोई रूप न देखूं।' यह सुनकर कृष्ण ने कहा 'ऐसा ही होगा। दक्षिण के प्रवल ब्राह्मण से तेरे शत्रुओ का नाश होगा और तेरी बुद्धि और विद्या अचल रहेगी।' कृष्ण भगवान् ने मेरे सूरदास, सूर, सूरजदास नाम रक्खे। और उसी समय वे अन्तर्धान हो गये। मैने फिर व्रजवास की इच्छा की और गोस्वामी विट्ठलनाथ ने मेरी अष्टछाप मे

१—उपर्युक्त भाव को लिए हुए कवि गङ्ग का एक कवित्त बताया जाता है जो इस प्रकार है—

प्रथम विधाता ते प्रकट भये बन्दी जन,
पुनि पृथु यज्ञ ते आभा सरसात है।
मानो सूत शौनकन सुनत पुरान रहे,
यज्ञ को बखाने अति सुख बरसात है।
चन्द चहुआन के केदार गौरी शाह जू के,
गङ्ग अकबर के बखाने गुन गात है।
जानत अदेयदेव निगम पुरान जानै,
आदर ब्रह्म भट्टन को जगत में विख्यात है।

२—गोपाचल ग्वालियर के प्राचीन किले के स्थान को भी कहते हैं तथा गोपाचल गोवर्द्धन पर्वत को भी कहा जाता है।

३—प्रबोधचन्द्र पाठान्तर।

स्थापना की। मैं पृथु के यज्ञ का ब्राह्मण अथवा मैं जगात-कुल का ब्राह्मण हूँ और नन्द-नन्दनजी का मोल लिया हुआ गुलाम हूँ।"[1]

१— प्रथम ही प्रथ जगाते (जागते) भे प्राग अद्भुत रूप,
ब्रह्मराव बिचार ब्रह्मा नाम राखि अनूप।
पान पय देवी दयो शिव आदि सुर सुख पाय,
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति सुख पाय।
(शुभ) पार पायन सुरन पितु के सहित अस्तुति कीन,
तासु वंश प्रशंश (शुभ) में भो चन्द चारु नवीन।
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देश,
तनय ताके चार कीन्हें प्रथम आप नरेश।
दूसरे गुणचन्द ता सुत शीलचन्द स्वरूप,
वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप।
रन्तंभोर हमीर भूपति सङ्ग सुख अवदात,
तासु वंश अनूप भो हरचन्द अति विख्यात।
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुत वीर,
पुत्र जनमें सात ताके महाभट गम्भीर।
कृष्णचन्द उदारचन्द जो रूपचन्द सुभाइ,
बुधचन्द प्रकाश चौथो चन्द भें सुखदाइ।
देवचन्द प्रबोध षष्टम चन्द ताको नाम,
भयो सप्तो नाम सूरजचन्द मन्द निकाम।
सो समर कर सहि ते (से) सब गये विधि के लोक,
रहो सूरज चंद दृग से हीन भर वर शोक।
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार,
सातवें दिन आइ यदुपति कियो आप उधार।
दिव्य चख दै कही शिशु सुन (योग) माँग वर जो चाइ,
है कही प्रभु भगति चाहत शत्रु नाश स्वभाव।
दूसरो ना रूप देखों देख राधाश्याम,
सुनत करुणासिंधु भाखी एवमस्तु सुधाम।
प्रबल दच्छिन विप्र कुल ते शत्रु ह्वैहैं नास,
अखिल बुद्धि विचारि विद्यमान माने मास।
नाम राखे है सु सूरज दास सूर सुश्याम,
भये अंतरधान बीते पाछिली निशि याम।

इस ग्रन्थ के लेखक के विचार से यह पद अष्टछाप के सूरदास की रचना नही है और न इसमे दी हुई वंशावली ही प्रामाणिक है। इसके कारण नीचे दिये जाते हैं।

मोहि मनसा इहै व्रज की वसी सुख चित थाप,
श्री गुसाई करी मेरी आठ मध्ये छाप।
विप्र प्रथु के याग को हौं भाव भूर निकाम,
सूर है नन्द नन्द जू को लियो मोल गुलाम।

साहित्य लहरी, भा० हरि०, छन्द नं० ११८, सूरदास, दृष्टकूट, सरदारकवि, नवल कि० प्रे०, छं० नं० ११०

इस पद को हिन्दी के बहुत से विद्वानों ने प्रमाणिक माना है और उसके आधार पर सूरदास को भाट या जगा वंश का निर्णय किया है। जिन लोगो को इस पद की प्रामाणिकता पर सन्देह है उन्होंने इसका अर्थ तो दिया है, परन्तु कारण-सहित अपना कोई निश्चित मत नहीं प्रकट किया। स्वर्गीय पं० रामचन्द शुक्ल ने इस पद को सूरदास-कृत नहीं माना, परन्तु इसके उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिये। श्री राधाकृष्णदास जी ने सूर की जाति आदि के विषय में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द जी की सम्मति का उल्लेख करते हुए 'सूरसागर की भूमिका' मे वंशावली वाले इस पद को प्रमाणिक माना है। डा० रामकुमार वर्मा जी ने अपने इतिहास में इस पद को सन्देह की दृष्टि से देखा है, परन्तु निश्चयात्मक रूप से उन्होंने इसे अप्रामाणिक नहीं कहा। वे कहते हैं,—"इस पद के अनुसार सूरदास भाट कुल में उत्पन्न हुए थे; फिर उसी पद में उनको विप्र कहा है।" यह कथन उनको विरोधात्मक प्रतीत हुआ, इसी आधार से उन्होंने लिखा है,—"अतः यह विरोध पद की प्रामाणिकता में सन्देह उपस्थित करता है।" साथ में डा० वर्मा यह भी कहते हैं,—यदि दृष्टकूट सम्बन्धी यह पद प्रामाणिक है तो इससे यह स्पष्ट होता है कि सूरदास भाट कुल में उत्पन्न हुए थे और राव थे।'

श्री मिश्रबन्धुओं ने अपने ग्रन्थ 'नवरत्न' में इस पद को प्रक्षिप्त माना है। ('हिन्दी नवरत्न' पृष्ठ २२६, सूरदास) उन्होंने कहा है,—"प्रबल दच्छिन विप्र कुल ते शत्रु ह्वैहै नास" से दक्षिण के पेशवाओं की ओर सङ्केत है जो सूर के दो सौ वर्ष बाद हुये और पेशवाओं के बाद ही यह पद सूर की रचनाओं में जोड़ा गया है। दूसरे, यह पद चौरासी वार्ता तथा कवि मियाँसिह के कथानुसार सूर के ब्राह्मण होने की सूचना के विरुद्ध पड़ता है। इन्हीं दो प्रमाणो से मिश्रबन्धुओ ने इस पद को प्रक्षिप्त कहा है। इन्हीं दो कारणों के आधार पर डाक्टर जनार्दन मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'सूरदास' में इस पद को प्रक्षिप्त माना है। ('सूरदास', डाक्टर जनार्द मिश्र कृत पृ० ६) मुंशी देवीप्रसाद ने सूर के इस पद को प्रमाणिक मानकर सूरदास को 'भाट' और 'राव' लिखा है। (श्री सूरदास का जीवनचरित्र पृ० ४।)

(i) सरदार कवि की टीकावाली साहित्यलहरी के प्रथम भाग तथा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा संगृहीत साहित्यलहरी की प्राचीन प्रति के, जिसका आधार सरदार कवि ने भी सवत् १९०४ मे अपनी टीका मे लिया था, देखने से ज्ञात होता है कि परम्परागत साहित्य लहरी वस्तुतः "मुनि पुनि रसन के रस लेख" वाले पद पर समाप्त हो जानी चाहिए। कवि या लिपिकार बहुधा ग्रन्थ-समाप्ति का समय तथा उसके लिखने का कारण ग्रन्थ के अन्त मे ही दिया करते है। लेखक का ऐसा विचार है कि 'मुनि पुनि' वाले पद के बाद के सब पद परम्परागत साहित्यलहरी मे प्रक्षिप्त है। इन प्रक्षिप्त पदो मे, जैसा कि सरदार कवि ने अपनी टीका के अन्त मे स्वय कहा है,[1] कुछ सूरसागर से ही छाँट कर दृष्टकूट पद मिलाये गये हैं और कुछ दो एक लिपिकार अथवा किसी टीकाकार ने अपनी ओर से सूर नाम मे बना कर रख दिये है। सरदार कवि ने साहित्यलहरी में अपनी ओर से मिलाए हुए ६३ पदो को दूसरे भाग मे दिया है; परन्तु बाबू रामदीन सिंह जी[2] हरिश्चन्द वाली साहित्यलहरी मे कहते है कि सरदार कवि ने सूरसागर से छाँटकर कुछ पद प्रथम भाग मे भी मिलाये है। इस प्रकार मूल साहित्यलहरी मे पदो का मिलना बहुत समय से चला आ रहा है। सूर की वंशावली वाला पद 'मुनि पुनि रसन के रस लेख' पद के बाद मे प्राचीन प्रति मे आता है।

(ii) सूरदास के गुरु श्रीवल्लभचार्य जी थे, जिनकी शरण मे वे गऊघाट पर गये थे। यह बात ८४ वार्ता से सिद्ध है तथा सूर ने स्वयं सूरसारावलि के एक पद कहा है कि श्रीवल्लभाचार्य गुरु ने उनका भ्रम दूर किया और उनको भगवान् की लीला का भेद बताया।[3] उक्त वशावली वाले पद मे कहा गया है कि सूरदास ब्रज पहुँचे और वहाँ श्रीगोस्वामी जी (विट्ठलनाथ जी) ने उनकी अष्ठछाप मे गणना की। वास्तव मे, यदि यह पद सूर का होता तो सूरदास गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के साथ अपने गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी का उल्लेख अवश्य करते। वस्तुत. सूर की शरणागति के समय मे तो श्रीविट्ठलनाथ जी का जन्म भी नही हुआ था। इस बात को आगे सिद्ध किया जायगा। सूर की अष्टछाप मे गणना गोस्वामी जी के शिष्य, चार भक्त कवियों के ख्याति मे आने के बाद हुई थी।

(iii) 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' की प्राचीन प्रामाणिक प्रतियो मे सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है और किंवदन्ती भी ऐसी ही चली आती है।[4] इस पद मे दिये

१—सूरदास का दृष्टकूट सटीक, नवलकिशोर प्रेस, पृ० १४२, सरदार कवि।

२—साहित्यलहरी खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, पृ० १९ तथा पृ० ३२, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

३—सूरसारावलि, सूरसागर, वें० प्रे०, पृ० ३८।
श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला-भेद बतायो।

४—चौरासी वार्ता—अष्टछाप वार्ता-रहस्य, पृ० १, काँकरोली।

हुए सूरदास भाट या राव कहे गये हैं। सारस्वत ब्राह्मणो मे ब्राह्मराव या भाट नही सुने जाते हैं। इस विरोध को देखते हुए लेखक इस पद को ही प्रक्षिप्त मानने को बाध्य होता है। वार्ता की प्रामाणिकता पर आगे विचार किया जायगा। लेखक ने उसे प्रामाणिक माना है।

(iv) सूरदास ने अपने एक पद मे इस भौतिक जीवन की ओर से उपेक्षा भाव दिखाया है और कहा है कि उस हरि-भक्ति की आध्यात्मिक शान्ति के सामने लोक-संग्रह की सांसारिकता का मूल्य ऐसा ही है जैसे अमूल्य मणि के सामने काँच का टुकडा। वे यह भी कहते हैं कि श्याम से उन्होंने नाता जोड़ कर अपनी जाति ही त्याग दी—

मेरे जिय सू ऐसी वनी।
छाँड़ि गुपाल और जो जाँचौ तौ लाजै जननी।
कहा काँच की संग्रह कीजै त्याग अमोल मनी।
विष को मेरु कहाँ लौ कीजै अमृत एक कनी।
मन बच क्रम सत भाउ कहत हौ मेरे श्याम धनी।
सूरदास प्रभु तुम्हारी भक्ति लगि तजी जाति अपनी।[1]

प्राकृत जनो का गुण-गान छोड़ केवल ईश्वर की महिमा का वर्णन करनेवाले सूर ने अपनी वंशावलि और जाति आदि देने के वारे मे विचार भी किया होगा, यह वात सङ्गत नही प्रतीत होती। वे तो अपने भौतिक जीवन और परिचय से विल्कुल उदासीन ही थे। हमारे साहित्य के महारथी महात्मा तुलसीदास और कवीरदास भी इसी प्रकार अपने परिचय के बारे मे मौन रहे हैं।

(v) 'चौरासी वार्ता' पर श्रीहरिराय जी ने 'भाव-प्रकाश' लिखा था जिसकी प्राचीन प्रति सवत् १७७२ की काँकरौली विद्या-विभाग से छप चुकी है और जिसकी संवत् १८७० की प्रति लेखक के पास है। उस '८४ वैषखन की वार्ता—भाव प्रकाश ग्रन्थ' में हरिराय जी ने भी सूरदास जी की जाति, सारस्वत ब्राह्मण लिखी है। हरिराय जी वड़े प्रकाण्ड विद्वान्, व्रज-भाषा-साहित्य के मर्मज्ञ, अनेक ग्रन्थो के रचयिता तथा वहुश्रुत साम्प्रदायिक रहस्य के ज्ञाता थे। यदि यह पद सूर का होता तो इसका वे अवश्य उल्लेख करते। चौरासी वार्ता में इस छन्द से आये हुये एक भी वृत्तान्त का उल्लेख नही है, न तो उनकी उक्त वंशावली का, न सूर के छह भाइयों का वादशाह के साथ युद्ध मे मारे जाने का, न कूप-पतन और न वरदान की ही घटना का। ज्ञात होता है कि यह पद सरदार कवि तथा भारतेन्दु वावू हरिश्चन्द जी से पहिले साहित्यलहरी के किसी टीकाकार अथवा लिपिकार ने मिलाया था।

१—सूरदास, पृ० १७, वें० प्रे०

जब हम परमानन्ददास की रचनाओं में आत्मचारित्रिक उल्लेखो की ओर ध्यान देते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि कवि ने स्वयं अपना यथेष्ट परिचय अपने ग्रन्थों मे, नहीं दिया है। कहीं-कही अपना भक्तिभाव प्रकट करते हुए गुरु श्री वल्लभाचार्य जी का, अपने मन की वैराग्य-वृत्ति का तथा अपने समय की धार्मिक परिस्थितियों का उल्लेख कवि ने अवश्य किया है, परन्तु ये उल्लेख बहुत ही अल्प और अपर्याप्त हैं। व्यक्तिगत कुटुम्ब आदि का परिचय उन्होंने नही दिया है; कुछ साधारण ढङ्ग के उल्लेख ही उनके परमानन्दसागर मे मिलते हैं। उनका सार नीचे दिया जाता है।

परमानन्ददास

अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी का उल्लेख करते हुये तथा उनकी महिमा गाते हुये परमानन्ददास जी कहते हैं,—"प्रातःकाल उठकर श्री लक्ष्मण-सुत श्रीवल्लभप्रभु का गुण-गान करना चाहिए, जो भगवान् की भक्ति का दान देते हैं।"[1] आगे एक और पद में कवि ने व्रज-प्रेम और वल्लभ-कुल में अपनी भक्ति का भाव प्रकट किया है। रसेश श्रीकृष्ण की भक्ति मे आत्मिक सन्तोष प्रकट करते हुये कवि कहता है,—"रस रूप भगवान् की भक्ति सम्बन्धिनी रस-रीति को केवल व्रजवासी ही जानते हैं, जिनके हृदय मे श्रीकृष्ण के चरण-कमलो में प्रीति के अतिरिक्त अन्य किसी भाव का समावेश ही नही हो पाता। जो लोग माया की यवनिका अथवा भित्ति की ओट में रहते हैं, वे व्रज-भक्तो की प्रेम-भक्ति के रस

१— प्रात समय उठि करिये श्री लक्ष्मण-सुत-गान।
प्रकट भये श्री वल्लभ प्रभु देन भक्ति को दान।
श्री विट्ठलेश महाप्रभु रूप के निधान।

× × ×

लेखक के निजी, परमानन्ददास जी के पद-संग्रह से, पद नं० ३५६

यथा— राग बिलावल
यह माँगों गोपीजनवल्लभ।
मानुष जन्म और हरि सेवा, व्रज बसिवो दीजै मोहि सुल्लभ।
श्री वल्लभ-कुल को होंहू चेरो वैष्णव जन को दास कहाऊँ।
श्री यमुना जल नित प्रति न्हाऊँ मन क्रम वचन कृष्ण गुन गाऊँ।
श्री भागवत श्रवणसुन नित(प्रति)इन त्यजि चित कहूँ अन्त न जाऊँ
परमानन्ददास यह भावत नित निरखौं कबहूँ न अघाऊँ।
—ले० के नि०, परमा०, पद सं० से, पद नं० ३९१।

को नही जान सकते। यह दास परमानन्द गुरु के प्रसाद से कुछ-कुछ उस रसकी प्रतीति पाता है।"[1]

एक पद मे अपनी अनन्य भक्ति के विषय मे कवि ने गोपी रूप वन कर अपने भाव प्रकट किये हैं जिसमे उसने अपने चित्त की वैराग्य-वृत्ति का उल्लेख किया है। "मेरा मन गोविन्द से लगा है; इसलिए अन्य किसी (व्यक्ति अथवा देवता) की ओर मेरा मन नही जाता। नित्य यही उत्कण्ठा रहती है कि कोई ब्रजनाथ से मुझे मिला दे। आहार, विहार और शरीर के सब सुख छोड़ दिये। परमानन्ददास घर मे ऐसे रहता है जैसे पथिक किसी के घर मे ठहरा हो।"[2] इससे ज्ञात होता है कि परमानन्ददास किसी समय घर में ही रहते हुये कृष्ण-भक्ति करते थे।

एक और पद मे कवि कहता है कि मेरे मन को तो सब देवताओ के देवता श्याम-सुन्दर अच्छे लगते है। परमानन्ददास गोपी तथा राधिका-वल्लभ श्रीकृष्ण की उपासना करता है।[3] इस पद मे कवि ने अपनी बालकृष्ण की उपासना के अतिरिक्त कृष्ण के राधावल्लभ किशोर रूप की भक्ति का भी परिचय दिया है।

१—ब्रजवासी जाने रस रीति
जाके हृदे और कछु नाही नन्दसुवन पद प्रीति,
करत महल में टहल निरन्तर जाम जात सब बीति।
सर्व भाव आत्म निवेबन रहे तृगुनातीति,
इनकी गति और नहिं जानत बीच जवनिका मीति।
कछुक लहत दास परमानन्द गुरु प्रसाद परतीति,
—लेखक के निजी, परमानन्ददास पद संग्रह से, पद नं० २८०।

२—मेरो मन गोविन्द सों मान्यो, ताते और न जिय भावे,
जागत सोवत यह उत्कण्ठा कोउ ब्रजनाथ मिलावे।
बाढ़ी प्रीति आनि उर अन्तर चरन कमल चित दीनो,
कृष्ण विरह गोकुल की गोपी घर ही में बन कीनो।
छाँड़ि अहार विहार और देह सुख, औरे चाह न काऊ,
परनानन्द वसत है घर में जैसे रहत बटाऊ।
—ले० के निजी, परमा० पद सं०, पद नं० ३३२।

३—मोहि भावे देवाधिदेवा,
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन गोकुलनाथ एकमेवा
तीन देवता मुख्य देवता, ब्रह्मा, विष्णु अरु महादेवा।
जे जानिए सकल वरदायक, गुन विचित्र कीजिये सेवा।
सङ्ख चक्र सारङ्ग गदाधर रूप चतुर्भुज आनंदकन्दा।
गोपीनाथ राधिका वल्लभ ताहि उपासत परमानंदा।
—ले० के नि०, परमा० पद सं०, पद नं० ३०३।

एक पद में कवि ने अपने समय के दम्भ से ज्ञानी बननेवाले संन्यासियों का उल्लेख किया है। वह कहता है—"यदि गोपियो के प्रेम की पद्धति और भागवतपुराण का प्रचार न होता तो सब कोई औवड़-पन्थी हो जाते और गँवार ही ज्ञानोपदेश के अधिकारी होते। इस कालिकाल में बारह वर्ष की ज्ञानहीन अवस्था में ही लोग दिगम्बर बनने का ढोंग रचते हैं।[1] ज्ञानहीन लोग संन्यासी बन रहे हैं, कुछ लोग भस्म लगाकर अपने को उदासी कहते हैं। पाखण्ड धर्म चारो ओर इस कलियुग में बढ रहा है और श्रद्धा-धर्म का लोप हो गया है। वेदपाठी ब्राह्मणों की जब यह दशा है तो फिर और किस पर कोप किया जाय?"

उपर्युक्त उल्लेखों के अतिरिक्त कवि ने अपनी दीनता, ईश्वर के प्रति विनय और मन की चेतावनी से सम्बन्ध रखनेवाले भाव भी अनेक पदो में व्यक्त किये है।

कुम्भनदास

कुम्भनदास जी ने अपनी कृतियो में आत्मचारित्रिक उल्लेख बहुत ही अल्प किये हैं। कुम्भनदास ने कुछ पद अपने गुरु, श्रीवल्लभाचार्य जी की प्रशंसा में लिखे है और कुछ गुरु के कुल और गुरु-भाई श्रीविट्ठलनाथ जी की स्तुति में हैं। इन पदों से केवल इनके गुरु और गुरुकुल का ही परिचय मिलता है। अपनी जाति, कुल, कुटुम्ब आदि के विषय में कवि ने स्वयं कुछ नहीं कहा।

श्री वल्लभाचार्य जी और उनके पुत्र और अपने गुरुभाई श्रीविट्ठलनाथ जी के बधाई के पदों को कुम्भनदास आदि भक्तकवि, आचार्य जी और गुसाँई जी के जन्म-दिवसों पर गाया करते थे। कुम्भनदास जी के निम्नलिखित पद मे आचार्य जी की बधाई के अन्तर्गत, उनके बाल-रूप का वर्णन है—

इलम्म[2] श्री वल्लभ लालहि झुलावे।
लाल झुलावे मन हुलसावे प्रमुदित मंगल गावे।

१—माधो या घर बहुत धरी
कहन सुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन के प्रेम न होतो अरु भागवत पुरान।
तौ सब औघड़ पंथिहि होतो कथत गवैया ज्ञान।
बारह बरस को भयो दिगम्बर ज्ञानहीन संन्यासी।
खान पान घर घर सबहिन के भस्म लगाय उदासी।
पाखण्ड दम्भ बढ्यो कलियुग में, श्रद्धाधर्म भयो लोप।
परमानन्द वेद पढ़ बिगर्यो का पर कीजै कोप।
—ले० नि०, परमानन्द पद सं०, पद नं० ४८६।

२—इलम्मा—श्री वल्लभाचार्य जी की माता का नाम था।

गृह कर डार पाटकी करसों मन ही मन हुलसावे ।
कुम्भन प्रभु की छवि निरखत ब्रज-जन मंगल गावे ।[1]

इस पद की अन्तिम पक्ति से इलम्मा के पुत्र वल्लभलाल के प्रति कवि का स्वामि-भाव प्रकट होता है ।

आचार्य जी की वधाई के अतिरिक्त कुम्भनदास ने श्री विट्ठलनाथ जी की बहुत प्रशंसा की है और उनके रूप में अपने इष्ट भगवान् कृष्णचन्द्र का ही रूप देखा है—

प्रकटे श्री विट्ठलेश लाल गोपाल ।
कलियुग जीव उधारन कारन संत जनन प्रतिपाल ।
द्विज कुल मडन तिलक तैलंग श्री वल्लभ कुल जो अति रसाल ।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्धन धर नित्य उठ नेह करत ब्रज बाल ।[2]

कृष्णदास

कृष्णदास ने भी अन्य भक्त कवियो की तरह आत्म-चारित्रिक उल्लेख अपनी रचना में नही किये। उनके पदों से उनकी भक्ति का परिचय अवश्य मिलता है। कुछ पदों मे उन्होंने अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य[३] जी, गुरुभाई श्रीविट्ठलनाथ जी[४]

१—लेखक के निजी, कुम्भनदास पद संग्रह से, पद नं० ९५ ।

२—लेखक के निजी, कुम्भनदास पद संग्रह से, पद नं० ९६ ।

३— राग आसावरी-चचरी ताल ।

अहो माई काहे को इन लोगनि बरजत,
भावे सो कहन देउ किन मित्र हू कहा कलियुग ही लरजत ।

× × ×

अङ्कुर कबहुं न होय धान के जो बोइये अवट के अरजत,
कृष्णदास गिरधर के द्वारे श्रीवल्लभ पद रज बल गरजत ।

—ले० नि०, कृष्णदास पद सं०, पद नं० ५५ ।

४— जय जय श्रीवल्लभ नन्दन,
सुर नर मुनि जाकी पद रज बन्दन ।
मायावाद किये जु निकन्दन,
नाम लिये काटत भव फ़न्दन ।
प्रकट पुरुषोत्तम चरचित चन्दन,
कृष्णदास गावत श्रुति छन्दन ।

—ले० नि०, कृष्णदास पद सं०, नं० १३२ ।

तथा राग विभास ।

श्रीविट्ठलनाथ बसत जिय जाके ताकी रीति प्रीति छवि न्यारी ।

—ले० नि०, कृष्णदास पद सं०, पद नं० १६० ।

तथा गुसाई जी के सात[1] पुत्रों की महिमा का गान भी किया है।

नन्ददास

नन्ददास के वंश, कुल, जाति, जन्म-स्थान आदि के विषय मे अब तक के उनके उपलब्ध ग्रन्थों में कोई उल्लेख नही मिलता। अपने शिक्षा-गुरु के विषय मे भी उन्होंने कुछ नही कहा है। साम्प्रदायिक गुरु श्री विट्ठलनाथ जी, ब्रज-प्रेम और यमुना जी की महिमा मे उन्होंने अनेक पद लिखे है—

राग विभास

प्रात समें श्री वल्लभ सुत को, वदन कमल को दर्शन कीजे।
तीन लोक वन्दित पुरुषोत्तम, उपमा काहि (जो) पटतर दीजे॥
श्रीवल्लभ सुत कुल उदित चन्द्रमा, लखि छबि नैन चकोरन पीजे।
'नन्ददास' श्री वल्लभ सुत पर, तन मन धन न्योछावर कीजे॥[2]

उपर्युक्त पद से नन्ददास की गुरु-भक्ति तथा वल्लभाचार्य जी के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी के गुरु होने का परिचय मिलता है।

और भी—

राग रामकली

श्री वल्लभसुत के चरण भजो।
नन्द सुकुमार भजन सुखदायक पतितन पावन करन भजो।
× × ×
पुष्टि मर्याद, भजन सुख सीमा, निज जन पोषन करन भजो।
'नन्ददास' प्रभु प्रकट भए दोउ, श्री विट्ठलेश गिरधरन भजो।[3]

१— जै श्रीवल्लभनन्दन गाऊँ,
श्रीगिधरन[1] सदा सुखदायक श्रीगोविन्द[2] सिर नाऊँ।
बालकृष्ण[3] बालक सङ्ग बिहरत, गोकुलनाथ[4] लड़ाऊँ,
श्रीरघुनाथ[5] प्रताप विमल जसु श्रवनन सदा सुनाऊँ।
गोकुल में यदुनाथ[6] बिराजत, लीला पार न पाऊँ,
कृष्णदास को करो हो कृपा, घनश्याम[7] चरण लपटाऊँ।
ले० नि०, कृष्णदास पद सं० से, पद नं० ११३।
इन सात बालकन' की बधाई के अन्य पद भी कृष्णदास के उपलब्ध हैं। जैसे कीर्तन संग्रह, भाग २, वसन्त धमार, पृ० १८१, लल्लू भाई छगनलाल देसाई।

२—'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ३४१, तथा पुष्टिमार्गीय पद संग्रह, भाग ३, पृ० ६, संग्रहकर्त्ता वैष्णव ठाकुरदास सूरदास।

३—पुष्टिमार्गीय पदसंग्रह, पृ० ७, संग्रहकर्त्ता वैष्णव ठाकुरदास सूरदास।

इस पद में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि नन्ददास जी पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के थे और उनकी भक्ति विट्ठलनाथ जी के सिवाय उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरधर जी मे भी थी, जिनका जन्मकाल संवत् १५९७ माना जाता है। नन्ददास ने उक्त पद मे उनकी भी वन्दना की है।

और भी— राग विभास।

प्रात समय श्री वल्लभ सुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊँ।
सुन्दर सुभग वदन गिरधर को, निरखि निरखि मैं दृगन सिराऊँ।
मोहन मधुर वचन श्रीमुख के श्रवननि सुनि मुनि हृदय बसाऊँ।
तन मन प्राण निवेदन करिके सकल अपुनपौ सुफल कराऊँ।
रहौ सदा चरनन के आगे महा प्रसाद सो जूठन पाऊँ।[1]

उपर्युक्त पद से विट्ठलनाथ जी के प्रति अनन्य भक्ति के अतिरिक्त यह भी विदित होता है कि नन्ददास जी श्री विट्ठलनाथ जी के पास ही रहा करते थे और उनके कृपा-पात्र थे, यथा, 'रहौं सदा चरनन के आगे महाप्रसाद सो जूठन पाऊँ।'

अपने व्रज-प्रेम के विषय मे कवि ने एक पद मे कहा है—

जी गिरि रुचै सो वसो श्री गोवर्धन, ग्राम रुचै तो वसौ नन्दराम।
नगर रुचै तो वसो श्री मधुपुरी, सोभा सागर अति अभिराम।
सरिता रुचै तो वसो श्री यमुना तट, सफल मनोरथ पूरन काम।
'नन्ददास' कानन रुचै तो वसौ भूमि वृन्दावन धाम।[2]

व्रज के स्थानों मे वृन्दा-विपिन, गोकुल और नन्दगाँव नन्ददास को बहुत प्रिय थे। इस बात का प्रमाण उनके अनेक पदों मे मिलता है—

नन्दगाँव नीको लागत री

प्रात समय दधि मथत ग्वालिनी, विपुल मधुर धुनि गावत री।
× × ×
जहाँ वसात सुरदेव महामुनि एको फल नहिं लागत री।
नन्ददास प्रभु-कृपा को इहि फल गिरिधर देखि मन जागत री।[3]

१—पृष्ठ ४३१ 'नन्ददास', शुक्ल, भाग २।

२—इस पद के विषय में '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में उल्लेख है कि नन्ददास ने अपने बड़े भाई महात्मा तुलसीदास को यह पद उनके एक पत्र के उत्तर में लिख कर दिया था, जिसमें उन्होने अपनी व्रजभक्ति का परिचय दिया था।

३—पृ० ४०३ 'नन्ददास', शुक्ल, भाग २।

जमुने जमुने जो गाँवौ।
सेस सहस मुख गावत निश दिन पार नही पावत ताहि पावौ।
सकल सुख देन हार ताते करो उचार कहत हों वार वार भूलि जिन जावौ।
'नन्ददास' की आस जमुने पूरण करी ताते कहूँ घरी घरी चित लावौ।[1]

भाग्य सौभाग्य जमुना जो देरी।
वात लौकिक तजे पुष्टि यमुना भजे, लालगिरधरन को ताहिवर मिले री।
भगवती सङ्ग करि वात उनकी ले सदा सन्निद्ध रहे केलि में री।
'नन्ददास' जो जाहि वल्लभ कृपा करे ताके यमुना सदा वश जो रहे री।[2]

उपर्युक्त दो पदो में श्री यमुना जी की महिमा का वर्णन है। नन्ददास की कृष्ण भक्ति तो उनके पदो तथा और ग्रन्थो मे प्रत्यक्ष तथा सर्वविदित है, पर कुछ पदो मे उन्होंने भगवान् के रामरूप मे भी अपनी आस्था प्रकट की है।[3]

अपने कुछ ग्रन्थों मे नन्ददास ने अपने एक रसिक[4] मित्र का उल्लेख किया है,

---

१—नन्ददास की वार्ता, हस्तलिखित तथा पाठ-भेद से, 'नन्ददास', शुक्क, भाग २, पृ० ४२९।

२—'नन्ददास', शुक्ल, ४३०।

३— रामकृष्ण कहिए उठि भोर।
ओहि अवधेश ओही व्रज-जीवन धनुषधरन औ' माखन चोर।
× × ×
इतमें चरण अहिल्या तारी, उत कुब्जा सों कियो है किलोल।
इतमें जानकी वायें विराजे उत राधे सङ्ग युगलकिशोर।
× × ×
इतमें राज विभीषण दीनो, उग्रसेन कियो अपनी ओर।
नन्ददास के ये दोउ ठाकुर दशरथ सुत वावा नन्दकिशोर।
(पाठान्तर से, 'राग कल्पद्रुम' तथा पं० जवाहरलाल जी का पद संग्रह।)

४—परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आग्या दीनी,
ताही ते यह कथा यथामति भाषा कीनी। (राग पञ्चाध्यायी)
'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १५७।

एक मीत हमसों अस गुन्यौ, मैं नाहका भेद नहि सुन्यो।
× × ×
रस मंजरी अनुसारि कै नन्द सुमति अनुसार,
वरनत वनिता भेद जहँ, प्रेम सार विस्तार। (रसमंजरी)
'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ३९।४०।

और लिखा है,—"इसी मित्र की आज्ञा से अथवा उसके कहने से मैं ग्रन्थ-रचना कर रहा हूँ।" इस मित्र का नाम स्पष्ट रूप से उन्होंने कही नही दिया है। 'दशम स्कन्ध' भी कवि ने अपने इसी मित्र के कहने से लिखा था। 'दशम 'स्कन्ध', 'अनेकार्थ' और 'नाममाला' ग्रन्थो में कवि के कथन से ज्ञात होता है कि उसे संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। मित्र के लिए तथा उन सज्जनो के लिए जिन्हे संस्कृत भाषा का ज्ञान नहीं था, कवि ने 'दशम स्कन्ध' और 'नाममाला, की हिन्दी में रचना की।[1] 'दशम स्कन्ध भागवत' के वहुत से अध्यायो के आरम्भ मे कवि अपने इस मित्र को सम्वोधन करता है। जैसे—"अव अष्टम अध्याय सुनि मित्र, नाम करन मन हरन पवित्र", वल्लभसम्प्रदायी अष्टकवि तथा अन्य पुष्टिमार्गीय वैष्णव उनके समकालीन मित्र तो थे ही, परन्तु इस रसिक मित्र का उल्लेख कवि ने कई स्थानो पर विशेष रूप से किया है। अष्टकवियो में यह मित्र नही हो सकता। क्योकि वह रसिक मित्र सस्कृत का ज्ञाता नही है और वह कृष्ण-भक्ति के रहस्य को जानने के लिए भी उत्सुक है। पुष्टिमार्गीय अष्टकवि सभी विद्वान् थे और वल्लभसम्प्रदायी मार्ग के पूर्ण ज्ञाता थे।

'रूपमञ्जरी' ग्रन्थ मे कवि ने रूपमञ्जरी की एक सहेली का जिक्र किया है। ग्रन्थ के पढने से ज्ञात होता है कि वह सहेली 'इन्दुमती' स्वयं नन्ददास ही है। वाह्य आधारो से ज्ञात होता है कि रूपमञ्जरी एक अति सुन्दरी कृष्ण-भक्तिनी थी। इससे नन्ददास की वहुत

१—'दशम स्कन्ध' के आरम्भ में कवि कहता है—

परम विचित्र मित्र इक रहे, कृष्ण चरित्र सुन्यो सो चहे।
तिन कहि दशम स्कन्ध जो आहि, भाषा करि कछु वरनों ताहि।
सवद संस्कृत के हैं जैसे, मो पै समुझि परत नहिं तैसे।
ताते सरल सुभाषा कीजे, परम अमृत पीजे सुख जीजे।
तासों नन्द कहत है तहाँ, अहो मित्र एती मति कहाँ।
जामें वडरे कवि जन अरुझे, ते वे अजहूं नाहिन सरुझे।
तहां हौं कवन निपट मति मन्द, वौना पहि पकरावहि चन्द।
अरु जु महामति श्रीधर स्वामी, सब ग्रन्थन को अन्तरजामी।
तिन कही यह भागवत ग्रन्थ, जैसे दूध उदधि को मन्थ।

× × ×

तिहि मधि हो केहि विधि अनुसरौं, क्यों सिद्धान्त रतन उद्धरौं।
मित्र कहत है तो यह ऐसे, अहो नन्द तुम कहत हो जैसे।
ए पर जथासक्ति कछु कीछे, अमृत की एक बुन्दहि दीजे।

पाठ भेद से 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १६६।

मित्रता थी। सम्भव है कि यही रूपमञ्जरी कवि का रसिक मित्र हो। इस विषय में निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

श्री चतुर्भुजदास जी ने गुरु-महिमा तथा आचार्य-कुल की बधाई के अतिरिक्त अपने तथा अपनी रचना के विषय में और कोई उल्लेख अपने पदों में नहीं किया। इनके

चतुर्भुजदास

विषय में जो वृत्तान्त इनके पदों से ज्ञात होता है, नीचे दिया जाता है।

निम्नलिखित पद मे कवि ने श्री वल्लभाचार्य जी, अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ जी तथा उनके सातों पुत्रो की स्तुति करते हुए उनके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया है। इस पद से यह भी सिद्ध होता है कि कवि श्री घनश्याम जी के जन्म समय सम्वत् १६२८ वि० तक जीवित था—

श्री वल्लभ सुजसु सन्तत नित्य गाऊँ।
मन क्रम वचन छिनु एक न विसराऊँ।
पुरुषोत्तम अवतार सुकृत फल फलित जगत बन्दन श्री विठ्ठलेश दुलराऊँ।
परसि पदकमल रज निरखि सौदर्य-निधि प्रेम पुलकित कलह कोटिक नसाऊँ।
श्री 'गिरिधरन' देव पति मान मर्दन करन घोष रक्षक सुखद लीला सुनाऊँ।
श्री 'गोविद' ग्वाल संग गाय ले चलत बन रसिक रचना निरखि नैनन सिराऊँ।
श्री 'बाल कृष्ण' सदा सहज बालक दसा कमल लोचन सुहित रुचि बटाऊँ।
भक्ति मारग सुदृढ़ करन गुन रासि व्रज मण्डल श्री 'गोकुल नाथहि' लड़ाऊँ।
श्रीं 'रघुनाथ' धर्म धुरन्धर शोभासिन्धु रूप लहरीनि दुख दूर बहाऊँ।
पतित उद्धरन महाराज श्री 'यदुनाथ' विशद अम्बुज हाथ सिर परसाऊँ।
श्री 'घनश्याम' अभिराम रूप वरषा स्वाँति आस ज्यों रस चातक रटाऊँ।
चतुर्भुजदास प्रभु पर्‌यो द्वारे प्राणपति को सकल कुल चरणामृत भोर उठि पाऊँ।[1]

एक पद में कवि कहता है,—"जब से मैंने श्री विट्ठलनाथ जी को नेत्र भर कर देखा है, तभी से मेरे मन की सब अभिलाषाए पूर्ण होगई हैं। उनकी शरण मे बिना आए सब दिन व्यर्थ ही गये। हे सब सुख के निधान श्री विट्ठलनाथ जी! आप अपनी कृपा मेरे ऊपर सदैव रखिये।"[2] एक और पद मे उन्होंने अपने गुरु विट्ठलनाथ जी तथा श्रीकृष्ण

१—लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पदसंग्रह से, पद नं० ६५।

२— श्री विट्ठलनाथ नैनन भरि देखे।
पूरे मनोरथ भए सब कछु हुती जु जीय अपेखे।
श्री वल्लभ सुत सरन बिना यह लौं दिन गए अलेखे।
दास चतुर्भुज प्रभु सब सुख निधि रहिए कृपा विशेखे।
लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पद सं० से, पद नं० ६७।

भगवान् को एक ही रूप करके देखा है। वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वयं कलियुग के जीवों का उद्धार करने के लिए श्री विट्ठलनाथ जी के रूप में शरीर धारण किया है। उन्होंने लोगो को भक्ति, सेवा-प्रकार और भगवान् के युगल-रूप की लीला का अनुभव सिखाया है।[1]

निम्नलिखित पद कवि ने गोस्वामी विट्ठल नाथ जी के गोलोकवास पर शोक प्रकट करते हुए लिखे हैं, इन से ज्ञात होता है कि चतुर्भुजदास का निधन गुसाँई जी के निधन-समय, स० १६४२ के बाद हुआ था।

फिर ब्रज बसहु श्री विट्ठलेस।
कृपा करि दरसन दिखावहु वे लीला वे वेस।
सङ्ग ग्वाल 'रु गाय गोकुल गाउ करहु प्रवेस।
नन्दराय ज्यो विलसवो सम्पति बहु उदास नरेस।
भक्ति मारग प्रगट करि कलि जननि देहु उदेस।
रच्यो रास विलास वेस गिरि गोप धन देस।
वदन इन्दु ते विमुख नैन चकोर तपत विसेष।
सुधा पान कराय मेटो बिरह को लवलेस।
श्री वल्लभ-नन्दन दु.ख-निकन्दन सुनहु सुचित सन्देस।
चतुर्भुज प्रभु या घोष कुल को हरहु सकल कलेस।[2]

श्री विट्ठलनाथ से प्रभु भए न ह्वैहै।
पाछै सुने न देखे आगे वह सङ्ग फिर न वनैहै।
मानुष देह धरि भरि भक्ति हेत कलिकाल जनमको लैहैं।
को फिर नन्दराय को वैभव ब्रजवासिन विलसैहै।

१— श्री विट्ठलनाथ गोकुल भूप।
भक्त हित कलियुग कृपा करि धरे प्रकट स्वरूप।
सकल धर्म धुरन्धर हरि भक्ति निज दृढ़ जूप।
चरण अम्बुज सिरसि परसत सोष कर अन्ध कूप।
आपु ही सेवा सिखावत, सकत रीति अनूप।
भोग राग सिंगार नाना चरिचि दीप अरु धूप।
चतुर्भुज प्रभु गिरधरन युग वपु लीला अनूप।
नन्दनन्दन श्री वल्लभनन्दन एक मन द्वै रूप।
लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पदसंग्रह से, पद नं० ६६।

२—लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पदसंग्रह से, पद नं० ७०।

को कृतज्ञ करुना सेवक तन कृपा सुदृष्टि चितैहै।
गाय ग्वाल सँग लैकै को फिरी गोकुल गाँव बसैहै।

× × ×

भूषन बसन गोपाल लाल के को सिगारु सिखैहै।
को आरती वारि श्री मुख पर आनँद-प्रेम बढैहै।
मथुरा मंडल खग मृग की को महिमा कहि बरनैहै।
को वृन्दावन चन्द कौ गोविन्द कौ प्रकट स्वरूप बहैहै।

× × ×

श्री वल्लभ सुत दरसन कारन अब सब कोऊ पछितैहै।
चतुर्भुजदास आस इतनी जो सुमिरन जनमु जनमु सिरैहै।[1]

उपर्युक्त उल्लेखो के अतिरिक्त कवि ने विनय के पदो मे[2] श्री गिरिधर लाल के सदैव निकट रहने की कामना कई स्थलो पर प्रकट की है जिनसे कवि की भक्ति की गहनता का परिचय मिलता है—

गोविन्ददास (स्वामी) निम्नलिखित पद मे गोविन्द स्वामी ने श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की महिमा गाई है—

राग नट

जो पै श्री विट्ठल रूप न धरते।
तो कैसेक घोर कलियुग के महापतित निस्तरते।

१—लेखक के निजी, चभुर्भुजदास पद संग्रह से, पद नं० ७१।

२— करत हो सवै सयानी वात।

× × ×

चतुर्भुजदास प्रभु गिरिधरन लाल सङ्ग सदा वसों दिन रात।

लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पदसंग्रह से, पद नं० १०८।

श्याम सुन्दर प्राण प्यारे छिन जिन होउ न्यारे।
नेक की ओट मीन ज्यों तलफत, इन नैनन के तारे।
मृदु मुसिकान बंक अवलोकनि अड़ि चलत सहज में मुढारे।
चत्रभुज प्रभु गिरधर वानिक पर कोटिक मन्मथ वारे।

लेखक के निजी, चतुर्भुजदास पद संग्रह से, पद नं० ७८।

सेवा रीति प्रीति व्रज जन की श्री मुख ते विस्तरते ।
श्री विट्ठल नामु-अमृत जिन लीनो रसना सरस सुफलते ।
कीरति विसद सुनी जिनि श्रवणन बिश्व विषे परहरते ।
गोविन्द वलि दरसन जिनि पायो उमगि उमगि रस भरते ।[१]

निम्नलिखित पदो मे श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ की महिमा का वर्णन कवि ने किया है। इन पदो से ज्ञात होता है कि ये पद श्री गुसाँई जी के जीवन-काल में ही लिखे गये थे—

राग सारङ्ग

ऐसी प्रीति कहूँ नही देषी ।
जनुमति-मुत श्री वल्लभ सुत जैसी सेस सहस मुख जात न लेखी ।
आज्ञा माँगि चलत गोकुल कों छिनु छिनु झाँकि झरोखन देखी ।
मुनियत कथा जलद चातक की कुमुदिन चन्द चकोर विसेषी ।
इनको कियो सबै जिय भावत करत सिगार विचित्र विशेषी ।
गोविद गोवर्द्धन पर माँगत विछुरों पल जिन अर्द्ध निमेषी ।[२]

'८४ वैष्णवन की वार्ता' से ज्ञात होता है कि एक बार कृष्णदास अधिकारी ने श्रीविट्ठलनाथ जी के लिए श्रीनाथ जी के दर्शन वन्द कर दिये थे ।[३] उन दिनो श्रीविट्ठलनाथ जी, श्रीनाथ जी के विरह से पीड़ित परासौली में रहने लगे और गोवर्द्धननाथ जी के मन्दिर के झरोखे की ओर चित्त लगाकर उनके दर्शन किया करते थे। गुसाईं जी के इसी विरह का वर्णन गोविन्द स्वामी ने निम्नलिखित पद में किया है—

राग सारङ्ग

चितवत रहत सदा गोकुल तन
वार वार खिरकी ह्वै झाँकत अति आतुर पुलकित मन ।
नरम सखा सुष चाहत है भरत कमल दल लोचन ।
ताही समें मिले री गोविन्द प्रभु कुमर बिरह दुख मोचन ।[४]

१—लेखक के निजी, गोविन्द स्वामी के पद संग्रह से, पद नं० ६१ ।
२—लेखक के निजी, गोविन्द स्वामी के पद संग्रह से, पद नं० ६६ ।
३—अष्टछाप, डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ३४ ।
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २२७ ।
४—लेखक के निजी, गोविन्द स्वामी पद संग्रह से, पद नं० ६७ ।

निम्नलिखित पद में गोविन्द स्वामी ने अपने गुरु श्रीविट्ठलनाथ जी के पिता श्री-वल्लभाचार्य के ईश्वर-रूप की महिमा उनकी भक्ति और सेवा-प्रकार तथा गोस्वामी जी के सात पुत्रों की महिमा का वर्णन किया है। इस पद से यह भी सिद्ध होता है कि गोविन्द स्वामी सम्वत् १६२८ वि०, गुसाँईं जी के सातवे पुत्र श्री घनश्याम जी के जन्म-समय तक जीवित थे।

राग बिलावल

श्रीवल्लभ सुख कारी, पुरुषोत्तम लीला अवतारी।
काल अकाल ते न्यारे, रस निधि प्रेमभक्ति प्रतिपारे।

छन्द

प्रेम भक्ति पुष्टि मर्याद सीमा, श्रवण कीर्तन रमना।
युगल चरण सेवा नित अर्चन, प्रीति पूर्वक वदना।
दासत्व सख्य सदा निवेदन, अखिल आनन्द धारी।
गोविन्द प्रभु गिरिराज उद्धरण, श्रीवल्लभ सुखकारी।

युगल रसिक सिर मोरे, नव नागर नृप नन्द किशोरे।
वेद परम रुचि राजे, गिरिधर टहल महल विच साजे।

छन्द

साजे जु टहल महल निरंतर नृपति निज जन कारने।
शृङ्गार भोजन सुमन शय्या, ललित गिरवर धारने।
गुन गान नित्य सुतान मानों, अस सामल गोरे।
गोविन्द प्रभु गिरिराज उद्धरण युगल रसिक सिर मोरें।
गुण निधि श्री 'गिरिधारी', पूरण पुरुषोत्तम भक्त हितकारी।
करुणा किये पति परम उदार अवलोकित गुण पतित उद्धार।

छन्द

पतित उद्धारन विश्व तारन सकल सुरनर सेवई।
गुन गाय 'गोविन्दराय', राजा, 'बालकृष्ण' सुदेवई।
भये श्री 'वल्लभराय', 'रघुपति', श्री 'यदुपति' सामल घन।
गोविन्द प्रभु गिरिराज उद्धरण गुण-निधि श्री गिरिवरन।[1]

१—वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह, भाग दो, लल्लुभाई छँगनलाल देसाई, पृ० २१०।

उपर्युक्त आत्मचारित्रिक उल्लेखो के अतिरिक्त और कोई उल्लेख अपने जीवन तथा रचना के विषय मे कवि ने अपने पदों मे नही किया ।

छीतदास (स्वामी)

अन्य अष्टछाप कवियो की तरह छीत स्वामी जी ने भी उन पदो मे जो हमे उपलब्ध हुये हैं, अपना कोई महत्त्वपूर्ण परिचय नही दिया है। उन्होने कुछ पदो मे अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ जी की तथा व्रज की महिमा, श्री वल्लभाचार्य जी की स्तुति और गोस्वामी जी के सात पुत्रो की बधाई का गान किया है। इन पदो से कवि की गुरु-भक्ति तथा उसकी जीवन-स्थिति का कुछ परिचय अवश्य मिलता है ।

निम्नलिखित पद मे कवि अपने गुरु विट्ठलनाथ जी की महिमा का कथन करते हुए कहा है,—"मैं इस संसार-सागर मे वहा जाता था, श्री गुसाँई जी ने मेरा उद्धार किया ।"

राग गौरी

हौ चरनातपत्र की छैयाँ
कृपा सिन्धु श्री वल्लभनन्दन वह्यो जात राख्यो गहि वैयाँ ।
नव नख चंद्र सरद मण्डल छवि हरति ताप सुमरति मन मैयाँ ।*
छीत स्वामी गिरिवरन श्री विट्ठल सुजस वखान सकति सुत नैयाँ ।[1]

निम्नलिखित पद मे कवि ने उल्लेख किया है,—"मैं श्री विट्ठलनाथ जी को छलने के लिये आया था । उस समय मेरे मन मे अभिमान बैठा हुआ था, परन्तु गुसाँई जी ने मुझे देखते ही अपना लिया ।"

राग विहाग

भई अब गिरिधर सों पैचान
कपट रूपधरि छलिवे आयो पुरुषोत्तम नहि जान ।
छोटो वड़ो कछु नहि जान्यौ छाइ रह्यो अभिमान ।*
छीत स्वामी देखत अपनायो विट्ठल कृपा निधान ।[2]

१—लेखक के निजी छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद न० ४४ ।

*(पाठा०) नव नख चन्द्र शरद राका ससि हरत ताप सुमिरत मनमहियाँ ।

२—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-सङ्ग्रह से, पद नं० ४६ ।

*पाठा०—अज्ञान

यह पद 'अष्ट सखान की वार्ता' के अन्तर्गत छीतस्वामी की वार्ता में भी दिया हुआ है और इस पद में कहे हुये कवि के 'छल' की कथा भी इस वार्ता मे है। इसी प्रकार—

राग रामकली

श्री वल्लभ तन मन, श्री वल्लभ सर्वस्व में,
पाये श्री वल्लभ प्रभु चिता मणि मेरे।
श्री वल्लभ मम ध्यान, ज्ञान श्री वल्लभ विन भजु न,
आन श्री वल्लभ है सुख निधान प्राण जीवन केरे।[1]

और 'जय जय श्री वल्लभ नन्द'[2] आदि कई पदों में उन्होंने आचार्य श्री वल्लभ प्रभु और गुसाँई श्री विट्ठलनाथ जी की स्तुति की है।

निम्नलिखित पद में छीतस्वामी ने गोस्वामी जी के सात पुत्रो की बधाई गाई है :—

रागदेव गन्धार

विहरत सातों रूप धरैं।
श्री 'गिरिधर' श्री वल्लभ नंदन, द्विज कुल भक्ति बरैं।
श्री 'गिरिधर' राजाधिराज ब्रजराज उदोत करैं।
श्री 'गोविंद' इन्दु जग किरननि, सींचत सुधा घरैं।
'बालकृष्ण' लोचन बिसाल लखि मन्मथ कोटि टरैं।
गुण लावण्य दयालु कृपानिधि 'गोकुलनाथ' भरैं।
श्री 'रघुपति' 'जदुपति' 'घनसावल' मुनिजन सरन परैं।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल जिहिं भजि अधम तरैं।[3]

निम्नलिखित पद में कवि ने अपने ब्रज-प्रेम का वर्णन किया है :—

राग गौरी

अहो विधिना! तोपै अँचरा पसारि मांगौं जनम जनम दीजो मोहिं याही ब्रज वसिबो।
अहीर की जाति समीप नन्दघर, हेरि हेरि स्याम सुभग घरी घरी हँसिबो।
दधि के दान मिस ब्रज की वीथिन झकझोरन अंग अंग को परसिबो।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल सरद रैन रस रास विलसिबौ।[4]

१—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० ५१।
२—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० ५३।
३—लेखक के निजी छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० ३६।
४—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० ४३।

निम्नलिखित पद में कवि ने अपने गुरु श्री विट्ठलनाथ जी में अनन्य भक्ति प्रकट की है और यह भी कहा है कि श्री विट्ठलनाथ की शरण में आने के बाद 'कासी' जाकर अब क्या करूँ। नागरीदास ने छीतस्वामी को वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले "शैव" लिखा है। 'कासी' जाने के उल्लेख से यह ध्वनि निकलती है कि अब काशी विश्वनाथ की उपासना से कवि को कोई प्रयोजन नहीं, जब उसे आत्मतुष्टि गो० विट्ठलनाथ जी के उपदेश से ही मिल गई। नागरीदास जी के कथन की पुष्टि, किसी हद तक, इस पद से की जा सकती है—

राग नट

हम तो विट्ठल नाथ उपासी।
सदा सेउँ श्री वल्लभ नंदन जाइ करों कहा कासी।
इन्हे छाँड़ि जो औरै धावै सो कहिये असुरासी।
छीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल, बानी निगम प्रकासी।[1]

ख—प्राचीन बाह्य आधार अष्टछाप कवियो के जीवन-चरित्र तथा रचना का परिचय देनेवाले प्राचीन बाह्य आधारभूत ग्रन्थों में मुख्य निम्नलिखित ग्रन्थ हैं—

१—भक्तमाल।
२—भक्तमाल पर प्रियादास की तथा अन्य टीकाएँ (रामरसिकावली, महाराज रघुराजसिंहकृत, भक्त विनोद, कवि मियाँसिंह-कृत।)
३—भक्त नामावलि।
४—८४ वैष्णवन की वार्ता।
५—२५२—वैष्णवन की वार्ता।
६—अष्टसखान की वार्ता।
७—श्री गुसाईं जी के सेवकन की वार्ता।
८—चौरासी भक्त नाममाला, सन्तदास-कृत।
९—वल्लभ-दिग्विजय।
१०—सम्प्रदाय-कल्पद्रुम।
११—निजवार्ता, घरु वार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र।
१२—श्री गोवर्धननाथ जी के प्राक्ट्य की वार्ता।
१३—श्री द्वारिकानाथ जी के प्राक्ट्य की वार्ता।
१४—श्री गिरधरलाल जी महाराज के १२० वचनामृत।
१५—नागर-समुच्चय।
१६—आइने अकबरी।
१७—मुन्तखिब उलतवारिख़।
१८—मुन्शियात अब्दुलफ़ज़ल।
१९—मूल गुसाईं चरित।
२०—व्यास-वाणी।

१—लेखक के निजी, छीतस्वामी-पद-संग्रह से, पद नं० ४२।

इस ग्रन्थ की रचना सवत् १६८० विक्रमी के लगभग हुई। 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास जी अष्टछाप-कवियों के समकालीन रामोपासक भक्त थे, उन्होंने अपने समय के पूर्ववर्ती तथा समकालीन भक्तो के गुण-गान किये है। नाभादास जी ने जो वृत्तान्त इस ग्रन्थ मे दिये है, वे बहुत अपूर्ण और केवल भक्तों की महिमा-सूचक है, फिर भी हिन्दी के भक्त कवियो का जो कुछ भी वृत्तान्त इस ग्रन्थ मे दिया हुआ है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ को हिन्दी के सभी विद्वानो ने प्रामाणिक माना है।

भक्तमाल

अष्टछाप के भक्त, सूरदास के समकालीन तथा उनके समय से कुछ आगे-पीछे सूर नाम के अन्य भक्त कवि भी हो गये है। इन कई 'सूर' भक्तो का विवरण नाभादास जी ने भी अपने भक्तमाल ग्रन्थ मे दिया है जो संक्षेप में यहाँ दिया जाता है।

विल्वमङ्गल सूरदास—नाभादासकृत भक्तमाल मे विल्वमङ्गल सूरदास के विषय मे लिखा है,—"विल्वमङ्गल जी कृष्ण के परम कृपापात्र मङ्गलस्वरूप हैं। उन्होंने 'श्रीकृष्ण करूणामृत' नामक ग्रन्थ अनुच्छिष्ट रूप में लिखा है। यह ग्रन्थ रसिक जनो का जीवन है। भगवान् ने एक वार इनको अपना हाथ पकडाया और फिर छुटा लिया, तव इन्होंने कहा कि हे भगवन् ! आप हाथ से चले गये तो क्या हुआ हृदय से आप जायँ तव जानूँ। चिन्तामणि वेश्या के सङ्ग से इनकी लौकिक विषय से विरक्ति हुई और फिर उन्होंने व्रज-वधुओ की केलि का अद्भुत वर्णन किया।[1]"

नाभादास जी के उपर्युक्त वृत्तान्त पर, प्रियादास ने भी, इनके जीवन की कुछ घटनाएँ वढ़ाकर, इनका परिचय दिया है। वे कहते हैं—कृष्ण वेणा नामक नदी के तट पर ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ। ये चिन्तामणि वेश्या के प्रेम मे एक वार फँस गये। एक दिन अपने पिता के श्राद्ध के कारण ये अपनी प्रेमिका से दिन भर अलग रहे। रात्रि को उमडती

नोट—नन्ददास के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले निम्नलिखित ग्रन्थ, सोरों, ज़िला एटा में पण्डित गोविन्दवल्लभ भट्ट जी के पास हैं। इन ग्रन्थों को हिन्दी के विद्वानों ने सन्देह की दृष्टि से देखा है। लेखक ने भी एक वार इन ग्रन्थों को देखा था। ग्रन्थों की फिर से जाँच करने के लिए प्रयत्न करने पर भी, वे लेखक को नहीं मिल सके। इसलिए इन ग्रन्थों से सम्बन्धित नन्ददास-विषयक सूचना तथा ग्रन्थों का परिचय, इस पुस्तक के परिशिष्ट भाग में दिया जाता है। इस सामग्री पर, विना फिर से परीक्षा किये, निर्णय देना लेखक उचित नहीं समझता।

ग्रन्थ—१. रत्नावली चरित्र। २, रत्नावली दोहा-संग्रह। ३. सूकर-क्षेत्र-माहात्म्य। ४. वर्ष फल। ५ रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रति।

१—भक्तमाल, भक्तिसुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ३७३।

हुई सरिता को एक मुर्दे के सहारे पार कर चिन्तामणि के घर पहुँचे। वहाँ द्वार वन्द था। घर पर लटके हुये एक सर्प को पकड़कर ये अटारी पर चढ़ गये। चिन्तामणि से मिलने पर, उसके भर्त्सनापूर्ण प्रवोधन से इनका मोह छूटा। ये तुरन्त वहाँ से चल दिये और भटकते-भटकते एक महात्मा सोमगिरि के शिष्य हो गये। यही पर भक्ति-भाव इनके हृदय मे जागृत हुआ। एक वार मोह की प्रवलता में ये फिर फँस गये और एक रूपवती स्त्री पर आसक्त हो गये। वहाँ भी इन्हे भर्त्सना और प्रवोध मिले। उसी समय इन्होंने 'सूजे' से, लोक-रूप मे फँसनेवाली अपनी दोनो आँखें फोड डालीं, और कृष्ण का स्मरण करते हुये घूमने लगे। उसी समय एक वन मे इनका हाथ कृष्णने पकडा था। फिर ये वृन्दावन मे रहने लगे तथा युगल स्वरूप की उपासना करने लगे। एक वार चिन्तामणि वेश्या प्रेम से खिंचकर इनके पास आई और वह इनके प्रभाव से अपने पूर्वकृत्यों का प्रायश्चित्त कर भक्ता वन गई।[1]

सूरजदास—'भक्तमाल,' छप्पय नं० ३६, में नाभादास जी ने एक सूरजदास भक्त का विवरण दिया है। इनके विषय में उक्त छन्द मे लिखा है कि 'सूरज भक्त,' कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे और श्री सीताराम के उपासक भक्त थे।"[2] नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट[3] मे सूरजदास-कृत दो ग्रन्थों के नाम, 'रामजन्म' तथा एकादशी माहात्म्य' दिये हुए हैं। सम्भव है कि वे कृष्णदास पयहारी के शिष्य तथा रामोपासक भक्त कवि के ही द्वारा रचित हों। इन ग्रन्थो पर आगे विचार किया जायगा। भक्तमाल के छप्पय नं० ६८ में भी एक और सूरज नाम के भक्त का उल्लेख हुआ है।

सूरदास मदनमोहन—भक्तमाल मे सूरदास मदनमोहन का उल्लेख छप्पय नं० १२६ में हुआ है। उनके विषय मे नाभादास जी कहते हैं,—"इनके सूरदास नाम के साथ 'मदन-मोहन' का अटल वन्धन वँधा हुआ है। ये गान विद्या तथा काव्यरचना में अत्यन्त प्रवीण हैं और सवके साथ सुहृद्भाव रखनेवाले हैं तथा सहचरी राधा जी के अवतार हैं।

१—भक्तमाल, भक्तिसुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ३७४-३८३।
श्रीवल्लभाचार्य जी के जीवन-वृत्तान्त के साथ वैष्णव वार्ताओं तथा 'वल्लभ-दिग्विजय' ग्रन्थ में, एक द्राविड़ देशीय विल्वमङ्गल का उल्लेख है। कॉकरौली में लेखक को ज्ञात हुआ कि गुजरात में भी अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त एक और सूर के गुजराती तथा व्रज-भाषा-मिश्रित पद प्रचलित हैं। तथा, 'कांकरौली का इतिहास' नामक पुस्तक के पृ० ४० फुटनोट पर, तीन विल्वमङ्गल नाम के सूरभक्तों का उल्लेख है।

२—भक्तमाल छन्द नं० ३९, भक्ति सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ३१४।

३—ना० प्र० स० खो० रि०, सन् १९१७:१९ ई०, नं० १८७ ए तथा नं० १८७ वी।

ये राधाकृष्ण के उपासक और रासरस के अधिकारी हैं। नवरसो में से आपने श्रृङ्गार रस का विशेष गान किया है, इनकी कविता चारो ओर विख्यात है।''[1]

नाभा जी के इस वृत्तान्त पर प्रियादास जी टीका करते हैं,—''यद्यपि इनके नेत्र थे, जो कमलदल के समान सुन्दर थे, फिर भी आपका नाम सूरदास था। ये दिल्लीपति की ओर से लखनऊ के निकटवर्ती स्थान सण्डीले के अमीन थे। ईश्वर मे इनकी विशेष प्रीति थी और ये साधु-सन्तो के बडे भक्त थे। एक बार इन्होंने बादशाह का तेरह लाख द्रव्य साधुओं को खिला दिया और बादशाह के पास इन्होंने थैलियो मे यह पद लिखकर भेज दिया—

तेरह लाख संडीले उपजे,सब साधुन मिलि गटके,
सूरदास मदनमोहन मिलि वृन्दावन को सटके''।[2]

प्रियादास जी आगे लिखते है—''जब टोडरमल को यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उसने सूरदास मदनमोहन को वृन्दावन से पकड़वा मँगाया और उन्हे कारागार मे डाल दिया। और जब अकबर को यह बात ज्ञात हुई तो उसने उन्हे क्षमा कर दिया और इनकी भक्ति-भावना से वह बहुत प्रभावित हुआ।''[3]

सूरदास मदनमोहन के अनेक पद वैष्णव-कीर्तन-संग्रहो मे मिलते है। नाम इनका भी सूरदास था, परन्तु इनके समस्त पदो मे 'सूरदास मदनमोहन' की छाप मिलती है। 'आइने अकबरी' तथा 'मुन्तखिब उत्तवारीख' मे जिस लखनवी रामदास के पुत्र सूरदास का उल्लेख है और जिसका अकबरी दरबार से सम्बन्ध बताया गया है, लेखक की समझ मे, वह यही भक्त सूरदास मदनमोहन है। इस विषय मे आगे और विचार किया जायगा।

अष्टछापी सूरदास—नाभादास जी ने अष्टछापी सूरदास के जन्म, जन्म-स्थान, वंश, जाति आदि के विषय मे कुछ नही कहा। उन्होने केवल एक छप्पय मे उनकी भक्ति और काव्य की प्रशसा की है। वे कहते है,—''ऐसा कौन व्यक्ति है जो सूरदास जी के कवित्त को सुनकर प्रशंसा में सिर न हिला दे। उनकी कविता मे सुन्दर उक्तियाँ, चोज, अनूठे अनुप्रास और सुन्दर शब्द-चयन है। कविता मे आदि से अन्त तक प्रेम के भाव का निर्वाह किया गया है। उनकी कविता मे अद्भुत अर्थ-गाम्भीर्य और मुग्धकारी तुक है। ईश्वर ने उनको दिव्य-दृष्टि दी है और इनके हृदय मे हरि की लीला प्रतिभासित होती है। इन्होंने कृष्ण के जन्म, कर्म, गुण और रूप सबको अपनी दिव्य दृष्टि से देखा और अपनी रसना से उन्हें प्रकाशित

१—भक्तमाल, छन्द नं० १२६, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ७५१।

२—नागर-समुच्चय, श्रृङ्गार-सागर पद प्रसङ्गमाला, पृ० २२३।

३—भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ७५२-७५६ तक।

किया। जो कोई सूर के गाये हुये भगवद्-गुणो को सुनेगा, उसकी बुद्धि विमल हो जायगी।"[1]
इस कथन मे नाभादास जी ने सूर-लिखित ग्रन्थो की सूची नही दी।

परमानन्ददास—'भक्तमाल' मे चार परमानन्दो का उल्लेख है—दो, परमानन्द जी, एक, परमानन्द जी सारंग और एक, परमानन्द दास। नाभादास जी ने स्वतन्त्र छन्द में केवल एक परमानन्द जी सारङ्ग का ही वृत्तान्त दिया है। छप्पय[2] न० ४५ मे श्री मद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्री श्रीधरस्वामी का वृत्तान्त देते हुये नाभादास जी ने श्रीधरस्वामी के गुरु परमानन्द जी का उल्लेख किया है। ये परमानन्द जी अष्टछाप के परमानन्ददास नही हैं। भक्तमाल के छप्पय[3] १५१ मे एक महात्मा 'टीला जी' का वृत्तान्त दिया हुआ है। उसी छन्द मे नाभा जी ने लिखा है कि श्री टीला जी के शिष्य श्री लाहा जी हुये और उनके पुत्र श्री परमानन्द दास जी जगत मे एक विख्यात योगी हुये। नाभादास जी ने इन परमानन्ददास जी का वर्णन वर्तमानकालिक क्रिया मे किया है। इससे सिद्ध होता है कि 'टीला जी' से सम्बन्धित परमानन्ददासजी भी नाभादास के समकालीन व्यक्ति तो थे, परन्तु ये परमानन्ददास जो अष्टछापवाले भक्त कवि परमानन्ददास नही हो सकते, क्योकि नाभादास जी ने उन्हे जगत-विख्यात 'योगी' लिखा है।

भक्तमाल मे नाभादास जी ने भगवद्-भक्तों और सन्तो के ठहरने की कुछ चौकियो[4] (स्थानो) का वर्णन किया है। उसमे एक चौकी को उन्होंने परमानन्द जी का स्थान

१—सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं शिर चालन करै।
उक्ति चोज अनुप्रास वरन अस्थित अति भारी।
वचन प्रातिनिर्वाह अर्थ अद्भुत तुकधारी।
प्रतिबिंबित दिव्यदृष्टि हृदय हरिलीला भासी।
जन्म कर्मगुण रूप सबै रसना परकासी।
विमल बुद्धि गुण और की जो यह गुण श्रवणनि धरै।
सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं शिर चालन करै।
भक्तमाल, छप्पय न० ७३, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ५६३।

२—परमानन्द प्रसाद ते माधौ सुकर सुधार दियौ,
श्रीधर जी भागौत में, परम धरम निरनै कियो।
भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ३७१।

३—भरत खण्ड भूधर सुमेर, टीला लाहा की पद्धति प्रकट,
अगज परमानन्ददास जोगी जग जागे,
खरतर, खेम, उदार ध्यान कैसो हरिजन अनुरागै।
भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद तिलक, रूपकला, पृ० ८४३।

४—दासनि के दासत्त कौ चौकस चौकी ए मड़ी।
× × ×
× × ×
औली परमानन्द के ध्वजा सबल धर्म की गड़ी।
दासनि के दासत्त की चौकस चौकी ए मड़ी।
भक्तमाल, भक्ति सुधास्वाद तिलक, रूपकला, छन्द १६६ पृ० ८७८।

बताया है और कहा है कि 'औली'-निवासी परमानन्द जी के द्वार पर, धर्म की सबल ध्वजा गढ़ी हुई है। 'औली' स्थान की स्थिति लेखक को ज्ञात नही है, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अष्टछाप के परमानन्ददास यद्यपि सन्त और भक्तसेवी थे, परन्तु उनके द्वार पर मर्यादा-धर्म की ध्वजा नही फहराती थी, क्योकि वे पुष्टि-मार्गीय भक्त थे। वार्ता जैसे अधिक विश्वस्त प्रमाणो से ज्ञात होता है कि परमानन्ददास कुछ समय कन्नौज मे अपने पिता के साथ गृहस्थी मे रहने के बाद घर से वैराग्य लेकर श्री नाथ जी की शरण में चले आये थे और फिर अपने जीवन के अन्त समय तक वही रहे। अष्टछापवाले परमानन्ददास की भक्ति-पद्धति मर्यादा-धर्म की उपेक्षा रखनेवाली भक्ति थी। दूसरे, वे कन्नौज के रहनेवाले थे। इसलिए औली ग्राम-निवासी परमानन्ददास अष्टछाप के परमानन्ददास नही हो सकते, हाँ, 'भक्तमाल' मे कहे हुये परमानन्दो मे इनके नाम का साम्य अष्टछापी परमानन्ददास के साथ अवश्य है।

'भक्तमाल' के छप्पय नं० ७४ में [1] 'परमानन्द सारङ्ग' का वृत्तान्त इस प्रकार दिया है,—"द्वापर मे जैसे गोपियो की रीति थी, उसी प्रकार परमानन्द जी भी कलियुग मे प्रेम की ध्वजा हुये। इन्होंने बाल, पौगण्ड और किशोर कृष्ण की गोप-लीलाओ का गान किया है। इनके इस कार्य के करने मे आश्चर्य ही क्या है क्योकि ये कृष्ण के पूर्व के सखा ही थे। आपके नेत्रो से प्रेमवारि सदा बहता रहता है और शरीर सदैव प्रेमपुलकित रहता है। इनकी उदार वाणी सदा गद्गद रहती है और श्याम-शोभा के जल से तन-मन गीला रहता है। इनकी सारङ्ग छाप है। इनका काव्य सुनने मात्र से प्रेम का आवेश उत्पन्न करता है।"

उपर्युक्त वृत्तान्त 'चौरासी वार्ता' मे अष्ठछापी परमानन्ददास के विषय मे दिये हुये वृत्तान्त से मिलता है। नाभादासजी ने 'परमानन्द सारङ्ग' के काव्य की जो विशेषताएँ बताई है वे अष्टछापी परमानन्ददास के काव्य मे भी मिलती हैं। केवल एक बात नही मिलती, वह है 'सारङ्ग छाप।' परमानन्ददास जी के जितने पद उपलब्ध है उनमे दो तीन

१—ब्रज वधू रीति कलियुग बिषे, परमानन्द भयौ प्रेमकेत।
पौगंड बाल कैसोर गोप लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात हुतौ पहिलो जु सखाई।
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन।
गद्गद गिरा उदार स्याम शोभा भीज्यौ तन।
सारङ्ग छाप ताकी भई, श्रवण सुनत आवेस देत।
ब्रज वधू रीति कलियुग बिषे परमानन्द भयो प्रेमकेत।

भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद तिलक, रूपकला, पृ० ५६५।

पदों मे ही लेखक ने कवि के नाम के साथ सारङ्ग शब्द देखा है,[1] अन्यथा सारङ्ग शब्द पदो मे नही आता। इतनी बात अवश्य देखने मे आती है कि परमानन्ददास के आधे से अधिक पद सारङ्ग राग मे लिखे हुये हैं।

कुम्भनदास—छप्पय न० ९८ मे नाभादास जी ने भक्तमाल मे अन्य भक्तो की प्रशसा करते हुये कुम्भदास जी की भक्ति के बारे मे भी प्रशंसात्मक शब्द ही कहे हैं। इनके विषय मे अन्य कोई वृत्तान्त नाभादास जी ने नही दिया। उन्होंने उक्त छंद मे केवल यह कहकर,—"कलियुग मे ये भगवद्भक्त दूसरो के उपकार मे सलग्न कामधेनु के समान है,"[2] कुम्भनदास जी का उदार भक्तो मे नाम लिया है। भक्तमाल मे उनके ग्रन्थो के विषय मे कोई परिचय नही दिया गया है।

कृष्णदास—नाभादास-कृत भक्तमाल मे छः कृष्णदासो का परिचय दिया हुआ है। १. कृष्णदास पयहारी। २. कृष्णदास ब्रह्मचारी। ३. कृष्णदास पण्डित। ४. कृष्णदास चालक। ५. कृष्णदास। ६. कृष्णदास। कृष्णदास[3] पयहारी रामानन्दी सम्प्रदाय के थे जिनकी शिष्य-परम्परा में श्री अग्रदास जी, भक्तमाल के रचयिता श्री नाभादास जी, आदि भक्त हुये। डाक्टर ग्रीयर्सन ने भ्रमवश कृष्णदास पयहारी को अष्टछाप के कृष्णदास मान लिया है। वास्तव मे ये अष्टछाप के वल्लभ-सम्प्रदायी भक्त न थे। कृष्णदास ब्रह्मचारी[4] सनातन जी के शिष्य वृन्दावन मे रहते थे। ये भी अष्टछाप के कृष्णदास नही है। कृष्णदास[5] पण्डित का उल्लेख भी नाभादासजी ने कृष्णदास ब्रह्मचारी के साथ किया है और कहा है, 'ये भी वृन्दावन की माधुरी का आस्वादन करते थे।' कृष्णदास[6] चालक के विषय में नाभादास जी ने लिखा है, "श्री कृष्णदास चालक की चर्चरी छन्द की कविता चारो ओर समुद्रपर्यन्त विख्यात हुई। उसी चर्चरी छन्द मे उन्होंने 'रास पञ्चाध्यायी', और 'कृष्ण-रुक्मिणी-केलि' ग्रन्थो की रचना की। इनकी कविता मे 'गिरिराजधरन' की छाप रहती थी। आपकी वाणी

१—ते भुज माधो कहाँ दुराए।

× × ×

× × ×

जेहि भुज गोवर्धन राख्यो जिहि भुज कमला घर आनी।

जिहि भुज कंसादिक रिपु मारे, परमानन्द प्रभु सारङ्गपानी।

लेखक के निजी, परमानन्दास पद संग्रह से पृ० १३० पद नं ३०२।

२—पर अर्थपरायन भक्त थे, काम धेनु कलियुग के

भक्तमाल, भक्तसुधास्वाद-तिलक, छप्पय नं० ९८।

३—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद तिलक, रूपकला, छन्द नं० ९८।

४—और ५—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, छप्पय नं ९४।

६—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद तिलक, रूपकला, छप्पय नं० १२४।

मेघ-गर्जन के समान है जिसको सुनकर सन्त लोग मोर के समान प्रसन्न होते हैं।" अष्टछाप-वाले कृष्णदास की रचना न तो चर्चरी छन्द मे मिलती है और न उसमे गिरिराजधरन की छाप ही है। इसलिए कृष्णदास चालक भी अष्टछापवाले कृष्णदास नही हैं।

उक्त भक्तों के अतिरिक्त भक्तमाल में दो कृष्णदासो का और परिचय है, इनके नाम के सामने कोई विभेद-सूचक उपनाम नही जोडा गया। छप्पय नं० १८० मे नाभादास एक कृष्णदास के विषय मे कहते हैं,—"ये खरूज सुनार के पुत्र और हरि-भक्त की रेणु के उपासक है और नाचने-गाने मे बडे प्रवीण हैं। इन्होंने अपनी भक्ति से राधालाल को रिझा लिया है।" ये कृष्णदास भी कृष्णदास अधिकारी नही है, क्योकि इनका वंशपरिचय वार्ता में दिये हुये वंश-परिचय से नही मिलता।

छप्पय नं० ८१ में नाभादास जी ने जिन कृष्णदास का परिचय दिया है, वे ही अष्टछाप के भक्त कवि और श्रीवल्लभाचार्य जी के शिष्य कृष्णदास अधिकारी हैं। नाभादास जी ने इनके वर्णन मे इस उपर्युक्त बात को स्पष्ट कर दिया है। वे कहते हैं,—"गिरधारी श्रीकृष्ण ने कृष्णदास पर रीझकर अपने नाम मे साझा दिया। इनके गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी ने जो भजन की रीति चलाई, उसमे ये पूर्ण और गुणागर हुये। इनकी कविता निर्दोष और अनोखी होती थी और ये श्रीनाथ जी की सेवा मे बडे प्रवीण थे। इनकी वाणी श्री-गोपाल जी के सुजस से अलंकृत रहती थी और उस वाणी की पण्डित लोग बडे आदर से वन्दना करते थे। ये व्रज की रज की आराधना करते थे और चित्त मे उसे सर्वस्व जान कर धारण करते थे। हरि-दासो का सदा सान्निध्य करते थे।[1] श्रीराधाकृष्ण के भजन का ही एकमात्र इनका दृढ़ व्रत था।"[2] इस वृत्तान्त से कृष्णदास अधिकारी का निम्नलिखित अल्प परिचय मिलता है:—

१—ये श्रीनाथ जी की सेवा करते थे।

१—अथवा गोवर्धन पर्वत के सदा निकट रहते थे।

२—गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माँझ साझौं दियौ,
श्रीवल्लभ गुरुदत्त भजन सागर गुनआगर।
कवित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर,
बानी वन्दित विदुष सुजस गोपाल अलंकृत।
व्रज रज अति अराध्य वहै धारी सर्वसु चित।
सानिध्य सदा हरिदासवर्य गौर स्याम दृढ़ व्रत लियौ,
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माँझ साझौ दियौ।

भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, पृ० ५८१

२—ये वल्लभ-सिद्धान्तो को तथा साम्प्रदायिक सेवा-विधि को पूर्ण रूप से जानते थे।

३—कृष्णदास के गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी थे।

४—ये कवि थे और इनकी कविता निर्दोष होती थी। पण्डित लोग इनकी कविता का आदर करते थे।

५—ये सदा भक्तों के सत्सङ्ग मे रहते थे और व्रज-भूमि के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा थी।

६—ये राधा-कृष्ण के युगल रूप के उपासक थे।

नन्ददास—नाभादास जी नन्ददास के समकालीन थे। उन्होंने जो कुछ वृत्तान्त नन्ददास के वारे में दिया है वह अवश्य विश्वसनीय है। 'भक्तमाल' मे दो नन्ददासों का उल्लेख है। एक नन्ददास वरेली-निवासी और दूसरे रामपुर-निवासी। वरेलीवाले नन्ददास जी का केवल एक पंक्ति में उल्लेख किया गया है—

"नाभा ज्यों नन्ददास, मुई इक बच्छ जिवाई।"[1]

'भक्तमाल' मे दूसरे नन्ददास के विषय में निम्नलिखित छप्पय है—

लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर।
प्रचुर पयध लों सुजस रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासी।

१—इसमें नन्ददास के काव्य-विवेक आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं है। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी ने इनके परिचय का एक कवित्त अपनी टीका में दिया है। इसका आशय निम्नलिखित है—

नन्ददास ब्राह्मण थे, और वरेली के रहनेवाले थे। वे परम भक्त थे और साधु-सेवा में रहा करते थे। खेती करना उनका व्यवसाय था। परन्तु जो खेती की आय आती, उसे वे साधु-सेवा में लगा दिया करते थे। एक दिन एक दुष्ट ने उनसे वैर मानकर एक मरी हुई वछिया उनके खेत में डाल दी और उन पर हत्या का लाञ्छन लगाया। नन्ददास जी ने इस वछिया को जिला दिया। तव सब लोग उनकी भक्ति के कायल हुये।

भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, पृ० ४६०।

चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पय में पगे।
श्री नन्ददास आनन्दनिधि, रसिक सु प्रभु हित रङ्ग मगे।[1]

भक्तमाल के वरेलीवाले नन्ददास अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददास नही हो सकते; क्योंकि नन्ददास के समकालीन भक्त नाभादास जी ने पहले छन्द मे वर्णित भक्त की रचना और काव्य के विषय मे कुछ नही कहा है। दूसरे छन्द मे रामपुर वाले नन्ददास के विषय मे अष्टछापीय नन्ददास के सभी काव्यगुणो का उल्लेख पाया जाता है। छन्द की प्रथम पक्ति से विदित होता है कि नन्ददास जी रसिक थे। रसिक के अथ, माधुर्य-भाव से उपासना करनेवाला भक्त, और 'लौकिक शृङ्गार-भाव मे आनन्द लेनेवाला व्यक्ति', दो हो सकते हैं। भक्ति-प्रेमरस का अपार समुद्र नन्ददास के हृदय मे हिलोरे मारा करता था। इसी से भक्तमाल-रचयिता ने उन्हें रसिक कहा है। नन्ददास की रचनाओ को देखने से तथा उनके रसिको के संग से ज्ञात होता है कि नन्ददास वास्तव मे एक रसिक पुरुप थे। इन्होंने अपने हृदय के लौकिक रस को लोक से हटाकर भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओ मे देखा था। इसी भाव से वे कृष्ण की भक्ति करते थे। उनकी लौकिक रसिकता भक्ति-रसिकता मे परिणत हो गई थी।

भक्तमाल की दूसरी पक्ति से ज्ञात होता है कि नन्ददास ने दो प्रकार के ग्रन्थो की रचनाएँ की हैं—भगवान् की लीला के पद तथा रस-रीति-ग्रन्थ। भगवान् की लीला के पद नन्ददास ने वहुत से लिखे हैं। "रस-रीति-ग्रन्थ-रचना मे नागर" का अर्थ भक्ति-रस-रीति-ग्रन्थों की रचना में कुशल और काव्य-रस-रीति-ग्रन्थ रचना मे चतुर, दोनो हो सकता है। नन्ददास के उपलब्ध ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने काव्य-लक्षण ग्रन्थो की परिपाटी पर भी कुछ रचनाएँ की हैं, यद्यपि काव्य-रचना के सभी अगो का लक्षण-सहित विवेचन नही किया है। इस कोटि के ग्रन्थो मे उनका 'रस-मञ्जरी' ग्रन्थ आता है जो नायक-नायिका-भेद पर लिखा गया है। 'अनेकार्थ मञ्जरी' और 'नाममाला' अनेक अर्थ तथा पर्याय-वाची शव्दो के कोप-ग्रन्थ है। 'रूप-मञ्जरी' काव्य-ग्रन्थ है; परन्तु उसमे वर्णित हाव-भावों का चित्रण और 'वारह मासा' भी, काव्य-रीति-ग्रन्थ-पद्धति को ही लिये हुए हैं। इस प्रकार नाभा जी का नन्ददास को रस-रीति-ग्रन्थ-रचना में चतुर कहना दोनो अर्थों में सिद्ध होता है। नन्ददास ने भक्ति-रस के लक्षण और भक्ति-रस की रचनाएँ, दोनो लिखी हैं। इस प्रकार नाभा जी की यह पक्ति नन्ददास के स्वभाव और उनकी रचनाओ के विपय का परिचय देती है। नन्ददास भक्त-कवि थे और साथ ही एक साधारण काव्य आचार्य भी।

१—भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ६०२।

तृतीय पंक्ति मे उनकी रचना के गुणो की प्रशंसा है—"उनकी सरस उक्तियाँ हैं।" "वे भक्ति-रस के गाने मे प्रसिद्ध हैं।" इस कथन से सिद्ध होता है कि नन्ददास उच्च कोटि के कवि और अच्छे गवैये भी थे। यहाँ तक तो नाभा जी ने उनकी काव्य-रचना का परिचय दिया। आगे की पक्तियाँ उनकी जीवन-सम्बन्धी कुछ बातो पर प्रकाश डालती हैं, यथा— "उनका यश समुद्र पर्यन्त व्याप्त है और वे रामपुर के रहनेवाले हैं।"

"सकल सुकुल सम्वलित भक्त पद-रेनु उपासी"—पक्ति से ज्ञात होता है कि नन्ददास जी शुक्ल-वंश में उत्पन्न हुए थे। और उच्च वंश मे होते हुये भी, भक्तों की पदरज के, चाहे वे भक्त किसी भी जाति के क्यो न हों, उपासक थे। 'सुकुल सम्वलित' के अर्थ 'उच्च कुल मे उत्पन्न' और 'शुक्ल आस्पद वाले ब्राह्मण-कुल मे उत्पन्न', दो हो सकते हैं। नन्ददास के समय मे, रामानन्द सम्प्रदाय के आचार्यो ने श्री वल्लभाचार्य जी ने, तथा अन्य सन्त भक्तों ने ब्राह्मण से लेकर नाई, चमार, डोम आदि सभी जातियो को, ऊँच-नीच का भेद हटाकर, भगवान् की भक्ति का अधिकारी वनाया था। नन्ददास जी इतने उच्च कोटि के भक्त थे कि उन्होंने जाति-वन्धन तोडकर भक्तो की, चाहे वे किसी भी जाति के क्यो न हों, चरण-धूलि शीश चढ़ाई थी। शुक्ल आस्पद, कान्यकुब्ज, सरयूपारी तथा सनाढ्य सभी ब्राह्मणो में होता है। नाभाजी ने इस विपय को स्पष्ट नही किया है कि नन्ददास किस जाति के थे। "श्रीचन्द्रहास अग्रज, सुहृद, परम प्रेम पय मे पगे," मे "चन्द्रहास अग्रज सुहृद" का अर्थ लोगोने कई प्रकार से किया हैं। 'व्रज-माधुरी-सार' के संकलनकर्ता श्री वियोगी हरि जी ने नन्ददास को चन्द्रहास के वडे भाई का मित्र माना है। इस अर्थ के अनुसार चन्द्रहास उस समय के कोई प्रसिद्ध व्यक्ति होने चाहिएँ, क्योकि नाभाजी इस कथन के अनुसार सीधे शब्दो मे नन्ददास के मित्र का नाम न देकर मित्र के छोटे भाई चन्द्रहास का नाम देते हैं। चन्द्रहास उस समय के कोई भक्त न थे और इतिहास मे भी चन्द्रहास नाम का कोई प्रसिद्ध व्यक्ति सुनने में नही आता। इसलिए उपर्युक्त अर्थ ठीक नही जँचता। राजा प्रतापसिंह ने भक्त कल्पद्रुम मे इस पंक्ति के आधार पर "नन्ददास को चन्द्रहास का पुत्र[१] लिखा है।" लेखक के विचार से इस पक्ति का सीधा अर्थ यही है कि नन्ददास चन्द्रहास के वडे भाई थे।

चतुर्भुज दास—नाभादासजी ने 'भक्तमाल' मे अष्टछाप के चतुर्भुजदासजी का कोई वृतान्त नही दिया, उन्होंने अन्य दो चतुर्भुज जी का वर्णन दिया है, एक करौली के राजा चतुर्भुज जी[२] का तथा दूसरे श्रीहितहरिवंश जी के शिष्य, परम भक्त और कवि, चतुर्भुज जी[३] का। हितहरिवंश जी के शिष्य चतुर्भुज जी की भक्ति और उनके काव्य की प्रशंसा नाभादास

१—'भक्त-कल्प द्रुम', श्री प्रतापसिंह, पृ० ११४।

२—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, रूपकला, छं० ११४, पृ० ७१३।

३—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, रूपकला, छं० १२३, पृ० ७४५।

जी ने की है[1]; परन्तु उससे, स्पष्ट रूप से, ज्ञात होता है कि वह वर्णन अष्टछाप के भक्त कवि चतुर्भुजदास का नही है।

गोविन्द स्वामी—'भक्तमाल' मे नाभादास जी ने गोविन्द स्वामी का वृत्तान्त किसी स्वतन्त्र छन्द मे नही दिया। उन्होंने भक्तमाल के छन्द नं० १०२ मे[2] कुछ भक्त कवियो के नाम गिनाये है, जिनमे गोविन्द कवि का भी नाम आया है। उसमे उन्होंने कहा है—"इन कवि जनो के गुणों का पार नही है; ये अत्यन्त उदार प्रकृति के है और इन्होंने हरि के यश का प्रचुर विस्तार जगत् मे किया है।" इससे केवल इतना ही पता चलता है कि गोविन्द कवि बडा उदार चित्त का था और उसने ईश्वर की महिमा का प्रचार जगत् मे किया। नाभादास जी के उल्लेख से यह स्पष्ट नही होता कि जिस गोविन्द स्वामी का वे वृत्तान्त दे रहे है वह वल्लभ-सम्प्रदायी अष्टछाप के भक्त कवि गोविन्द स्वामी ही है अथवा अन्य कोई गोविन्द कवि। उनकी हरि-भक्ति के उल्लेख के सहारे हम केवल अनुमान से इस वर्णन को उक्त गोविन्द स्वामी पर लागू मान सकते है।

नाभादास जी ने 'भक्तमाल' के छन्द नं० १०३[3] मे भी एक मथुरावासी गोविन्द

१—(श्री) हरिवंश चरन बल चतुर्भुज गौड़ देश तीरथ कियौ,
गायौ भक्ति प्रताप सबहि दासत्व दृढ़ायौ।
राधा वल्लभ भजन अनन्यता वर्ग बढ़ायौ,
मुरलीधर की छाप कवित अति ही निर्दूषन।
भक्तनि की अंघ्रि रेनु वहै धारी सिर भूषन,
सतसङ्ग महाआनन्द में प्रेमसहित भीज्यो हियौ।
(श्री) हरिवंश चरन बल चतुर्भुज गौड़ देश तीरथ कियौ।
भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, रूपकला, छं० नं० १२३

२—हरि सुजस प्रचुर कर जगत में, ये कवि जन अतिसय उदार,
विद्यापति, ब्रह्मदास, बहोरन, चतुर बिहारी।
गोविन्द, गङ्गा, रामलाल बरसनियाँ मङ्गलकारी,
प्रिय दयाल परस राम भक्त भाई खाटी कौ।
आस करन पूरन नृपति भीषण, जनदयाल, गुन नहिन पार,
हरि सुजस प्रचुर कर जगत में ये कवि जन अतिशय उदार।
भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, रूपकला, छं० नं० १०२।

३—जे बसे बसत मथुरा मङ्गल ते दयादृष्टि मो पर करौ।
× × ×
जनुनन्दन रघुनाथ, रामानन्द, गोविन्द, मुरली सोती।
हरिदास मिश्र भगवान, मुकुंद के सौं दण्डौती।
× × ×
भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, छन्द नं० १०३।

का उल्लेख किया है और लिखा है, "जो मथुरा मंडल मे रहते हैं वे 'गोविन्द' मेरे ऊपर दयादृष्टि करैं।" इनकी कविता तथा भक्ति के विषय में उन्होने कुछ नही कहा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मथुरा निवासी गोविन्द भी अष्टछाप के गोविन्द स्वामी नही हैं, क्योकि 'अष्ट सखान की वार्ता' मे उन्हे आँतरी गाँव का निवासी लिखा है।

छीतस्वामी—'भक्तमाल' में नाभादास जी ने छीतस्वामी का वृत्तान्त भी किसी स्वतंत्र एक छन्द मे नही दिया। जैसे उन्होंने अन्य भक्तो के साथ 'गोविन्द' भक्त के नाम का उल्लेख करते हुये उसकी भक्ति की प्रशसा की है उसी प्रकार छीतस्वामी के नाम का उल्लेख कुछ भक्तो के साथ ही किया है। वे कहते है—"गोपाल के विशद गुणो के यश का दान देने वाले इतने सुजन हुये है।" छीतस्वामी जी के वारे मे इससे केवल इतना पता चलता है कि छीतस्वामी श्रीकृष्ण के भक्त थे और उन्होंने कृष्ण की भक्ति को फैलाया। इसके अतिरिक्त भक्तमाल से और कोई वृत्तान्त छीतस्वामी के विषय मे ज्ञात नही होता। नाभादास जी के इस छन्द पर प्रियादास जी ने भी कोई टीका नही की। इस ग्रन्थ मे छीतस्वामी के ग्रन्थों के विषय मे भी कुछ नही कहा गया।

भक्तमाल की रचना के लगभग ९० वर्ष वाद सं० १७६९ मे नाभादास जी की शिष्य-परम्परा मे होनेवाले भक्त प्रियादास जी ने "भक्ति-रस-बोधिनी" नाम की टीका छन्दो मे लिखी।

भक्तमाल की टीकाएँ, प्रियादासकृत टीका

इस टीका मे नाभादास जी के दिये हुये वृत्तान्त के अतिरिक्त भक्तो के स्वतन्त्र वृत्तान्त भी अपनी ओर से दिये गये है। प्रियादास जी ने भक्तो के वृत्तान्त, बहुधा अपने समय मे प्रचलित किंवदन्तियो के ही आधार से दिये है और भक्तो की महिमा तथा उनके चरित्रो की चामत्कारिक घटनाओ का विशेष उल्लेख किया है। ऐतिहासिक सामग्री इस ग्रन्थ मे न्यून है। इसकी प्रामाणिकता तथा उस टीका के विषय में आचार्य डा० श्यामसुन्दरदास जो अपने ग्रन्थ 'हिन्दी भाषा और साहित्य', नवीन संस्करण मे, इस प्रकार कहते है—"प्रियादास नाभाजी के सौ वर्ष उपरान्त हुये थे, फिर भी टीका उन्होने बडी प्रामाणिक रीति से लिखी है।'[२] प्रियादास-कृत टीका की चामत्कारिक अत्युक्तियों को छोड़कर अन्य इतिवृत्त कुछ अंश मे ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव मे अवश्य प्रमाण-कोटि मे गिने जा

१– गुन गन बिसद गोपाल के एते जन भए भूरिदा।
बोहिथ रामगुपाल, कुँवर वर गोविंद मांडिल।
छीतस्वामी जसवंत गदाधर अनन्तानन्द भल।
हरिनाम मिश्र, दीनदास, बछपाल कन्हर जस गायन।
× × ×
भक्तमाल, भक्तिसुधास्वाद-तिलक, रूपकला, छन्द नं० पृ० १४६ नं० ८२९।

२–हिन्दी भाषा और साहित्य, डा० श्यामसुन्दरदास, १९९४ सं०, पृ० ३१४।

सकते है। प्रियादास जी के बाद 'भक्तमाल' की और भी अनेक टीकाएँ हुई जिनमे दिये हुए वृत्तान्तो का मूल आधार प्रियादास की टीका ही रही है। साथ मे इन टीकाकारो ने एक नाम के अनेक भक्तो के चरित्रो को एक मे मिलाकर एक चरित्र रूप मे दे दिया है। इसलिए प्रियादास के बाद की टीकाओ के वृत्तान्त बहुत काट-छाँट और सतर्कता के साथ ग्राह्य होने चाहिएँ। लेखक ने प्रियादास के बाद की टीकाओ मे अष्टछाप कवियो के दिये हुए वृत्तान्तो को बहुत अश मे प्रामाणिक नही माना।

सूरदास—प्रियादास जी ने सूरदास के विषय मे कुछ नही लिखा है।

परमानन्ददास—प्रियादास जी ने तो परमानन्द दास का कोई वृत्तान्त नही लिखा; परन्तु वेंकटेश्वर प्रेस से छपी भक्तमाल की 'हरिभक्ति-प्रकाशिका' नामक टीका मे परमानन्द सारंग के विषय मे लिखा है कि अष्टछाप में उनकी भी गणना है।[1] भक्तमाल की उक्त टीकाओ के अतिरिक्त अन्य टीकाकारो ने यह स्पष्ट नही किया कि जो वृत्तान्त परमानन्द का वे देते है वह कौन से परमानन्ददास का है। श्री प्रतापसिंह-कृत 'भक्त-कल्पद्रुम'[2] नामक भक्तमाल मे केवल परमानन्द सारग का ही वृत्तान्त, नाभादास जी कृत भक्तमाल के अनुवाद-रूप मे दिया हुआ है। रीवॉ-नरेश महाराज रघुराजसिंह ने 'रामरसिकावली' नामक भक्तमाल मे केवल वृन्दावनवासी परमानन्द का वर्णन दिया है। बा० राधाकृष्णदास[3] जी ने ध्रुवदास जी की 'भक्त-नामावलि' मे वर्णित महात्माओ के सक्षिप्त ऐतिहासिक वृत्तान्त 'भक्त-नामावलि' के साथ दिये है। उन वृत्तान्तो मे वे लिखते हैं कि परमानन्द इस ग्रन्थ मे चार लिखे है। एक परमानन्द पुरी, चैतन्य महाप्रभु के चौसठ महन्तो मे थे। दूसरे हरिव्यासी-सम्प्रदाय की दूसरी शाखा के कर्णदेव जी के शिष्य परमानन्ददेव जी थे। तीसरे, हरिवश जी के शिष्य परमानन्द रसिक थे और चौथे, भक्त-नामावलि के छन्द न० ९५ के अष्टछाप वाले प्रसिद्ध परमानन्ददास थे।'

श्री ध्रुवदास जी के कथनानुसार भक्तमाल के परमानन्द सारग अष्टछाप के परमानन्द जी ही है, इस प्रकार भक्तमाल तथा उसकी टीकाओ से परमानन्ददास जी के विषय मे निम्नलिखित बाते ज्ञात होती है—

१. परमानन्ददास गोपी-भाव तथा सखा-भाव स प्रेमभक्ति करते थे।

२. उनकी भक्ति प्रगाढ़ थी, क्योकि प्रेम मे वे सदैव रोमाञ्चित रहते थे।

३. उन्होंने कृष्ण के जन्म से पाँच वर्ष तक की बाल-लीला, पॉच से दस वर्ष तक की पौगण्ड-लीला और दस से १६ वर्ष तक की किशोर लीलाओ का पदो मे गान किया है।

१—भक्तमाल, हरिभक्ति-प्रकाशिका टीका, पृ० २३२।

२—श्री प्रतापसिंहजी-कृत भक्त-कल्पद्रुम, भक्तमाल, पृ० ११६।

३—भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक, श्री राधाकृष्णदास, पृ० ४४।

४. वे कवि होने के साथ साथ सगीतकार भी थे।

५. उनके कीर्तन बहुत प्रभावशाली होते थे।

६. उनके काव्य मे उनकी सारंग छाप है।

इस वृत्तान्त के अतिरिक्त कवि के भौतिक जीवन पर भक्तमालकार तथा उसके टीकाकारो ने कोई प्रकाश नही डाला।

कुम्भनदास—प्रियादासजी ने कुम्भनदास जी के विषय मे कुछ विवरण नही दिया।

कृष्णदास—प्रियादास जी ने अपनी टीका मे इनका निम्नलिखित परिचय दिया है—

१. इन्होंने 'प्रेमरस-राशि' का प्रकाशन किया जिसको श्रीनाथ जी ने स्वीकार किया। 'प्रेमरस-राशि' नाम का इनका कोई ग्रन्थ अभी तक नही मिला। हाँ, इनके पदो का वृहद् सग्रह जो लेखक को मिला है, वह प्रेम-रस से ओतप्रोत है। सम्भव है, इस पद-समूह को ही प्रियादास ने 'प्रेम-रस-राशि' का नाम दिया हो।

२. दिल्ली के हाट मे एक वारमुखी पर रीझ कर ये उसे श्रीनाथ जी के समक्ष ले आये और उसे वहाँ नचाया। इनके प्रभाव से वह वारमुखी उसी समय शरीर छोडकर परम पद को प्राप्त हो गई। इस घटना का उल्लेख '८४ वार्ता' मे भी है।

३—एक बार कृष्णदास और सूरदास मे विनोद-रूप मे काव्य-प्रतियोगिता हुई। सूरदास ने कहा—"कृष्णदास ऐसा पद बनाओ जिसमे मेरी छाया न हो।" कृष्णदास ने इस आह्वान को स्वीकार कर लिया, परन्तु वे वडे सोच मे पड़ गए। उसी रात्रि को श्रीनाथ जी ने एक पद वनाकर उनकी शय्या पर रख दिया। प्रातः ये उस पद को लेकर सूरदास से मिले। सूर ताड गए और कहा—"यह तो श्रीनाथ जी ने पक्षपात किया है।" इस वात पर दोनो भक्त भगवान् के कृपा-रग मे पग गए।

४—कुएँ मे गिरकर इनका शरीर छूटा।

कृष्णदास जी के विषय मे प्रियादास जी द्वारा कथित उपर्युक्त वाते '८४ वैष्णवन की वार्ता' मे भी मिलती है।

नन्ददास—नन्ददास जी के विषय मे प्रियादास ने कोई वृत्तान्त नही दिया। वरेली-निवासी नन्ददास के वछिया जिलानेवाले प्रसग पर तो उनकी टीका है। प्रियादास के वाद के 'भक्तमाल' की टीकाओ मे भी अष्टछापवाले नन्ददास का विशेष हाल इसो से नही मिलता।

चतुर्भुजदास— प्रियादास ने इनके विषय में कोई विवरण नहीं दिया है।

गोविन्दस्वामी—प्रियादास जी ने भक्तमाल की टीका में गोविन्दस्वामी का वृत्तान्त कुछ अधिक दिया है।[1] उन्होंने इनके विषय में लिखा है—"ये गोविन्द 'स्वामी' नाम से विख्यात थे और सख्य भाव धारण कर सदा गोवर्द्धन नाथ जी के साथ खेलते थे। इनकी बात सुनकर नेत्र प्रेम से सजल हो जाते हैं। एक बार ये श्रीनाथ जी के साथ गुल्ली-डण्डा खेलते थे। श्रीनाथ जी ने अपना दाँव तो ले लिया, परन्तु जब गोविन्दस्वामी का बार आया तो श्रीनाथ जी भाग कर मन्दिर में घुस गये। गोविन्दस्वामी जी पीछे दौड़े आये और उन्होंने खैंचकर श्रीनाथ जी के गुल्ली मारी। जब पुजारी ने देखा तो उसने गोविन्दस्वामी को धक्का देकर बाहर निकाल दिया, वे बाहर बैठ गये और श्रीनाथ जी के बाहर निकलने और अपना बदला लेने की प्रतीक्षा करने लगे। जब गुसाईं जी को श्रीनाथ जी की प्रेरणा से यह बात ज्ञात हुई तब उन्होंने गोविन्दस्वामी को मनाया।" गोविन्दस्वामी के सखा-भाव को प्रकट करनेवाली इसी प्रकार की और भी कथाएँ प्रियादास जी ने दी हैं; परन्तु उन्होंने उनके भौतिक जीवन के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया। भक्तमाल की टीका में प्रियादासजी ने केवल उनकी भक्ति की प्रशंसा की है। उनकी काव्य-रचना के विषय में कुछ नहीं लिखा।

छीतस्वामी—प्रियादास तथा भक्तमाल के अन्य किसी टीकाकार ने इनके विषय में कुछ भी विवरण नहीं दिया।

भक्तमाल की टीकाएँ— राम रसिकावली महाराज रघुराजसिंह-कृत

भक्तमाल की इस टीका में सूर के सम्बन्ध में कोई महत्व की बात नहीं कही गई है। जो वृत्तान्त दिया है वह प्रशंसात्मक और मनगढन्त है। इसमें लिखा है,—"सूरदास उद्धव के अवतार थे। इन्होंने सवा लाख पद लिखने का सङ्कल्प किया। जिसमें से २५ हजार स्वयं कृष्ण ने इनके लिए बना कर दे दिये। ये जन्म से ही अन्धे थे। इनकी स्त्री ने एक बार इनकी परीक्षा ली और कहा कि हे प्रिय, मुझसे ग्राम की स्त्रियाँ कहती हैं कि तू अन्धे पति के रहते हुये किसके दिखाने को शृंगार करती है। सूर के कहने से उनकी स्त्री ने एक दिन सब शृङ्गार किया। सूरदास ने उसके सब शृंगारों को बताते हुये पूछा कि भाल पर बिन्दी क्यों नहीं लगाई है। उनकी स्त्री को विश्वास हो गया कि उसका पति दिव्य दृष्टि रखनेवाला कोई सिद्ध पुरुष है।" इसके बाद महाराज रघुराजसिंह ने सूर की भक्ति की प्रशंसा की है। सूर की अकबर बादशाह के साथ भेंट का भी उल्लेख है। इस वृत्तान्त से यह नवीन बात ज्ञात होती है कि सूरदास का विवाह हुआ था; परन्तु इस वृत्तान्त को सही अथवा प्रामाणिक मानने का कोई प्रमाण नहीं है। वार्ता के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि सूर अविवाहित ही रहे।

१—भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, प्रियादास जी के छन्द, पृष्ठ ६५८।

कवि मियाँसिंह ने सूर को ब्राह्मण, जन्मान्ध और मथुरा प्रान्त में उनकी जन्म-भूमि होना लिखा है। वे कहते हैं,—"जन्मान्ध होने के कारण माता को छोड कोई भी कुटुम्बी इनको प्यार नही करता था। जव ये आठ वर्ष के हुये तव इनका यज्ञोपवीत हुआ। एक वार इनके माता-पिता इनको लेकर ब्रज-यात्रा को मथुरा गये। सूर ब्रज में वैष्णवों के ही संग मे रह गये और माता-पिता के आग्रह करने पर भी वापिस नही गये। वे सत्संग, भगवत्-कीर्तन और गायन मे समय विताने लगे। कृष्ण-भक्ति में इनका मन ऐसा रमा कि ये कृष्ण-लीला के पद वनाकर गाने लगे। मथुरा में सूर की ख्याति चारों ओर फैल गई। एक दिन मार्ग मे कही जाते हुये ये कुएँ में गिर गये। तव भगवान् ने इनको निकाला। उस समय कृष्ण ने इन्हें नेत्र दिये। इन्होंने कहा कि हे भगवान्! जिन आँखों से मैंने आपको देखा है, उनसे अव और कुछ न देखूं और आपकी माया का प्रभाव मुझे न व्यापे। कृष्ण ने इन्हें ये दोनों वरदान दिये। फिर ये मथुरा आकर रहने लगे। एकवार बादशाह ने इन्हें बुलाया और प्रसन्न होकर इनको द्रव्य दिया। परन्तु इन्होंने स्वीकार नही किया, और अन्तकाल तक कृष्ण-भक्ति में ही कालयापन करते रहे।"

भक्तमाल की टीकाएँ—भक्त-विनोद कवि मियाँसिंह-कृत

इस वृत्तान्त मे सूर के गुरु का कोई उल्लेख नहीं है। यह वृत्तान्त '८४ वार्ता' के वृत्तान्त से नहीं मिलता। ज्ञात होता है कि अन्य सूरदासो की कहानियाँ मिलाकर तथा साहित्य-लहरी में दिये हुये सूर की वंशावलीवाले प्रक्षिप्त पद का कुछ अंश मे सहारा लेकर यह वृत्तान्त लिखा गया है। कवि मियाँसिंह का यह कथन, कि सूरदास ब्राह्मण थे, वार्ता के इस कथन से, कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे, कुछ अंश में पुष्ट होता है।

भक्त-नामावलि ध्रुवदासजी-कृत

ध्रुवदास जी गोस्वामी हितहरिवंश जी के शिष्य थे और वे वृन्दावन में रहा करते थे। इन्होंने भक्ति-विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। 'भक्त-नामावलि' में इन्होंने नाभादास जी की तरह भक्तों की भक्ति का संक्षेप में परिचय दिया है। यह ग्रन्थ दोहा छन्द में लिखा गया है। ध्रुवदास जीका प्रादुर्भाव अष्टछाप कवियो के वहुत थोडे समय बाद ही हुआ था। इस ग्रन्थ मे इसके रचना-काल का उल्लेख नही है। ध्रुवदास जी ने अपने ग्रन्थ 'सभा-मण्डली', 'वृन्दावन सत' और 'रहसि मञ्जरी' के रचना-काल क्रमशः सं० १६८१, सं० १६८६ तथा सं० १६९८ दिये हैं। अनुमान से भक्त नामावलि का रचना-काल सं० १७०० के लगभग माना जा सकता है। यह ग्रन्थ भी नाभादास जी के 'भक्तमाल' के आधार पर लिखा जान पडता है। इसमें दिये हुये अल्प वृत्तान्त भी प्रमाण कोटि के हैं, क्योंकि यह ग्रन्थ भक्ति-काल की ही रचना है।

सूरदास—नाभादास जी की तरह ध्रुवदास जी ने भी सूर के भौतिक जीवन का कोई वृत्तान्त नही दिया। परमानन्ददास के उल्लेख के साथ उन्होंने केवल यह कहा है,

"परमानन्ददास और सूर ने सब ब्रज की रीति गाई है। इनकी गोपियो की प्रीति को सुनकर लोग अन्य प्रकार की सब भक्ति की रीतियों को भूल जाते है।"[1] इसमे सूर की केवल भक्ति का ही परिचय दिया हुआ है।

परमानन्ददास—भक्त नामावलि मे चार स्थलो पर 'परमानन्द' का उल्लेख हुआ है। छन्द नं० ५०[1], ५१[2], ६५[3] और ८१[4] मे दिये हुए परमानन्द के वर्णन अष्टछाप के प्रसिद्ध महात्मा और कवि परमानन्ददास के विषय मे नही है। ध्रुवदासजी ने स्वयं इस बात को स्पष्ट कर दिया है, क्योकि इन तीनो स्थानो पर कहे हुये परमानन्द की 'श्री वृन्दावन' से विशेष प्रीति लिखी है और इनको युगल-उपासक बताया है। अष्टछापी परमानन्ददास ने भी वृन्दावन की महिमा गाई है, परन्तु वे रहते थे सदैव गोकुल या गोवर्द्धन पर ही, वृन्दावन नगर से उन्हे प्रेम न था।

भक्त-नामावलि में छन्द नं० ६५ में परमानन्द का जो वर्णन है वह अष्टछापवाले परमानन्ददास का ही प्रतीत होता है। उक्त छन्द मे लिखा है,—"परमानन्ददास और सूर ने मिलकर सब व्रज की रीति गाई है। इन गोपियों की प्रीति को सुनकर लोग अन्य प्रकार के भजन की सब रीतियों को भूल जाते हैं।"[5] इस वर्णन में 'परमानन्ददास और सूरदास' दोनो का नाम एक साथ लिया गया है। अतएव यह अष्टछाप के प्रसिद्ध सागर 'सूर और परमानन्द' पर लागू होता है। इस अल्प वृत्तान्त पर भक्तमाल में परमानन्द सारङ्ग के विषय में कहे हुये वृत्तान्त की निम्नलिखित पंक्तियों की छाया है।—

१—परमानन्द अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज रीति,
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति।
भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक राधाकृष्णदास, छं० नं० ६५।

१—परमानन्द किसोर होउ संत मनोहर खेम।
निर्वाह्यौ नीके सबनि, सुन्दर भजन को नेम। ५०

२—छांड़ि मोहिं अभिमान सब भक्तनि सों अति दीन।
वृन्दावन बसिकै तिनहिं, फिरि मन अनत न कीन।५१

३—बिहारी दास, दम्पति जुगुल, माधौ परमानन्द।
वृन्दावन नीके रहे, काटि जगत को फंद। ६५

४—परमानन्द माधौ मुदित, नव किसोर कल केलि।
कही रसीली भांति सौं, तिहि रस में रहे झेलि। ८१
भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक श्री राधाकृष्णदास।

५—भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक, श्री राधाकृष्णदास, छन्द नं० ६५।

"ब्रज वधू रीति मलियुगविपै, परमानन्द भयो प्रेम केत ।
पौगण्ड वाल, कैशोर गोप लीला सव गाई ।"

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भक्तमाल मे वर्णित परमानन्द सारंग को ध्रुवदास जी ने अष्टछापवाले परमानन्ददास ही माना है। इन्होंने परमानन्ददास जी के कीर्तनों की प्रशंसा के अतिरिक्त अन्य कोई विवरण नही दिया है ।

कुम्भनदास—श्री ध्रुवदास जी ने कुम्भनदास की केवल भक्ति की प्रशंसा की है। इनकी जाति, जन्मस्थान आदि विपयो पर कोई प्रकाश नही डाला । कृष्णदास अधिकारी और कुम्भनदास, दोनो का ध्रुवदास जी ने एक ही दोहे में वर्णन किया है। वे कहते है,—'कुम्भन दास और कृष्णदास ने गिरधर कृष्ण से सच्ची प्रीति की । इन्होंने अपने सब कर्म और धार्मिक कृत्य छोडकर केवल अपनी भक्ति के रस का ही गान किया है।'[1] इसमे ध्रुवदास जी ने कुम्भनदास जी के ग्रन्थो के विपय मे कुछ नही कहा ।

कृष्णदास—ध्रुवदास जी ने भक्त-नामावलि मे दो कृष्णदासो का उल्लेख किया है। एक कृष्णदास जगली और दूसरे कृष्णदास । कृष्णदास जगली के वारे मे उन्होंने लिखा है,— 'इनका मन युगल प्रेम रस मे मग्न रहता था । इन्होंने वृन्दावन की माधुरी को खूब वढ़ा कर गाया है।'[2] दूसरे कृष्णदास का नाम कुम्भनदास के साथ लिया गया है। इसलिए ज्ञात होता हैं कि अष्टछापवाले कृष्णदास यही दूसरे कृष्णदास है; परन्तु ध्रुवदास जी ने उनके बारे मे केवल यही कहा है,—'इन्होने गिरधर से सच्ची प्रीति की, सव कर्म और धर्म छोड़ कर केवल अपनी भक्ति की रस-रीति का ही गान किया।'[3] वस्तुत: ध्रुवदास जी ने कोई विशेष उल्लेख-नीय वात इनके बारे मे नही लिखी । इन्होंने जिस रस-रीति के गान के बारे मे कहा है उसको भी स्पष्ट नहीं वताया कि वह क्या रस-रीति थी । सम्भव है, इसका अर्थ यह हो कि कृष्णदास ने 'कर्म-धर्म' की मर्यादा का उल्लङ्घन कर प्रेमभाव का वर्णन किया है। कृष्णदास की रचनाओ से इसी बात की पुष्टि होती है !

१—कुम्भन, कृष्णदास गिरधर सों कीनी साँची प्रीति ।
कर्म धर्म पथ छाड़ि कै गाई निज रस रीति ६३
भक्त नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक, श्री राधाकृष्णदास जी, छं० नं० ६३ ।

२—कृष्णदास हुते जंगली तेउ तैसी भांति,
तिनके उर झलकत रहै हेम नील मनि कांति । २८
जुगल माधुरी रस अब्धि में परयो प्रवोध मनजाइ ।
वृन्दाबन रस माधुरी गाई अधिक लड़ाइ । २६
भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक श्रीराधाकृष्णदास, छं० नं० २८ तथा २६ ।

३—भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक राधाकृष्णदास, छन्द नं० ६३

नन्ददास—भक्तनामावली मे नन्ददास की जाति, जन्म-स्थान आदि प्रसङ्गों पर कुछ भी नही कहा गया है। इसमे कवि की भक्ति की प्रशंसा, उसके काव्य के गुणो का वर्णन और उसके मन की रसिक वृत्ति का ही परिचय दिया गया है। "नन्ददास ने जो कुछ भी कहा है वह सब 'राग रङ्ग', अथवा 'अनुराग रङ्ग' मे रँगा हुआ है। उनकी रचना के अक्षर सरल है और सुनते ही चित्त को चमत्कृत कर देते है। उनके मन की रसिक दशा है। उनके कवित्त सुन्दर रूप मे ढले हुये होते है। उनका मन प्रेम मे लवालव भरा रहता है। कृष्ण-रस मे वे मानों पागल हो गये है।"[1] ध्रुवदास जी के समय तक नन्ददास की ख्याति अच्छी तरह फैल चुकी थी। इसीलिये उन्होंने अपने समकालीन भक्त नन्ददास की प्रशंसा की है।

चतुर्भुजदास— ध्रुवदासजी ने केवल एक चतुर्भुज जी का वर्णन भक्त वैष्णवदासके साथ किया है। उससे यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं होता कि ध्रुवदास जी ने वह वर्णन श्रीहित-हरिवंश जी के शिष्य चतुर्भुज जी का किया है, जिनकी भक्ति और काव्य की प्रशंसा नाभा-दास जी ने की है, अथवा अष्टछाप के भक्त कवि चतुर्भुजदास जी का। परन्तु उस वर्णन के कुछ शब्दों पर विशेष ध्यान देने तथा वैष्णवदास के संसर्ग का अनुमान करने पर लेखक इस मत के निकट आता है कि वह अष्टछापवाले चतुर्भुज जी का ही है। ध्रुवदास जी द्वारा दिया हुआ वृत्तान्त इस प्रकार है—

परम भागवत अति भए भजन माहि दृढ़ धीर,
चतुर्भुज वैष्णवदास की वानी अति गम्भीर। ४८
सकल देस पावन कियो भगवत जसहि वढ़ाइ।
जहाँ तहाँ निज एक रस गाई भक्ति लड़ाइ। ४९

दो सौ बावन वार्ता मे वैष्णवदास का कोई उल्लेख नही है, परन्तु वैष्णवदास के पद वल्लभ-सम्प्रदायी मन्दिरो मे गाये जाते है। इस बात का उल्लेख 'भक्त-नामावली' के सम्पादक स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास जी ने भी भक्त-नामावली मे वर्णित महात्माओ के सक्षिप्त ऐतिहा-सिक वृत्तान्त मे चतुर्भुजदास के वर्णन के अन्तर्गत किया है। उन्होने भी ध्रुवदास जी के

१—'भक्तनामावलि' के दोहे नं० ७७:७९ में नन्ददास जी का उल्लेख है—
नन्ददास जो कछु कह्यो राग रंग सों पागि।
अच्छर सरस सनेह मय, सुनत सवन उठ जागि।
रसिक दशा अद्भुत हुती कर कवित्त सुढार।
बात प्रेम की सुनत ही छुटत नैन जल धार।
बावरो सो रस मै फिरे खोजत नेह की बात।
आछे रस के वचन सुनि वेगि विवस ह्वै जात।

चतुर्भुज जी वाले वर्णन को अष्टछाप के भक्तकवि चतुर्भुजदास जी का ही माना है। इससे वैष्णवदास के साथ चतुर्भुज दास का नाम वल्लभ-सम्प्रदायी चतुर्भुज दास जी का ही प्रतीत होता है। भक्त नामावली के उपर्युक्त वृत्तान्त मे लिखा है कि चतुर्भुजदास ने 'गाई भक्ति-लडाई'। 'लडाना' शब्द 'दुलार' या 'प्यार' के अर्थ में व्रज भाषा मे वात्सल्य-भाव का भी द्योतक होता है। नाभादास जी द्वारा वर्णित हितहरिवंश जी के शिष्य चतुर्भुज जी की भक्ति दास्य-भाव की थी। वल्लभ-सम्प्रदायी चतुर्भुजदास की भक्ति निकुञ्ज-लीला की माधुर्य-भक्ति के साथ वात्सल्य-भाव की भी थी। इस प्रकार ध्रुवदास जी के वर्णन से निम्नलिखित बाते ज्ञात होती है:—

१—चतुर्भुजदास जी की वाणी बडी गम्भीर थी।
२—इन्होने भगवान् की भक्ति का यश चारो ओर फैलाया।
३—ये बडे भगवद्भक्त थे और सदा अपने भजन मे लवलीन रहते थे।
४—इन्होने भगवान् की भक्ति का गान वात्सल्य-भाव से किया।

गोविन्दस्वामी—भक्त नामावली मे ध्रुवदास जी ने गोविन्द स्वामी का उल्लेख गङ्ग और विष्णु भक्तो के साथ किया है। वे कहते है,—'गोविन्द स्वामी, गङ्ग और विष्णु ने प्रिय-प्यारी (कृष्ण और राधा) का यश विचित्र राग और रङ्ग से संयुक्त कर गाया है।"[१] ध्रुवदास जी ने भी नाभादास जी का ही अनुकरण किया है; उनके कीर्तनो की प्रशंसा के अतिरिक्त अन्य कोई वृत्तान्त नही दिया। ध्रुवदास जी ने इनके ग्रन्थो के विषय मे कुछ नही कहा है। इन्होंने 'गोविन्द' नाम के साथ 'स्वामी' शब्द लगाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि यह वृत्तान्त अष्टछाप के स्वामी कहलानेवाले 'गोविन्द' का है।

छीतस्वामी नाभादास जी की तरह ध्रुवदास जी ने भी छीतस्वामी का उल्लेख कुछ भक्तो के नाम के साथ ही किया है। जिन भक्तो के साथ ध्रुवदास जी ने छीतस्वामी का नाम लिया है वे छीतस्वामी के साथ नाभादास जी द्वारा दिये हुए भक्त नही है, ध्रुवदास जी ने केवल इतना कहा है,— "रामानन्द, अगद, सोभू, हरिव्यास और छीतस्वामी इनमे प्रत्येक के नाम से जगत् पवित्र होता है।'[२] इस वृत्तान्त से छीतस्वामी के उच्च कोटि के भक्त होने की सूचना मिलती है।

१—गोविन्द स्वामी, गंग अरु विष्णु विचित्र बनाइ।
प्रिय प्यारी को जस कह्यो राग रङ्ग सो नाइ। ३५
भक्त-नामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक, श्रीराधाकृष्णदास, छं० नं० ३५।

२—रामानन्द अङ्गद, सोभू, हरि-व्यास अरु छीत,
एक एक के नाम तें सब जग होइ पुनीत। १०३
भक्तनामावलि, ध्रुवदास, सम्पादक, श्रीराधाकृष्णदास, पृ० १०।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के रचयिता श्री वल्लभाचार्य जी के पौत्र और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चौथे पुत्र श्रीगोकुलनाथ जी (सं० १६०८ से स० १६९७ वि०) कहे जाते हैं।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता

हिन्दी-संसार के सामने ८४ वार्ता के मुख्यत: तीन संस्करण आये थे—एक, वैष्णव सूरदास ठाकुरदास द्वारा स० १६४७ में बम्बई से प्रकाशित संस्करण और दूसरा, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित। डाकौर जी का तीसरा संस्करण है जिसके आधार पर श्री डा० धीरेन्द्र वर्मा जी ने 'अष्टछाप' नाम की पुस्तक का सङ्कलन किया है। '८४ वार्ता' नामक यह ग्रन्थ व्रजभाषा गद्य मे लिखा गया है। इसमें श्रीवल्लभाचार्य जी के ८४ शिष्यो का वृत्तान्त दिया हुआ है, जिसमे सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास, ये चार ही अष्टछाप के कवि सम्मिलित हैं। यद्यपि ये वार्ताएँ साम्प्रदायिक दृष्टि से लिखी गई है, फिर भी '८४ वार्ता' में बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। अष्टछाप के उपर्युक्त चार कवियो की जीवनी के लिए तो यह सबसे अधिक प्रामाणिक सूत्र है। श्री डा० धीरेन्द्र वर्मा जी ने भी 'अष्टछाप' की प्रस्तावना मे[1] वार्ता-साहित्य की ऐतिहासिक तथा भाषा-सम्बन्धी महत्ता पर प्रकाश डाला है।

चौरासी वार्ता के उपर्युक्त छपे संस्करणो के अतिरिक्त वल्लभसम्प्रदायी साहित्य-संग्रहालयों मे तथा वैष्णव गृहो में '८४ वार्ता' की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इस वार्ता मे दिये हुये चरित्रो के दो रूप लेखक के देखने मे आये हैं। एक, साधारण वृत्तान्त, दूसरे, हरिराय जी-कृत भाव-प्रकाशयुक्त वर्णन, जिनमे भक्तो के चरित्र कुछ विशेष सूचना के साथ दिये हुये हैं। श्री हरिराय जी भी गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ के ही वंशजो मे हुये हैं और ये श्री गोकुल नाथ जी के शिष्य थे। वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि हरिराय जी ने बहुत लम्बी आयु पाई थी, जैसा कि इनके जीवन-परिचय मे पीछे कहा जा चुका है। इनकी स्थिति सं० १६४७ से सवत् १७७२ तक अर्थात् १२५ वर्ष मानी जाती है। '८४ वैष्णवन की वार्ता'

१—"इस संग्रह को हिन्दी जनता के सम्मुख रखने में मेरे दो मुख्य उद्देश्य हैं। भाषा-सम्बन्धी उद्देश्य तो है, सत्रहवीं सदी के व्रजभाषा गद्य को सर्व साधारण के लिए सुलभ करना तथा साहित्यिक उद्देश्य सूरदास आदि कुछ प्रसिद्ध हिन्दी कवियो की जीवनियों के इन प्राय: समकालीन जीते-जागते वर्णनों से हिन्दी-प्रेमियों का घनिष्ठ परिचय कराना। इसके अतिरिक्त ये जीवनियाँ देश की तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति पर भी अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण प्रकाश डालती हैं। राष्ट्रीय जीवन के इन आवश्यक अंगों का सच्चा इतिहास लिखने के लिए हिन्दी साहित्य में कितना भाण्डार भरा पड़ा है, इसका दिग्दर्शन इस छोटे से संग्रह को आद्योपान्त पढ़ने से भली प्रकार हो सकेगा।" प्रस्तावना, अष्टछाप, डा० धीरेन्द्र वर्मा।

की सबसे प्राचीन प्रति जो लेखक के देखने में आयी है सं० १६९७ की लिखी है, जो कांक-रौली विद्या-विभाग मे सुरक्षित है। इस प्रति का लेखक ने निरीक्षण किया है और इसकी प्राचीनता पर उसे सन्देह नही है। यह वार्ता श्री गोकुलनाथ जी के समय की ही लिखी हुई है। इसके अन्त मे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चार शिष्य नन्ददास, चतुर्भुज दास, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामी की भी वार्ताएँ दी हुई है। इस प्रति मे संवत् इन चारो वार्ताओ के बाद मे लिखा है। इस प्रति की पुष्पिका का चित्र इसके साथ दिया जाता है। इसमे हरिराय जी का भावप्रकाश अथवा टिप्पणी नही है।

हरिराय जी-कृत भावप्रकाश वाली ८४ वार्ता की एक प्रति सं० १७५२ की है जो कांकरौली विद्या-विभाग को पाटन से प्राप्त हुई थी। इसके साथ 'अष्टसखान की वार्ता' भी है और उसमे हरिराय जी की टिप्पणी भी है। हरिराय जी की टिप्पणी को मूल वृत्तान्तो के साथ, इसी वार्ता के आधार पर कांकरौली-विद्याविभाग ने, अष्टछाप वार्ता (प्राचीन वार्ता-रहस्य, द्वितीय भाग के नाम से) स० १९९८ मे छपवाया है। भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता की एक और सचित्र प्राचीन प्रति लेखक ने गोकुल मे, 'मोर वाले मन्दिर के मुखिया श्री गोरीलाल साचीहरजी के पास देखी है और जिसमे से उसने सूरदास की वार्ता भी उतार ली है। भाव-प्रकाशवाली ८४ वार्ता[1] की एक प्रति स० १८७० की लेखक के पास भी है, जो उसे गोकुल से प्राप्त हुई थी।

भावप्रकाशवाली अथवा बिना भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता की जितनी प्रतियाँ लेखक ने देखी है उनमे लेखको की त्रुटि से ह्रस्व-दीर्घ की और कही-कही वाक्यो के निर्माण की भी अशुद्धियाँ है। इसी कारण भाषा की दृष्टि से वे एक दूसरे से बहुत भिन्न मालूम होती है। वृत्तान्त भाव प्रकाशवाली सभी प्रतियो मे एक से हैं। जिन उपर्युक्त चौरासी वार्ता की हस्त-लिखित प्रतियो का उल्लेख किया गया है, उनको लेखक प्रमाणिक मानता है।

सूरदास—८४ वैष्णवन की वार्ता तथा चौरासी वार्ता पर हरिराय जी का भाव-प्रकाश, इन दोनो ग्रन्थो में सूरदास का जीवन-वृत्तान्त विशेष विस्तार के साथ दिया हुआ है। लेखक के विचार से ये ही दो ग्रन्थ सूर की जीवनी के मुख्य आधार और विश्वसनीय ग्रन्थ हैं। इन्ही का मुख्य आधार लेकर तथा अन्य सूत्रो के अल्प वृत्तान्तों को मिलाकर आगे के पृष्ठो मे सूर की जीवनी की रूपरेखा दी जायगी।

१—प्राचीन वार्ता-रहस्य, भाग २ की प्रस्तावना में इस ग्रन्थ के लेखक के जो लेख हैं उनमें भूल से इस प्रति का संवत् १८५७ छप गया है। वास्तव में प्रति १८७० विक्रमी संवत् की है।

कॉकरोली विद्या-विभाग मे स्थित, संवत् १६९७ वि०, की '८४ वैष्णवन की वार्ता' तथा 'श्रीगुसाईजी के सेवक चारि अष्टछापी' की वार्ता के दो पृष्ठो के अंश

प्रो० कण्ठमणिजी शास्त्री, कॉकरोली, की कृपा से प्राप्त

८४ वार्ता[1] मे लिखा है,—"वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले सूरदास जी पद बनाकर गाते थे। वल्लभाचार्य जी की शरण में आने के बाद उन्होंने सुबोधिनी भागवत के अनुसार पद बनाये। सूर के पदो में वर्णित विषय, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति-भेद, अनेक भगवद् अवतारो की लीला का वर्णन है।" उनके पदों के प्रभाव के विषय में वार्ताकार कहता है कि सूर के पद सुनकर भगवान् का अनुग्रह, मन को बोध और संसार से वैराग्य होता है। भगवान् के चरणों मे मन लगता है। लौकिक आसक्ति छुटकर भगवान् के प्रति प्रेम मे वृद्धि होती है! वार्ताकार (गोकुलनाथ) जी ने कहा है कि सूर ने सहस्रावधि पद बनाये और वे अपनी महान् रचना के कारण 'सागर' कहाये। श्रीहरिराय जी ने सूर की वार्ता का भाव स्पष्ट करते हुये सूर के पदो की सङ्ख्या लक्षावधि कही है। कवि के काव्य के विषय में उक्त वार्ता से यह भी सूचना मिलती है कि उसके पदों में उसके जीवन-काल में ही मेल होने लगा था और लोग सूर की छाप डालकर अपने पद सूर-काव्य में मिलाने को अकबर के पास ले गये थे। वार्ता से सूर की केवल एक रचना (सूरसागर) की ही सूचना मिलती है और उनकी कविता के जो भिन्न-भिन्न रूप दिये गये हैं उन सबका समावेश इसी एक रचना, सूरसागर में कहा गया है।

परमानन्ददास—परमानन्ददास जी के जीवन-विषयक पीछे कहे हुये अल्प वृत्तान्त के अतिरिक्त जो वृत्तान्त कुछ विस्तार से मिलता है वह चौरासी वार्ता का ही है। वार्ता साहित्य का परिचय देते हुये पीछे कहा गया है कि अष्टछाप कवियों की जीवन-सामग्री का मुख्य सूत्र वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ता ही है।

कवियो के जो वृत्तान्त सं० १६९७ की ८४ वार्ता तथा अष्ट सखान की वार्ता मे दिये हुये हैं उसका समावेश हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली वार्ता में हो जाता है। इसलिए हरिरायजी-कृत भाव-प्रकाश वाली ८४ वार्ता के आधार से तथा अन्य सूत्रो से प्राप्त वृत्तान्तो से उसको पुष्ट करके परमानन्द- दास का जीवन-वृत्तान्त आगे दिया जायगा। उक्त वार्ता में परमानन्ददास के जन्म स्थान, जाति, माता-पिता, शिक्षा, शरणागति, मृत्यु, उनकी रचना और भक्ति पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। वार्ता के कथनो के आधार से अष्ट कवियों की कुछ जीवनी-तिथियाँ भी परोक्ष रूप से निकाली जा सकती हैं। परमानन्ददास के जीवन पर भी इस प्रकार के अनुमान वार्ता के आधार से लेखक ने लगाये हैं।

८४ वैष्णवन की वार्ता में कई स्थलो पर यह भी उल्लेख आता है कि परमानन्ददास ने सहस्रावधि पद बनाये। वार्ता के इस कथन से,—"तामो वैष्णव तो अनेक श्री आचार्य जी के कृपापात्र हैं, परन्तु सूरदास और परमानन्ददास ये दोऊ सागर भये, इन दोउन के कीर्तन की सङ्ख्या नाही सो दोउ सागर कहवाए"[2], यह भी सूचना मिलती है कि जैसे सूरदास जी की

१—'अष्टछाप,' कांकरौली, पृ० १३, २३, २५, २७, ४६ तथा ५१
२—'अष्टछाप,' कांकरौली, पृ० ७४ : ७५, परमानन्ददास की वार्ता।

वृहत् रचना सूरसागर है उसी प्रकार परमानन्ददास जी के काव्य का संग्रह परमानन्द-सागर है। वार्ताकार के उपर्युक्त कथन से हम यह भी अनुमान लगा सकते हैं कि परमानन्ददास की ख्याति सूर की तरह उनके जीवन-काल मे ही हो गई थी। सम्भव है कि कवि के समय में ही अथवा उसके गोलोकवास के कुछ ही समय बाद उसकी रचनाओ का संग्रह कर लिया गया हो और उसका नाम परमानन्द-सागर रख दिया गया हो।

कुम्भनदास—कुम्भदास जी का जीवन-वृत्तान्त हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता तथा सं० १६९७ की ८४ वार्ता मे विस्तार के साथ दिया हुआ है। चौरासी वार्ता मे इस बात का अनेक स्थलो पर उल्लेख हुआ है कि कुम्भनदास जी गान बहुत अच्छा करते थे और पद स्वयं बनाकर गाते थे। वार्ता से ज्ञात होता है कि कुम्भनदास ने केवल युगल-स्वरूप के ही पद बनाये थे और अन्य किसी विषय पर रचना नही की।[1] कुम्भनदास ने कितने पद बनाये, उन पदो का कोई संग्रह उनके जीवन-काल मे हुआ था अथवा नही, इन बातो का वार्ता से कोई परिचय नही मिलता।

कृष्णदास—कृष्णदास की जीवनी के भी सबसे प्रचुर आधार '८४ वैष्णवन की वार्ता' तथा श्री हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता है। उक्त 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे वल्लभ-सम्प्रदायी पाँच कृष्णदासो का वर्णन है।

१—कृष्णदास मेघन[2]—वार्ता के अनुसार ये श्री आचार्य जी की सेवा में नित्य रहा करते थे। इनकी काव्य-रचना का वार्ता मे कोई उल्लेख नही है।

२—कृष्णदास घघरिया[3]—इनको वार्ताकार ने बाबा वेणुदास का छोटा भाई और केशोराय जी का भक्त लिखा है। इनके पद और कीर्तनो का भी उल्लेख वार्ता में है, परन्तु इनके पदो के उदाहरण वार्ता मे नही दिये गये।

३—कृष्णदास ब्राह्मण[4]—वार्ता मे आचार्य जी के सेवक कृष्णदास ब्राह्मण की भक्त-सेवा की विशेष प्रशंसा की गई है।

४—कृष्णदास[5]—ये अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कवि कुम्भनदास जी के पुत्र थे, जिनको श्रीनाथ जी की गाय चराते हुये, एक सिंह ने मार डाला था। इनके भी कीर्तनों का कोई उल्लेख वार्ता मे नही है।

१—'अष्टछाप,' कांकरौली, पृ० ११७ तथा पृ० १०९।
२—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० ९।
३—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० १८४।
४—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० २५४।
५—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वे० प्रे०, पृ० ३३८।

५—कृष्णदास अधिकारी[1]—इनके विषय मे वार्ता में स्पष्ट रूप से लिखा है कि इनके पद अष्टछाप में गाये जाते हैं। हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली वार्ता में इनका वृत्तान्त विस्तार से दिया है। '८४ वैष्णवन की वार्ता' में इनके किसी पद-संग्रह का अथवा किसी ग्रन्थ का नाम नही मिलता। वार्ताकार ने इनकी रचनाओ के विषय मे लिखा है—"कृष्णदास ने वहुत से कीर्तन गाये और रासादिक कीर्तन अद्‌भुत और अनुपम किये"[2]

अष्टछाप कवियो मे से गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चार शिष्यो का वृत्तान्त '२५२ वैष्णवन की वार्ता' मे दिया हुआ है। इस ग्रन्थ में वस्तुतः गोस्वामी जी के ही २५२ शिष्यों का वर्णन है। २५२ वार्ता पर भी हरिराय जी ने 'भाव-प्रकाश' किया था। जितनी प्राचीन प्रतियाँ ८४ वार्ता की लेखक के देखने में आयी हैं उतनी प्राचीन प्रतियाँ २५२ वार्ता की नही। परन्तु २५२ वैष्णवन की वार्ता की संवत् १८०० से लेकर संवत् १९२४ तक की पच्चीसियो प्रतियाँ उसने गोकुल और मथुरा मे देखी हैं। इनमें अष्टछाप के चार भक्तों के वृत्तान्त प्राचीन अष्टसखान की वार्ता तथा संवत् १६९७ की 'गुसाँई जी के अष्टछापी चार सेवकन की वार्ता' के वृत्तान्त से वहुत अश में मिलते हैं। कुछ प्रतियो मे कुछ अधिक प्रसंग भी जुडे हुए है। इनसे अनुमान होता है कि हरिराय जी की टिप्पणियाँ भी इन वृत्तान्तो मे मिली हुई हैं। सूरदास ठाकुरदास द्वारा संवत् १९४७ में वम्वई से प्रकाशित प्रति, वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित प्रति तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित 'अष्टछाप'—इन तीन प्रतियो के कवियो के वृत्तान्तो से लेखक की देखी हुई प्राचीन प्रतियों के वृत्तान्तो मे वहुत अन्तर है। भाषा का वैषम्य तो प्रत्येक हस्तलिखित प्रति मे, ८४ वार्ता की तरह, २५२ वार्ता में भी मिलता है।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

हिन्दी मे अष्टछाप कवियो के जीवन-वृत्तान्त के लिये, जैसा कि पीछे कहा गया है, वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ता-साहित्य को छोडकर अन्य कोई विश्वस्त सूत्र नही। हिन्दी के कई विद्वान् इतिहासकारो ने कही तो यह कहकर ८४ एव २५२ वार्ताओ को अप्रमाणित कह दिया है कि ये साम्प्रायिक गौरव वढाने के लिये गढ़ी हुई कपोल-कल्पनाएँ हैं[3]। कही कुछ विद्वानो ने

१—चौरासी वैष्णवन की वार्ता वें० प्रे०, पृ० ३४२

२—"सो या प्रकार वहोत कीर्तन कृष्णदासजी ने गाये"—'अष्टछाप,' कॉकरौली, पृ० २०५। "तासों गुसांई जी कहे, जो कृष्णदास रासादिक कीर्तन,ऐसे अद्‌भुत किये सो कोई दूसरे से न होय।" 'अष्टछाप,' कॉकरौली, पृ० २४६

३—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २११ तथा पृ० १९६

"रंगढङ्ग से (चौरासी वैष्णवन की वार्ता) यह वार्ता गोकुलनाथ जी के पीछे उनके किसी गुजराती शिष्य की रचना जान पड़ती है।"

दोनों वार्ताओं मे भाषा का वैषम्य देखकर २५२ वार्ता को नितान्त बाद की रचना बताया और कुछ लोगो[1] ने छपी वार्ताओं में गोकुलनाथ जी के समय के बाद की दो एक घटनाओ को तथा उनमे दिये हुये शोधित वृत्तान्तो को देखकर सम्पूर्ण २५२ वार्ता तथा वार्ता-साहित्य को अप्रामाणिक कह दिया है। परन्तु जब हिन्दी के इतिहासकार अष्ट कवियो का परिचय देते है तो वे अब तक इन्ही छपी वार्ताओ के विवरण का सहारा भी लेते हैं। हस्तलिखित ८४ अथवा २५२ वार्ताओ के खोजने का तथा उन्हें देखने का कष्ट हिन्दी के इन विद्वानो ने नही उठाया। २५२ वार्ता की प्राचीन प्रतियाँ अधिकांश में अवश्य प्रामाणिक है। ८४ तथा २५२ दोनों वार्ताओ के सम्बन्ध में जो प्रश्न स्वभावतः उठते है, उनको हम इस प्रकार रख सकते हैं:—

१—ये वार्ताएँ गोकुलनाथ जी कृत हैं अथवा नही ?

२—इन वार्ताओं का रचनाकाल क्या है ? क्या ८४ वार्ता, २५२ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ताएँ एक ही समय की लिखी है अथवा किसी अन्तर से इनको लिपिबद्ध किया गया है ?

३—इनमे दिये हुए वृत्तान्त कहाँ तक प्रमाण-कोटि मे गिने जा सकते है ?

वल्लभसम्प्रदायी वार्ता-साहित्य तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि वल्लभसम्प्रदायी भक्तो के चारित्रिक दृष्टान्तो द्वारा साम्प्रदायिक उपदेश देने की प्रथा श्री वल्लभाचार्य जी के पौत्र और श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चौथे पुत्र, श्री गोकुलनाथ जी ने चलाई। लेखक का अनुमान है कि श्री वल्लभाचार्य जी के मुख्य शिष्यों के चरित्रो की वार्ताएँ तो मौखिक रूप से श्री गोकुलनाथ जी के बाल्य-काल मे ही आरम्भ हो गयी होगी और उनको उन्होंने सुना होगा। कुछ चरित्र उनके स्वयं देखे हुये थे। गोस्वामी गोकुलनाथ जी मौखिक रूप से अपने सम्प्रदायी भक्तो को आचार्य जी के ८४ और अपने पिता के २५२ शिष्यों की चारित्रिक कथाएँ सुनाया करते थे जो बाद मे उनके जीवन काल में ही लिपिबद्ध कर ली गईं। इन वार्ताओं को वस्तुतः गोकुलनाथ जी ने अपने हाथ से कभी नही लिखा। ये वार्ताएँ उनके द्वारा कथित हैं और इनके लिपिबद्धकर्ता उनके शिष्य है। इन दोनो वार्ताओ के रचयिता श्री गोकुलनाथ जी ही हैं, इसके अनेक प्रमाण है:—

अ—प्राचीन प्राप्य हस्तलिखित वार्ताओं मे इन्हे श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कृत लिखा है। श्री हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली वार्ताओं मे भी इन्हे "श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कृत" लिखा है।

१—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ६४६।

आ—श्री गोकुलनाथ जी के समसामयिक व्यक्ति श्री देवकीनन्दन रचित[1] 'प्रभुचरित चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ में वार्ताओ के श्री गोकुलनाथ जी द्वारा कहे जाने का उल्लेख है।

इ—श्री हरिराय जी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्ट द्वारा रचित 'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' (रचना-काल सवत् १७२९ वि०) मे श्री गोकुलनाथ जी द्वारा बनाए हुये ग्रन्थो का उल्लेख है। इस ग्रन्थ मे लिखा है—

"वचनामृत चौबीस किये दैवी जन सुख दान।
वल्लभ विट्ठल वारता प्रकट कीन नृप मान।"

इस छन्द मे भी वल्लभाचार्य जी तथा श्री विट्ठलनाथ जी दोनो की वार्ताओ का उल्लेख है।

ई—"निज वार्ता घरु वार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र" नामक छपे हुये ग्रन्थ मे श्री गोकुलनाथ जी के भक्तो की चारित्रिक वार्ताओ को मौखिक रूप से कहने का इस प्रकार उल्लेख है —

"श्री गोकुलनाथ जी आप भगवदीयन ते इतनी कथा कहि विराम करत भए, तब भगवदीयन ने बीनती कीनी, महाराज ! आपने श्री आचार्य जी महाप्रभु की तीन पृथ्वी परिक्रमा के चरित्र संक्षेप मे सुनाए, परि या चरितामृत मे हमको तृप्ति नाही होत। ताते और हू श्री आचार्य जी के चरित्र सुनाइबे की कृपा करोगे। तब श्री गोकुलनाथ जी आज्ञा करत भए जो श्री आचार्यजी महाप्रभु के चरित्र तो अनन्त है पर औरहू संक्षेप सो तुमको सुनावत हो। ऐसे कहि के आप और हू चरितामृत अपने भगवदीयन को पान करावत भए।"[2]

उ—इन वार्ताओ के प्रचार का ध्येय भक्तों के चारित्रिक उदाहरणो को उपस्थित करके भक्ति-भाव का हृदय मे उद्रेक करना है। गोकुलनाथ जी इसी विचार से इन वार्ताओ को कथा-रूप से कहते थे। जगदीश्वर प्रेस से सवत् १९५१ मे छपी '८४ वैष्णवन' की वार्ता, पृष्ठ २९१ के लेख से तथा कॉकरौली से भगवदीय श्री द्वारिकादास जी के पास सुरक्षित निज वार्ता की एक प्रति (संवत् १८५१ की) से भी इसकी पुष्टि होती है।

"और श्री गोकुलनाथ जी आप कथा कहते सो एक दिन श्री गोकुलनाथ जी आप

१—"तदपि भगवत्सेवापरैः श्री गोकुलनाथैः शयनभोगसेवोत्तरलब्धगाथावसरैः सुबोधिन्यादिना श्रीभागवतकथाकथनानन्तरं श्रीमदाचार्य-तदात्मजचरितकथापि नियमेन परिगृहीता वक्तुम्......प्रभुचरित्र चिन्तामणि।"

२—'निजवार्ता, घरुवार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र", लल्लू भाई छगनलाल देसाई, पृ० ६३।

दामोदरदास सम्भरवारे की वार्ता करत हुते तब एक वैष्णव ने पूछ्यो जो महाराज, आज कथा न कहोगे। तब गोकुलनाथ जी आप श्रीमुख तै कह्यो जो आज तो कथा को फल कहत हैं। तातै भगवदीयन को अवश्य चौरासी वार्ता कहनी और सुननी, जाते भगवद्भक्ति होय और श्री ठाकुर जी के चरणारविंद में स्नेह होय और श्री नाथ जी प्रसन्न होयं।"[१]

प्रथम प्रश्न के उत्तर मे दिये हुए उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि ८४ और २५२ वार्ताएँ श्री गोकुलनाथ जी द्वारा ही कथित हैं, इसलिये वे उनके कर्ता कहे गये है। हाँ, इतना अवश्य है, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, ये वार्ताएँ श्री गोकुलनाथ जी के हाथ से नही लिखी गईं, इनको उनके शिष्यो ने लिखा है और समय समय पर इनकी प्रतिलिपियाँ होती रही हैं।

दूसरा प्रश्न है, ८४ और २५२ वार्ताओ के रचना-काल के सम्बन्ध मे।

लेखक के विचार से, श्री कण्ठमणि जी शास्त्री, कॉकरौली की सहमति मे, उक्त वार्ता-साहित्य के, हस्तलिखित रूप मे, तीन सस्करण माने जा सकते है।[२]

प्रथम सस्करण —श्री गोकुलनाथ जी के कथा-प्रवचन के समय का मूल रूप प्रथम सस्करण है जो उनके हास्य प्रसग[३] के समान वचनामृत रूप[४] में हमे प्राप्त होता है। इसमें श्री आचार्य जी के ८४ और श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के २५२ भक्तो का वर्गीकरण नही था। इसको सग्राहात्मक वार्ता-साहित्य कह सकते है। इसको श्री गोकुलनाथ जी के शिष्यो ने लिपिवद्ध किया। श्री गोकुलनाथ जी के वचनो को लिखनेवाले उनके शिष्यो में एक कल्याण भट्ट[५] भी थे।

१—श्री द्वारिकादास, कॉकरौली, के पास की निज वार्ता से उद्धृत।

२—प्रस्तावना, प्राचीन वार्ता-रहस्य द्वितीय भाग, कॉकरौली से प्रकाशित।

३—"श्री गोकुलनाथ जीना हास्य प्रसंगों", भाग १ तथा २।
अहमदाबाद से प्रकाशित।

४—'श्रीमद् गोकुलनाथ जी कृत चौवीस वचनामृत'।
लल्लूभाई छगनलाल देसाई।

५—'तब श्रीगोकुलनाथ जी कल्याण भट्ट के ऊपर बहोत प्रसन्न भये तब श्रीगोकुलनाथ जी कल्याण भट्ट प्रति आज्ञा कीए, जो यह वार्ता और के आगे कहिबे की नाहीं है, तुम भगवद्भक्त हो और तुमकों पुष्टिमार्ग की रीति सुनिबे में अत्यन्त प्रीति है ताते तुमसों कहत हूं सो मन लगाय के सुनियो। तथा हृदय में धारण करियो। अब श्रीगोकुलनाथ जी भगवदीय के लक्षण तथा पुष्टि मार्गीय सिद्धांत कल्याण भट्ट प्रति कहत हैं ...."

श्रीमद्गोकुलनाथ जी कृत चोवीस वचनामृत, लल्लूभाई छगनलाल देसाई, सम्वत् १९७७ संस्करण, पृ० ३।

द्वितीय संकरण—श्रीगोकुलनाथ जी के समय मे ही गो० हरिराय जी (समय सं० १६४७ वि०—सं० १७७२ वि०) ने फिर इनका वर्गीकरण किया और ८४ वार्ता को लिपिवद्ध किया । इसी समय से लिपिवद्ध वार्ताओ पर 'श्रीगोकुलनाथ जी-कृत' लिखा जाने लगा । काँकरौली-विद्याविभाग में जो सम्वत् १६९७ चैत्र सुदी ५ की एक हस्तलिखित, आचार्य जी के ८४ तथा गोस्वामी जी के चार अष्टछापी सेवको की वार्ता विद्यमान है वह हरिराय जी के भावप्रकाश से रहित है. इस वार्ता के रूप में इसी दूसरे संस्करण का रूप हमारे सामने आता है ।

तृतीय सस्करण—श्रीगोकुलनाथ जी के वाद श्रीहरिराय जी ने ८४ तथा २५२[1] वार्ताओ पर कुछ प्रसङ्ग बढ़ाकर उनके भाव का स्पष्टीकरण किया, जो गोस्वामी हरिराय जी की भावना की वार्ताएं कही जाती हैं और ऐसी वार्ताओ पर हरिराय जी के भावप्रकाश का उल्लेख है । सम्वत् १७५२ की भाव प्रकाशवाली ८४ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ता, मोरवाले मन्दिर गोकुल की ८४ वार्ता, तथा लेखक के पास सुरक्षित ८४ वार्ता की प्रतिलिपि, इस तृतीय संस्करण के प्रमाणस्वरूप नमूने हैं । हरिराय जी ने इन टिप्पणी सहित ८४ और अष्टसखाओ की वार्ताओं को गोकुल में रहकर ही सम्पादित किया था ।

उपर्युक्त कथन से ज्ञात होगा कि श्रीहरिराय जी के भावप्रकाश की प्राचीन प्रति ८४ और अष्टसखान की वार्ता की, तो उपलब्ध हैं, परन्तु २५२ वार्ता की सम्वत् १८०० से पहले की कोई प्रति लेखक के देखने में नही आई । सुना जाता है कि कामवन के पुस्तकालय में २५२ वार्ता की बहुत प्राचीन प्रति विद्यमान है ।[2] लेखक ने २५२ वार्ता की लगभग २०० वर्ष पुरानी अनेक प्रतियाँ गोकुल और मथुरा में देखी है । उनके बहुत से प्रसङ्ग वेंकटेश्वर प्रेस, जगदीश्वर प्रेस आदि से छपी वार्ताओ मे छोड़ दिये गये हैं । इस वैषम्य का कारण सम्पादको की स्वच्छन्दता है जिसका स्पष्टीकरण आगे किया जायगा । लेखक का अनुमान है कि श्रीगोकुलनाथ जी के ८४ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्तावाले प्रवचनो का सङ्कलन पहले हुआ और उन पर हरिराय जी ने अपनी टीका-टिप्पणी पहले गोकुल मे रहते

१—इस विषय में लेखक को सूरत में श्रीकण्ठमणि जी शास्त्री से एक वात और ज्ञात हुई कि श्रीगोकुलनाथ जी अपने अन्तिम जीवन-काल में नेत्रहीन हो गये थे। परन्तु वे आचार्य जी के ८४ और गुसाई जी के भक्तो के लिखित चरित्रो की पोथी को अपने सन्दूक में बन्द रखते थे और दिन में एक बार उसको मस्तक से लगाकर रखा देते थे । उनके पुत्रों ने उसी पुस्तक की एक प्रतिलिपि कर ली जो, उक्त शास्त्री जी का कहना है, एक वैष्णव के पास है और उसे प्राप्त करने को वे प्रयत्न कर रहे हैं ।

२—वहाँ के श्रीमहाराज नाबालिक हैं तथा वहाँ का निज पुस्तकालय देखने को नहीं मिलता । लेखक के प्रयत्न करने पर भी उक्त वार्ता देखने को न मिल सकी ।

हुये ही लिखी। सम्वत् १७२६ मे औरंगजेब के अत्याचार से वैष्णव लोग श्रीनाथ जी को उनके सम्पूर्ण वैभवसहित गोवर्द्धन से बाहर ले गये और दो वर्ष बाद सम्वत् १७२८ में उनको श्रीनाथद्वार मे विराजमान किया। उनके साथ श्रीहरिराय जी गंगाबाई आदि अनेक भक्त गये थे। ज्ञात होता है कि श्रीहरिराय जी ने अपने उत्तर जीवन-काल में २५२ वार्ता पर अपना भावप्रकाश लिखा होगा जो २५२ वार्ता के रूप मे हमे गोकुल आदि स्थानो मे मिलता है। उपलब्ध २५२ वार्ता की प्रतियाँ हरिराय जी द्वारा ही सम्पादित और परिवर्धित है। मूल २५२ वार्ता, सम्भव है, कही छिपी पड़ी हो।

२५२ वार्ता मे अजबकुँवरि, गंगाबाई, लाडबाई और धारबाई के चरित्रो मे कुछ ऐसे प्रसंग आते हैं जिनमे औरंगजेब के मन्दिर तोडने का जिक्र आता है। इसी वार्ता मे श्रीगोकुल-नाथ जी का नाम आदर-प्रदर्शक शब्दो मे प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार के वृत्तान्त स्वभावतः पाठको के हृदयो मे शका उत्पन्न कर सकते है कि यह २५२ वार्ता ग्रन्थ गोकुलनाथ जी कृत नही हो सकता, क्योकि ये घटनाएँ श्रीगोकुलनाथ जी के समय के बाद की है। किन्तु इस बात को भी हमें न भूलना चाहिए कि इन[1] वार्ताओ के सम्पादक हरिराय जी है और इन प्रसगो का समावेश उन्होंने ही किया था जो औरगजेब के मन्दिर तोडने के बहुत समय बाद तक जीवित रहे थे। इन प्रसगों मे कुछ अतिरजित हो सकते है।

अप्रैल, सन् १९३२ की 'हिन्दुस्तानी' मे तथा अपने ग्रन्थ 'विचारधारा' मे डा० धीरेन्द्र वर्मा जी ने २५२ वार्ता पर अपने विचार प्रकट किये है। डा० वर्मा जी ने भाषा की दृष्टि से 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' को 'दो सौ बावन वार्ता' की अपेक्षा अधिक पुराना बताया है और दोनो वार्ताओ के रचयिता दो भिन्न व्यक्ति बताये है। पीछे कहा गया है कि ऐतिहासिक आधारो से ज्ञात होता है कि ८४ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ता वस्तुतः पहले सम्पादित कर ली गई और २५२ वार्ता बाद को हुई। इसी से दोनो की भाषाओ मे वैषम्य होना कोई बडी बात नही है; परन्तु भाषा का वैषम्य केवल ८४ तथा २५२ वार्ताओ मे परस्पर ही नहीं वरन् ८४ वार्ता तथा २५२ वार्ता की भिन्न-भिन्न समय की तथा एक ही समय के भिन्न-भिन्न प्रतिलिपिकारो की प्रतियो मे भी मिलेगा। प्रतिलिपिकारो का तथा प्रतिलिपि करानेवाले वैष्णवो का ध्यान भाषा की शुद्धता की ओर कभी नही रहा। उनका ध्यान केवल वृत्तान्त के भाव की ओर रहा है। इसीलिए पोथी-प्रतिलिपिकारो ने अपने-अपने प्रान्त और अपनी अपनी

१—२५२ वार्ता के तृतीय संस्करण के समय, जो सम्वत् १७२६ के बाद श्रीनाथद्वार में हुआ, श्रीहरिराय जी ने लाड़बाई, धारबाई, अजबकुंवरि और उस समय तक विद्यमान गङ्गा क्षत्राणी आदि के, श्रीगोकुलनाथ जी द्वारा प्रकटित अपूर्ण प्रसङ्ग को पूर्ण किया। इससे पहले के बीच के समय में उन्होने श्रीनाथ जी (गोवर्द्धन नाथ जी) के प्राकट्य की वार्ता लिखी थी, जिसका उल्लेख गङ्गाबाई की वार्ता से आता है।

शिक्षा-बुद्धि के अनुसार भापा का रूपान्तर कर मारा है।[1] इसलिए जिस वैष्णव ग्रन्थ मे उसकी प्रतिलिपि की जो तिथि दी हो, हम केवल उसी समय और उसी स्थान की भापा का थोडा सा अनुमान उस ग्रन्थ से लगा सकते है; परन्तु इस आधार से हम, विशेप रूप से प्रचलित वैष्णव-वार्ताओ की भाषा के आधार से, उसके लेखक के समय का अनुमान नही लगा सकते।

पीछे कहा गया है कि छपी हुई ८४ वार्ता और २५२ वार्ताओ के वृत्तान्त और भापा हस्तलिखित वार्ताओ से नही मिलते। छापे की वार्ताओ मे वहुत से प्रसग और वाक्य छोड दिये गये है। इसका कारण लिखिया, सम्पादक और प्रेसवालो की असावधानी और स्वच्छन्दता है। इस बात का प्रमाण वैष्णव सूरदास ठाकुरदास द्वारा वम्वई से सम्पादित २५२ वार्ता की प्रस्तावना का लेख है। सूरदास ठाकुरदास वाली वार्ताओ के आधार से ही वाद में इन वार्ताओं के संस्करण हिन्दी, गुजराती मे छपे थे। इस प्रस्तावना का कुछ अश यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

"सर्व भगवदीय वैष्णवन कुँ हाथ जोड़ के विनती करूँ हूँ। मैंने २५२ वैष्णवन की वार्ता अल्पवुद्धि सुँ सोधि के छपाई है.............. ..और सवमे विस्तार वहुत है परन्तु सो विस्तार कैसो है, जो वाँचि के वैष्णवन की वृत्ति स्थिर होवे और चित्त की वृत्ति श्री प्रभुन में लगे सो वा विस्तार में यह गुण नही है, सो ऐसो विस्तार काढ़ के, संकोच कर कें लिखी है।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि अब तक छापे मे आनेवाली २५२ वार्ता के वहुत से चारित्रिक और विशेष रूप से ऐतिहासिक प्रसंग जो साम्प्रदायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नही हैं छोड दिये गये हैं। उदाहरण के लिए छपी वार्ताओ मे नन्ददास की जाति नही लिखी; परन्तु प्रत्येक प्राचोन हस्तलिखित प्रति तथा पीछे कही हुई सवत् १६९७ तथा १७५२ सम्वत् की अष्टछापो कवियों की वार्ताओं में नन्ददास को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है तथा उन्हे तुलसीदास का भाई कहा गया है।

२५२ वार्ता की प्रस्तावना मे वैष्णव सूरदास, ठाकुरदास आगे लिखते हैं—"२५२ वैष्णवन की वार्ता सम्पूर्ण मिली नही जासुँ मैंने वल्लभकुल के वालकन के मुखसो और प्राचीन वैष्णवन के मुख सूँ सुनी है सो वार्ता मिलाय के २५२ वार्ता सम्पूर्ण करी है।" इससे सिद्ध है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चार अष्टछापी सेवको के जीवन वृत्तान्त के लिए काँकरौली

१—अभी हाल में लेखक ने मथुरा में एक पुराने प्रतिलिपिकार (लिखिया) से २५२ वार्ता की प्रतिलिपि कराना आरम्भ किया था। उस लिखिया ने दो चार पन्नों में ही इतनी स्वतन्त्रता और भाषा के रूपान्तर दिखाये कि उसकी प्रतिलिपि कराना वन्द करना पड़ा।

विद्याविभाग के 'वार्ता-रहस्य' नामक संस्करण से पहले की जितनी छपी वार्ताएँ हैं वे बहुत अंश मे विश्वस्त और प्रामाणिक नही है।

अब प्रश्न है कि इन वार्ताओं मे दिये हुए वृत्तान्त कहाँ तक प्रमाण-कोटि में गिने जा सकते है।

ऊपर कहा गया है कि भक्तो के चरित्रो को श्री हरिराय जी ने परिवर्धित करके लिखा है। उसके बाद छापनेवाले सम्पादको ने घटा-बढ़ी कर ली, परन्तु प्राचीन प्रतियो मे जो वृत्तान्त दिये है उनका भौतिक चरित्र बहुत अंश में प्रामाणिक है। इस ग्रन्थ के लेखक के विचार से भक्तो के चरित्र मे अलौकिक चरित्रो के कारण प्रसगो की ऐतिहासिक महत्ता अग्राह्य नहीं होनी चाहिए। विशेषरूप से वहाँ, जहाँ अन्य विश्वस्त प्रमाणो का अभाव है। श्री हरिराय जी वल्लभसम्प्रदाय के एक बहुत बडे विद्वान् आचार्य, भारी लेखक और बहुत अनुभवी व्यक्ति थे। उन्होंने बहुत सी यात्राएँ की थीं। उन्होंने जो कुछ लिखा है, लेखक का अनुमान है, वह अधिकांश मे विश्वस्त सूत्र से सूचना लेकर लिखा होगा। इस प्रकार जगदीश्वर प्रेस तथा वेंकटेश्वर प्रेस से छपी वार्ताएँ पूर्ण प्रामाणिक संस्करण नही माने जा सकते। २५२ वार्ता को यदि छोड़ भी दिया जाय तब भी 'अष्टसखान' की जीवनियो पर हमे यथेष्ट उपर्युक्त प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध है। लेखक ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चार अष्टछापी सेवको की जीवनी-भाग मे सं० १६९७ की वार्ता तथा सं० १७५२ की भावप्रकाश वाली वार्ता के आधार पर काँकरौली से छपी वार्ता तथा लेखक के पास रक्षित अष्टछाप वार्ता से काम लिया है।

नन्ददास का वृत्तान्त—वेंकटेश्वर प्रेस से छपी २५२ वार्ता तथा डा० धीरेन्द्र वर्मा जी द्वारा सम्पादित अष्टछाप वार्ता से नन्ददास के सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें ज्ञात होती है—

१—नन्ददास जी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के समकालीन और उनके शिष्य थे।

२—वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे।

३—वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले वे राम-भक्त भी थे।

४—वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले वे गोकुल गोवर्द्धन मे नही रहते थे, कही अन्यत्र उनका स्थान था।

५—वे जाति के ब्राह्मण थे, सौन्दर्य-प्रेमी थे।

६—'रामचरितमानस' के रचयिता और राम के अनन्य भक्त महात्मा तुलसीदास के वे छोटे भाई थे ।

७—नन्ददास ने सम्पूर्ण भागवत भाषा मे लिखना चाहा, परन्तु अपने गुरु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की आज्ञा से उन्होंने उसका लिखना बन्द कर दिया ।

८—नन्ददास जी एक उच्चकोटि के संगीतकार थे और श्रीनाथ जी के समक्ष कीर्तन किया करते थे ।

९—उन्होंने बाललीला के बहुत से पदों की रचना की थी ।

१०—उनके बडे भाई तुलसीदास जी ने, जो काशी मे रहते थे, (जिनको अयोध्या, काशी, चित्रकूट और दण्डकारण्य स्थान बहुत प्रिय थे) नन्ददास को एक बार काशी से एक पत्र लिखा था ।

११—एक बार तुलसीदास अपने छोटे भाई नन्ददास से मिलने के लिए ब्रज मे आये थे ।

संवत् १७५२ वि० की 'अष्टसखान की वार्ता' तथा लेखक के पास की हस्तलिखित वार्ता में नन्ददास का वृत्तान्त, जिसके छः प्रसङ्ग हैं, इस प्रकार है—

अब श्री गुसाँई जी के सेवक नन्ददास सनौढिया ब्राह्मण तिनकी वार्ता तिनके पद गाईयत हैं ।[1]

वार्ता १—वे नन्ददास पूर्व[2] में रहते थे । ये दो भाई थे । बड़े तुलसीदास और छोटे नन्ददास । तुलसीदास रामानन्दी थे, उन्ही के प्रभाव से नन्ददास भी रामानन्द सम्प्रदायी हो गये थे । नन्ददास को लौकिक विषयो से विशेष आसक्ति थी । नाच-तमाशे देखने और वेश्या-गान सुनने वे बहुत जाते थे । तुलसीदास के उपदेश का उन पर कुछ भी असर न होता था । जब दोनो भाई काशी में थे तब वहाँ से एक 'सङ्ग' रणछोर जी (द्वारिका जी) के दर्शन को चला । नन्ददास ने भी उसके साथ जाने की तुलसीदास से आज्ञा माँगी । पहले तो तुलसीदास ने समझाया, पर फिर उनके आग्रह को देखकर उन्हे सङ्ग के मुखिया के सुपुर्द कर दिया ।

१—१७५२ की अष्टसखान की वार्ता में, जिसके आधार पर काँकरौली से 'अष्टछाप प्राचीन वार्ता-रहस्य' नामक पुस्तक छपी है 'नन्ददास' का निवास-स्थान 'रामपुर' दिया है । अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ ३२६ ।

२—यह ग्रन्थ काँकरौली से 'अष्टछाप' नाम से छपा है ।

वह सङ्ग चलकर मथुरा आया। यहाँ सङ्ग का विचार कुछ दिन ठहरने का हुआ। नन्ददास का भी मन वहाँ बहुत लगा और उन्होंने वहाँ अधिक समय तक रहने का विचार किया। परन्तु साथ ही रणछोर जी के दर्शन की उत्सुकता होने के कारण उन्हे संग का मथुरा में ठहरना अच्छा न लगा। उन्होंने विचारा कि पहले जल्दी से रणछोर जी हो आवें फिर मथुरा में निश्चित रूप से रहेगे। इस विचार से वे उस सग को छोड अकेले रणछोर जी को चल दिये। परन्तु मार्ग भूल जाने पर 'सीहनंद' नामक एक गाँव में जा निकले। उस गाँव में एक वैष्णव क्षत्री रहता था। नन्ददास जब उसके घर की ओर से निकले तब उसकी स्त्री नहाकर बाल सुखा रही थी। यद्यपि नन्ददास ने उसको केवल पीछे ही से देखा, पर फिर भी वे उस पर मोहित हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि इस स्त्री की पीठ तो देखी है, पर अब, जब इसका मुख देख लूँगा तभी जलपान करूँगा। यह सोचकर नन्ददास उस क्षत्राणी के द्वार पर खडे हो गये। पर मुग्ध नन्ददास उस क्षत्राणी के मुख की एक झलक के लिए रात्रि भर वही खडे रहे। दूसरे दिन भी खडे-खडे उन्हें तीसरा पहर हो गया। पर उस क्षत्राणी के मुख को न देख पाये। उनको सवेरे से खडा देखकर घर की लौडी ने इसका कारण पूछा। नन्ददास ने निष्कपट रूप से कह दिया कि जब तुम्हारी बहू का मुँह देख लूँगा तभी अन्न-जल ग्रहण करूँगा। यह बात उस लौडी ने अपनी बहू जी से जाकर कही। पहले तो उसे क्रोध आया, पर जब नन्ददास को खडे-खडे शाम हो गई, और लौडी ने समझाया तव वह अपने बारजे मे आई और नन्ददास उसको देख कर चले गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ही नन्ददास उसके द्वार पर फिर पहुँच गये और उसको घर से निकलते देख कर लौट गये। इस प्रकार नन्ददास प्रति दिवस उस क्षत्राणी को एक बार देख आते। यह बात उस स्त्री के पति को मालूम हुई। उसने नन्ददास को रोका और कहा कि तुम्हारे इस व्यवहार से हमारी हँसी होती है। पर नन्ददास ने कहा—मैं किसी से कुछ कहता नही, माँगता नही, केवल दिन मे एक बार हो जाता हूँ। अधिक कहने पर नन्ददास ने कहा कि मै यहाँ प्राण तज दूँगा और तुम्हे ब्रह्महत्या का पाप पडेगा। अस्तु वह क्षत्री नन्ददास को उनके हठ से न हटा सका। जब यह बात सब गाँव में फैल गई तो हारकर उन लोगो ने उस गाँव को छोड़ना ही निश्चय किया।

एक दिन जब प्रातःकाल नन्ददास उस बहू को देखकर लौट गये, उसके बाद वह क्षत्री अपने बेटे-बहू, लौंडी तथा नौकरो को लेकर चुपचाप ही गाड़ी पर गोकुल को चल दिया। दूसरे दिन जब नन्ददास वहाँ पहुँचे तो उन्होंने ताला लगा देखा। तब पड़ोसी से पूछ और सब वृत्तान्त सुनकर ये भी गोकुल को चल दिये, और चलते-चलते उस क्षत्री के पास पहुँच गये। उसके बहुत लड़ने-झगडने पर भी नही माने और पीछे-पीछे चलते ही गये। ऐसे ही वे लोग गोकुल से एक कोस दूर एक गाँव मे पहुँचे। इस गाँव और गोकुल के बीच में यमुना जी बहती थी। यहाँ वह क्षत्री स्वयं तो सकुटुम्ब पार उतर गया, पर मल्लाहो को कुछ द्रव्य देकर उन्हे नन्ददास को पार उतारने से रोक दिया। वे लोग गोकुल मे श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के दर्शन को गये और नन्ददास यमुना किनारे बैठ यमुना-स्तुति के पद गाने लगे—

राग रामकली, ताल चर्चरी

नेह कारन श्री जमुने प्रथम आई।
भक्त के चित्त की वृत्ति सब जानही ताही ते अति आतुर जो धाई।
जैसी जाके मन हती अब इच्छा ताहि तैसी साव जो पुराई।
'नन्ददास' प्रभू नाथ ताही पर रीझत जो श्री यमुना जू के गुन गाई।

राग रामकली

जमुने यमुने जो गावों
सेस सहस मुख गावत ताही निस दिन पार न पावों।
सकल सुख देनहार ताते करों हों ऊचार कहत हों बार बार भूलि जिन जावों।
'नन्ददास' की आस पूरन यमुने करी ताते कहों घरी घरी चित लावो।

उधर जब वह क्षत्री अपने बेटे-बहू के संग श्री गोस्वामी जी के दर्शन को पहुँचा तो गोस्वामी जी ने राज-भोग के बाद इनके लिये प्रसाद की चार पत्तलें धरवाईं। उस क्षत्री ने कहा,—महाराज हम तो तीन ही जने हैं, चौथी पत्तल किसके लिये है। तब गोस्वामी जी ने उत्तर दिया कि यह उस ब्राह्मण के लिये है जिसे तुम यमुना पार छोड़ आये हो। इस पर वे लोग बहुत लज्जित हुये और सोचा कि यहाँ भी इस क्लेश से मुक्ति नहीं मिली। तब गोस्वामी जी ने धैर्य दिया और कहा—वह ब्राह्मण अब तुम को दुःख नहीं देगा। फिर एक सेवक को नाव पर भेज कर उन्होंने नन्ददास को बुलवा लिया। गोस्वामी जी के कोटि-कन्दर्प-लावण्यरूप के दर्शन करते ही नन्ददास का मोह छूट गया और उन्होंने विनती की—"जो महाराज जब ते गुलाम को जनम भयो है और जब ते बछू सुधि भई है तब ते महा बुरी जो कृत कहीये, विशेषकर मैंने किए हैं। और बिसे (विषय-वासना) में तनमय ही रह्यो हूँ। और आप तो परम कृपाल हो। मो पर कृपा करि के अपनी सरन राखिये।" गोस्वामी जी ने, नन्ददास को यमुना स्नान करा के नाम निवेदन करवाया (इष्ट मन्त्र दिया)। नन्ददास का मोह तो छूट ही चुका था, इष्ट-मन्त्र मिलते ही उनके हृदय में अपूर्व भक्ति का सञ्चार हुआ और उन्होंने (मोह-भङ्ग करने वाले तथा भावना के संसार में लानेवाले) गोस्वामी जी की स्तुति के पद गाये।

नन्ददास की पद-रचना से गोस्वामी जी बहुत प्रसन्न हुये। फिर नन्ददास महाप्रसाद पाने बैठे तो तन्मय हो गये और भगवान् की लीलाओं का अनुभव करते हुए रात भर बैठे रहे। सवेरे गोस्वामी जी ने आकर कहा—"नन्ददास उठो दर्शन का समय हुआ है।" तब नन्ददास

की तन्मयता का अन्त हुआ और संज्ञा आई। उन्होंने तुरन्त ही गोस्वामी जी को साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनकी वन्दना के ये पद गाये—

राग विभास

प्रात समै श्री वल्लभ सुत को उठतहि रसना लीजै नाम।
आनँदकारी प्रभु मगलकारी अशुभ हरन जन पूरन काम।
यही लोक परलोक के बंधू को कहि सके तिहारे गुनग्राम।
'नन्ददास' प्रभू रसिक सिरोमनि राज करौ श्री गोकुल धाम।

राग विभास

प्रात समै श्री वल्लभ मुत को पुण्य पवित्र विमल जस गाऊँ।
सुंदर वदन मुभग गिरधर कों निरषि निरषि दोउ दृगन सिराऊँ।
मोहन वचन मधुर श्रीमुख के श्रवनन सुनि सुनि हृदे वसाऊँ।
तन मन प्रान निवेदन विधि यह आपुनपा सुफल कराऊँ।
रहो सदा चरनन के आगे महाप्रसाद ऊछिष्ट सो पाऊँ।
'नन्ददास' यह माँगत हों श्री वल्लभ सुत को दास कहाऊँ।

तब से नन्ददास पूर्ण वल्लभसम्प्रदायी हो गये और गोस्वामी जी के संसर्ग मे रहते हुए भक्ति के पद गाते रहे। इसके वाद श्री नवनीतप्रिया[1] के दर्शन के वाद उन्होंने निम्नलिखित पद गाया था—

राग विलावल

वाल गोपाल ललन कों मोद भरि जसुमति हुलरावति।
मुख चुवत देखत सुंदर तन आनँद भरि भरि गावति।

१—सूरदास जी ने 'साहित्यलहरी' की रचना संवत् १३१७ में 'नन्दनन्दन दासहित' की थी। वल्लभ-सम्प्रदायी शास्त्री पं० कण्ठमणि जी तथा कॉकरौली के भगवदीय श्री द्वारिकादास का मत है कि श्री'नन्दनन्दनदास' का अर्थ कवि नन्ददास ही है। उन्हीं के लिए सूर ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। इससे अनुमान होता है कि नन्ददास लगभग संवत् १६१६ में गोस्वामी जी की शरण में आकर फिर अपने घर चले गये। वहाँ से वे संवत् १६२४ के लगभग फिर गोस्वामी जी के पास आये और तभी उन्होंने 'जयति रुक्मिणी नाथ पद्मावती' वाला पद तथा नवनीतप्रिय जी के सम्मुख के पद गाये थे। गुसाईं जी ने पद्मावती जी से विवाह संवत् १६२० में किया था तथा नवनीतप्रिय जी आदि स्वरूपों को संवत् १६२४ में अड़ैल से व्रज लाये थे। तुलसीदास जी से तथा काशी से नन्ददास जी का विछोह संवत् १६१६ के लगभग ही हुआ जान पड़ता है।

कबहूँ पलना मेलि झुलावति कबहूँ अस्तन पान करावति।
'नन्ददास' प्रभु गिरधर कों रानी निरपि निरपि सुख पावति।

वार्ता २—कुछ समय पश्चात् गोस्वामी जी श्रीनाथजी के दर्शन को गोवर्द्धन पर गये और साथ मे नन्ददास को भी ले गये। वहाँ श्रीनाथ जी के दर्शनो के उपरान्त नन्ददास ने कुछ पद गाये, जिनमे से कुछ नीचे दिये जाते है—

राग गोंरी

वन ते आवत गावत गौरी।
हाथ लकुटिया गाइन के पाछे ढोटा जसुमनि कौ री।
मुरली अधर धरे मनमोहन मानो लगी ठगोरी।
या ही ने कुल कान हरी है ओढे पीत पिछोरी।
व्रज की वधू अटन चढ़ि निरखत रूप देखि भई बौरी।
'नन्ददास' जिन हरि मुख निरख्यो तिनको भाग बड़ौरी।

राग गोंरी

देखि सखी हरि को वदन सरोज।
प्रफुलित वदन सुधारस मे लुब्ध मधुप मनोज।
गोरज छुरित पराग रह्यो फबि सुन्दर अधर मुकोस।
'नन्ददास' नासा मुक्ता मानो रही एक कन ओस।

वार्ता ३—एक समय मे एक 'सग' गोकुल से जगन्नाथपुरी को चला। मार्ग मे यह सग काशी मे ठहरा। इस सग से पूछने पर तुलसीदास को पता चला कि एक नन्ददास जिसका मन पहले विपय-वासना मे बहुत लगता था, अब गोस्वामी जी का शिष्य हो गया है और वह पढ़ा बहुत है। तुलसीदास ने अनुमान किया, "यही मेरा भाई नन्ददास है।" उन्हे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि गोस्वामी जी की कृपा से नन्ददास का मन लौकिक बातो से हटकर पारलौकिक बातो मे लग गया है। तुलसीदास ने फिर एक पत्र मे नन्ददास से कृष्णभक्त होने का कारण पूछा और रामभक्ति का व्रत देने के लिए अपने पास बुलाया। परन्तु नन्ददास ने उत्तर दिया—"आपने पहले तो मेरा विवाह श्री रामचन्द्र जी ही से किया था, पर अनेक अबलाओ के स्वामी सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण ने आकर मुझे लूट लिया। अब तो मैं तन-मन-धन से कृष्ण का भक्त हूँ।" और साथ ही निम्नलिखित पद भी लिखा—

राग आसावरी

कृष्ण नाम जब ते सुन्यों री श्रवणन तब ते भूली भवन हो तो बावरी भई री।
भरि भरि आवे नैन चित न रचिक चैन मुखहूँ न आवे बैन तन की दसा कछू औरै भई री।

जितेक नेम धर्म में कीने री वो हों विधि अङ्ग अङ्ग भई श्रवन मई री।
'नन्ददास' जाके श्रवन सुने यह गति माधुरी मूरति कैधों कैसो दई री।

तुलसीदास को यह पढ़कर निश्चय हो गया कि नन्ददास इधर नही आयेगा। नन्ददास की भक्ति गोस्वामी विट्ठलनाथ जी मे इतनी दृढ हो गई थी कि वे व्रज को छोडकर कही नही जाते थे।

वार्ता ४[1]—नन्ददास ने सम्पूर्ण 'दसम स्कन्ध भागवत' की लीला भाषा-छन्दो मे गाई। यह जानकर मथुरा के कथावाचक पौराणिक ब्राह्मणो ने गोस्वामी जी से विनती की—"इस भाषा भागवत से तो हमारी जीविका चली जायगी।" तब नन्ददास ने गोस्वामी जी की आज्ञा से 'रासलीला' तक का ग्रन्थ छोडकर बाकी सब ग्रन्थ यमुना मे पधरा दिया। अस्तु, परम भक्त नन्ददास गोस्वामी की आज्ञा का पूर्ण पालन करते थे।

वार्ता ५—एक बार जब नन्ददास गोस्वामी जी के साथ श्रीनाथ जी द्वार मे थे, तब तुलसीदास भी काशी से गोकुल होकर वहाँ आये। वहाँ वे नन्ददास से गोविन्दकुण्ड पर मिले और कहा कि तुम मेरे साथ चलो और अयोध्या, काशी या चित्रकूट जहाँ मन लगे वहाँ रहो। तब नन्ददास ने उत्तर मे यह पद गाया—

राग सारङ्ग

जो गिरि रुचे तो बसो श्रीगोवर्धन, गाम रुचे तो बसो नन्द गाम,
नगर रुचे तो बसो श्रीमधुपुरी सोभा सागर अति अभिराम।
सरिता रुचे तो बसो श्रीजमुना तट सकल मनोरथ पूरन काम,
'नन्ददास' कानन रुचि वसिबो सिखर भूमि श्रीवृन्दावन धाम।

तुलसीदास ने गोस्वामी जी से भी नन्ददास की विषयासक्ति छूट जाने और भक्त होने का कारण पूछा। तब उन्होंने उत्तर दिया कि नन्ददास पहले ही से उत्तम पात्र था। पुष्टिमार्ग मे आने से इसकी व्यसनी अवस्था सिद्ध अवस्था मे बदल गई है और अब यह दृढ़ हो गई है। तुलसीदास वापिस चले गये।[2]

१—'अष्टछाप' कॉकरौली, में नन्ददास की वार्ता में प्रसंग ४ तथा ५ का क्रम उलटा है। 'अष्टछाप', कॉकरौली तथा 'अष्टछाप' डा० वर्मा ने लिखा है कि नन्ददास ने 'भागवत भाषा' तुलसी की रामायण से प्रेरणा लेकर की।

२—कॉकरौली से छपी 'अष्टछाप' में इस प्रसंग में श्रीविट्ठलनाथ जी के पुत्र रघुनाथ जी तथा उनकी स्त्री जानकी का रामजानकी-रूप में तुलसीदास को दर्शन देने की कथा और अधिक है

वार्ता ६—एक समय बादशाह अकबर बीरबल सहित मथुरा-गोकुल आये, और उन्होंने मानसी गंगा के पास डेरा किया। वहाँ से बीरबल गोस्वामी जी के दर्शन को श्रीनाथ जी गये। वहाँ नन्ददास को बीरबल से मालूम हुआ कि अकबर ने मानसी गङ्गा पर डेरा किया है। अकबर की एक लौंडी वैष्णव थी। नन्ददास की उससे बहुत मित्रता थी। अस्तु वे (नन्ददास) मिलने के लिए मानसी गङ्गा पर आये, और उसको एक वृक्ष के नीचे रसोई करते पाया। तब उन्होंने यह पद गाया—

राग टोडी

चित्र सराहत गोपी बहुत सयानी।
एक टक मे झुक बदन निहारत पलक न मारत जान गई नन्दरानी।
परि गये परदा ललित तिवारी कञ्चन थार जब आनी।
'नन्ददास' प्रभु भोजन घर में ऊपर कर धर्‌यो, वे उतते मुसिक्यानी।

उन दोनो ने परस्पर भगवद्‌चर्चा करते रात्रि व्यतीत की। उस वैष्णव लौंडी ने नन्द दास से यह भी कहा कि मानसी गङ्गा अति उत्तम स्थान है और अब हम दोनों यही रहे। अब इन आँखो से लौकिक देखना अच्छा नही है। प्रातःकाल नन्ददास श्रीनाथ जी द्वार लौट आये।

उसी रात को तानसेन ने अकबर के सामने नन्ददास का यह पद गाया—

राग केदारो

देखो देखो री नागर नट निर्तत कालिन्दी के तट,
गोपिन मध्य राजे मुकट लटक।
काछनी, किंकिनी कटि पीताम्बर की चटक,
कुण्डल किरन मे रवि-रथ की अटक।
ताथेई ताथेई सब्द सकल उघटत,
उरप तिरप मानो पद की पटक।
रास मे श्री राधे राधे, मुरली मे याही रट,
'नन्ददास' जहाँ गावे निपट निकट।

यह पद सुनकर अकबर ने नन्ददास को बीरबल द्वारा बुलवाया और पूछा कि आपने इस पद मे गाया है कि 'नन्ददास जहाँ गावे निपट निकट', तो आप रास के निकट कैसे पहुचे? नन्ददास ने कहा,—आप अपनी अमुक लौंडी (जो नन्ददास की मित्र थी) से पूछिये। बादशाह ने डेरे मे जाकर उससे पूछा। वह बादशाह का प्रश्न सुनते ही मूर्च्छित

होकर गिरी और उसके प्राण छूट गये। इधर नन्ददास जी का भी देहावसान हो गया यह देखकर अकबर को वड़ा आश्चर्य हुआ। जव गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी को यह समाचार मिला तो उन्होंने दोनो वैष्णवो की बडी सराहना की।

उक्त वृत्तान्त मे वेंकटेश्वर प्रेस से छपी वार्ता से कुछ अधिक सूचनाएँ मिलती है। ये सूचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१—नन्ददास और तुलसीदास सनाढ्य व्राह्मण थे।

२—वल्लभसम्प्रदाय मे आने के पहले नन्ददास भी तुलसीदास की तरह राम के उपासक थे और श्री रामानन्द जी के सम्प्रदाय के शिष्य थे।

३—नन्ददास की वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले लौकिक विषयो में वहुत आसक्ति थी।

४—नन्ददास जी वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले ही पद-रचना करते थे।

५—नन्ददास ने अपना सम्पूर्ण 'भागवत भाषा' ग्रन्थ यमुना जी मे नही वहाया। रासलीला तक का दसम स्कन्ध रख लिया।

६—इस वार्ता मे नन्ददास की भक्ति की अनन्यता का अधिक परिचय मिलता है। 'अष्टछाप', डा० वर्मा तथा वें० प्रे० से छपी २५२ वैष्णवन की वार्ता के प्रसंग, जो उक्त वातो मे छूटे हुये हैं, ये हैं—

१[1]—तुलसीदास के सामने कृष्ण के धनुर्धारी वेश धारण की कथा।

२[2]—विट्ठलनाथ जी के पुत्र रघुनाथ जी तथा रघुनाथजी की स्त्री जानकी का रामजानकी-रूप मे तुलसीदास को दर्शन देने की कथा।

नन्ददास की मृत्यु की कथा वे० प्रे० से छपी वार्ता मे रूपमञ्जरी के प्रसंग मे दी हुई है। लेखक की देखी हुई हस्तलिखित वार्ताओ मे नन्ददास की मृत्यु की वार्ता छठे प्रसंग मे दी हुई है।

१—इन दोनो प्रसंगो का तथा लेखक के पास की 'अष्टछाप वार्ता' के नन्ददास विषयक प्रसंगों का समावेश कॉकरौली से छपी 'अष्टछाप वार्ता' में है।

२—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ४६१।

इन दोनो वार्ताओ मे नन्ददास के विषय में कोई तिथि, उनके माता, पिता, जन्मस्थान आदि के विषय में कोई उल्लेख, नही है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वें० प्रे० से० छपी २५२ वार्ता मे श्रीनाथ जी की एक सेविका रूपमञ्जरी का वृत्तान्त दिया हुआ है। उसमे भी लिखा है कि रूपमञ्जरी से नन्ददास की मित्रता थी और उनकी मृत्यु दिल्ली के बादशाह अकबर के सामने हुई थी।

चतुर्भुजदास—'२५२ वैष्णवन की वार्ता' मे दो चतुर्भुजदासो का वृत्तान्त दिया हुआ है। एक कुम्भनदास जी के पुत्र चतुर्भुजदास[1] और दूसरे ब्राह्मण चतुर्भुजदास[2]। ब्राह्मण चतुर्भुजदास के विषय मे वार्ता मे लिखा है कि ये काव्य-रचना अच्छी करते थे और अकबर बादशाह के कर्मचारी थे। श्री गुसाँई जी की शरण मे आने के बाद ये श्री गोवर्द्धननाथ जी के नैकट्य को छोड़कर अन्यत्र नही गये। २५२ वार्ता मे कुम्भनदास जी के पुत्र तथा अष्टछाप के कवि चतुर्भुजदास के काव्य के विषय में लिखा हुआ है कि इन्होंने कृष्ण-जन्म[3] महोत्सव बाल-भाव, पालना, शृङ्गार[4], रासलीला[5], विनय[6] तथा विरह[7] के पद बनाकर गाये। अन्त समय में इन्होंने गुरु-महिमा[8] मे भी पद लिखे थे। इनके जीवन-चरित्र का मुख्य आधार '२५२ वैष्णवन की वार्ता' ही है।

गोविन्दस्वामी—गोविन्दस्वामी के जीवन-वृत्तान्त का भी मुख्य सूत्र 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' ग्रन्थ ही हैं। प्राचीन २५२ वार्ता तथा अष्टसखान ती वार्ता के वृत्तान्तो में बहुत कम अन्तर है। २५२ वैष्णवन की वार्ता मे इनके काव्य की सराहना की गई है। वार्ताकार कहता है कि गोविन्द स्वामी कवीश्वर थे। और पद

१—'अथ श्री गुसाईं जी के सेवक चत्रभुजदास, कुम्भनदास जी के बेटा, जिनके पद अष्टछाप में गाइयत हैं, तिनकी वार्ता।' (अष्टसखान की वार्ता।)

२—'अष्टछाप', कॉकरौली, पृ० ३२२। गुसाई जी के सेवक चतुर्भुजदास ब्राह्मण तिनकी वार्ता।'

३—'अष्टछाप', कॉकरौली, पृ० ३१८, ३१९।

४—'अष्टछाप', कॉकरौली, पृ० ३०१।

५—'अष्टछाप', कॉकरौली, पृ० ३०६।
"सो ऐसे ऐसे बहोत कीर्तन चत्रभुजदास ने रास के गाये।"

६—'सो ऐसे ऐसे प्रार्थना के चत्रभुजदास ने बहुत कीर्तन करिवे सूतक के दिन वितीत किये।' अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ३०९:

७—'या भॉति सों अत्यन्त विरह के कीर्तन चत्रभुजदास ने किये।'
'अष्टछाप', कॉकरौली, पृ० ३१३।

८—'अष्टछाप,' कॉकरौली, पृ० ३२३।

बनाते थे।[1] २५२ वार्ता के अन्तर्गत राजा आसकरन की वार्ता मे लिखा है कि गोविन्दस्वामी ने सहस्त्रावधि पद लिखे और वे तानसेन को भी पद गाकर सिखाते थे।[2] एक स्थान पर अष्टछाप-वार्ता में लिखा है कि गोविन्दस्वामी वसन्त धमार के पद भी बनाकर[3] गाते थे।

उपर्युक्त सूत्रो से गोविन्दस्वामी की पद-रचना और उन पदो की उत्कृष्टता का तो परिचय मिलता है, परन्तु उनके किसी ग्रन्थ का नाम नही ज्ञात होता।

छीतस्वामी—छीतस्वामी के जीवन-वृत्तान्त का जितना परिचय '२५२ वैष्णवन की वार्ता' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' में दिया हुआ है उतना अन्य किसी ग्रन्थ में नही। इस वार्ता में लिखा है कि छीतस्वामी के पद अष्टछाप में गाये जाते हैं, तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ की कृपा से ये बड़े कवीश्वर हुये और इन्होंने बहुत कीर्तन बनाये।[4] वार्ता मे छीतस्वामी के पदों के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ की सूचना नही मिलती।

अष्टछाप-कवियो के वृत्तान्त ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ताओं मे दिये हुये हैं। इन वार्ताओ के अतिरिक्त ये चरित्र अलग से भी संगृहीत मिलते हैं। लेखक के पास भी अष्टछाप-वार्ता की एक प्रतिलिपि है जिसमें कोई संवत् नहीं दिया हुआ है। परन्तु लेख और कागज के देखने से प्रति कम से कम २०० वर्ष पुरानी अवश्य जान पडती है। इस संग्रह से ज्ञात होता है कि इसमें कुछ वार्ताएँ हरिराय जी के भावप्रकाशसहित भी हैं। अष्टसखान की वार्ता की एक प्रति हरिराय जी के भावप्रकाशसहित ८४ वार्ता के साथ पाटन मे विद्यमान है, जिसके आधार से काँकरौली विद्या-विभाग ने अष्टछाप-वार्ता का सम्पादन कराया है लेखक ने श्रीविट्ठलनाथ जी के चार अष्टछापी सेवकों के वृत्तान्त देते समय 'अष्टसखान की वार्ता' से भी सहायता ली है।

अष्टसखान की वार्ता अथवा अष्टछाप की वार्ता

सूरदास—'अष्टसखान की वार्ता' में सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है। इसमें सूरदास जी का चरित्र गऊघाट से आरम्भ होता है जिससे ज्ञात होता है कि सूरदास जी का चरित्र हरिराय जी के भावप्रकाशसहित नही है। इसमें दी हुई परमानन्ददास जी की वार्ता मे भी हरिराय जी का भावप्रकाश नही है और कुम्भनदास की वार्ता वही है जो डा० वर्मा द्वारा सम्पादित 'अष्टछाप' मे दी हुई है। कृष्णदास की भी वार्ता वही है जो डाक्टर वर्मा द्वारा सम्पादित 'अष्टछाप' मे दी हुई है।

१–'अष्टछाप,' काँकरौली, पृ० २६४।
२–'अष्टछाप,' काँकरौली, पृ० २७६।
३–२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० १६२।
४–'अष्टछाप,' काँकरौली, पृ० २५६।

'अष्टछाप' अथवा 'अष्टसखान की वार्ता' मे नन्ददास को सनोढिया ब्राह्मण लिखा है और वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहिले उन्हे रामानन्दी सम्प्रदाय का तथा तुलसीदास का भाई बताया है। इसमे उनकी वार्ता लगभग वही है जो कॉंकरोली से प्रकाशित 'अष्टछाप' मे है। चतुर्भुजदास की वार्ता में जन्म, शरणागति तथा अन्त समय का वृत्तान्त विशेष विस्तार के साथ दिया गया है। चतुर्भुजदास जी के देहावसान के प्रसङ्ग मे, इसमे लिखा है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी गोवर्द्धन की कन्दरा मे प्रविष्ट होकर अन्तर्द्धान हुये और उसी समय चतुर्भुज दास जी ने देह छोड़ी। 'अष्टसखान की वार्ता' मे इनके काव्य के विषय मे लिखा है कि इन्होंने कृष्ण-जन्म-महोत्सव, बाल-भाव, पालना, शृङ्गार, रास-लीला, विरह, विनय के पद बनाकर गाये। इस ग्रन्थ मे यह भी स्पष्ट लेख है कि इनके पद अष्टछाप मे गाये जाते है। इससे ज्ञात होता है कि २५२ वार्ता के दो चतुर्भुजदासो मे कुम्भनदास जी के पुत्र चतुर्भुजदास जी ही अष्टछाप के कवि है। गोविन्दस्वामी के जीवन-वृत्तान्त के मुख्य सूत्र 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा इस 'अष्टसखान की वार्ता' के वृत्तान्तो मे बहुत कम अन्तर है छीतस्वामी के जीवन-वृत्तान्त का जितना परिचय इस वार्ता मे तथा '२५२ वैष्णवन की वार्ता' मे दिया हुआ है उतना अन्य किसी ग्रन्थ मे देखने को नहीं मिलता। इस वार्ता मे दिया हुआ छीतस्वामी का वृत्तान्त, कॉंकरौली से छपा 'अष्टछाप-वार्ता' के वृत्तान्त से कुछ शब्दों के फेर के साथ मिलता है।

श्रीगुसाई जी के सेवकन की वार्ता

पीछे कहा गया है कि सम्वत् १६९७ की ८४ वार्ता के साथ श्रीगुसाई जी के चार अष्टछापी सेवकन की वार्ता भी दी हुई है। यह श्रीहरिराय जी के भावप्रकाश से रहित है। यह प्रति सबसे अधिक प्रामाणिक है। इसकी पुष्पिका '८४ वैष्णवन की वार्ता' के विवरण के साथ मे लगे हुए चित्र से ज्ञात होगा।

चौरासी भक्त नाम-माला सन्तदास-कृत

इस ग्रन्थ की सं० १७७७ वि० की हस्तलिखित एक प्रति लेखक ने, नाथ-द्वार के निज पुस्तकालय मे बस्ता नं० ३९ बंट ३ मे देखी थी। इसके रचयिता का नाम इसी ग्रन्थ मे सन्तदास दिया हुआ है जो श्रीहरिराय जी के शिष्य थे। ग्रन्थ के देखने से ज्ञात होता है कि इसमे भक्तों का गुणगान ८४ वैष्णवन की वार्ता के कथनो के आधार से ही किया गया है। इस ग्रन्थ की पुष्पिका तथा पूर्ति-भाग मे इस प्रकार लेख है—

"इति श्रीकलिकल्मपहरन नामभक्ति माला चौरासी वैष्णवन-गुण-वर्णन नाम सम्पूर्ण।'

तथा

"इति श्री चौरासी भक्तनाम सम्पूर्ण सं० १७७७ मिती चैत्र वदी ९ शनौ लिखितं अनीराय ब्राह्मण।"

जैसा कि अभी कहा गया है इस ग्रन्थ मे चौरासी वार्ता के कुछ प्रसंग के पुष्टि-रूप कथनो के अतिरिक्त अन्य नवीन सूचना, अष्टछाप-भक्तों के विषय मे नही है।

सूरदास—इस ग्रन्थ मे सूरदास जी का निम्नलिखित वृत्तान्त है—सूर के समान कोई अन्य भक्त नही है। ये श्रीवल्लभाचार्य जी के सेवक थे और इनकी ख्याति तीनो लोकों मे थी। श्रीवल्लभाचार्य जी ने इनके ऊपर दया करके श्रीमद्भागवत की सब भक्ति-रीति इनको समझाई। तभी से इन्होंने भक्ति मे सब लोक के शोको को छोडकर अपनी आत्मा का समर्पण कर दिया। इनके गाने गुणो से पूर्ण है। ये जन्म से ही अन्धे थे। इन्होंने दिव्य चक्षुओ से सुख की खानि भगवान् के खुलकर दर्शन किये थे।[1]

परमानन्ददास—इस ग्रन्थ मे परमानन्ददास के विषय मे लिखा है,—"परमानन्द स्वामी एक महापुरुप थे। उनकी वाणी मे वैराग्य भरा था। उनको भगवान् के साक्षात् दर्शन होते थे। वे कीर्तन बहुत सुन्दर गाते थे जिनको सुनकर लोगो को परम तुष्टि मिलती थी। अडैल मे ये *आचार्य (वल्लभाचार्य) जी की शरण गये*। विरह के अनुभव मे ये सुन्दर प्रभावशाली पद गाते थे। इन्होने आचार्य जी के मुख से भागवत की अनुक्रमणिका सुनी और तभी इन्होने बाल-लीला के पद बनाये। इन्होने अनेक प्रकार के पद लिखे है।"[2]

१—सूर के समान और भक्त नाही पाइये।
सेवक श्री वल्लभ के तिहूं लोक गाइये।
एक बेर सूरदास फांकड़े करत हुते।
तहां ते श्री वल्लभ देख्यो रस संचिते।
दया करी कही सबै रीति भागौत की।
अर्पन करि आत्माहि छांड़ि लोक सोक को।
गुनी तान गाननि परिपूरन अवलोक को।
जन्मत के अति सूर है, चख मुदित जग जान।
कमल नयन के दरस पै षुलि निरखे सुख खान।
चौरासी भक्तनाममाला से, नाथद्वार निज पुस्तकालय, बस्ता नं० ३९ बटे ३।

२—स्वामी परमानन्द बड़े महापुरुष है।
तिनकी बातै सुनो जगत ते कुरुख है।
नित प्रति जिनको हरिदास सुगम हैं।
जगत भजत की बात जिनकों अगम है।
आपु करें कीर्तन सुन्दर सुगावही।
जो कोउ सुने हिये हरि तोक आवही।
एक दिन विरहा अनुभवे बहुते महा।
वैसे ही सुर गावत अनभै वरनों कहा।
× × ×

कृष्णदास—'चौरासी भक्तनमाला' मे इनके विषय में लिखा है कि कृष्णदास की वाणी मे महारस से सना हुआ परम तत्व का सार होता था। ये पुष्टिमार्गियों के यहाँ भेटिया रूप में जाते थे। एक बार ये मेवाड़ मे मीरा भक्तिनी के घर गये। वह अन्य-मार्गिणी थी। इन्होने उसकी भेट स्वीकार नही की। उस समय मीरा के पुरोहित रामदास जी भी उपस्थित थे जो श्री जी के सेवक थे।[1]

यह ग्रन्थ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के छठे पुत्र गोस्वामी यदुनाथ जी द्वारा, जिनकी

स्वामी आप अड़ैल पधारे दरसन हेत रटन दुख भारे।

× × ×

नाम समर्पन करत भये धर परमानन्द नाम।
तुम्ह कृत पद जो गाइहै पाइये आनंद धाम।
श्री भागवत अनुक्रम कह्यो समुझाइ के।
ताही छन पद गायो एक बनाय के।
सुन्दर स्याम कमल दृग झूलैं पालने।
और विविध पद किये, लड़ाये लाल ने।

चौरासी भक्तनाममाला से, नाथद्वार निज पुस्तकालय, बस्ता नं० ३६ बटे ३।

१—कृष्णदास अधिकारी की बतियाँ भनौं।
परम तत्व कौ सार महारस में सनौं।
चलें भेंटिया ह्वै सबै देस माहीं।
जहाँ पुष्ट पन्थी तहाँ आपु जाहीं।
गये एक बिरियाँ सुमेवाड़ देसे।
तहाँ बाई मीरा रहे भक्त वेसे।
हुती अन्य मार्गी नहीं भेंट लीनी।
चले प्रात उठिकें भई बाई छीनी।

× × ×

कहाँ लौं कहो और लीला हरी की।
भई बाई मीरा रसामय भरी की।

× × ×

रामदास पुरोहित हते मीरा के कुल माँझ।
श्री जी के सेवक हते महासकल अविद्या बाँझ।

चौरासी भक्तनाममाला से, नाथद्वार निज पुस्तकालय।

गद्दी आजकल बनारस तथा सूरत मे है, सम्वत् १६५८ वि० में लिखा गया था।[1] इसमें श्री वल्लभाचार्य जी का संक्षेप मे जीवन-चरित्र दिया हुआ है।

वल्लभ-दिग्विजय आचार्य जी ने अपने धर्म-प्रचार के लिये जो जो यात्राएँ की थी, उनका विवरण ऐतिहासिक क्रम के साथ और कहीं-कहीं तिथि और संवत् देकर किया गया है। आचार्य जी के भक्तों के उल्लेख इसमे प्रसङ्गानुसार आ गये हैं।

श्री वल्लभाचार्य जी की जीवनी के लिए यह ग्रन्थ बहुत प्रामाणिक समझा जाता है। इस ग्रन्थ के अन्त मे इसके रचयिता श्री यदुनाथ जी ने लिखा है,—"इस चरित्र विजय-ग्रन्थ मे मैंने जैसा आचार्य चरण का चरित्र सुना था वैसा लिखा है।"[2] यह ग्रन्थ आचार्य जी के पौत्र द्वारा लिखा गया है। इसलिये इसके कथनों को बहुत अंश मे प्रामाणिक माना जा सकता है। इसमे आचार्य जी के अष्टछापी भक्तो के वल्लभसम्प्रदाय मे शरण जाने का विवरण भी दिया हुआ है।

सूरदास—इस ग्रन्थ से सूर के वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने के समय का अनुमान होता है। वल्लभ-दिग्विजय मे लिखा है[3] कि श्री वल्लभाचार्य जी, अपने विवाह और अपनी

१—वसुबाणरसेन्द्वब्दे तपस्यसितके रवौ,
चमत्कारिपुरे पूर्णो ग्रन्थोऽभूत् सोमजातटे।

पुष्पिका

वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ

संवत् १६७५ वि० में इस ग्रन्थ को श्री नन्दकिशोर शास्त्री ने श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी के हिन्दी अनुवाद सहित श्री नाथद्वार विद्याविभाग की ओर से प्रकाशित किया है। लेखक के पास यही संस्करण है।

२—श्रुत्वा निजाचार्यकथा निजेभ्यो देशे विदेशे च बहुश्रुतेभ्यः
संक्षिप्य गूढ़ा लिखिताः प्रसिद्धाः कः कृत्स्नशस्तां लिखितुं क्षमः स्यात् । ३ ।
वल्लभ-दिग्विजय, श्रीयदुनाथ।

३—वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृ० ५०।

ततोऽलर्कपुरे समागताः। तत्राऽऽवासः कृतः। ततो व्रजसमागमने सारस्वत-सूरदासोऽनुगृहीतः। ततो गोकुलेप्यावासं विधाय गिरौ समागताः तत्र कृष्णदासमनुगृह्य मरुभपादिपुरस्सरं कृष्णभट्टमाचार्यत्वे निवेश्य गणकत्वे हरिमिश्रं च यत्नः कृतः। वैशाखशुक्लतृतीयायां श्रीमद्गोवर्धनधरस्य नूतनाऽऽलये प्रतिष्ठापनं कृतम्। तत्र वैष्णवा विद्वांसश्च वृन्दावनादितो महान्तश्चागताः। तेषां सर्वेषां दानमानादिभिः सत्कारो जातः। पूर्णमल्लेन चन्दनघनयोरर्पणे कृते, अधिकारी कृष्णदासःसेवायां माध्वो माधवः सशिष्यो नियुक्तः। परिचरणे पाककार्ये उदीच्य सांचोहरौ रामदासौ......गायने कुम्भनो नियुक्तः। ततः सकुटुम्बैराचार्यैर्गोकुले समागतम्। तत्र केशवाऽऽचार्यः शिष्यैः सह कथायां समागतः। स च वासुदेवेन

तृतीय यात्रा (पृथ्वी-प्रदक्षिणा) के वाद एक बार अडैल से व्रज में आये। इससे पहले वे व्रज मे आकर श्रीनाथ जी के स्वरूप की स्थापना गोवर्द्धन पर कर चुके थे। इस समय जब वे गऊघाट पर उतरे तब उन्होंने सूरदास सारस्वत पर अनुग्रह किया। वहाँ से चलकर गोकुल होते हुए गिरिराज पहुँचे। वहाँ पर कृष्णदास को शरण मे लिया। उस समय बैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) के दिन गोवर्द्धन नाथ का नवीन मन्दिर में स्थापन होने वाला था। यह घटना सं० १५६७ श्री गोपीनाथ जी के जन्म समय से लगभग दो साल पहले की है। दिग्विजय मे लिखा है कि पाटोत्सव के समय ही आचार्य जी ने कृष्णदास अधिकारी को सेवा दी। इसके वाद पूरनमल ने चन्दन और धन श्रीनाथ जी को अर्पण किये। फिर मथुरा मे यवनो के अत्याचार का मुकाविला किया। वहां से सीहनन्द थानेश्वर गये। वहां से कुछ समय बाद फिर गोकुल वापिस आये और फिर सङ्कर्षण (गोपीनाथ) गर्भ मे आये। स्वभावतः इसके नवमे मास में सं० १५६७ आश्विन कृष्ण द्वादशी को गोपीनाथ का प्रादुर्भाव हुआ। वल्लभ-सम्प्रदायी कुछ सज्जनो का मत है कि श्रीनाथ जी के अपूर्ण मन्दिर में पाटोत्सव संवत् १५६४ अक्षय तृतीया को हुआ। इस पाटोत्सव के समय को लगभग सम्वत् १५६४ से सवत् १५६६ के वीच का कोई समय कहा जा सकता है।

वल्लभ-दिग्विजय में लिखा है कि आचार्य जी ने जगदीश यात्रा के बाद अडैल में परमानन्द कान्यकुब्ज पर अनुग्रह कर उसे लीला के दर्शन करवाये।[1] उस ग्रन्थ में कुम्भनदास जी के भी आचार्य जी की शरण मे जाने का प्रसङ्ग दिया हुआ है। जैसा कि अभी कहा गया है वल्लभदिग्विजय में लिखा है कि आचार्य जी ने अपनी स्त्री के द्विरागमन के वाद तथा श्री गोपीनाथ जी के जन्म (सं० १५६७) से पहले कृष्णदास को शरण में लिया और उसी समय नये मन्दिर मे श्रीनाथ जी को प्रविष्ट किया गया।

यह ग्रन्थ संवत् १७२९ विक्रमी में श्री हरिराय जी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्ट द्वारा व्रजभाषा पद्य मे लिखा गया था। इसमें श्री वल्लभाचार्य और श्री विट्ठलनाथ जी की

साकमाचार्यैर्विश्रान्तोपरिवद्धयवनयन्त्रप्रहापणाय योगिनीपुरं प्रति प्रेषितः। तत्रत्यगोपुरे तेन निजयन्त्रं निबद्धम्। तेन यवना हिन्दवोऽभवन् ... .. श्रीहनन्दस्थानेश्वरं प्रत्यागतम्। तत्र विरुद्धाऽऽचारं रामानन्दं भगवता स्वीकृतं स्वीकृत्य पुनर्गोकुलं समेत्य संकर्षणं महिलार्थनया गर्भं समागतं वीक्ष्य, शकागमनभीतिमिषेण निजकुटुम्बं निजप्रभूंश्च वासुदेवयादवादिभिरलर्कं प्रति प्रस्थाप्य स्वयमपि दामोदरादिभिः प्रस्थिताः। .. .. गर्भिण्याः संस्कारान् विधाय विक्रमार्कतो 'हय' 'रस' 'शर' 'रसामितेऽब्दे' (१५६७) आश्विनकृष्णद्वादश्यां श्रीगोपीनाथे प्रादूर्भूते तस्य संस्कारान् दीक्षां चाकलयन्।

१—वल्लभ-दिग्विजय, पृ० ५३।

सम्प्रदाय कल्पद्रुम

जीवन घटनाओं का विवरण दिया गया है। इसमें दिये हुये संवत् वल्लभ-सम्प्रदाय में अन्य प्रमाणों के अभाव में मान लिये जाते हैं। सम्प्रदाय-कल्पद्रुम में चतुर्भुजदास के वल्लभ-सम्प्रदाय में शरण जाने का समय सं० १५९७ वि० दिया है।[1] इस ग्रन्थ मे गोविन्दस्वामी और छीत-स्वामी के, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण मे आने का समय सं० १५९२ लिखा है।[2]

निज वार्ता, घरुवार्ता तथा चौरासी बैठकन के चरित्र[3]

८४ और २५२ वार्ताओ की तरह यह वार्ता भी वल्लभसम्प्रदायी वैष्णवो में बहुत प्रचलित है। इस ग्रन्थ में श्री वल्लभाचार्य जी के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओ का वर्णन किया गया है। निज वार्ता में आचार्य जी के शिष्यो के संसर्ग की कथाएँ दी हुई हैं। घरुवार्ता मे उनके कुटुम्ब, विवाह और यात्राओं का वर्णन है और बैठक-चरित्रो में उन स्थानों का वर्णन है जहाँ जहाँ ठहरकर आचार्य जी ने अपने मत का प्रचार किया था। बैठक चरित्र वर्णनों में उन स्थानों के उन चरित्रो का भी वर्णन है जो आचार्य जी ने वहाँ ठहर कर किये थे। इन वर्णनों में बहुत सा अंश साम्प्रदायिक है; परन्तु ऐतिहासिक सूचना भी इसमें प्रचुर मात्रा में है। ८४ और २५२ वार्ता के अनुसार इसके भी रचयिता श्री गोकुलनाथ जी कहे जाते हैं। लेकिन लेखक का अनुमान है कि मौखिक रूप से ये वार्ताएँ भी श्री गोकुलनाथ जी ने कही और इनको लिखित रूप मे श्री हरिराय जी से दिलवाया। बाद में इनमे से कुछ घटनाओं में वैष्णवो ने घटा-बढ़ी भी कर ली। निज वार्ता की सं० १८५१ की एक प्रति काँकरौली में श्री द्वारिकादास जी के पास है। सावधानी रखते हुये छाँट के बाद इस ग्रन्थ में से ऐतिहासिक सूचनाएँ निकाली जा सकती हैं।

निज वार्ता में श्री वल्लभाचार्य जी के जीवन-वृत्तान्त के साथ उनके अष्टछापी चार शिष्य सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास के जीवन-सम्बन्धी कुछ प्रसङ्ग

१—सम्प्रदाय-कल्पद्रुम, पृ० ५७।

२—सम्प्रदाय-कल्पद्रुम, पृ० ५५।

३—यह ग्रन्थ पहले पहल बम्बई से गोवर्द्धनदास लक्ष्मीदास ने सं० १९५९ के लग-भग छपवाया। इसके बाद अहमदाबाद से लल्लूभाई छगनलाल देसाई ने सं० १९७९ में प्रथम संस्करण और सं० १९९० में दूसरे संस्करण-रूप में छपवाया। लल्लूभाई ने इसकी प्रस्तावना में लिखा है कि हमने इस ग्रंथ को प्राचीन पुस्तकों के आधार से शोध कर छपवाया है। परन्तु सम्पादक ने निजवार्ता, घरवार्ता की किसी प्रचीन पुस्तक का उसके लिखे जाने के संवत् सहित हवाला नहीं दिया।

दिये हैं जिनका बहुधा समावेश ८४ वार्ता मे हो गया है। इस ग्रन्थ में सूरदास को श्री वल्लभाचार्य जी के समवयस्क बताया गया है।[1]

श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता[2]

इसके रचयिता श्री हरिराय जी है। इसमे अष्टछाप कवियो के इष्टदेव श्री गोवर्द्धन-नाथ (श्रीनाथ) के स्वरूप के प्राकट्य और उनके समय-समय पर भिन्न-भिन्न स्थानो मे स्थित होने का वृत्तान्त दिया हुआ है। व्रज मे गोवर्द्धन पर श्री गोवर्द्धन-नाथ जी (श्रीनाथ जी) के मन्दिर में ही रह कर अष्टछाप ने अपने अमर काव्य की रचना की थी। इसके सम्पादक श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने इसकी प्रस्तावना में लिखा है,—"इसमें सं० १४६६ मे लेकर १७४२ तक का ही वृत्तान्त है।" ज्ञात होता है कि गोस्वामी हरिराय जी ने इस ग्रन्थ को इसी संवत् में लिखा और उस साल तक का उसमें वृत्तान्त दे दिया। बाद को श्री हरिराय जी ने इसके वृत्तान्त को आगे नही लिखा।

श्री विष्णुलाल पाण्ड्या जी ने आगे इसकी प्रस्तावना में कहा है,—"मैंने यह ग्रन्थ यथाशक्ति और यथामति शोध के .... समस्त वैष्णव-मण्डली के हस्त में सविनय अर्पण किया है।" इन्होंने यह भी कहा है कि पिछले सम्पादकों ने भी इसके शोध किये हैं। सम्भव है कि सम्पादको के शोधन से मूल ग्रन्थ का कोई महत्त्वशाली गुण लुप्त हो गया हो। ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का बहुत महत्त्व है। इसमे जो तिथियाँ दी हैं उनमें से कुछ ऐसी भी हो सकती हैं जिनका मेल अन्य सूत्रो से प्राप्त घटना और तिथियों मे न होता हो; परन्तु इसमें बहुत सी उपयोगी सामग्री है।[3] लेखक ने इस ग्रन्थ की जिन घटना और तिथियों को ग्रहण किया है उनको अन्य विश्वस्त सूत्रो से प्राप्त घटना और तिथियों मे मिलान करने के पश्चात ग्रहण किया है।

गोवर्द्धन नाथ जी के प्राक्ट्य की वार्ता से सूरदास और कृष्णदास के वल्लभ-सम्प्रदाय में जाने की तिथि के आकलन में सहायता मिलती है। कृष्णदास के विषय में यह भी लिखा है

१—निजवार्ता, घरुवार्ता तथा ८४ बैठकन के चरित्र, लल्लूभाई छगनलाल देसाई, पृ० ५६ : तथा काँकरौली में स्थित, हस्तलिखित निज वार्ता, सं० १८५१ की प्रतिलिपि।

२—यह ग्रंथ पहले संवत् १९२३ में वेसवाँ से श्री गिरिधारीसिंह जी ने छपवाया; फिर संवत् १९४१ में मथुरा से लीथो छापे में छपा। इसके बाद श्रीमोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने इसका सम्पादन किया और वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई से सं० १९६१ में छपवाया।

३—"इस पुस्तक की सामग्री अत्यन्त रोचक और उपयोगी है।" 'विचार-धारा' डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० १०६ तथा पृ० १११।

कि श्रीनाथ जी के पाटोत्सव के समय वल्लभाचार्य जी ने उन्हें शरण में लिया। गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता के कुछ प्रसङ्गों से, कुम्भनदास जी के जीवन से सम्वन्ध रखनेवाली तिथियों तथा उनके आरम्भिक जीवन पर प्रकाश पडता है जिसका विवरण कवि की जीवनी के साथ दिया जायगा।

द्वारिकानाथ जी के प्राक्ट्य की वार्ता[1]

इस ग्रन्थ का एक वडा अंश कांकरौली के तृतीय पीठाधीश्वर गोलोकवासी श्री वालकृष्ण लाल जी (सं० १६२४:१६७२ वि० तक) का तैयार किया हुआ है। उनके जीवन काल मे यह ग्रन्थ नही छपा। उनके गोलोकवास के वाद लल्लू भाई छगनलाल देसाई ने इस ग्रन्थ को वढवा कर तैयार कराया और अहमदावाद से इसे छापा। इसमें श्री वल्लभाचार्य जी, उनके पुत्र श्री गोपीनाथ जी और श्री विट्ठलनाथ जी के सात पुत्र और तृतीय पुत्र श्री वालकृष्ण जी (द्वारिकाधीश के उपासक) के वशजों का वृत्तान्त दिया हुआ है। इस ग्रन्थ से अष्ट कवियों की जीवन तिथियो के आँकने में वहुत सहायता मिली है। श्री वालकृष्ण लाल जी एक उच्च कोटि के विद्वान् और विद्यानुरागी थे। इसलिये उन्होंने तिथियां और घटनाएँ यथासम्भव छानवीन करके ही लिखी थीं, ऐसा वल्लभसम्प्रदायी पण्डित मानते हैं। इसमें दी हुई तिथियो का प्रयोग इस ग्रन्थ के अष्टछाप-जीवनी भाग मे कियां गया है।

श्री गिरिधर लालजी महाराज के १२० वचनामृत

यह ग्रन्थ वल्लभसम्प्रदायी तृतीय पीठ के १० वें तिलकायित गोस्वामी श्री गिरिधर लाल जी (सं० १८६८ से सं० १६३५ वि० तक स्थिति) के १२० वचनों का संग्रह है। इसमें मौलिक रूप से परम्परागत चली आती हुई कुछ किंवदन्तियो के आधार से और कुछ प्राचीन वार्ताओं के सहारे, भक्तो की वार्ताएँ, सम्प्रदाय के कुछ सिद्धान्त और शिक्षाएँ दी गई हैं। कहा जाता है कि सं० १६२३ मे जव गोस्वामी गिरिधर लाल जी डमोई में गये थे, वहाँ उन्होंने व्याख्यान दिये थे। इन्ही प्रवचनों को उनके शिष्यो ने लिख लिया। सं० १६७६ वि० में लल्लूभाई छगनलाल देसाई (अहमदावाद) ने इनको छपवा दिया। इन वचनो मे दिये हुये ऐतिहासिक वृत्तान्तो को लेखक विश्वस्त सूत्र से वँधी परम्परागत जनश्रुति रूप मे ही समझता है। अष्टछाप कवियों के जो वृत्तान्त इन प्रवचनो मे दिये हैं उनको इस ग्रन्थ के लेखक ने अन्य प्रमाणो के अभाव मे अपना लिया है।

उक्त वचनामृतो से छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी के गोलोकवास के समय तथा स्थान का पता चलता है।

१—यह ग्रंथ सं० १६८० विक्रमी में अहमदावाद से लल्लूभाई छगनलाल देसाई ने छापा था।

नागर समुच्चय

यह कई ग्रन्थो का एक संग्रह ग्रन्थ है। कृष्णगढ़नरेश महाराज सावन्तसिंह (जन्म सं० १७५६) उपनाम नागरी दास जी के, जो श्री वल्लभाचार्य जी के सम्प्रदाय के शिष्य थे, लिखे हुए ग्रन्थो का यह संग्रह है। शृङ्गार-सागर के अन्तर्गत इनका एक ग्रन्थ 'पदप्रसङ्गमाला'[1] भी है। इसमे भक्तो के वृत्तान्त देते हुए उनके कुछ पदो के प्रसङ्ग दिये हैं कि वे किस अवसर पर गाये गये थे। नागरीदास जी ने इन प्रसङ्गो को परम्परागत जनश्रुति, भक्तमाल, ८४ तथा २५२ वार्ता ग्रन्थ आदि सूत्रो से लेकर लिखा है। इसमे दिये हुये पद तो प्रामाणिक है परन्तु प्रसङ्गो के विवरण कही-कही अतिरञ्जित भी है। इसलिये वे अन्य प्रमाणो के मेल से ही ग्राह्य हैं।

सूरदास—इस ग्रन्थ मे नागरीदास जी ने किंवदन्तियो के आधार से 'पदप्रसङ्ग माला' मे सूरदास के कुछ पदों के गाये जाने के प्रसङ्ग और कथाएँ दी है जिनमे घटनाओ का कोई तारतम्य नही है। जो कथाएँ नाभादास जी तथा प्रियादास जी ने अन्य सूरदासो के विषय मे दी हैं, उनमे से कुछ को नागरीदास ने भूल से अष्टछाप के सूरदास के पदो के प्रसङ्गो के साथ जोड़ दिया है। ८४ वैष्णवन की वार्ता तथा भक्तमाल के विवरण से विरुद्ध पड़नेवाले 'नागर समुच्चय' के प्रसंगो को लेखक ने यहाँ ग्रहण नही किया। नागर-सामुच्चय मे अन्य अनेक भक्तो पदो के प्रसङ्ग भी दिये हुए है। व्यासदेव के प्रसङ्ग मे भी सूरदास का उल्लेख आता है। एक पद मे व्यासदेव ने, सूरदास, परमानन्ददास, मीरा आदि भक्तो को अपना कुटुम्ब कहा है और एक दूसरे पद मे वे सूरदास, परमानन्द दास का इस प्रकार नामोल्लेख करते हैं मानो वे कवि अब इस संसार मे हैं ही नही।[2] व्यासदेव के संसर्ग से सूरदार की विद्यमानता पर कुछ प्रकाश इन प्रसङ्गो से पडता है।

छीतस्वामी—भक्तमाल अथवा भक्त-नामावली को अपेक्षा नागर समुच्चय मे छीत-स्वामी का कुछ अधिक वृत्तान्त दिया गया है। परन्तु इस वृत्तान्त मे केवल '२५२ वैष्णवन

१—नागर समुच्चय, सिंगार सार, शिवलाल, पृ० १८१।

२—नागर समुच्चय, शिवलाला, पृ० २११, २१२।

सेन धना नामा पीपा कबीर रैदास चमारौ।
रूप सनातन को सेवक गंगल भट्ट सुधारौ।
सूरदास परमानंद मेहा, मीरा भक्ति बिचारौं।
बाँभन राज पुत्र कुछ उत्तम करत जात कौं गारौ।
आदि अंत भक्तन को सर्वसराधा वल्लभ प्यारौ।

× × ×

इहि विधि चलत स्याम स्यामा के व्यासहि बोरो भावै तारो।
इस सम्बंध के अन्य पद व्यासवाणी के विवरण के साथ दिये जायेंगे।

की वार्ता' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' में दिये हुये, उनके वल्लभसम्प्रदाय मे शरणागति के प्रसङ्ग का ही विशेष उल्लेख है। नागरीदासजी कहते है कि[1] पहले इनको छीतू मथुरिया कहते थे। ये बहुत झगड़ालू प्रकृति के थे और शैव थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की, यदि कोई उनको ईश्वर का स्वरूप बताते हुए, प्रशंसा करता तो इनको बहुत बुरा लगता। एक दिन एक थोथे नारियल मे राख भरकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पास ले गये और उसे उनकी भेट किया। गोस्वामी जी ने जब उसे तुड़वाया तो उसमे गरी निकली। छीतस्वामी बहुत लज्जित हुये और गोस्वामी जी के चमत्कार पर चकित हुए। वे उसी समय उनके शिष्य हो गये और उन्होंने उसी समय निम्नलिखित पद गाया—

राग सारङ्ग

जे वसुदेव किये पूरन तप तेई फल फलित श्री वल्लभ देव।
जो गोपाल हुते गोकुल मे तेई आनि बसे करि गेह।
जे वे गोप वधू ही ब्रज मे तेई अब वेदरिचा भई येह।
छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल तेई ऐई ऐई तेई कछु न संदेह।

उपर्युक्त प्रसङ्ग से छीतस्वामी के विषय मे यह भी सिद्ध होता है कि वे वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले कविता करते थे और गान-विद्या भी जानते थे। तभी तो उन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के समक्ष तुरन्त पद बनाकर गाया था।

आइने अकबरी, मुन्तखिब उल तवारीख तथा मुशियात अबुल फ़ज़ल

इन तीनो ग्रन्थो मे महात्मा सूरदास के जीवन से सम्बन्धित कुछ रचनाएँ है। इन ग्रन्थो का परिचय तथा इनमे दिये हुये सूर के वृत्तान्त तथा इन सूचनाओ की प्रामाणिकता के विषय मे नीचे की पंक्तियो मे विचार किया गया है। सूर के विषय मे दिये हुये इन वृत्तान्तो को लेखक अष्टछापी सूरदास के जीवन-चरित्र के प्रामाणिक वृत्तान्त नही मानता, क्योकि अन्य विश्वस्त सूत्रो से प्राप्त अष्टछापी सूरदास के वृत्तान्त किसी भी प्रकार इनमे दिये हुये वृत्तान्तो से नही मिलते।

सूरदास और आइने अकबरी—आइने अकबरी मे लिखा है कि अकबर के दरबार मे ग्वालियर निवासी रामदास नामक एक गवैया था। उसका लड़का सूरदास था जो अपने पिता के साथ दरबार मे आया करता था, अकबर के दरबार के गवैयो मे सूरदास का भी नाम है।[2] डा० ग्रियर्सन ने साहित्यलहरी वाले सूर के आत्मचारित्रिक पद को प्रामाणिक

१—नागर-समुच्चय, पद-प्रसङ्ग-माला, सिंगार-सागर, शिवलाल पृ० २००।
२—आइने अकबरी, पृ० ६१२।

मानते हुए हरिचन्द का पुत्र रामचन्द अथवा रामदास माना है और इस तरह उन्होंने पद के वृत्तान्त और आइने अकबरी के कथन को मिला दिया है। लेखक के विचार से डा० ग्रीयर्सन का मत भ्रान्त है।

सूरदास और मुन्तखिबउत्तवारीख[1]—यह ग्रन्थ अलबदाउनी का लिखा है। इसमें सूरदास के पिता कहे जानेवाले रामदास के विषय मे लिखा है,—"खानखाना के पास उस समय अधिक द्रव्य नही था। फिर भी उन्होंने रामदास लखनवी को जो सलीमशाही कलावन्तो मे से एक था और जो गाने की कला मे मियाँ तानसेन के समान था, एक लाख सिक्के बख्शिश दिये।"

सूरदास, और मुन्शियात अबुलफ़ज़्ल—यह ग्रन्थ अकबर के समय के पत्रो का सग्रह है। इसमे अकबर बादशाह की आज्ञा से अबुलफ़ज़्ल का सूरदास के नाम एक पत्र का उल्लेख है और अकबर से सूरदास के मिलने का भी उल्लेख है। मुन्शी देवीप्रसाद जी ने अपने ग्रन्थ 'सूरदास का जीवनचरित्र' मे पृ० ३० : ३१ पर इस पत्र का अनुवाद दिया है। उसी को यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"हज़रत बादशाह शीघ्र ही इलाहाबाद को पधारेगे। आज्ञा है कि आप भी सेवा मे उपस्थित होकर सच्चे शिष्य होवे और ईश्वर को धन्यवाद दे कि हज़रत भी आपको परम धर्मज्ञ जानकर मित्र मानते है। और जब हजरत मित्र मानते है तो दरगाह के चेलो और भक्तो का उत्तम बर्ताव मित्रता के अतिरिक्त और क्या होगा? ईश्वर शीघ्र ही आपके दर्शन करावे कि जिसमे हम भी आपकी सत्सङ्गति और चित्ताकर्पक वचनो से लाभ उठावे।"

"यह सुनकर कि वहाँ का करोडी आपके साथ अच्छा बर्ताव नही करता, हज़रत को भी बुरा लगा है और इस विषय मे उसके नाम कोपमय फ़र्मान भी जा चुका है और इस तुच्छ शिष्य अबुलफ़ज़्ल को भी आज्ञा हुई है कि आपको दो-चार अच्छर लिखे। वह करोड़ी यदि आपकी शिक्षा नही मानता तो हम उसका काम उतार ले और जिसको आप उचित समझे जो दीन दुखी और सम्पूर्ण प्रजा की पूरी सँभाल कर सके उसका नाम लिख भेजे तो अर्ज़ करके नियत करा दू । हजरत बादशाह आपको जुदा नही समझते, इसलिए उस जगह के काम की व्यवस्था आपकी इच्छा पर छोड़ी हुई है। वहाँ ऐसे हाकिम चाहिए जो आपके

[1]—मुन्तखिबउत्तवारीख, जिल्द २, पृ० ४२।
ब खान खाना हमीं तौर बावजूद आँकि दरखजीना हे न दाश्त एकलक तनका ब रामदास लखनवी क अज़ कलावन्तान असलीम शाही दरबादी सरोद औरा सानी मियाँ तानसेन तवान गुफ़्त व दर खिलवात व जलवात व खान हमदम व मुहरिम बूद अज हुस्न सौत ओ पेवस्ता आवदरदीदा नेगरदानीद हर एक मजलिस मजनगदो जिन्स बखशीदा।

अधीन रहे और जिस प्रकार से आप स्थिर करे, काम करें। आपसे यह पूछना सत्य कहना है और सत्य करना है। खत्रियो वगैरह मे से जिस किसी को आप ठीक समझे कि ईश्वर को पहचान कर प्रतिपाल करेगा, उसी का नाम लिख भेजे तो प्रार्थना करके भेजूं। ईश्वर के भक्तो को ईश्वर सम्बन्धी कामो में अज्ञानियो के तिरस्कार करने का समय नही होता है। सो ईश्वर कृपा से आपका शरीर ऐसा ही है। परमेश्वर आपको सत्कर्मों की श्रद्धा देवे और सत्कर्म के ऊपर स्थिर रक्खे और ज्यादा सलाम।''

आइने अकबरी, मुन्तखिबउत्तवारीख और मुंशियातअबुलफ़ज़ल के वृत्तान्तो पर विचार करने से हमे ज्ञात होता है कि तीनो मे एक ही सूरदास का उल्लेख है जो ग्वालियर निवासी तथा बाद को लखनऊ मे आकर बसनेवाले रामदास का पुत्र है। दोनो बाप-बेटो का अकबर के दरबार से सम्बन्ध था। अबुलफ़ज़ल के पत्र से ज्ञात होता है कि सूरदास बादशाह का राजकर्मचारी भी था। उधर अष्टछाप के सूरदास को अकबर बादशाह से एक बार भेट का उल्लेख ८४ वैष्णवन की वार्ता मे भी है। परन्तु उस भेट के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि सूरदास सासारिक वैभव से विरक्त, दरबार के प्रलोभन से दूर, एक निर्भीक भक्त है। अकबर के लाख प्रयत्न करने पर भी सूरदास ने अकबर से यही माँगा,—''आज पाछे हमको कबहूँ फेरि मति बुलाइयो और मोसो कबहूँ मिलियो मति।'' जो व्यक्ति ऐसा त्यागी है वह अकबर का राजकर्मचारी और दरबारी क्यो होगा? लेखक का अनुमान है कि ऊपर का वृत्तान्त भक्तमाल के छप्पय न० १२६ मे दिये हुये अकबर के राजकर्मचारी लखनऊ के पास स्थित सण्डीले स्थान के अमीन भगवदीय मदनमोहन सूरदास से सम्बन्ध रखता है।

अबुलफ़ज़ल के पत्र मे कोई तिथि नही है। अकबरनामा के अनुसार मुन्शी देवीप्रसाद अकबर का प्रयाग जाना स० १६४२ मे समझते है। पहले तो वार्ता के अनुसार सूरदास का अकबरी दरबार से कोई सम्बन्ध स्थापित नही होता, दूसरे सं० १६४२ तक अष्टछापी सूरदास का देहान्त हो चुका था जैसा कि वार्ता के उल्लेखो से आगे सिद्ध किया जायगा। यह पत्र, जैसा कि लेखक ने पीछे कहा है, मदनमोहन सूरदास के नाम हो सकता है। इस विवेचन का निष्कर्ष यही है कि आइने अकबरी, मुन्तखिबउत्तवारीख और मुंशियात अबुलफ़ज़ल में अष्टछाप के भक्तवर सूरदास का कोई वृत्तान्त नही दिया गया है।

मूल गुसाई चरित

वह ग्रन्थ महात्मा तुलसीदास जी के शिष्य बाबा वेणीमाधवदास का बनाया हुआ कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि वेणीमाधवदास जी ने एक बृहद् ग्रन्थ 'गुसाई चरित्र' लिखा था जिसमे महात्मा तुलसीदास जी का जीवन-वृत्तान्त बहुत विस्तार से दिया हुआ था। उसी ग्रन्थ का एक सक्षिप्त रूप उक्त लेखक ने 'मूलगुसाईचरित' नाम से भी लिखा था 'गुसाई चरित' ग्रन्थ अप्राप्य है और मूलगुसाईचरित प्राप्त है। इस के ग्रन्थ मे अष्टछाप के दो भक्त कवि

सूरदास और नन्ददास का भी अल्प वृत्तान्त दिया हुआ है। इस ग्रन्थ की भाषा तथा वर्णित घटनाओ पर विचार करते हुये दो चार सज्जनो को छोड सभी हिन्दी-संसार ने इस ग्रन्थ को अप्रामाणिक सिद्ध कर दिया है। लेखक ने भी इसमे दिये हुये, सूरदास और नन्ददास के वृत्तान्तो को अप्रामाणिक माना है और इसी से उन्हें ग्रहण नही किया।

सूरदास—सूरदास के विषय मे जो वृत्तान्त मूल गुसाइँचरित ग्रन्थ मे दिया गया है, वह असङ्गत है। इसमें लिखा है,—संवत् १६१६ में सूरदास जी चित्रकूट पर महात्मा तुलसीदास जी से मिले। सूरदास जी को भगवत् कृपा-रङ्ग मे बोरकर गोकुलनाथ जी ने तुलसीदास के पास भेजा था। तुलसी के पास पहुचकर सूर ने उनको अपना सूरसागर दिखाया और कुछ पद गाकर भी सुनाये। गाते-गाते सूर ने तुलसी के पद पङ्कजों पर अपना सिर नवा दिया और महात्मा तुलसीदास से आशीर्वाद माँगा कि कृष्ण मेरे ऊपर कृपालु हो और मेरी कीर्ति दिगन्त मे फैले। इन वचनो को सुनकर तुलसी ने उनकी प्रशसा की और उनकी पोथी और उनको हृदय से लगा लिया। सात दिन तक सूर वहाँ रहे। जब चलने लगे तो उन्होंने तुलसी के चरण-स्पर्श किये। तुलसी ने उनको प्रबोधन, आश्वासन दिया और एक पत्र गोकुलनाथ जी के नाम भी दिया।"[1]

इस वृत्तान्त मे वृद्ध सूरदास को सवत् १६१६ मे आठ वर्ष के श्रीगोकुलनाथ जिनका जन्मकाल संवत् १६०८ वैष्णव-वार्ताओ में प्रसिद्ध है, 'कृष्ण रङ्ग में बोरि, तुलसीदास के पास भेजते हैं। गोकुलनाथ जी के पिता और आचार्य वल्लभ की गद्दी पर प्रतिष्ठित गोस्वामी विट्ठलनाथ सं० १६४२ तक रहे। बूढे सूरदास अपने गुरुभाई श्री विट्ठलनाथ जी की आज्ञा न लेकर अबोध बालक गोकुलनाथ की आज्ञा, उनका पत्र और उनसे भक्ति की स्फूर्ति लेते हैं। यह बात बिल्कुल बेमेल और असङ्गत है। मूल गुसाइँचरित

१—सोरह सै सोरह लगे, कामद गिरि ढिगवास।
सुचि एकांत प्रदेस महँ आये सूर सुदास।
पठये गोकुलनाथ जी कृष्ण रंग महँ बोरि।
दृग फेरत चित चातुरी, लीन्ह गोसाईं छोरि।
कवि सूर दिखायउ सागर को, सुचि प्रेम कथा नट नागर को।
पदद्वय पुनि गाय सुनाय रहे, पदपंकज पै सिर नाय रहे।
अस आशिष देय स्याम ढरै, यह कीरति मोरि दिगन्त चरै।
सुनि कोमल बैन सुदादि दिये, पद पोथि उठाय लगाये हिये।
× × ×
दिन सात रहे सत्संग पगे, पदपंकज गहे जब जान लगे।
गहि बाँह गोसाईं प्रबोध किये, पुनि गोकुलनाथ को पत्र दिये।
मूलगुसाईं चरित।

कार ने वृद्ध सूरदास को जो पुष्टिमार्ग का 'जहाज़' और काव्य-रचना के लिए 'सागर' कहलाते थे, तुलसीदास के, जिन्होंने अभी तक 'रामचरितमानस' अथवा 'विनयपत्रिका' आदि ग्रन्थो तक की रचना नही की थी, पद-पङ्कजों पर लुटाया है जिस पर विश्वास नही किया जा सकता। मूलगुसाईंचरित में सूरदास के विषय मे जो कुछ वृत्तान्त दिया हुआ है वह सब अग्राह्य है।

नन्ददास—लेखक मूलगुसाइँचरित ग्रन्थ को नन्ददास की जीवन घटनाओ का भी विश्वस्त आधार नही मानता। इस ग्रन्थ में कथित नन्ददास-विषयक उल्लेखो को, चरितकार के शब्दो मे, नीचे दिया जाता है—

नन्ददास कनौजिया प्रेम मढ़े, जिन शेष सनातन तीर पढे।
सिच्छागुरु बन्धु भये तेहिते, अति प्रेम सो आय मिले यहिते।

इस ग्रन्थ के अनुसार ज्ञात होता है कि नन्ददास जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। काशी मे इन्होने शेष सनातन से विद्या पढ़ी थी। वही तुलसीदास उनके सहपाठी थे। तुलसीदास और नन्ददास सगे अथवा चचेरे भाई नही थे, वे केवल गुरुभाई थे। इस ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि सं० १६४९ वि० मे तुलसीदास ने नैमिषारण्य की यात्रा की और तभी व्रज मे आकर नन्ददास से वे मिले। सूकर-क्षेत्र की स्थिति इस ग्रन्थ मे सरयू और घाघरा के सङ्गम के तीर पर मानी गई है, जहाँ तुलसीदास ने अपने गुरु नरहर्यानन्द से विद्या पढी थी। नन्ददास और तुलसीदास के जीवन-विषयक उपर्युक्त वृत्तान्त की एक भी बात प्रचलित किंवदन्ती अथवा पीछे दिये हुये 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के वृत्तान्त से मेल नही खाती।

व्यास-वाणी हित हरिवंश जी के शिष्य व्यास जी ने, जो ४५ वर्ष की अवस्था मे सं० १६१२ में हितजी के शिष्य हुये थे, कुछ भक्तो का अपने कुछ पदो मे उल्लेख किया है, उससे ज्ञात होता है कि जिन भक्तो का उन्होंने उल्लेख किया है वे उस समय तक परलोक-वासी हो चुके थे। इन पदो की रचना का समय लेखक ठीक निर्धारित नही कर सका, इसलिए उन भक्तो के समय पर इन पदों से कोई निश्चित प्रकाश नही पडता। यह ज्ञात अवश्य होता है कि वे भक्त व्यास जी की दृष्टि मे बहुत प्रशंसनीय थे।

सूरदास और परमानन्द दास—व्यास जी ने सूरदास और परमानन्द दास के कीर्तनो की प्रशंसा की है। जिन पदो मे व्यास जी ने इन भक्तो का प्रशंसात्मक शब्दो मे उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं—

बिहारहिं स्वामी बिन को गावै

बिनु हरिवंसहि राधिका वल्लभ को रस रीति सुनावै।
रूप सनातन बिनु को वृन्दाविपिन माधुरी पावै।
कृष्णदास बिनु गिरधर जू को को अव आड लड़ावै।
मीरा बाई बिनु को भक्तनि पिता जान उर लावै।
स्वारथ परमारथ जैमल विनु को सब बन्धु कहावै।
परमानन्द दास बिनु को अव लीला गाय सुनावै।
सूरदास बिनु पद रचना को कौन कविहि कहि आवै।
और सकल साधन बिनु को यह कलिकाल मिटावै।
व्यास दास इन बिन को तन की तपन बुझावै[1]।

इतनौ है सब कुटुम्ब हमारौ

सैनाधना अरु नाभा पीपा और कवीर रैदास चमारौ।
रुप सनातन कौ सेवक गंगल भट्ट सुढारौ।
सूरदास परमानन्द मेहा मीरा भक्त विचारौ।
ब्राह्मन राज पुत्र उत्तम तेऊ करत जाति कौ गारौ।
आदि अन्त भक्तन को सर्वस राधा वल्लभ प्यारौ।
आसू कौ हरिदास रसिक हरिवंस मोहि विसारौ।
इहि पथ चलत स्याम स्यामा के व्यासहि बोरौ भावै तारौ[2]

साँचे जु साधु रामानन्द

जिन हरिजू सो हित करि जानौ और जानि दुख द्वन्द।
जाको सेवक कवीर धीर मति अति मुमति सुरसुरानन्द।
तव रैदास उपासक हरिकौ, सूर सुपरमान्द।

× × ×

जिन विनु जीवन मृतक भये हम सह्यो विपति को फद।
तिनु बिनु उर की सूल मिटै क्यो जिये व्यास अति मंद[3]।

१—व्यास-वाणी, प्रकाशक, आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृ० १४।
२—व्यास-वाणी, प्रकाशक, आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृ० १२।
३—व्यास-वाणी, प्रकाशक, आचार्य श्री राधाकिशोर गोस्वामी, पृ० १२।

पीछे दी हुई प्राचीन बाह्याधार-रूप सामग्री के अतिरिक्त अष्ट-छाप से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ जन-श्रुतियाँ भी वल्लभ सम्प्रदायी वैष्णवों मे तथा हिन्दी जगत मे प्रचलित हैं। इन किवदन्तियो मे मे कुछ ऐसी भी हैं जो वस्तुतः अष्टछाप के कवियो से सम्बन्ध न रख कर, उन कवियो के नामधारी अन्य कवियो से सम्बन्ध रखती है। वहुधा भक्तमाल के आधुनिक टीकाकारो ने सूरदास मदनमोहन, सूरजदास, तथा विल्वमङ्गल सूरदास की मौखिक रूप से प्रचलित कथाओ को अष्टछाप के सूर के वृत्तान्तो के साथ मिला दिया है, भक्तमाल के विवरण मे यह बात कही जा चुकी है। सूरदास के विषय की कुछ जन-श्रुतियाँ नीचे दी जाती हैं।

जन-श्रुतियाँ

१—सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे, इसकी पुष्टि पीछे कही हुई, हरिराय जी की ८४ वैष्णवन की वार्ता से होती है।

२—"सूरदास श्री वल्लभाचार्य जी से दस दिन छोटे थे"। यह जनश्रुति लेखक ने नाथद्वार तथा कांकरौली के वैष्णवो से सुनी थी। इसकी पुष्टि नाथद्वार मे मनाये जानेवाले एक उत्सव से होती है। नाथद्वार मे सूरदास का जन्मदिवस गुप्त-रूप से वैसाख सुदी पञ्चमी को आचार्य जी के जन्म-दिवस के दस दिन वाद मनाया जाता है। भक्तो के जन्मदिवसो के उत्सव प्रत्यक्ष समारोह के साथ इसलिये नही मनाये जाते कि सम्प्रदाय मे आचार्यो के सामने दासो का जन्मदिवस मनाना उत्कर्ष का कार्य नही समझा जाता। सूर के जन्मदिवस मनाने की परम्परा नाथद्वार मे वहुत प्राचीन काल से चली आती है।

३—"सूरदास जी जन्मान्ध थे।" इस जनश्रुति की पुष्टि हरिराय की ८४ वैष्णवन की वार्ता के कथन से होती है। अलौकिक शक्ति के कार्य पर विश्वास रख कर लोग मान सकते हैं कि सूर को दिव्य दृष्टि प्राप्त थी, परन्तु इस तर्कपूर्ण युग मे बुद्धिसङ्गत बात यही जान पड़ती है कि सूर ने अपनी किसी अवस्था मे इस संसार को देखा था जिससे वे अपनी विलक्षण बुद्धि और कल्पना के सहारे उसका सजीव चित्र अङ्कित करने मे समर्थ हुये।

४—"सूरदास ने सवालाख पद लिखे।" इस कथन की पुष्टि आंशिक रूप मे 'साहित्यलहरी' के पीछे दिये हुये उल्लेख[1] तथा हरिराय जी की ८४ वैष्णवन की वार्ता के कथन[2] से होती है। परन्तु इतनी वड़ी संख्या मे आज तक सूर के पद उपलब्ध नही हुये।

१—"तादिन ते हरिलीला गाई, एक लक्ष पद वंद।"
सूरसागर, वें०प्रे०, सूरसावाली, पृ० ३८।

२—'अष्टछाप', कांकरौली, पृष्ठ ४६।
लेखक के यास सुरक्षित हरिराय की भावना सहित '८४ वैष्णवन की वार्ता' में भी सूर के लक्षावधि पद लिखने का उल्लेख है।

५—"सूरदास ने साहित्यलहरी की रचना नन्ददास के लिये की थी।" यह जनश्रुति लेखक ने कॉंकरौली मे श्री द्वारिकादास भगवदीय, श्रीकण्ठमणि शास्त्री आदि वैष्णवो से सुनी थी। सम्भव है, इस कहावत का मुख्य आधार 'साहित्यलहरी' के रचनाकाल को देनेवाले इस पद का उल्लेख "नन्दनन्दन दास हित साहित्यलहरी कीन" हो।

६—"सूरदास एक बार अकबर बादशाह से मिले थे।" इस कथन की पुष्टि वार्ता से होती है। ८४ वार्ता के कथनानुसार यह भेट मथुरा मे हुई थी।

७—"सूरदास का जन्म सीही ग्राम मे हुआ था।" इस जन श्रुति की पुष्टि भी हरिराय जी की ८४ वैष्णवन की वार्ता से होती है।[1]

आधुनिक बाह्य आधार रूप गौण सामग्री का निरीक्षण अष्टछाप कवियो के जीवन चरित्र तथा रचनाओ का विवरण देने वाले आधुनिक लेखको के मुख्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट।

२—"इसत्वार दे ला लितेरात्यूर एन्दुए हेदुस्तानी" गासॉ द तासी।

३—शिव सिंह सरोज।

४—भारतेंदु-रचित भक्तमाल।

५—मिश्रबन्धु-विनोद तथा हिन्दी नवरत्न।

६—"हिन्दी-साहित्य का इतिहास," पं० रामचन्द्र शुक्ल।

७—"हिन्दी-भाषा और साहित्य," डा० श्यामसुन्दर दास।

८—"हिन्दी-भाषा का आलोचनात्मक इतिहास," डा० रामकुमार वर्मा

९—"सूरदास," डा० जनार्दन मिश्र।

१०—"सूर-साहित्य की भूमिका," श्री रामरत्न भटनागर तथा श्री वाचस्पति पाठक।

११—सूर-साहित्य, पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

१—"सो सूरदास जी दिल्ली के पास चारि कोस उरे में एक सीही ग्राम है, सो ता ग्राम में एक सारस्वत ब्राह्मण के यहां प्रगटे।"
'अष्टछाप' कांकरौली, पृ० २।

नीचे की पक्तियो मे आधुनिक लेखको द्वारा दिये हुये अष्टछाप सम्बन्धी वृत्तान्त का निरीक्षण किया गया। उक्त लेखको के मतो की आलोचना तथा अपना मत लेखक ने अष्टछाप-जीवनी और उनके ग्रन्थो की प्रमाणिकता के विवेचन के साथ दिये हैं। यहाँ संक्षेप में लेखको के आलोच्य मत का बहुधा दिग्दर्शन ही कराया गया है।

१—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे अष्टछाप कवियो के नाम से दिये हुये ग्रन्थो की जो सूचना मिलनी है उसका विवरण साथ मे लगी तालिकाओ में दिया जाता है।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में 'अष्टछाप' कवियों के नाम पर दिये हुये ग्रन्थ।

कवि तथा पुस्तक का नाम	खोज में रिपोर्ट का हवाला—रचना तथा प्रतिलिपि की तिथि तथा प्रतिलिपि की सुरक्षा का स्थान।	खोज रिपोर्ट का विवरण तथा प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक का वक्तव्य।
श्री सूरदास-कृत सूरसागर	खो० रि० १६०१ ई०, नं० २३ पृ० २६, प्रतिलिपि काल स० १८६६ वि०, अथवा सन् १८०६ ई०, सुरक्षा का स्थान, श्याम सुन्दर-लाल, मशकगञ्ज, लखनऊ।	खो० रि० विवरण :—इस सूरसागर मे श्री मद्भागवत के बारहो स्कन्धो का आधार लिया गया है। इसमे सब मिलकर ३६६४ पद है जिनमें १५१ पद विनय के हैं और शेष स्कन्धो के अनुसार इस प्रकार हैं प्रथम स्कन्ध २६४. सप्तम् स्कन्ध ... ७. द्वितीय ... १३६. अष्टम ... १६. तृतीय ... १३. नवम ... १६१. चतुर्थ ... १३. दशम ... ३२०६. पचम ... ७. एकादशम ... ६. षष्ठ ... ४. द्वादश ... ४. ५५ पृष्ठो मे एक सूची पत्र भी इसके साथ दिया हुआ है जिसमे प्रत्येक पद की प्रथम पंक्ति दी है। पुस्तक सचित्र है। इस ग्रन्थ को लेखक ने लखनऊ मे दो बार देखा है। आजकल यह ग्रन्थ श्याम-सुन्दरलाल जी के उत्तराधिकारी लाला मोहनलाल अग्रवाल मशकगञ्ज के पास है।

सूरसागर

खो० रि० १६०६:८ ई०, नं० २४४, (सी), प्रतिलिपि काल सन् १८१६ ई०, सुरक्षा का स्थान, राजकीय पुस्तकालय, बिजावर।

खो० रि० में कोई उद्धरण नही दिये गये। खो०रि० के फुट नोट मे लेख है, "दतिया के राज पुस्तकालय मे, लिपि अथवा प्रतिलिपि काल रहित इसकी दो प्रतिलिपियां हैं।"

सूरसागर

खो० रि० १६१२:१४ ई०, नं० १८५, (सी) पृ० २३२, प्रतिलिपि काल १८४३ ई०, सुरक्षा का स्थान, पं० लालमणि वैद्य, पुवायां पो०, जिला शाहजहांपुर।

खो० रि० मे इस ग्रन्थ के विषय मे निम्नलिखित आशय का नोट है—

विपय भागवत के वारहो स्कन्धो तथा रामायण के सातो काण्डो की कथा का वर्णन। यह ग्रन्थ तीन भागों मे है—प्रथम भाग मे ३५२ पृष्ठ तक प्रथम से नवम स्कन्ध तक की कथा है। इसी में आगे एकादश तथा द्वादश स्कन्व हैं।

द्वितीय भाग मे कृष्ण-जन्म से रासलीला तक की कथा का वर्णन है। इसमे ३२७ पृष्ठ है।

तीसरे भाग में २९४ पत्र हैं, इसमे कुरुक्षेत्र-सम्मेलन और कृष्ण तथा अर्जुन के, ब्राह्मण के मरे हुये वालक के ले आने तक की कथा है।

सूरसागर

खो० रि० १६१७:१९ ई०; नं० १८६, (बी०) पृ० २६६, प्रतिलिपिकाल, सं० १७९८ वि०, सुरक्षा का स्थान—ठाकुर रामप्रतापसिंह, गांव बरौली, पो० पहाड़ी, भरतपुर स्टेट।

खो०रि० के अनुसार इस सूरसागर के वारह स्कन्धो मे पद-संख्या इस प्रकार है—

स्कन्ध	पद सं०	स्कन्ध	पद सं०
१	२०८	७	८
२	३८	८	१४
३	१०	९	१५
४	१२	१०	१
५	५	११	३५
६	४	१२	१७४५

इस विवरण से ज्ञात होता है कि इसमे सूरसागर के मुख्य भाग दशम स्कन्ध के पद नही हैं। वारहवे

		स्कन्ध की पद-संख्या को देखते हुये यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।
सूरसागर	खो० रि० १९१७: १९ ई०, न० १८६, (सी) तथा नं० १८६ (डी)। प्रतिलिपिकाल, सं०१८७६वि० अथवा १८१९ ई०, सुरक्षा का स्थान, श्री मतङ्ग ध्वजप्रतापसिंह,बिसवाँ, ज़िला अलीगढ़।	खोज रि० के अनुसार यह ग्रन्थ दो भागो मे है; प्रथक भाग मे, १ से ९ स्कन्ध (भागवत) की कथा है और दूसरे में, दस से बारह (१०, ११, १२) स्कन्धों की कथा है। प्रथम भाग मे ४६२ पद हैं और दूसरे मे २३४२, कुल पद-संख्या २८०४ है।
सूरसागर दशम स्कन्ध	खो० रि० १९०६ ई०, न० १२७।	खो० रि० मे इस ग्रन्थ के विषय मे अन्य कोई सूचना नही है।
सूर-कृत भागवत भाषा	खो० रि० १९१२: १४, न० १८५ ए, प्रतिलिपिकल सवत् १८६७ वि०, सुरक्षा का स्थान—बा० कृष्ण जीवन लाल वकील, महावन, जि० मथुरा।	खो० रि० मे दिये हुए उद्धरणो से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ सूरसागर का अंश ही है, इसमे दशम को छोड़कर शेष ११ स्कन्धो का पद्यबद्ध अनुवाद है।
भागवत-भाषा	खो० रि० १९१७: १९ ई०, न० १८६ ए, प्रतिलिपिकाल सं० १७४५ वि०, सुरक्षा का स्थान—पं० नटवरलाल चतुर्वेदी, कोठीवाला, मथुरा।	खो० रि० मे यह खण्डित प्रति बताई गई है, लेखक का विचार है कि वह भी सूरसागर की ही कोई खंडित प्रति है।
दशम स्कन्ध टीका	खो० रि० १९०६: ८ ई०, न० २४४ (डी)।	खो० रि० मे लिखा है कि यह ग्रन्थ दशम खण्ड भागवत का सूर-कृत पदो मे अनुवाद है। ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ सूरसागर का ही अङ्ग है।

सूरदास-कृत पद-संग्रह	खो० रि० १९०२ ई०, नं० २९२, सुरक्षा का स्थान—जोधपुर राजकीय पुस्तकालय, खो०, रि० १९०६:८ ई०, नं० २४४ (बी), सुरक्षा का स्थान, दतिया राज पुस्तकालय।	खो० रि० मे लिखा है कि दोनो संग्रह सूर के पदो के हैं। इस कथन के अतिरिक्त खोज रि० मे अन्य कोई सूचना नही है।
सूरसागर-सार	खो० रि० १९०९:११ ई०, नं० ३१३ बी), पृ० ४२१, सुरक्षा का स्थान :- पं० रघुनाथराम, गायघाट, बनारस	खो० रि० मे रिपोर्ट के लेखक ने लिखा है कि सूरदास का यह एक नया ग्रन्थ मिला है जो सूर की प्रामाणिक रचना ज्ञात होती है। इसमे ५४ पृष्ठ हैं। ग्रन्थ का विषय, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति का वर्णन हैं। इसके अन्त में लिखा है—"इति श्री सूरसागर-सार, संक्षेप प्रथम स्कन्धादि नवम तरङ्ग समाप्तं।" रिपोर्ट मे जो उद्धरण दिये गये हैं उनमे ग्रन्थ के अन्तिम भाग के अवतरण सूरसागर नवम स्कन्ध के अन्तिम भाग के ही उद्धरण हैं।
गोवर्द्धन-लीला	खो० रि० १९१७:१९ ई०, नं० १८६ (ई), सुरक्षा का स्थान श्री देवकीनन्दन, आचार्य-पुस्तकालय;कामबन, भरतपुर स्टेट।	खोज रिपोर्ट में इस पर कोई वक्तव्य नही दिया गया, परन्तु इसके आदि-अन्त के उद्धरण दिये गये हैं। आदि—रागविलावल — नन्द ही कहती रानी, सुरपति पूजा तुमहि भुलानी। यह नही भली तुम्हारी बानी, मै गृहकाज रहो लपटानी।
नागलीला	खो० रि० १९०६:	रिपोर्ट का कहना है कि ग्रन्थ मे कृष्ण द्वारा काली-

	८ ई०, नं० २४४ (ई), प्रतिलिपिकाल सन् १८७७ ई०, सुरक्षा का स्थान-ला० राधिका प्रसाद मुतसद्दी छतरपुर।	नाग के नाथे जाने की कथा से सम्बन्धित पद हैं। रिपोर्ट में इसके उद्धहरण नही दिये गये।
नाग-लीला	खो०रि० १९०६ ई०, न० १२७, प्रतिलिपि काल सन् १८३२ ई०।	खोज-रिपोर्ट मे इसके विषय मे अन्य कोई विवरण अथवा वक्तव्य नही है।
सूरदास-कृत व्याहलो	खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० २४४ (ए)। पृष्ठ ३२३ तथा ९१, सुरक्षा का स्थान-दतिया राज पुस्तकालय।	खो० रि० का कहना है कि यह ग्रन्थ राधाकृष्ण-विवाह विषयक पदों का संग्रह है। रि० मे ग्रन्थ से उद्धहरण नही दिये गये। खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० २१८ (ए) मे एक विहारिन-दास द्वारा पदों में लिखे हुये राधाकृष्ण-विवाह विषयक 'व्याहलो' ग्रन्थ का भी उल्लेख है, जिसकी प्रतिलिपि दतिया राज के पुस्तकालय मे सुरक्षित वताई गई है। खो० रि० १९०९ : ११ ई०, नं० ७३ (एल) पृ० १३८ पर हितहरिवंश सम्प्रदाय के श्री ध्रुवदास जी-कृत पदो मे लिखे 'व्याहलो' नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख है जिसमे राधाकृष्ण के विवाह का वर्णन है।
सूरदास-कृत प्राण प्यारी	खो० रि० १९१७:१९ ई०, न० १८६ (एफ), पृ० ३६९, सुरक्षा का स्थान, देवकी नन्दन पुष्टिमार्गीय पुस्तकालय, कामवन, भरतपुर स्टेट।	खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ का विषय श्याम-सगाई वताया गया है। रिपोर्ट मे पूरी रचना उद्धत है जिससे कुछ उद्धहरण यहाँ दिये जाते हैं— आदि—राग विलावल—चाल, वरसाने व्रषभान दुलारी, चंदबदन लोचन मृगचारी। चरन कमल और वचन रसाल, मेलन चली तहाँ नंद जू के लाल।

निरखि बदन तन नंद जु की रानी।
छन्द—गोद उठाये भवन में जु,
आनि आभूषण पेहराइये।
सूर के प्रभु साजि नख सिख,
प्यारी जु बन रहे पहुँचाइये।
अहो मेरी प्रान जु प्यारी,
भोरहि खेलन कहाँ लौं सिधारी।
कुसुम माल तिलक किन कीनों,
किन मृगमद बिंदा जो दीनो।
अन्त-चाल—
विध बन भरी है विविधि जु कीनी,
नंदन विविधि कुसुम बरखायो,
भरे हैं भावने हैं भवरन्हि।
बजजुवतिन अनदभर गायो,
छंद—आनन्द भर ब्रज जुवति गायो।
हरखि कंकन छोरहि,
नाहिं गिर उत्रि लेनों।
स्याम हँसि मुख मोरहि,
छाँड्यो न छूटे डोरन जहाँ।
रीति प्रीति जु अति बड़ी,
सूर के प्रभु ब्रज जुवति मिली।
गारी मन भावति दई।
इति प्राण प्यारी सम्पूर्ण।

सूर-पचीस खो० रि०१९१२: १४६०,नं० १८५ (बी), पृ० २३२। खो० रि० के अनुसार इसका विषय ज्ञानोपदेश के दोहे हैं। रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों के कुछ अंश यहाँ दिये जाते हैं—

आदि—मना रे करि माधो सो प्रीति।
काम क्रोध मद लोभ मोह,
छाँडि सबै विपरीत।
भौंरा भोगी बन भ्रमै,
मोद न मानै पाय।
सब कुसमन नीरस करै,
कँवल बँधावै आय।

		अन्त—जो पै जीय लजा नही, कहा कहै सौ बार। एकै अंकन हरि भजै, तू सठ सूर गँवार।
सुरदास जो के दृष्टकूट अथवा सूर-शतक सटीक	खो०रि० १९०० ई०, नं० ६, पृ० २०, टीका रचनाकाल संवत् १८८५ वि० से सम्वत् १९०० वि० तक। सुरक्षा का स्थान—बा० हरिश्चन्द्र पुस्तकालय, चौखम्भा बनारस।	सूर के दृष्टकूट पदो की इस टीका के विषय में खो० रि० मे लिखा है कि यह टीका तथा संग्रह, श्री वल्लभसम्प्रदाय के आचार्य, काशीस्थ गो० गोपाललाल जी के शिष्य बालकृष्ण ने अपने गुरु की आज्ञा से गुजरात भागनगर में किये।
सूरजदास-कृत रामजन्म।	खो० रि० १९१७: १९ ई०, नं० १८७ (ए), सुरक्षा का स्थान— रामचन्द्र टण्डन, बी ए०, रामभवन, शाहजादापुर, फैजाबाद।	खोज रिपोर्ट मे इस ग्रन्थ के विषय में कोई वक्तव्य नही दिया गया। उक्त रिपोर्ट में ग्रन्थ से उद्धरण दिये गये हैं जिनके कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते है— आदि—श्रीरामजन्म कथा लिख्यते। कठ में बसहि सरस्वती, हिरदय बसहु महेस। भूलल अच्छर प्रगासहु, गौरी के पुत्र गनेस। चौपाई—वरनौ गणपति विघन बिनासा, राम नाम तोह पुरवहु आसा। वरनों सरसति अमृत बानी, रामरूप तोहि भलि गतिजानी। बरणों चाँद सुरज की जोती, रामरूप जासु निर्मल मोती। वरनो मातु पिता गुरु पाऊ, जिन मोहि निर्मल ज्ञान सिखाऊ।

दोहा—सूरजदास कवि बरनों,
प्राननाथ जीआ मोर।
राम कथा कछु भाखों,
कहत न लागे मोर।

चौपाई— × × ×
× × ×

दोहा—कोटि तीरथ जो कीन्हा,
जनु गहने दीनेहु दान।
सूरजदास कवि बिनवो,
सुनत राम पुरान।

इन उद्धरणों को देखते हुए ग्रन्थ अष्टछापी सूर-कृत नहीं जान पड़ता। इसका विवेचन सूर के ग्रन्थों के विवेचन मे किया जायगा।

सूरदास - कृत एकादशी-माहात्म्य

खो० रि० १९१७: १९ ई०, न० १८७ (बी)। प्रतिलिपि काल सन् १८६६ ई० अथवा संवत् १९२३ वि०। सुरक्षा का स्थान—पं० जगन्नाथ मुद्दरी गाँव, तहसील करछना, ज़िला इलाहाबाद।

खो० रि० के अनुसार इसका विषय यह है—"प्रथम वन्दना, तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र सत्यवादी और उसके पुत्र रोहितास की प्रशंसा तथा कथा-वार्ता आदि का वर्णन"। खो० रि० मे दिये हुये इस ग्रन्थ के कुछ उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं—

आदि,—श्री गणेशाय नमः
वन्दौ गुरु गन पति कर जोरी,
वन्दौ सुर तैंतीस करोरी।
वन्दौ सारद चरन मुरारी,
वन्दौ अमर देव त्रिपुरारी।
वन्दौ मात पिता गुरु दाया,
अच्छर भेद देहु रघुराया।
गावो कथा सुनहु मनलाई,
कहत सुनत पातप मिटि जाई।
करौ कथा वन्दौ हरि पाऊ,
सूर्जदास चरनन चित लाऊ।

अन्त, —सो फल एकादसी यह,
सूरजदास कवि गाइ।
जनम जनम कर पातक,
कथा सुनत मिटि जाइ।

उक्त उद्धरणो की भाषा-शैली को देखते हुए यह ग्रन्थ भी अष्टछापी सूर-कृत नही प्रतीत होता। इसका भी विवेचन आगे किया जायगा।

परमानन्ददास

परमानन्द-कृत दानलीला	खो० रि० १९०२ ई० न० १४२। सुरक्षा का स्थान— दतिया राज पुस्तकालय	ग्रन्थ के विषय मे खो० रि० मे कोई विवरण नही दिया गया है।
परमानन्द दास-कृत ध्रुव-चरित्र	खो० रि० १९०६:८ ई०, न० २०३ (ए) सुरक्षा का स्थान— राज-पुस्तकालय, दतिया	इस ग्रन्थ के विषय में, खो० रि० मे, कोई वक्तव्य अथवा उद्धरण नही दिये गये। खो० रि० मे दो और ध्रुवचरित्रो का हवाला दिया हुआ है जिनके भी उक्त रिपोर्ट मे उद्धरण नही है। १—खो० रि० १९०६:८ ई०, न० १७५ (ए), ध्रुव-चरित्र जनगोपाल-कृत, दतिया स्टेट-पुस्तकालय २—खो० रि० १९०६:८ ई०, न० २७२ (ए), ध्रुव-चरित्र जन जगदेव-कृत, स्टेट-पुस्तकालय दतिया।
परमानन्द-कृत हनुमन्नाटक की टीका	खो० रि० १९०६:८ ई०, न० ८८, पृ० ४८	खो० रि० मे ग्रन्थ के आधार से इस परमानन्द कवि को ब्रजचन्द का पुत्र लिखा है। ग्रन्थ के विषय मे अन्य कोई वृत्तान्त नही दिया गया और न उद्धरण ही दिये गये है। ग्रन्थ की प्रामाणिकता पर विचार आगे किया जायगा।
परमानन्द हित-कृत— क. हितहरिवंश की जनम बधाई ख. गुरुभक्ति	खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० २०४ (ए) से २०४ (जी) तक सुरक्षा का स्थान— स्टेटलाइब्रेरी दतिया	खो० रि० मे इन ग्रन्थो से कोई उद्धरण नही दिये गये और न इनके विषय मे कोई विवरण अथवा वक्तव्य दिया गया है। एक परमानन्ददास भक्त कवि, श्री हितहरिवंश जी के भी शिष्य थे, जो परमानन्दहित के नाम से

—विलास ग. गुरु-प्रताप- -महिमा। घ. राधाष्टक ङ. रसविवाह- -भोजन च. जमुनामङ्गल छ. जमुना माहात्म्य		प्रसिद्ध थे। लेखक ने दतिया पुस्तकालय से इन ग्रन्थों के उद्धरण मँगाये थे। वहाँ से प्राप्त 'रस-विवाह भोजन', 'जमुनामङ्गल' तथा 'गुरुप्रताप-महिमा' ग्रन्थों के उद्धरणों में "राधावल्लभहित परमानन्द" की छाप देखने को मिलती है। उन उद्धरणों के पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि ये परमानन्ददास राधावल्लभीय हितजी के सम्प्रदाय के हैं। लेखक का विचार है कि उक्त प्रमाण से ये ग्रन्थ अष्टछाप के परमानन्ददास के नहीं हैं।
परमानन्द किशोर-कृत-कृष्ण चौंतीसी	खो० रि० १९१६:८ ई०, नं० ३०६ (ए)।	इस ग्रन्थ के विषय मे खो० रि० मे और कोई सूचना नही दी गई। अष्टछाप के परमानन्ददास के उपलब्ध पदों में 'परमानन्द किशोर' की छाप लेखक के देखने में नही आई। काँकरौली, नाथ-द्वारा, सूरत, कामवन आदि स्थानो पर सुरक्षित अष्ट-छाप के पद-संग्रहो मे भी इस छाप के पद नहीं हैं। कवि के नाम से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ अष्ट-छापी परमानन्ददास-कृत नही है।
परमानन्ददास जी का 'पद'	खो०रि० १९०२ई०, नं० ९२। ग्रन्थ का रचना-काल—सं० १७६३ अथवा सन् १७९३ ई०। सुरक्षा का स्थान—राज : पुस्तकालय जोधपुर स्टेट।	खो० रि० मे इस ग्रन्थ के विषय मे निम्नलिखित वक्तव्य दिया हुआ है— "ग्रन्थ व्रजभाषा मे स्वामी परमानन्ददास जी का बनाया हुआ है। ये कोई भक्त थे। इनका हाल मालूम नहीं हो सका है।" खो० रि० मे इस पद-संग्रह के आदि और अन्त से उद्धरण भी दिये हुए हैं, जिनके कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं।— आदि—अथ परमानन्ददासजी कृत्य लिख्यते। अहो,तुम काहे न बरजौ चंद मंद किरन कुद जारै। स्यामसुन्दर गोविन्द बिन को यहु पीर निवारै, टेक—ससि हर गुर सीतलता संतत सुपदाई, कठिन काल रवित होई, हमकौ दौ लाई। जा जल तो एता करै मधु विमल होई, परमानन्द संतति में, भला न कहै कोई।

रागतोड़ी-गोविद तुम्हारै दीदार बाज् मुई हूये परदा,
नैक नजरि कीन करौ मरदन के मरदा।

अन्त—चरन कमल अनुराग न उपज्यो,
भूत दया नही पाली।
परमानन्द प्रभु संत संगति मिली,
कथा पुनीत न चाली।
इति श्री परमानन्ददास जी कृत पद इकतालीस सम्पूर्ण (४१) श्री रामायनमः

नन्ददास

नन्ददास-कृत दशम स्कन्ध भागवत	खो० रि० १९०१ ई०, नं० ११। खो० रि० १९०६:८, नं० २०० (बी)।	
रास पञ्चाध्यायी अथवा पञ्चाध्यायी	खो०रि० १९०१ ई०, नं० ६९। खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० २०० (ए)। खो०रि०१९१७ ई०-१९ ई०, नं० ११९।	
नाम चिन्तामणि माला	खो०रि०१९०१ ई०, खो०रि०१९०६:८ई०।	
जोग-लीला	खो० रि० १९०६:८ ई०, नं०२००(डी०), सुरक्षा का स्थानः—स्टेट पुस्तकालय विजावर। खो०रि० १९१० ई० नं० ६८। प्रतिलिपि का संवत् १९०४।	खो० रि० मे उसके उद्धरण दिये गये है जो इस प्रकार हैं— आदि—श्री गणेशाय नमः ऐसे मन मित्र मोहि आज्ञा यह दीनी। याही ते मन उकति जोगलीला यह कीनी। शिव सनकादिक सारदा नारद सेष गनेस। देउ बुद्धि बर उदै उर अक्षर उकति विसेप।

स्याम-सगाई	खो०रि० १९०६:८ ई०
नामकेतु पुराण भाषा गद्य	खो० रि० १९०९:११ ई०, नं० २०८ (ए)। खो० रि० १९०२ ई०, नं० २०६। खो० रि० १९०३ ई०, नं० १५४।
मानमञ्जरी	खो० रि० १९०९:११ ई०, नं० २०८ (सी)।
रसमञ्जरी	खो० रि० १९०९:११ ई०
विरहमञ्जरी	× × ×
राजनीति हितोपदेश	खो० रि० १९०५ ई०
रुक्मिणीमङ्गल	खो०रि०१९१२:१४ई०
भँवर गीत	खो० रि० १९२०:२२ ई०, नं० १२६ (सी)
अनेकार्थमञ्जरी	खो०रि० १९०२ ई०, नं० ५८। खो०रि० १९२०:२२ ई०,नं० १२६ (बी)। खो०रि० १९०९:११ ई०,नं० २०८ (डी)। खो०रि० १९०३ ई० नं० १५३।
नाममञ्जरी	× × ×
फूलमञ्जरी	खो०रि० १९३९ ई०
रानी माँगो	खो०रि० १९३९ ई०

आध्यात्म पञ्चाध्यायी	हिं० खो०रि० पंजाव, सन् १९२२:२४ ई०, नं० ७२ (ए), पृ० ४३ ।	रिपोर्ट मे लिखा है कि यह ग्रन्थ कृष्ण की प्रशंसा में लिखा गया है । इसकी कोई तिथि अथवा स्थान नही दिया गया ।
रूपमञ्जरी	हिं० खो०रि०पंजाव । सन् १९२२:२४ ई० नं० ७२ (सी)	

कृष्णदास

कृष्णदास-कृत विहारी सतसई की टीका ।	खो०रि०१९०१ ई०, नं० ५२, प्रतिलिपि-काल सं०१८३७ वि०	खोज-रिपोर्ट के कथन से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी का नही है ।
कृष्णदास-कृत	खो० रि० १९०६ ई०, नं० १४८, प्र० लि० का० सं० १८२६ वि० ।	खो० रि० मे ग्रन्थ से उद्धहरण नही दिये गये, परन्तु रिपोर्टकार ने लिखा है कि यह कृति किसी बहुत साधारण कवि की है । कृष्णदास अधिकारी के पदो मे दानलीला विषयक न तो कोई लम्बा पद ही लेखक के देखने में आया है और न स्वतन्त्र ग्रन्थ रूप मे उसने यह ग्रन्थ देखा है ।
कृष्णदास-कृत श्रीमद्भागवत-माहात्म्य	खो० रि०१९१५ई० नं० ९ । ग्रन्थ - रचना-काल संवत् १८५५ ।	खो० रि० कार का वक्तव्य है—"यह ग्रन्थ पद्मपुराण के भागवत माहात्म्य का छन्दोबद्ध अनुवाद है। सम्भव है कि बिहारी सतसई के टीकाकार कृष्णदास अथवा कृष्ण कवि का यह ग्रन्थ हो ।" खो० रि० मे दिये हुये रचनाकाल के आधार से यह ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी-कृत नही कहा जा सकता ।
	खो०रि०१९०९:११ ई०, नं०१५८ (वी) ग्रन्थ - रचनाकाल १८५५ वि० ।	इस खो० रि० में श्रीमद्भागवत-माहात्म्य के रचयिता कवि कृष्णदास को, ग्रन्थ मे दिये हुये उल्लेख के आवार पर मिरजापुर अथवा गिरिजापुर निवासी, तथा गङ्गा के निकट रहनेवाला कहा गया है। ग्रन्थ-रचना-काल के अनुसार भी यह ग्रन्थ कृष्णदास अविकारी का नही है ।

कृष्णदास-कृत तीज - कथा, महालक्ष्मी-कथा, तथा हरिश्चन्द्र-कथा ।	खो०रि०१९०६:८ई० नं० ६४ ।	खोज रि० मे ये तीनो ग्रन्थ दतिया-निवासी विहारी के शिष्य कृष्णदास कवि के लिखे कहे गये है !
कृष्णदास-कृत सिंहासन वत्तीसी ।	खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० १८४, प्रतिलिपि-काल १८६३ ई० ।	खोज-रिपोर्ट मे इस ग्रन्थ के कर्ता कवि कृष्णदास को उज्जैन का निवासी एक ब्राह्मण लिखा है। यह कवि कृष्णदास अधिकारी से भिन्न है ।
कृष्णदास-कृत भागवत-भाषा द्वादश-स्कन्ध	खो० रि० १९०९:११ ई०, न० १५८ (ए) ग्रन्थ-रचना-काल सं० १८५२ वि० ।	खोज-रिपोर्ट मे दिये हुये उद्धरणो से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ युगलविहारी कृष्ण के उपासक कृष्णदास का लिखा हुआ है जिसका रचनाकाल उक्त रिपोर्ट में संवत् १८५२ वि० वताया है । ग्रन्थ के रचनाकाल के आधार से यह कवि अष्टछाप का कवि नही है ।
कृष्णदास (कृष्ण चन्द्र गोस्वामी) कृत सिद्धान्त के पद ।	खो०रि० १९१२:१४ ई०, नं० ९५ (ए), पृ० १२७ ।	खोज-रिपोर्ट मे लिखा है कि इनके पदो मे श्री हितहरिवंश जी का उल्लेख और राधिकावल्लभ कृष्ण की उपासना का भाव है। इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ राधावल्लभीय सम्प्रदाय के कृष्णदास का है, वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछापी कृष्णदास का नही है ।
कृष्णदास--कृत पदावली अथवा कृष्णदास के पद ।	खो० रि० १९१२:१४ नं० ९५ (बी) । सुरक्षा का स्थान-फौजदार माधव । गोपाल शर्मा, वृन्दा-वन ।	खोज-रिपोर्ट मे इस ग्रन्थ के विषय में कोई वक्तव्य नही दिया हुआ है, ग्रन्थ के उद्धरण अवश्य दिये गये हैं। जो पद खोज-रिपोर्ट में उद्धृत हैं, उनमे कृष्णदास की छाप के साथ 'हित' शब्द लगा हुआ है जैसे, "श्री कृष्णदास हितप्रिया वचन सुनि नागर नगधर नैंकु हँसे ।" कृष्णदास अधिकारी के पदों में उनके नाम की छाप के साथ 'हित' शब्द नही देखा गया । इस ग्रन्थ का लेखक भी 'हित-सम्प्रदायी' कृष्णदास है ।
समयप्रबन्ध	खो० रि० १९१२: १४ ई०, न० ९६ ।	खोज-रिपोर्ट मे इस ग्रन्थ का विषय "राधा-कृष्ण की सात समय की लीलाओ का परिचय" दिया

	प्रतिलिपिकाल सं० १६१५ वि०, सुरक्षा का स्थान—राधा-वल्लभ का मन्दिर, वृन्दावन।	हुआ है। खोज-रिपोर्ट मे दिये हुये उद्धरणो के आरम्भिक छन्दों मे श्री हितहरिवंश जी की वन्दना है। इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थ का रचनेवाला कवि कृष्णदास राधावल्लभीय है।
कृष्णदास के मङ्गल	खो० रि० १६१२: १४ ई०, नं० ६७ (ए)। सुरक्षा का स्थान——गोरेलालजी की कुञ्ज, वृन्दावन।	खो० रि० में इस ग्रन्थ का विषय "स्वामी हरिदास जी का यश-वर्णन" दिया हुआ है। खोज-रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों से ज्ञात होता है कि ये कृष्ण-दास, हरिदासी सम्प्रदाय के स्वामी विहारिनीदास के शिष्य थे।
कृष्णदास--कृत 'माधुर्यलहरी'	खो० रि० १६१२: १४ ई०, नं० ६७ (वी)। ग्रन्थ-रचना-काल—सं० १८५२ वि०।	खो० रि० में इस ग्रन्थ का विषय "राधाकृष्ण की आठ पहर की निकुञ्ज लीला की मानसिक पूजा" का वर्णन दिया हुआ है। ग्रन्थ के रचनाकाल के आधार से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ कृष्णदास अधि-कारी का नही है। खो० रि० के उद्धरणों में आरम्भ में प्रतिलिपिकार ने श्री राधाकृष्ण को और फिर श्री निम्बार्काचार्य को नमस्कार किया है।
कृष्णदास--कृत वृन्दावनाष्टक	खो० रि० १६१२: १४ ई०, नं० ६८।	खोज-रिपोर्ट में ग्रन्थ का विषय "वृन्दावन-माहा-त्म्य" दिया है। उद्धरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये हितहरिवंश-सम्प्रदाय के कृष्णदास हैं।
कृष्णदास--कृत भागवत भाषा	खो० रि० १६२०: २२ ई०, न० ८७, पृ० २८०। प्रति लिपिकाल—सं० १८५५ वि०	खोज-रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ भी पीछे इस तालिका में दिये हुये नं० ३ ग्रन्थ के रचयिता मिर्जापुर-निवासी कृष्ण-दास का है। खोज रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणो की आरम्भिक पंक्तियो में कवि ने हरिदास को गुरु कहकर उनके चरणों की स्तुति की है।

नोट—इस प्रकार उक्त विवरण मे 'दानलीला' ग्रन्थ को छोडकर, खोज-रिपोर्ट मे कृष्णदास के नाम से दिये हुये अन्य सभी ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी के नही कहे जा सकते। 'दानलीला' की प्रामाणिकता का विवेचन आगे होगा।

चतुर्भुजदास

चतुर्भुज दास-कृत 'मधु-मालतीकी कथा'	खो० रि० १६०२ ई०, नं० ४४, प्रतिलिपि काल सं० १८३७, सन् १७८० ई० ।	खो० रि० के अनुसार ये चतुर्भुजदास जाति के निगम कायस्थ, और राजपूताने के रहनेवाले व्यक्ति थे ।
	खो० रि० १६२२:२४ ई०, नं० ४ ।	खोज-रिपोर्टकार ने रिपोर्ट मे इस ग्रन्थ और उसके रचयिता चतुर्भुजदास पर अपनी टिप्पणी दी है, जो इस प्रकार है, "चतुर्भुजदास 'मधु-मालती की कथा' के रचयिता है, रिपोर्ट के अनुसार एक ही नाम के दो चतुर्भुजदास हुये है—एक हित-हरिवंशजी के शिष्य,दूसरे राजपूतानेके निगम कायस्थ (खो० रि० १६०२ ई०) । परन्तु 'विनोद' मे ये तीन ग्रन्थ, 'मधुमालती','भक्ति प्रताप','द्वादशयश'—कुम्भनदास के पुत्र तथा गो० विट्ठलनाथ जी के शिष्य चतुर्भुजदास द्वारा रचित कहे गये है। (पृ० ४७६ 'विनोद') इसमे कुछ गड़बड़ी है, आगे की खोजे कदाचित् इस गड़बड़ी को सुलझावे ।"
	खो० रि० १६२२:२४ ई०, नं० १६,पृ० २३ ।	इस रिपोर्ट मे भी खोज-रिपोर्टकार ने ऊपर कहे आशय का वक्तव्य दिया है ।
चतुर्भुजदास-कृत द्वादश यश ।	खो० रि० १६०६ ई०, नं० २१, प्रतिलिपि-काल, सन् १८४२ ई०, सुरक्षा का स्थान—ला० राधिकाप्रसाद, विजावर ।	खो० रि० मे लिखा है कि ये चतुर्भुजदास ब्रज के रहने वाले थे । इस रि० मे कवि के विषय मे अन्य कोई वृत्तान्त अथवा उद्धरण नही दिये गये ।
	खो० रि० १६०६:८ ई०, नं० १४८ (ए), पृ० ६६, प्रतिलिपि-काल १८४२ ई० ।	खोज-रिपोर्ट के कथनानुसार इस ग्रन्थ में बारह विषयो का वर्णन है जैसे भक्ति, धर्माचार, शिक्षा आदि । खो० रि० मे ग्रन्थ से कोई उद्धरण नही दिये गये । रिपोर्टकार का कहना है, यह कवि प्रसिद्ध श्रीहित-हरिवंश जी के सम्प्रदाय का अनुयायी ज्ञात होता है, क्योकि कवि ने आरम्भ मे हितहरिवंश जी का

		नाम आदरसूचक शब्दों में लिया है। रिपोर्ट मे ग्रन्थ से उद्धरण नही दिये गये।
चतुर्भुजदास-कृत 'भक्ति-प्रताप।'	खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० १४८ (बी), प्रतिलिपिकाल सन् १७३७ ई०, सुरक्षा का स्थान—राजकीय पुस्तकालय, दतिया।	खो० रि० के अनुसार इस ग्रन्थ का विषय 'भक्ति की महिमा' का वर्णन है। इस ग्रन्थ के रचयिता चतुर्भुजदास के विषय मे भी रिपोर्टकार का वही वक्तव्य है जो खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० १४८ (बी) में दिया गया है।
चतुर्भुजदास-कृत श्रीहितजू को मङ्गल।	खो० रि० १९०६:८ ई०, नं० १४८ (सी), सुरक्षा का स्थान—राजकीय पुस्तकालय दतिया स्टेट।	खो० रि० के अनुसार यह ग्रन्थ श्री हितहरिवंश जी की स्तुति मे लिखा गया है। खोज रि० मे ग्रन्थ से कोई उद्धरण नही दिये गये।
चतुर्भुजस्वामी-कृत 'पद'।	खो० रि० १९१२:१४ ई०, न० ४०, पृ० ५८,	खो० रि० मे इस ग्रन्थ का विपय 'रस-सिद्धान्त के पद' दिया हुआ है। रिपोर्ट मे जो उद्धरण दिये गये है उनमे से आरम्भिक पद मे श्री हरिवंश जी की 'जै' कवि ने, गाई है, जैसे— **राग भैरव** जै जै श्री हरिवंश रसिकवर। रस सागर जैति मथि कथि करि प्रकट, कियौ पुहमी पर। साथ मे इसी पद मे राधा के भजन की ओर भी संकेत है। इससे ज्ञात होता है कि इन पदो के रचयिता हितहरिवंश सम्प्रदाय के चतुर्भुजदास हैं। पदो मे चतुर्भुज छाप आई है।
चतुर्भुज मिश्र कृत 'अलङ्कार आभा।	खो० रि० १९१७:१९ ई०, नं० ३९, पृ० १३१, परिशिष्ट २, ग्रन्थ-रचनाकाल सं० १८९६ वि०।	कवि की जाति तथा ग्रन्थ के रचनाकाल से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ 'चतुर्भुज' अष्टछापवाले का नही है।

गोविन्दस्वामी

गोविन्द-कृत 'गोविन्दानन्द-घन'	खो०रि० १६१२:१४ ई०, न० ६५। ग्रन्थ रचनाकाल:—स० १८५८ वि०	खो० रि० मे ग्रन्थ का विषय "रस और नायिका-भेद" दिया हुआ है। रि० मे अन्य कोई वक्तव्य नही है। ग्रन्थ के रचनाकाल से स्पष्ट है कि यह अष्टछाप के गोविन्दस्वामी का नही है।
गोविन्द प्रभु-कृत 'गीत चिन्तामणि'	खोज रि०१६१२:१४ ई०, नं० ६६। सुरक्षा का स्थान—राधाचरण गोस्वामी, वृन्दावन।	खोज के दिये हुये उद्धरणो मे 'गोविन्द प्रभु' छाप आती है। अष्टछाप के गोविन्दस्वामी के पदो मे भी 'गोविन्ददास प्रभु' अथवा 'गोविन्द छाप है। ग्रन्थ की छाप से अष्टछापी कवि का भ्रम होना है, परन्तु खो० रि० मे दिये हुये उद्धरणो से ज्ञात होता है कि कवि चैतन्य महाप्रभु का नाम लेकर ग्रन्थ आरम्भ करता है तथा आरम्भिक पद मे "गौर गोपाल" की प्रशसा करता है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह कवि चैतन्य सम्प्रदायी है। खोज-रिपोर्टकार ने भी इस बात का उल्लेख कर दिया है। इस ग्रन्थ का आरम्भिक पद निम्नलिखित है—श्री कृष्ण चैतन्य चन्द्रायनमः। राग कल्यान :— गौर, गोपाल रस रास मण्डल, रसिक मण्डली मण्डित सुरङ्गो। रचित ताण्डव कला पण्डित सिरोतन, वितनु सत कोटि जित चारु भङ्गी।
गोविन्ददास-कृत 'एकान्त पद'	खोज रि० १६१७:१६ ई०, नं० ६३, पृ० १६२। प्रतिलिपि-काल:—१६२६ ई०	अष्टछाप के कवि गोविन्दस्वामी गोविन्ददास के नाम से भी कहे जाते है। वार्ता मे इस नाम का उल्लेख अनेक स्थानो पर है, तथा गोविन्दस्वामी के किसी किसी पद मे यह छाप भी आई है। इस खोज रिपोर्ट मे जो उद्धरण दिये गये है, उनकी भाषा मे बंगला तथा मैथिली भाषा का बहुत प्रभाव है, जैसे 'समय जानि सखी मिलत आई', बैठल'

		'देयल,' 'सुतल' तथा 'निकटे' आदि शब्दावली से ज्ञात होता है। ये गौडीय सम्प्रदाय के गोविन्ददास कवि हैं, अष्टछाप के गोविन्ददास नही हैं।
गोविन्ददास-कृत 'सीताराम की गीतावली'	खो०रि० १९२०:२२, न० ५३, परिशिष्ट १, पृष्ठ ६६ तथा परिशिष्ट २, नं० ५३, पृ० २३२।	इस ग्रन्थ के वर्णित विषय तथा खोज रिपोर्ट मे दिये हुये उद्धरणो की भाषा के आधार से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थ अष्टछाप के गोविन्ददास का नही है। खोज रिपोर्टकार का कथन है कि यह कवि कदाचित् 'एकान्त पद' का रचयिता गोविन्ददास (खो० रि० सन् १९१७:१५ नं० ६३) है। रिपोर्टकार का इस विषय मे निश्चित मत नही है कि इस ग्रन्थ का रचयिता अमुक कवि है।
गोविन्दकवि-कृत 'करुना भरन'	खो०रि० १९२२:२४, ई०, नं० ३४। ग्रन्थ रचनाकाल सं० १७-९७ वि० 'नगनिधि रिष्टिविधु बरष मे"।	खो०रि० मे दिये हुये रचनाकाल से स्पष्ट है कि यह यन्थ अष्टछाप के गोविन्दस्वामी का नही है।

'इसत्वार दे ला लितेरात्यूर ऐंदुए ऐँदुस्तानी' गार्साद तासी।

तासी ने अपने इस इतिहास ग्रन्थ मे परमानन्ददास, कुम्भनदास, गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी के विषय मे कोई वृत्तान्त नही दिया। उन्होने एक चतुर्भुजमिश्र कवि का उल्लेख करते हुए कहा है कि चतुर्भुजमिश्र[1] ने दोहा-चौपाई छन्द तथा ब्रजभाषा मे दशम स्कन्ध भागवत लिखा है। उन्होने ग्रन्थ का रचनाकाल नही दिया। परन्तु कवि के नाम से स्पष्ट है कि यह चतुर्भुजमिश्र अष्टछाप के गोरवा छत्री चतुर्भुजदास नही है। तासी ने अपने इस ग्रन्थ मे एक कृष्णदास का भी उल्लेख किया है। वे कहते है,—"कृष्णदास वैष्णव सम्प्रदाय के भक्तो के जीवन वृत्तान्त संग्रह भक्तमाल के टीकाकार है। मेरे विचार से ये वही कृष्णदास हैं, जिनका बुन्देलखण्डी भाषा मे लिखा 'भँवरगीत' बताया जाता है। कृष्णदास 'प्रेम-सत्त्व-निरूप' नामक एक धार्मिक ग्रन्थ के भी रचयिता हैं। विल्सन के पास इस ग्रन्थ की देवनागरी

१—इसत्वार दे ला लितेरात्यूर ऐंदुए ऐँदुस्तानी, भाग १, पृ० १४२।

अक्षरो मे लिखी एक प्रतिलिपि है।" 'इस कथन से यह ज्ञात होता है कि यह वृत्तान्त अष्टछाप के कृष्णदास अधिकारी से सम्बन्ध नही रखता है। तासी महोदय ने वस्तुतः अष्टछाप के दो ही कवि सूरदास और नन्ददास का अल्प वृत्तान्त दिया है जो नीचे दिया जाता है—

"सूरदास ईसा की १६ वी शताब्दी के अन्त और १७ वी शताब्दी के आरम्भ मे हुये। ये अन्धे थे। इनके पिता का नाम रामदास था जो एक गवैया था। इन्होंने बहुत से विष्णु-पद लिखे। इनकी एक कृति 'सूरसागर' है जिसकी एक प्रति रागरागिनियो के क्रमानुसार लिखी हुई है। मि० वार्ड के कथनानुसार इनका एक ग्रन्थ 'सूरदास-कवित्व' है। इनका लिखा हुआ एक ग्रन्थ 'नलदमन भाषा' भी है जिसकी एक प्रति हमारे (तासी के) संग्रह मे है। कदाचित् यह वही कृति है जिसका अब्दुलफैजी ने फारसी मे अनुवाद किया था, क्योंकि आइने अकबरी भाग १, पृ० ११४ पर इस बात की सूचना है।[२]

तासी महोदय के उक्त कथन का मुख्य आधार आइनेअकबरी है जिसमे दिये हुये सूरदास विषयक वृत्तान्त को लेखक ने अष्टछापी सूर के वृत्तान्त के रूप मे अप्रामाणिक माना है। तासी ने सूर-कृत जिन दो ग्रन्थो—'सूरसागर' तथा 'नलदमन भाषा'—की सूचना दी है, उनकी प्रामाणिकता पर आगे विचार किया जायगा।

अपने इस इतिहास-ग्रन्थ मे तासी ने नन्ददास के ग्रन्थो की सूची तो दी है, परन्तु कवि के जीवन-वृत्तान्त का कुछ भी उल्लेख नही किया है। तासी के इस ग्रन्थ मे नन्ददास के निम्नलिखित १४ ग्रन्थों का हवाला दिया गया है।[३]

१. रास पञ्चाध्यायी। २. नाममञ्जरी अथवा नाममाला। ३. अनेकार्थ मञ्जरी। ४. रुक्मिणी मङ्गल। ५ भँवर गीत। ६ सुदामा-चरित। ७. विरह मञ्जरी। ८ प्रबोध चन्द्रोदय नाटक। ९ गोवर्द्धन-लीला। १०. दशम स्कन्ध। ११. रासमञ्जरी। १२ रस मञ्जरी। १३. रूप मञ्जरी। १४. मान मञ्जरी।

पहले तीन ग्रन्थ तासी ने स्वयं देखे थे। बाकी ११ के विषय मे वे कहते हैं कि उन्हे अपने मित्र डा० स्प्रेजर द्वारा ज्ञात हुआ है कि एक ५७६ पन्नो का ग्रन्थ उनके मित्र स्प्रेजर साहब के पास है जिसमे नन्ददास की रचनाएँ दी हुई है। इसी के आधार पर उन्होंने ११

१—इसत्वार दे ला लितेरात्यूर ऍंदुए ऍंदुस्तानी, भाग १, पृ० ३०२।
२—इस्तवार देला लितेरात्यूर ऍंदुए ऍंदुस्तानी, भाग १, पृ० ४८६।
३—'इसत्वार दे ला लितेरात्यूर ऍंदुए ऍंदुस्तानी', भाग २, पृ० ४४५:४७।

ग्रन्थो के और नाम दिये है संख्या ४ और ५ के ग्रन्थ तासी ने छपे हुये देखे थे। इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर आगे विचार किया जायगा।

शिवसिंह सरोज

शिवसिंह सरोज मे सूरदास का यह वृत्तान्त दिया हुआ है,—"सूरदास ब्राह्मण ब्रज-वासी, बाबा रामदास के पुत्र, वल्लभाचार्य के शिष्य सं० १६४० मे उदय। इन महाराज के जीवन-चरित्र से सब छोटे-बडे आगाह हैं, भक्तमाल इत्यादि मे इनकी कथा विस्तारपूर्वक है। इनका बनाया सूरसागर ग्रन्थ विख्यात है। हमने इनके पद ६० हजार तक देखे हैं। समग्र ग्रन्थ कहीं नही देखा। इनकी गिनती अष्टछाप अर्थात् ब्रज के आठ महाकवीश्वरो मे है।"[1]

सरोजकार के इस कथन से,—"इन महाराज के जीवन-चरित्र से सब छोटे बडे आगाह हैं, भक्तमाल मे इनकी कथा विस्तारपूर्वक है"—ज्ञात होता है कि उनका लक्ष्य सूर के उसी परम्परागत मौखिक वृत्तान्त से है जो भक्तमाल की विभिन्न टीकाओ की कल्पना और सब सूरदासो की कहानियो के आधार पर एक मिश्रित रूप मे प्रचलित है। सरोजकार ने अपने कथन की पुष्टि मे कोई प्रमाण नही दिया। सूर के जिन ६० हजार पदो की सूचना उन्होने दी है उनको सुरक्षा के स्थान का पता भी उन्होने नही बताया।

शिवसिंह सेगर ने कृष्णदास की रचनाओ के विषय मे यह वृत्तान्त दिया है—"इनके बहुत पद रागसागरोद्भव में लिखे हैं और इनकी कविता अत्यन्त ललित और मधुर है। कृष्णदास का बनाया हुआ 'प्रेम-रस-रास' ग्रन्थ बहुत सुन्दर है।" सरोजकार ने इनके 'प्रेम-रस-रास' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है और उस ग्रन्थ को बहुत सुन्दर लिखा है। इसमे दो बाते सम्भव हो सकती है। या तो सरोजकार ने कृष्णदास के उक्त ग्रन्थ को देखा और पढा है और उसकी कविता को जाँचकर उसे सुन्दर कहा है अथवा प्रियादास के कथन के आधार मे ही उन्होने कृष्णदास के 'प्रेम-रस-रास-ग्रन्थ' की कल्पना कर ली है। कांकरोली-विद्या-विभाग, नाथद्वार तथा सूरत में, जहाँ अष्टछाप-कवियो के काव्य के विशेष सग्रह है, कोई ऐसा ग्रन्थ लेखक के देखने मे नही आया। हाँ, कृष्णदास के कीर्तन-संग्रह वहाँ बहुत हैं जिनका विवरण आगे दिया जायगा। 'प्रेम-रस-रास-ग्रन्थ पर भी आगे और विचार किया जायगा।

सरोजकार ने नन्ददास का कोई विशेष वृत्तान्त नही लिखा। उन्होने केवल इतना लिखा है—"नन्ददास ब्राह्मण रामपुर-निवासी, विट्ठलनाथ जी के शिष्य स० १५८५ मे उदय। इनकी गणना अष्टछाप मे की गई है। इनकी बाबत यह मसल मशहूर है कि और

1—शिवसिंह सरोज, पृ० ५०२।

सब गढ़िया नन्ददास जड़िया[1]। इस अल्प वृत्तान्त के साथ उन्होंने नन्ददास के ग्रन्थों की नीचे लिखी सूची दी है—

१. अनेकार्थ। २ नाममाला। ३. पञ्चाध्यायी। ४. रुक्मिणीमङ्गल। ५. दशम स्कन्ध। ६. दानलीला। ७. मानलीला। सरोजकार ने यह भी लिखा है कि नन्ददास ने इन ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी हज़ारों पद बनाये। सरोजकार ने परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी का कोई उल्लेखनीय वृत्तान्त नहीं दिया। इनके ग्रन्थों के विषय में केवल यह सूचना दी है कि इनके पद रागसागरोद्भव में मिलते हैं। 'सरोज' का आधार लेकर सर जार्ज ग्रियर्सन ने सं० १९४६ में 'मार्डर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर आफ हिन्दुस्तान' नाम का ग्रन्थ लिखा। इसमें शिवसिंह सरोज का ही अनुकरण किया गया है और केवल उन्हीं सात ग्रन्थों के नाम ग्रियर्सन महोदय ने दिये हैं, जिनका उल्लेख शिवसिंह सरोज ने किया है।

भारतेन्दु-रचित 'भक्तमाल'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी नाभा जी के भक्तमाल और 'वैष्णवन की वार्ता के आधार पर भक्तमाल' की रचना की है। उसमें दिये हुये ८०वें छन्द[2] से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने नन्ददास के वृत्तान्त में 'दो सौ बावन वार्ता' और नाभा जी के 'भक्तमाल' का ही आश्रय लिया है। वे लिखते हैं,—"नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई थे। उन्होंने भाषा में भागवत तथा रास पञ्चाध्यायी की रचना की और रास-रस में सदैव अनुरक्त रहते थे। ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी भी इस बात को मानते थे कि नन्ददास जी तुलसीदास जी के छोटे भाई थे।

मिश्रबन्धु-विनोद तथा हिन्दी-नवरत्न

मिश्रबन्धुओं ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण लिखा है। उन्होंने बिल्वमङ्गल सूरदास के एक स्त्री पर मोहित होकर आँख फोड़ लेने की घटना को अष्टछाप के सूरदास के जीवन-

---

१—शिवसिंह सरोज, पृ० ४४२।

२—तुलसीदास के अनुज सदा विट्ठल पदचारी।
अन्तरङ्ग हरि सखा, नित्य जेहि प्रिय गिरधारी।
भाषा में भागवत रची अति सरस सुहाई।
गुरु आगे द्विज कथन सुनत जल माहि डुबाई।
पञ्चाध्यायी हठ करि रखी तब गुरुवर द्विज भय हरत।
श्री नन्ददास रस रास रत प्रान तज्यो सुधि सो करत।
भारतेंदु रचित भक्तमाल।

वृत्त मे मिला दिया है। इस वृत्तान्त मे मिश्रबन्धुओं ने सूर का जन्म काल सं० १५४० और मरण-काल सं० १६२० माना है। 'साहित्यलहरी' और 'सूरसारावली' दोनों को एक ही साल की रचना मानकर तथा १६०७ मे से ६७ वर्ष घटाकर उन्होने सूर का जन्म सम्वत् १५४० निकाला है जिसका 'हिन्दी-नवरत्न' के बाद लिखे जानेवाले सभी इतिहास-ग्रन्थ, कविता-संग्रह और सूर की स्वतन्त्र जीवनी लिखनेवालों ने अनुकरण किया है। 'विनोद' मे सूरदास-कृत निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे हैं[1]—

१—सूरसागर, २—सूरसारावली, ३—साहित्यलहरी, ४—व्याहलो, ५—नल-दमयन्ती। इनके अतिरिक्त खोज-रिपोर्ट के आधार से उन्होने—६—प्रानप्यारी। ७—पद-सग्रह ८—दशम स्कन्ध टीका, ९—नागलीला, १०—तथा सूर-पचीसी नामक सूर के और ग्रन्थ दिये हैं। 'कैटालागस कैटालागोरम' मे दिये हुये सूरदास-कृत ११—हरिवंश-टीका नामक ग्रन्थ का भी मिश्रबन्धुओ ने उल्लेख किया है। सूर के दो ग्रन्थो की और सूचना देते हुये मिश्रबन्धु कहते है,—"नल-दमयन्ती" और 'व्याहलो' ये दो ग्रन्थ सूर ने और भी लिखे हैं, पर हमारे देखने मे नही आये"[2]।

परमानन्ददास के ग्रन्थों के विषय मे उन्होने लिखा है,—"आपका रचा हुआ एक ग्रन्थ परमानन्द-सागर सुनने मे आया है और स्फुट छन्द बहुत से यत्र-तत्र पाये जाते हैं।"[3] इस कथन के साथ विनोद मे खोज-रिपोर्ट के आधार से इनके दो ग्रन्थ 'दानलीला' और 'ध्रुवचरित्र' का भी उल्लेख किया गया है। इस वर्णन से ज्ञात होता है कि मिश्रबन्धुओं को भी परमानन्ददास जी के कुछ स्फुट पदो को छोडकर 'परमानन्द-सागर' अथवा अन्य कोई ग्रन्थ देखने को नही मिला। कुम्भनदास की रचनाओ के विषय मे लिखते हैं—"आपका कोई ग्रन्थ देखने मे नही आया, परन्तु प्राय: ४० पद हमारे पास हैं।"[4] लेखक ने मिश्रबन्धुओ से ये पद देखने को माँगे थे, परन्तु खोज करने पर ज्ञात हुआ कि उनके संग्रहालय मे अब ये पद नहीं हैं।

कृष्णदास अधिकारी के विषय मे उन्होने लिखा है,—"आपके कोई ग्रन्थ हमने नही देखे, परन्तु १०४ पद हमारे पास वर्तमान है।"

'मिश्रबन्धु-विनोद' मे कृष्णदास द्वारा लिखे हुये निम्नलिखित आठ ग्रन्थो की

१—'मिश्रबन्धु-विनोद' सं० १९८३ संस्करण, पृ० २३८, और सं० १९९४ संस्करण, पृ० २१७।

२—'हिन्दी-नवरत्न' पृ० १६९।

३—'मिश्रबन्धु-विनोद' प्रथम भाग, सं० १९९४ संस्करण, पृ० २२४।

४—'मिश्रबन्धु-विनोद' प्रथम भाग सं० १९९४ संस्करण, पृ० २२५।

सूचना है[1]—१—जुगल मान-चरित, २—भक्तमाल पर टीका, ३—भ्रमरगीत, ४—प्रेम-सत्त्व-निरूप, ५—भागवत का अनुवाद, ६—वैष्णव-वन्दन, ७—कृष्णदास की बानी, ८—प्रेम-रस-रास अथवा प्रेम-रस-राशि, इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर आगे विचार किया जायगा।

'मिश्रबन्धु-विनोद' में मिश्रबन्धुओं ने नन्ददास को किसी तुलसीदास का भाई अवश्य माना है, परन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि रामचरितमानसकार तुलसीदास ही उनके भाई थे अथवा कोई अन्य व्यक्ति, उन्होंने वेकटेश्वर प्रेस से छपी २५२ वार्ता के अनुसार ही नन्ददास का सक्षेप में जीवन-वृत्त दिया है और उनके निम्नलिखित १८ ग्रन्थो का उल्लेख किया है—

१—अनेकार्थ-नाममाला, २—रास पञ्चाध्यायी, ३—रुक्मिणी-मङ्गल, ४—हितोपदेश, ५—दशम स्कन्ध, ६—दानलीला, ७—मानलीला, ८—नाम-मञ्जरी, ९—अनेकार्थ-मञ्जरी, १०—रूपमञ्जरी, ११—नाममञ्जरी, १२—नाम-चिन्तामणि-माला, १३—रसमञ्जरी १४—नाममाला, १५—विरहमञ्जरी, १६—नासकेतु-पुराण-भाषा, १७—श्याम-सगाई और १८—विज्ञानार्थ प्रकाशिका। इनमें से अन्तिम ग्रन्थ के विषय में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है'—यह ग्रन्थ उन्होंने छतरपुर में देखा है।''

उपर्युक्त ग्रन्थों में दो ग्रन्थ ऐसे भी है जिनका भिन्न-भिन्न नामों से उल्लेख हुआ है। वस्तुत: 'नाममाला', 'नाममञ्जरी' और 'नामचिन्तामणि-माला' ये तीनो ग्रन्थ एक ही हैं तथा 'अनेकार्थमाला' और 'अनेकार्थमञ्जरी' ये दोनो एक हैं।

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारो में चतुर्भुजदास का सबसे अधिक वृत्तान्त मिश्रबन्धुओं ने ही दिया है। 'मिश्रबन्धु-विनोद'[2] के कथनानुसार अष्टछाप के चतुर्भुजदास के नीचे लिखे ग्रन्थ हैं—

१. मधुमालती-कथा। २. भक्ति-प्रताप। ३. पद तथा सवैया के पद ४ द्वादश यश। ५. हितूज को मङ्गल। इनमें से 'द्वादश यश' नामक ग्रन्थ को मिश्रबन्धुओं ने सन्दिग्ध ठहराया है। इन ग्रन्थो की प्रामाणिकता का भी आगे विवेचन किया जायगा। मिश्रबन्धुओं ने गोविन्दस्वामी[3] तथा छीतस्वामी की जीवनी तथा ग्रन्थो के विषय में कोई उल्लेखनीय सूचना नही दी।

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पं० रामचन्द्र शुक्ल।

स्वर्गीय आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास,

---

१—'मिश्रबन्धु-विनोद' प्रथम भाग, सं० १९९४ संस्करण, पृ० २२३।

२—'मिश्रबन्धु-विनोद' प्रथम भाग, सं० १९९४ संस्करण, भाग १, पृ० २२६।

३—'मिश्रबन्धु-विनोद', सं० १९९४ संस्करण, भाग १, पृ० २३०।

४—'मिश्रबन्धु विनोद', सं० १९९४ संस्करण, भाग १, पृ० २२७।

सं० १६६० के संस्करण मे[1] सूर के परिचय के साथ चौरासी वार्ता की टीका का उल्लेख किया था और उन्होंने उसके आधार से लिखा था,—"चौरासी वैष्णवन की टीका के अनुसार इनके जन्मभूमि रुनकता (रेणुका क्षेत्र) गाँव है जो मथुरा से आगरे जानेवाली सड़क पर है। उक्त वार्ता के अनुसार ये सारस्वत ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम रामदास था।" आगे शुक्ल जी लिखते हैं,—'भक्तमाल' मे भी ये ब्राह्मण कहे गये है और आठ वर्ष की अवस्था मे इनका यज्ञोपवीत होना लिखा है।"

शुक्ल जी ने ८४ वार्ता की टीका देखी थी, इसमे सन्देह है। एक बार लेखक ने उनसे टीका के बारे मे पूछा भी था। उन्होने उत्तर दिया कि बाबू राधाकृष्णदास ने उक्त टीका का उल्लेख किया है। हरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता की टीका मे सूर का जन्म-स्थान न तो रुनकता दिया हुआ है और न उनके पिता का नाम रामदास दिया गया है। उधर 'भक्तमाल' मे नाभादास ने भी कही नही लिखा कि सूरदास ब्राह्मण थे और आठ वर्ष की अवस्था मे इनका यज्ञोपवीत हुआ था। 'भक्तमाल' के प्रमुख टीकाकार प्रियादास जी ने सूरदास का कोई वृत्तान्त नही दिया। 'भक्तमाल' के बाद की कुछ टीकाओ मे तो, नाभादास जी द्वारा स्पष्ट रूप से अलग-अलग दिये हुये कई सूरदासो के वृत्तान्तो को एक मे मिला दिया गया है। इसीलिए लेखक ने इन टीकाओं को प्रमाण-कोटि मे नही लिया। स १६६७ वाले इतिहास[2] के सस्करण मे प० रामचन्द्र शुक्ल जी ने ८४ वार्ता की टीका तथा सूर के सारस्वत ब्राह्मण होने के उल्लेख निकाल दिये है। इस सस्करण मे उन्होने वेंकटेश्वर प्रेस से छपी ८४ वार्ता के आधार से ही सूर का सक्षेप मे परिचय दिया है। इन्होंने भी सूर का जन्म सवत् १५४०, वल्लभसम्प्रदाय मे प्रवेश स० १५८० तथा निधनकाल सं० १६२० माना है। इन तिथियो के समर्थन मे आचार्य शुक्ल ने वे ही प्रमाण दिये है जो 'मिश्रबन्धु विनोद' मे दिये हुये है। उन्होंने अपने इतिहास ग्रन्थ[3] और 'भँवरगीतसार' की भूमिका मे सूरदास के ग्रन्थो की कोई सूची नही दी है। उन्होने सूर के ग्रन्थो की प्रामाणिकता पर भी विचार नही किया है। सूर की जीवनी का अल्प विवरण देते हुये उन्होने सूरसागर, साहित्यलहरी तथा सूरसारावली इन तीन ग्रन्थो के हवाले और उद्धरण दिये है। सूर के काव्य की महत्ता पर तुलसी और सूर दोनो की तुलना करते हुई उन्होने अपने महत्वपूर्ण विचार दिये है।

आचार्य शुक्ल जी ने चार-छ. पक्तियो मे परमानन्ददास जी का लगभग वही परिचय दिया है जो 'मिश्रबन्धु-विनोद' मे दिया हुआ है। इसके बाद उन्होने खोज रिपोर्ट का हवाला देते

१—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं०रामचन्द्र शुक्ल, स०१६६० संस्करण,पृ०१५५।

२—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १६६७ सस्करण, पृ० १६३।

३—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल, सवत् १६६७ संस्करण, पृ० १६४।

हुये इनके पीछे कहे हुये 'पदों का सग्रह' 'ध्रुवचरित्र' और 'दानलीला', इन तीन ग्रथों का उल्लेख किया है।[१] इस कथन से भी यही ज्ञात होता है कि स्वर्गीय प० रामचन्द्र शुक्ल जी को भी परमानन्ददास जी का कोई पद-सग्रह अथवा ग्रन्थ देखने को नहीं मिला था। उन्होंने कृष्णदास का वृत्तात वेकटेश्वर प्रेस से छपी ८४ वार्ता के आधार मे ही बहुत सक्षेप मे दिया है। उनके ग्रन्थो के विषय मे उन्होने लिखा है, "इन्होंने भी और सब कृष्ण-भक्तों के समान राधाकृष्ण के प्रेम को लेकर शृङ्गार रस के ही पद गाये है। 'जुगल-मान-चरित्र' नामक एक छोटा-सा ग्रन्थ इनका मिलता है। इनके अतिरिक्त इनके बनाये दो ग्रन्थ और कहे जाते है—'भ्रमरगीत' और 'प्रेम-तत्व-निरूपण'। फुटकल पदो के सग्रह इधर-उधर मिलते है। सूरदास और नन्ददास के सामने इनकी कविता साधारण कोटि की है।"[२] शुक्ल जी के उक्त विवरण मे मिश्रबन्धु-विनोद से अधिक कोई नई सूचना नही है। 'जुगल-मानचरित्र' ग्रन्थ के बारे मे शुक्ल जी कहते है—"यह ग्रन्थ मिलता है।" परन्तु उन्होने यह कही नहीं लिखा कि उन्होंने यह ग्रन्थ देखा था अथवा नही। शुक्ल जी द्वारा दिया हुआ वृत्तान्त कृष्णदास के ग्रन्थो का कोई निश्चयात्मक परिचय नहीं देता।

अपने उक्त इतिहास मे प० रामचन्द्र शुक्ल जी ने नन्ददास के १६ ग्रन्थों के नाम दिये है।[३] उनकी इस सूची का आधार नागरीप्रचारिणी सभा की 'खोज-रिपोर्ट' और 'मिश्रबन्धु-विनोद' जान पडते है। उन्होंने भी नन्ददास का वर्णन बहुत थोडा दिया है। १६ ग्रन्थो के नाम गिनाने के बाद शुक्ल जी का कहना है—"दो ग्रन्थ इनके लिखे और कहे जाते है—'हितोपदेश' और 'नासिकेतपुराण' (गद्य), पर ये सब ग्रन्थ मिलते नहीं है। जहाँ तक ज्ञात हुआ है, इनकी चार पुस्तके ही छपी है।" इस सूची मे भी एक ही ग्रन्थ कई नामो से अलग-अलग शुक्ल जी ने दे दिया है। इतिहास के नये सस्करण मे शुक्ल जी ने एक ग्रन्थ का और नाम दिया है, वह है 'सिद्धात-पञ्चाध्यायी'। इनके जीवन-वृत्तान्त के बारे मे उन्होंने लिखा है कि "इनका जीवन-वृत्त पूरा-पूरा और ठीक नही मिलता।" इस कथन के बाद उन्होने नाभादास के छप्पय और छपी हुई २५२ वार्ता के आधार पर सक्षेप मे विवरण दिया है, परन्तु इस विवरण को वे प्रामाणिक नही मानते।

चतुर्भुजदास[४] का शुक्ल जी ने बहुत अल्प वृत्तान्त दिया है। इनके ग्रन्थो के विषय

१—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल, स० १९९७ संस्करण, पृ० ११५।

२—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७, पृ० २१४।

३—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१२।

४—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१६।

मे वे 'मिश्रबन्धु-विनोद' का अनुकरण करते हुये लिखते है,—"ये भी अप्टछाप के कवियो मे है। भाषा इनकी चलती और सुव्यवस्थित है। इनके बनाये तीन ग्रन्थ मिले है—'द्वादश यश,' 'भक्ति-प्रताप' और 'हितजू को मङ्गल'। इनके अतिरिक्त फुटकल पदो के सग्रह भी इधर-उधर पाये जाते है।" शुक्ल जी का यह वर्णन बहुत गोल-मोल है। कवि के तीन ग्रन्थो को, जिनके नाम शुक्ल जी ने दिये है, उन्होने देखा था अथवा नही, इस बात को उन्होने स्पष्ट नही किया। फुटकल पदो के विपय मे भी उन्होने उनके मिलने का कोई निश्चित सूत्र नही बताया। उन्होने कुम्भनदास[1], गोविन्दस्वामी[2] तथा छीतस्वामी[3] के विपय मे बहुत अल्प वृत्तान्त दिया है और कोई उल्लेखनीय बात नही लिखी। जान पडता है कि शुक्ल जी ने मिश्रबन्धु-विनोद के आधार पर अप्टछाप की जीवनी और उनके ग्रन्थो का विवरण अपने इतिहास मे दिया है।

हिन्दी भाषा और साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास

आचार्य डा० श्यामसुन्दरदास जी ने अपने उक्त हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सूरदास के 'सूरसागर' तथा उनके 'दृष्टकूट-पद' इन दो ग्रन्थो का उल्लेख किया है।[4] उन्होने सूर के काव्य का विवेचन सक्षेप मे ही दिया है। उन्होने नन्ददास के ग्रन्थो का तो विवरण नही दिया, परन्तु उनके काव्य की प्रशसा अवश्य की है।[5]

आचार्य श्यामसुन्दरदास जी ने अपने इतिहास-ग्रन्थ मे हिन्दी साहित्य के भिन्न-भिन्न कालो की विचार-धारा और उस समय के आन्दोलनो का अधिक विस्तार से विवरण दिया है, कदाचित् सभी कवियो का विस्तारपूर्वक विवरण देना उनके इतिहास का ध्येय नही है, इसी से अप्टछाप के सूर और नन्ददास को छोड़ कर अन्य छः कवियो के विपय मे वे मौन रहे है।[6] इस इतिहास ग्रन्थ मे भी अप्टछाप के विषय की कोई मौलिक अथवा खोज की सामग्री नही है।

१—'हिन्दी साहित्य का इतिहास', पं० रामचन्द्र शुक्ल' सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१६।

२—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,' पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१७।

३—'हिन्दी साहित्य का इतिहास,'पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१७।

४—'हिन्दी भाषा और साहित्य,' सं० १९९४ संस्करण, डा० श्यामसुन्दरदास। पृ० ३२३, ३२६, तथा ३२७।

५—'हिन्दी भाषा और साहित्य', सं० १९९४ संस्करण, डा० श्यामसुन्दरदास,पृ०३२७।

६—'हिन्दी भाषा और साहित्य', सं० १९९४ संस्करण,डा० श्यामसुन्दरदास, पृ०३२७।

'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'—डा० रामकुमार वर्मा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखको मे, डा० रामकुमार वर्मा जी ने अपने इतिहास ग्रन्थ मे अष्टछाप के कवियो का, विशेष रूप से सूरदास और नंददास का सबसे अधिक वृत्तान्त दिया है।

उन्होंने सूरदास-कृत निम्नलिखित ग्रन्थ[1] दिये है। १—गोवर्धन-लीला वडी, २—दशम स्कन्ध टीका, ३—नाग-लीला, ४—पद-सग्रह, ५—प्राणप्यारी, ६—व्याहलो, ७—भागवत, ८—सूर-पचीसी, ९—सूरदास जी का पद, १०—सूरसागर, ११—सूरसागर-सार, १२—एकादशी-माहात्म्य, १३—राम-जन्म १४—सूरसारावली, १५—साहित्यलहरी, १६—नल-दमयन्ती। इन ग्रन्थों को डाक्टर वर्मा ने नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों के आधार से ही दिया है. उन्होंने सूर के ग्रन्थो की प्रामाणिकता की परीक्षा नही की।

डा० वर्मा ने कृष्णदास का तथा उनके काव्य का वृत्तान्त केवल दस-ग्यारह पंक्तियो ही मे दिया है[2]। और इनके केवल तीन ग्रन्थ वताये है—'भ्रमर-गीत', 'प्रेम-तत्व-निरूपण और 'जुगल-मान-चरित्र। 'जुगल-मान-चरित्र' के वारे मे उन्होने भी लिखा है कि यह रचना भक्तो मे अधिक मान्य है। उन्होंने भी यह नही वताया कि यह ग्रन्थ कहाँ पर प्राप्य है और उन्होंने स्वयं इसको देखा है अथवा नही। उन्होने अष्टछाप के कृष्णदास अधिकारी और नाभादास जी के गुरु रामोपासक स्वामी अग्रदास के गुरु कृष्णदास पयहारी 'दोनों को' एक ही व्यक्ति मान लिया है, वास्तव में उनकी इस भूल का आधार नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट १९०९ : ११ ई० तथा १९०६ : ८ ई० हैं। अग्रदास जी के वृत्तान्त के अन्तर्गत अपने इतिहास के पृ० ५४० पर वे लिखते हैं—'यद्यपि अग्रदास अष्टछाप के भी कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे, तथापि इनकी प्रवृत्ति रामोपासना की ओर अधिक थी।' अष्टछाप के कृष्णदास वल्लभसम्प्रदाय मे अधिकारी के नाम से ही कहे गये है, 'पयहारी' नाम से नही पुकारे गये, वस्तुत: कृष्णदास पयहारी कृष्णदास अधिकारी से भिन्न व्यक्ति है।

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने इतिहास मे नन्ददास के सम्वन्ध मे विस्तृत विवरण दिया है[3]। उन्होने नन्ददास के जीवन, उनके गन्थ, काव्य-शैली और काव्य-गुणो पर विस्तार से और गम्भीरता के साथ लिखा है। इस विवरण मे जीवन-चरित्र पर कोई नया प्रकाश डाल कर अपना मत स्थिर नही किया गया। नन्ददास के जिन ग्रन्थो का व्योरा उन्होने

१—'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६१७:६२१।
२—'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' डा० रामकुमार, वर्मा पृ० ६७५।
३—'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६४५।
लेखक ने सूरदास आदि अष्टछाप के ग्रन्थो की प्रामाणिकता पर प्रस्तुत ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में विचार किया है।

दिया है, उसका आधार नागरी-प्रचारिणी-सभा की सन् १६२२ तक की खोज-रिपोर्ट ही है। इसलिए उनके दिये हुये ग्रन्थो की सूची वही है जो उक्त सभा की सन् १६२२ तक की खोज की सूची है। उन्होने चतुर्भुजदास जी के ग्रन्थो का उल्लेख करते हुये मिश्रबन्धु और प० रामचन्द्र शुक्ल का ही अनुकरण किया है, उनके ग्रन्थो की प्रामाणिकता पर विचार नही किया। वे लिखते है,—"इनके तीन ग्रन्थ प्राप्त हुये है—१. द्वादश यश। २. भक्ति प्रताप और ३ हित जू को मङ्गल। इनके पदो के अनेक संग्रह हैं जिनमे भक्ति और प्रेम के सुथरे चित्र मिलते है।" डा० रामकुमार वर्मा ने उक्त तीन ग्रन्थों के मिलने के सूत्रो का कोई उल्लेख नही किया, न यह बताया है कि ये ग्रन्थ और संग्रह उन्होने स्वयं देखे हैं, अथवा नही। गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी का उन्होने केवल नामोल्लेख ही किया है, इनका कोई उल्लेखनीय विवरण नही दिया।

'सूरदास'—डा० जनार्दन मिश्र

डा० जनार्दन मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'सूरदास' मे सूर की रचनाओ के विषय मे कहा है,—"कहा जाता है कि सूरदास ने तीनग्रन्थ लिखे—१ सूरसागर। २. सूरसारावली। ३ साहित्यलहरी।"[1] स्वर्गीय ला० सीताराम के 'सिलेक्शन फ्राम हिन्दी लिटरेचर' नामक ग्रन्थ मे दिये हुये नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट के उल्लेख के आधार से, उन्होंने एक ग्रन्थ 'सूरसागर-सार' की और सूचना दी है[2] परन्तु पुस्तक अप्राप्य होने के कारण इस पर उन्होंने अपना कोई मत प्रकट नही किया। 'नल-दमयन्ती' और व्याहलो नामक सूर की कही जानेवाली दो और रचनाओ के विषय मे उन्होने कहा है—"इनका सूर-कृत होना सन्देहात्मक है।" सूर के ग्रन्थो की प्रामाणिकता तथा नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्टों मे सूर के नाम से दी हुई रचनाओ का उल्लेख तथा डा० जनार्दन मिश्र से पहले सूर के ग्रन्थो की सूचना देनेवाले लेखादि का डा० मिश्र ने अपने थीसिस मे कोई उल्लेख नही किया। उन्होने सूरसागर के 'सूरज', 'सूरजदास', तथा 'सूरस्याम' छाप के साथ आनेवाले पदो को प्रक्षिप्त कहा है परन्तु इसका उन्होने कोई प्रतीति-जनक प्रमाण नही दिया। लेखक ने इन नामो की छापो को भी अष्टछाप के सूरदास की छाप माना है, क्योकि उक्त छाप के पद वल्लभ-सम्प्रदायी प्राचीन सग्रहालयो मे भी उपलब्ध होते हैं और उन पदो मे सूर के साम्प्रदायिक विचारो की छाप है। डा० मिश्र ने सूर के जीवन-वृत्तान्त मे 'मिश्रबन्धु-विनोद' के कथनो के अतिरिक्त कोई नवीन सामग्री नही दी है।[3] डा० मिश्र के मत की आलोचना, सूर की जीवनी के भाग मे लेखक ने आगे की है।

१—'सूरदास', डा० जनार्दन मिश्र पृ० ३७।

२—'सिलेक्शन फ्राम हिन्दी लिटरेचर', भाग २, कलकत्ता, १६२६ ई०, पृ० १०।

३—'सूरदास', लेखक डा० जनार्दन मिश्र, पृष्ठ ३२, ३३।

'सूर-साहित्य की भूमिका'—श्रीरामरत्न भटनागर तथा श्री वाचस्पति पाठक

"सूर, साहित्य की भूमिका" सूरदास के ऊपर लिखा हुआ एक आलोचनात्मक ग्रन्थ है। इसमे विद्वान् लेखको ने अब तक प्रचलित वैंकटेश्वर प्रेस मे छपी ८४ वार्ता का ही प्रयोग किया है। वार्ता की किसी प्राचीन प्रति अथवा भावप्रकाशवाली वार्ता को उन्होने नही देखा। उन्होने भी सूर का जन्म स० १५४० तथा भूमि व्रज-प्रदेश मानी है। उनकी सम्मति मे सूर वृद्धावस्था मे नेत्रहीन हुये थे। इन विद्वानो ने अपने इस ग्रन्थ मे लिखा है,—"चौरासी वार्ता की टीका मे उनका जन्मस्थान रुनकता ग्राम बताया है, जिसकी स्थिति आगरे और मथुरा के बीच मे है।"[1] न तो हरिराय जी-कृत चौरासी वार्ता मे सूर का जन्म-स्थान रुनकता लिखा है और न बिना भावप्रकाशवाली ८४ वैष्णवन की वार्ता मे सूर का जन्म-स्थान रुनकता या गऊघाट लिखा है। लेखक के विचार से 'सूर-साहित्य की भूमिका' की यह भूल है। इस ग्रन्थ मे सूर के तीन ग्रन्थ प्रामाणिक कहे गये है[2]—१ 'सूरसागर', २ 'सूरसारावलि' और ३ 'साहित्य-लहरी'। अन्य ग्रन्थो के सूर-कृत न होने के सबल प्रमाण नही दिये गये। सूरसागर के 'सूर-स्याम' और 'सूरजदास' छापवाले पदो के विषय मे श्री भटनागर तथा श्री पाठक कहते हैं, —"डा० जनार्दन मिश्र का कथन प्रमाणसिद्ध न होने तक हम इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ नही कह सकते।"

'सूर-साहित्य'—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

'सूर-साहित्य' सूरदास के काव्य पर लिखा हुआ एक विवेचनात्मक छोटा ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे सूरदास द्वारा रचित कहे जानेवाले ग्रन्थो की प्रामाणिकता की जाँच नही की गई है, और न इसमे सूर की जीवन-वृत्तान्त सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री को परीक्षा ही की गई है। कवि का जो जीवन-वृत्तान्त इसमे दिया हुआ है, वह एक भावात्मक तथा रोचक कहानी मात्र है। धार्मिक दृष्टि से इस ग्रन्थ मे सूर के काव्य की सुन्दर समालोचना है, परन्तु श्रीवल्लभाचार्य के दार्शनिक तथा भक्ति-सिद्धान्तो का, जो सूर-काव्य के मुख्य आधार थे, बहुत ही अल्प सहारा लिया गया है।

———

१—'सूर-साहित्य की भूमिका', पृ० १७।
२—'सूर-साहित्य की भूमिका', पृ० २१।

तृतीय अध्याय

अष्टछाप : जीवन-चरित्र

सूरदास के जीवन-चरित्र की रूपरेखा

जन्म-स्थान

श्रीहरिराय जी-कृत भावप्रकाशवाली '८४ वैष्णवन की वार्ता' मे लिखा है कि सूरदास का जन्म दिल्ली से चार कोस व्रज की ओर स्थित एक सीही[1] नामक ग्राम मे हुआ। भाव-प्रकाश-रहित वार्ता मे, जिसकी सबसे प्राचीन स० १६९७ की प्रति काँकरौली विद्याविभाग मे है, सूर के जन्म-स्थान के विषय मे कुछ नही लिखा है। हरिराय जी के कथन के अतिरिक्त सूरदास की जन्म-भूमि सीही होने की जनश्रुति भी चली आती है जिसका आधार लेकर हिन्दी के कुछ विद्वानो ने सन्देहात्मक रूप से सूरदास की जन्म-भूमि इस सीही स्थान को बताया है। हिन्दी के कुछ विद्वानो ने सूर की जन्म-भूमि भ्रमवश रुनकता स्थान भी लिखी है[2]। रुनकता गाँव से, जो आगरा से मथुरा जानेवाली सडक पर है, दो मील की

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३।

२—पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास, संस्करण सं० १९९० के पृष्ठ १५५ पर सूर का जन्म-स्थान रुनकता लिखा था, परन्तु अपने इतिहास के नये संस्करण सं० १९९७ में उन्होने सूर का कोई जन्मस्थान नहीं दिया। डा० श्याम-सुन्दरदास ने भी अपने इतिहास 'हिन्दी भाषा और साहित्य' के पृष्ठ ३२२ (सं० १९९४ के संस्करण) पर सूर की जन्मभूमि रुनकता लिखी है।

नोट:—लेखक रुनकता और गऊघाट दोनों स्थानों पर गया था। रुनकता गाँव मे उसने वहाँ के वृद्ध-जनों और पण्डितों से सूरदास के विषय में पूछताछ की रुनकता में सूर के जन्मस्थान होने की कोई चर्चा तक नहीं है। हाँ, इतना अवश्य प्रसिद्ध है कि सूरदास गऊघाट पर रहते थे, जहाँ अब भी कुछ साधु-महात्मा आकर कभी-कभी ठहर जाया करते हैं।

दूरी पर यमुना के किनारे 'रेणुका' स्थान है, वहाँ परशुराम जी का मन्दिर है। वह स्थान रमणीक है और वहाँ बहुत से साधु-महात्मा रहा करते है। वहां कोई बडी बस्ती नही है। गऊघाट, रेणुका स्थान से आगे लगभग एक मील है। गऊघाट के आस-पास कच्चे मकानो के बहुत से खँडहरो की ठेकी बनी है। एक वृद्ध महात्मा ने, जो लेखक के साथ गऊघाट गये थे, बताया कि प्राचीन समय मे रुनकता गाँव इसी स्थान पर बसा था, परन्तु किसी आपत्ति के कारण, सम्भवत. औरङ्गजेब के अत्याचार से, यह स्थान लोगो ने छोड दिया और अब नये स्थान पर रुनकता गाँव बस गया है। लेखक ने वहाँ किसी महात्मा अथवा वहाँ के किसी निवासी से यह कहावत नहीं सुनी कि सूरदास की जन्मभूमि रुनकता थी।

लेखक ने, साहित्यलहरी मे दिये हुये कवि की वशावली वाले पद को तथा आइने-अकबरी, मुन्तखिबउत्तवारीख और मुशियात अब्बुलफजल को सूर की जीवन-सामग्री के लिए अप्रामाणिक सूत्र माना है। इसलिये इन आधारो मे कथित सूर की जन्मभूमि ग्वालियर अथवा लखनऊ मान्य नही है। हरिराय जी की भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता के अनुसार सूरदास की जन्मभूमि 'सीही' ग्राम ही ठहरती है।

सूर के अन्य निवास स्थान

इसी भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास जी अपनी १८ वर्ष की आयु तक सीही गाँव से चार कोस दूर एक तालाब के किनारे के स्थान पर रहे[1]। वार्ताकार कहता है कि एक बार यहाँ पर उन्होने एक ज़मीदार की खोई हुई गायो का पता अपनी आन्तरिक दृष्टि से बता दिया। इससे प्रभावित हो उस ज़मीदार ने सूरदास के रहने के लिए एक झोपडी बनवा दी और दो-चार चाकर उनकी टहल को रख दिये। उस ज़मीदार ने सूर से मिलते समय एक बार कहा था—अरे, तू फलाने सारस्वत को बेटा है और नेत्र तेरे है नाही, सो तू अपने घर को छोडि के रूठि के यहाँ क्यो बैठ्यो है, नेत्र है नाही, कैसे दिन कटेंगे[2]। जब ज़मीदार की गायो के पाने की कथा चार-छै स्थानो पर फैली तो सूर की ख्याति बढ़ने लगी। लोग उसे सिद्ध समझकर उसके शिष्य होने लगे। उस स्थान पर, वार्ताकार के कथानुसार, सूर का बडा मकान भी बन गया। सेवको की एक बडी सख्या हो गई और सूरदास 'स्वामी' कहलाने लगे। यही रहते हुये सूर ने गाना भी सीख लिया था। गाना सीखने के लिये भी उनके पास बहुत लोग आने लगे। थोडे ही समय बाद कवि की गणना वैभवशाली लोगो मे हो गई।

एक रात्रि सूरदास को वैराग्य हुआ। उन्होने गाँव से अपने माता-पिता को बुलवाया और पूरा घर उनको सौंपकर वहाँ से व्रजधाम को चल दिये। कुछ सेवक भी उनके साथ

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६।

चले[1]। चलते-चलते वे मथुरा आये, वहाँ से आगरा और मथुरा के बीच यमुना के किनारे एक स्थान, गऊघाट पर रहने लगे।[2]

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, सूरदास जी कभी-कभी गऊघाट से रेणुका स्थान पर भी आते थे और वहाँ रहा करते थे। सम्भव है, किसी जनश्रुति के आधार से लोगो ने उनका जन्मस्थान 'रुनकता' मान लिया हो। यहाँ गऊघाट पर वे वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने के समय तक रहे। वल्लभसम्प्रदाय मे आने के बाद सूरदास जी श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा मे पहुँचे। वहाँ वे गोवर्द्धन पर ही रहा करते थे। बीच-बीच मे वे मथुरा, गोकुल आदि स्थानो पर भी आते-जाते थे। वार्ता मे लिखा है कि अकबर बादशाह से इनकी भेट मथुरा मे हुई थी।[3] ब्रज छोडकर सूरदास कभी अन्यत्र भी गये, इस बात का उल्लेख दोनो प्रकार की ८४ वार्ताओ मे कोई नही है।

हरिराय जी की ८४ वार्ता मे सूरदास जी को कई स्थानो पर सारस्वत[4] ब्राह्मण लिखा है। वार्ता के अतिरिक्त वल्लभ-दिग्विजय[5] के अनुसार भी सूरदास जी सारस्वत ब्राह्मण थे। सूरदास ने अपने एक पद मे तो यह कहा है कि भगवान् ने नाता जोडकर उन्होने सब जाति-पाँति छोड दी।[6] वल्लभ-सम्प्रदायी वार्ताओ के चरित्रो को देखने से पता चलता है कि भगवदभक्तो मे सभी जाति के लोगो का समावेश था और वे भगवान् की दासता के नाते एक दूसरे जाति-पाँति का भेदभाव नही रखते थे। जनश्रुति भी उन्हे सारस्वत ब्राह्मण बताती है।

जाति

हरिराय जी की ८४ वार्ता से ज्ञात होता है कि सूरदास जी के माता पिता एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण थे। इनसे बडे तीन भाई और थे।[7] सूरदास अन्धे थे, इसलिये माँ-बाप

१—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १०।

२—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १०।

३—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० २४।

४—"अब श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सूरदास जी सारस्वत ब्राह्मण, तिनकी वार्ता" हरिराय जी-कृत भावप्रकाश, अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १।
'सो सूरदास...... .....एक सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ प्रकटे।'
अष्टछाप कॉकरौली, पृ० ४।

५—वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृ० ५०।

६—सूरदास प्रभु तुम्हरी भक्ति लगि तजी जाति अपनी।
सूरसागर, वेकटेश्वर प्रेस पृ० १७।

७—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ४ तथा ५।

नोट—मुंशी देवीप्रसाद जी का कथन—कि सूरदास जी 'भाट या राव' थे—ग्राह्य नहीं है जिसके कारण पीछे दिये जा चुके है।

इनकी ओर से उदासीन रहते थे। उपेक्षा और निर्धनता के कारण इन्होंने अपना घर छोड दिया। वार्ता मे इनके विवाह होने का कोई उल्लेख नही है। एक स्थल पर यह तो लिखा है कि जब सूरदास अपने गाँव से चार कोस की दूरी पर तालाब के किनारे रहने लगे तो उनके सेवको का समाज बहुत बढ गया और सूरदास का वैभव भी मकान, गाय, आदि से खूब बढा। उस स्थल पर उन्होंने एक बार मन मे वैराग्य होते समय स्वयं सोचा,—"जो देखो मैं श्री भगवान् के मिलन अर्थ वैराग्य करि के घर सो निकस्यो हतो सो यहाँ माया ने ग्रसि लियो। मोकूं अपनो जस काहे को बढावनो हतो, जो मै श्री प्रभु को जस बढ़ावती तो आछो। और यामे तो मेरो बिगार भयो?"[1] इस कथन से केवल यह प्रकट होता है कि सूरदास अपने जीवन मे सांसारिक वैभव का सुख भोग चुके थे, परन्तु विवाह करके उन्होने ऐसा किया था, इसका कोई प्रमाण नही है। अपने विनय और प्रबोधन के पदो मे उन्होने आत्मग्लानि प्रकट करते हुये कई स्थलो पर सासारिक माया मे लिप्त होने का पश्चात्ताप प्रकट किया है। उन स्थलो पर जहाँ उन्होंने 'वनिता-विनोद' की निन्दा की है, वस्तुतः आत्मचारित्रिक वैवाहिक सुख का वर्णन नहीं किया, वरन् स्त्री-सुख तथा माया-लिप्त सांसारिक लोगो के मन को लगनेवाली चेतावनी तथा प्रबोधन से जगी मानसिक वृत्तियो के प्रति समष्टि रूप से, ग्लानि प्रकट की है।[2] इस प्रकार सूरदास जी ने कभी विवाह नही किया।

माता-पिता तथा कुटुम्ब

सूरदास ने अपनी रचनाओ मे अपने अंधे, निपट अंधे होने का तो कई स्थलो पर उल्लेख किया है,[3] परन्तु यह कही नहीं कहा कि जमान्ध थे अथवा अमुक अवस्था मे अंधे हुये थे। 'किसी युवती पर आसक्त होकर अपनी आँखे फोड ली थीं', इस कथन मे इनके सम्बंध मे कोई सत्यता नहीं है। यह बात बिल्वमङ्गल सूरदास के पीछे दिये हुये वृत्तान्त से सिद्ध है श्री हरिराय जी ने सूर के जन्मांध होने पर बहुत जोर दिया है।

सूरदास जी अन्धे थे अथवा जन्मान्ध

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०।

२—अब मै नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहरि चोलना कंठ विषय की माल।
× × ×
सुक चंदन विनोद सुख यह जर जरन बितायो।
× × ×
सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पृ० १५, पद नं० ६४।

३—मेरी तो गतिपति तुम अनतहि दुख पाऊँ।
× × ×
सूर कूर आंधरौ मैं द्वार पर्‌यो गाऊं। सू० सा० प्रथम स्कंध

कदाचित् भगवत्कृपा के प्रभाव और उसके महत्त्व को दिखाने के लिए उन्होंने ऐसा किया हो।[१] वे लिखते है—"सो सूरदास जी के जन्मत ही सो नेत्र नाही है और नेत्रन को आकार गढेला कछु नाही ऊपर भोह मात्र है सो या भाति सो सूरदास जी को स्वरूप है।" आगे हरिराय जी कहते है, "जन्मे पाछे नेत्र जायँ तिनको आँधरो कहिये, सूर न कहिये, और ये तो सूर हैं।" भक्तमाल के टीकाकार श्री महाराज रघुराजसिंह ने 'रामरसिकावली' मे भी यही लिखा है, "जन्महि ते है नेन विहीना, दिव्य दृष्टि देखहि सुख भीना।"[२] सूरसागर का आरम्भिक एक पद है :—सूरदास के इस कथन के अनुसार आस्तिक लोग भगवत्कृपा के सहारे

वदौ श्रीहरि पद सुखदाई।

जाकी कृपा पगु गिरि लघै अँधरे को सब कछु दरसाई।
वहिरो सुने मूक पुनि वोले रक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय वार वार वदौ ते पाई।

सब कुछ सम्भव समझते है और सूर को भी जन्मान्ध मानते हुये दिव्य दृष्टिसम्पन्न मानते हैं।

एक ओर तो वाह्य प्रमाण सूर को जन्मान्ध कहते है और दूसरी ओर यदि हम उनकी रचनाओ को अंध विश्वास की आँख को हटा कर साधारण वुद्धि की आँख से देखे तो हमे उनके स्वाभाविक और सजीव भाव-चित्रो और वर्णनो के सहारे ज्ञात होगा कि कवि ने ससार के रूप-रङ्ग को किसी अवस्था मे अवश्य देखा होगा। वाह्य प्रमाण विरुद्ध होते हुये भी यदि यह मान लिया जाय कि सूरदास अपनी वाल्य अवस्था मे ही अंधे हो गये थे तो इसमे सूर का महत्त्व कुछ कम नही होता। उनकी कल्पनाशक्ति इतनी वढी-चढ़ी थी कि जिस ससार को उन्होने अपरिपक्व वुद्धि से वाल्य अवस्था मे देखा उसी को अधे होने

नोट :—महाराज रघुराजसिंह ने 'रामरसिकावली' में लिखा है जैसा कि पीछे कहा गया है, कि इनका विवाह हुआ था और एक वार इन्होने अपनी स्त्री के सब शृङ्गारो को वता दिया था। इस घटना का प्राचीन वार्ता-साहित्य में कोई उल्लेख नहीं है। अन्धे सूर की दिव्य दृष्टि के दिखाने के लिए वार्ता में सूर द्वारा नवनीत प्रिय जी के नग्न-शृङ्गार को वताने की कथा दी हुई है। सम्भव है, किसी ने इसी प्रकार उनके विवाह की कल्पना कर स्त्री के शृङ्गार वताने की कथा वना ली हो जिसे रामरसिकावली मे भी स्थान मिल गया। लेखक का विचार है कि इनका विवाह नहीं हुआ।

१—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ४ और ५,

२—रामरसिकावली, महाराज रघुराजसिंह जी-कृत में सूरदास।

पर अपनी कल्पनाशक्ति, अनेक ग्रन्थो के श्रवण द्वारा उपार्जित ज्ञान और अपनी कुशाग्र स्मरण-शक्ति के सहारे, प्रौढ और सजीव रूप मे चित्रित कर सके। यथार्थ मे देखा जाय तो यह समस्या कोई महत्त्व की नही है कि वे जन्मांध थे अथवा बाद मे अंधे हुये। इतना सबको मान्य है और इसके बाह्य और आंतरिक प्रमाण भी है कि सूरदास अंधे थे और अपनी रचना-काल की अवस्था में भी वे अंधे थे।

'सूर-साहित्य की भूमिका' के लेखक की राय है कि सूरदास वृद्धावस्था मे अंधे हुये थे। लेखक इस बात से सहमत नही है। वार्ता उस समय भी सूर को अंधा ही कहती है जिस समय वे श्री वल्लभाचार्य जी की शरण मे गये। ८४ वार्ता मे लिखा है कि शरणागति के समय सूर ने आचार्य जी तथा गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन किये। यहाँ दर्शन का यह अर्थ नही हैं कि उन्होंने आँख खोलकर देखा। उसका तात्पर्य है कि उन्होंने केवल आचार्य जी के समीप जाकर श्रवणेन्द्रिय से उनकी उपस्थिति का अनुमान किया।

वार्ता मे सूर के अंधे होने और उनकी दिव्य दृष्टि होने की कुछ कथाएँ भी दी हुई हैं। एक कथा अकबर बादशाह के समक्ष सूर द्वारा गाये हुये एक पद के इस चरण पर कि 'सूर ऐसे दरस कारन लोचन प्यास', प्रश्न करने की है। अकबर ने पूछा—सूरदास जी तुम्हारे नेत्र तो है नही और तुम दरस कैसे करते हो?"[1] सूर ने उत्तर दिया कि यह भगवान् की कृपा का फल है।

दूसरी कथा[2] वार्ता मे यह दी है कि श्री सूरदास जी नवनीतप्रिय जी के दर्शनो को गोकुल जाया करते थे। नवनीतप्रिय जी के शृंङ्गार का वे ज्यो का त्यो कीर्तन कर देते थे। एक बार गोस्वामी जी के पुत्र श्री गिरिधर जी से श्री गोकुलनाथ जी ने कहा कि सूरदास जी जैसा शृङ्गार नवनीतप्रिय जी का होता है वैसा ही वस्त्र-आभूषण वर्णन करते है। एक दिन अद्भुत शृङ्गार कर इनकी परीक्षा लो। अस्तु, उन्होंने ऐसा ही किया। आसाढ के दिन थे। ठाकुर जी को कोई वस्त्र नही पहिनाये गये, केवल मोती पहना दिये गये। जब शृङ्गार के दर्शन खुले तब सूर को बुलाया गया और उनसे ठाकुर जी के शृङ्गार का कीर्तन करने को कहा गया। उस समय दिव्यदृष्टि से देखकर उन्होंने यह पद गाया—

देखे री हरि नगम नगा।
जल-सुत भूषन अंग विराजत वसन-हीन छवि उठत तरंगा।
अंग अंग प्रति अमित माधुरी निरखि लजित रति कोटि अनगा।
किलकत दधि-सुत मुख ले मन भरि सूर हँसत व्रज जुवतिन संगा।[3]

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६,
२—अष्टछाप. काँकरौली पृ० ३०।
३—लेखक की ८४ वैष्णवन की वार्ता, श्री हरिराय की भावना-सहित।

सूर की आरम्भिक शिक्षा के बारे मे किसी भी ग्रन्थ में कोई उल्लेख नही है। हरिराय जी ८४ वैष्णवन की वार्ता मे कहते है कि जिस समय सूरदास जी अपने गाँव से चार कोस दूर के एक स्थान पर रहते थे, वहाँ वे पद बनाते थे और गान-विद्या का सब साज उन्होंने इकट्ठा कर लिया था।[1] फिर जब वे गऊघाट पर आ गये उस समय उनके विषय में हरिराय जी कहते हैं,—"सूर को कण्ठ बहोत सुन्दर हतो, सो गान विद्या मे चतुर सगुन बताइवे मे चतुर। उहाँ हू सेवक बहुत भये, सो सूरदास जगत मे भये।"[2] इस समय सूरदास 'स्वामी' कहलाते थे। सूर ने किस प्रकार कविता करना और गान-विद्या सीखी, इसका कोई उल्लेख किसी ग्रन्थ मे नही मिलता। कदाचित् उनमें स्वाभाविक प्रतिभा थी और साधु-संगति से उन्होंने ज्ञान पाया और किसी गुणी भक्त से गान की विद्या सीखी होगी। वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले सूरदास जी गधर्व-विद्या मे निपुण थे, काव्य-रचना करते थे और उनको वाक्-सिद्धि भी थी। वार्ता के कथन से ज्ञात होता है कि इस समय वे विनय के पद गाते थे।[3] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सूरदास जी दास-भाव से ईश्वर की उपासना करते थे। वल्लभसम्प्रदाय मे आने के बाद सूर ने अपने गुरु श्रीवल्लभाचार्य जी से शिक्षा ग्रहण की। वार्ता से तथा आन्तरिक प्रमाणो से यह तो सिद्ध ही है कि सूरदास के दीक्षा-गुरु श्री वल्लभाचार्य जी थे। पहले पहल आचार्य जी ने सूर को श्रीमद्भागवत की स्वय लिखी सुबोधिनी टीका का बोध कराया।[4] इसके अनन्तर सूरदास जी ने श्री आचार्य जी से सम्प्रदाय का रहस्य समझा[5] और उन्होंने वल्लभसाम्प्रदायिक सिद्धांतो को ध्यान मे रखते हुये भागवत के अनुसार हजारो पद बनाये। वार्ता मे सूर के विषयो का उल्लेख हुआ है। वार्ताकार कहता है,—"तामे ज्ञान वैराग्य के न्यारे-न्यारे भक्ति भेद, अनेक भगवत् अवतार, सो तिन सबन की लीला को बरनन कियो है।[6] सूर के ज्ञान का तथा उनकी आत्म-अनुभूति का पता उनके अनेक पदो

शिक्षा और पाण्डित्य

१—अष्टछाप, कांकरौली पृ० ९।

२—अष्टछाप, कांकरौली पृ० १०।

३—श्रीवल्लभाचार्य जी के समक्ष सूरदास जी ने गऊघाट पर शरणागति से पहले विनय के ही पद गाये थे।

४—"सो सगरी श्री सुबोधिनी जी को ज्ञान श्री आचार्य जी ने सूरदास के हृदय में स्थापन कियो तब भगवल्लीला जस वर्णन करिबे को सामर्थ्य भयो।"
८४ वार्ता, हरिराय जी-कृत भाव-प्रकाश, अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १३।

५—"श्रीवल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो"—सूरसारावली, पृ० ३८, छन्द नं० ११०२, वें० प्रे०।

६—अष्टछाप, कांकरौली पृ० २३।

से प्रत्यक्ष प्रकट होता है। अकबर बादशाह के सामने उन्होने एक पद—"मना रे करि माधो सो प्रीति"— गाया[1], जो आजकल सूर-पचीसी के नाम से प्रसिद्ध है। वार्ताकार ने इस लम्बे पद का विषय वार्ता मे दिया है जिससे सूर की अगाध ज्ञान-राशि का परिचय मिलता है। वार्ताकार कहता है—"सो पद कैसो है, जो या पद को सुमिरन रहै, तब भगवत् अनुग्रह होय और संसार सो वैराग्य होय और श्री भगवान् के चरणारविंद मे मन लगे। तब दुसङ्ग सो भय होय, सत्सङ्ग मे मन लगे। सो देहादिक मे ते स्नेह घटे और लौकिक आसक्ति छूटे। जो भगवान् को प्रेम है सो अलौकिक है सो वाके ऊपर प्रीति बढे।"[2]

सूर की शिक्षा का प्रतिफल उनकी अमर कृति 'सूरसागर' है जो सूर की प्रकाण्ड विद्वत्ता तथा अनुभूति का अक्षय भण्डार है। वार्ताकार ने कई स्थानो पर लिखा है कि सूर ने सहस्त्रावधि पद बनाये और कई स्थलो पर हरिराय जी ने यह लिखा है कि उन्होने लक्षावधि[3] पद बनाये। ८४ वार्ता के भावप्रकाश मे हरिराय जी कहते हैं कि सूरदास के चार नाम है[4] और इन चारो की छाप उनके पदो में है—सूर, सूरदास, सूरजदास तथा सूरस्याम। इस विषय मे डाक्टर जनार्दन मिश्र जी का मत है[5] कि सूरस्याम और सूरजदास छाप वाले पद सूरदास-कृत नही हैं। इस मत के पक्ष मे उन्होने प्रमाण नही दिये। सूर के काव्य के विषय मे वार्ता से यह भी पता चलता है कि उनके पदों मे उनके जीवन-काल मे ही मेल हो गया था और लोग सूरदास के नाम से पद बनाकर गाते थे[6]। ८४ वार्ता से तथा 'भक्तमाल' से ज्ञात होता है कि सूर एक उच्च कोटि के कवि थे। लेखक के विचार से उक्त चारो छापो मे अष्टछापी सूरदास की कृति हैं। इन छापो के पदो की भाषाशैली, व्यक्त भावावली तथा ८४ वार्ता का कथन, इस विचार के प्रमाण है।

१—सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, वें० प्रे० संवत् १९६४ संस्करण, पृ० ३१।
२—अष्टछाप, पृ० २५,
३—"सो तब सूरदास जी अपने मन में विचारे जो मै तो अपने मन में सवा लाख कीर्तन प्रकट करिबे को संकल्प कियो है सो तामें ते लाख कीर्तन प्रक्ट भये हैं।"
अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ४६,
तथा:—"और सूरदास जी ने श्री ठाकुर जी के लक्षावधि पद किये हैं।"
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ५१।
सूर ने स्वयं एक पद में एक लाख पद लिखने का उल्लेख किया है।
सूरसारावली, वें० प्रे० पृ० ३८, छन्द नं० ११०३।
४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ५५।
५—'सूरदास', डा० जनार्दन मिश्र, पृ० ७।
६—अष्टछाप, पृष्ठ २७, वार्ता-प्रसङ्ग ४, सूरदास।

८४ वैष्णव की वार्ता में लिखा है कि एक बार वल्लभाचार्य जी दक्षिण देश और काशी में मायावाद का खण्डन और भक्ति-मार्ग की स्थापना करके अडेल से व्रज को आये थे उस समय रास्ते मे वे गऊघाट पर ठहरे। सूरदास जी के सेवको ने यह सूचना इन्हे दी। जब श्री वल्लभाचार्य जी भोजन आदि से निवृत्त होगये तव वे अपने सेवको के समाज मे गद्दी तकिया पर बैठे[1]। उसी समय सूरदास अपने सेवको सहित आये। उस समय सूर को देखकर आचार्य जी ने उन्हे विठाया और उनसे भगवत्-यश वर्णन करने को कहा। सूर ने पद गाया—'हौ हरि सब पतितन कौ नायक''। आचार्य जी ने यह आत्मदीनता और विनय का पद सुनकर सूरदास से कहा कि तू सूर होकर ऐसा भगवान् के सामने घिघियाता क्यों है। उनकी लीला का यश वर्णन करो। सूर ने कहा—महाराज! लीला का रहस्य मै नही समझता। इसके वाद आचार्य जी ने सूरदास को अपने सम्प्रदाय में लिया। उनको अष्टाक्षर मन्त्र का 'नाम सुनाया' और उनसे समर्पण कराया। तव आचार्य जी ने सूर को श्रीमद्भागवत पर अपनी लिखी टीका सुवोधिनी सुनाई। जब सूर ने भागवत सुन ली तब उनके हृदय में कृष्ण की लीला का स्फुरण हुआ और फिर उन्होंने आचार्य जी के समक्ष एक पद गाया—

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश और सूर का सम्प्रदायिक जीवन

राग विलावल,

चकई री चलि चरन सरोवर जहँ नहि प्रेम वियोग।
जहँ भ्रम निसा होति नहीं कवहूं उह सायर सुष जोग।
सनक से हस मीन से सिव मुनि, नव-रवि प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल निभय, नहीससि डर गुंजत निगम सुवास।
जिहि सरसुभग मुकति मुक्ता फल सुकृति बिमल जल पीजे।
सो सर छाँडि कुबुद्धि विहंगम इहाँ कहा रहि कीजे।
जहाँ श्री सहस्र सहित नित क्रीड़त सोमित सूरज दास।
अव न सुहात विषय रस छीलर, वा समुद्र की आस[3]।

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ ११:१५।

२—वल्लभसम्प्रदाय में प्रविष्ट होना 'ब्रह्म सम्बन्ध कहलाता है। इसमें गुरु अष्टाक्षर मन्त्र सुनाता है जिसे 'नाम निवेदन' कहते है और शिष्य अपना तन-मन-धन, सर्वस्व कृष्ण को अर्पण करता है। ब्रह्म-सम्बन्ध का वर्णन अष्टछाप की भक्ति के प्रसङ्ग में किया गया है।

३—सूरसागर, वेंकटेश्वर प्रेस, पृष्ठ २८, २९, पद नं० १८४, पाठ भेद से तथा हरिराय जी-कृत भाव-प्रकाश की ८४ वैष्णव की वार्ता, लेखक के पास की।

इसके बाद सूरदास ने कृष्ण की लीला के पद गाये। सूरदास के जितने सेवक थे, वे भी आचार्यजी की शरण मे चले गये। गऊघाट से आचार्यजी सूरको गोकुल ले गये। उस समय उन्होंने (आचार्य जी ने) सोचा कि श्रीनाथजी का नया मन्दिर भी बनकर तैयार हो गया है, इसमे सब सेवा का भी मण्डन हो गया है। इसलिए सूरदास को श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा देनी चाहिए[1]। यह सोच कर आचार्य जी सूर को गोवर्द्धन पर ले गये और वहाँ श्रीनाथ जी के समक्ष उनसे कीर्तन करने को कहा[2]। सूर ने आत्मदीनता का फिर एक पद गाया। इसपर आचार्य जी ने कहा कि सूरदास भगवान् का ऐसा गान करो जिस मे ईश्वर का महात्म्य-ज्ञान पूर्वक स्नेह हो। इसके बाद सूर ने ऐसे ही पद गाये और श्रीनाथ जी की, कीर्तन-द्वारा, सेवा करने लगे।

एक बार सूरदास का एक पद[3] तानसेन ने अकबर के समक्ष दरबार मे गाया। अकबर उस पद से ऐसा प्रभावित हुआ कि उसको उस पद के रचयिता से मिलने की इच्छा हुई। जब अकबर दिल्ली से आगरे आया, तब उसने अपने हलकारो से कहा—"सूरदास की खबर लेकर, कि वे कहाँ हैं, हमको मथुरा मे बताओ।" उस समय सूरदास जी भी मथुरा गये हुये थे। अकबर को जब यह बात ज्ञात हुई तब उसने सूरदास को अपने पास मथुरा ही मे बुलाया और कवि का बहुत आदर-सम्मान किया। अकबर बादशाह ने कहा—"सूरदास जी कुछ पद सुनाओ।" सूर ने उस समय आत्म-प्रबोधन, वैराग्य और भक्ति से भरा एक पद—"मना रे तू करि माधव सो प्रीति"—बिलावल राग मे गाया। पद सुनकर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। फिर उसने अपना यश गाने को कहा। सूर तो निर्लिप्त, निर्लोभी भक्त थे। उन्होने दूसरा पद गाया—

राग केदारा।

नाहिन रह्यो मन मे ठौर[4]।
नद नंदन अछत कैसे आनिये उर और।
चलत चितवत द्यौस जागत सुपन सोवत राति।
हृदय ते वह मदनमूरति छिन न इत उत जाति।
कहत कथा अनेक ऊधो लोक लोभ दिखाइ।

१—अष्टछाप, कांकरौली पृष्ठ १६,

२—"पाछे आचार्य जी आपु कहें, जो सूर ! तुमको पुष्टि मारग को सिद्धान्त फलित भयो है। तासो अब तुम श्री गोवर्द्धन के यहां समय-समय के कीर्तन करो।" अष्टछाप कांकरौली, पृष्ठ १६,

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ २४,

४—अष्टछाप कांकरौली, पृष्ठ २६,

कहा करूँ चित प्रेम पूरित घट न सिंधु समाइ।
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे दरस को ए मरत लोचन प्यास।

सूर के पद के अन्तिम चरण पर अकवर ने प्रश्न किया—"सूरदास तुम तो अन्धे हो, तुम्हारे नेत्र दरस को कैसे प्यासे मरते है ?" सूर ने कहा—"ये नेत्र भगवान् को देखते हैं और उस स्वरूपानन्द का रसपान प्रत्येक छण करने पर भी अतृप्त बने रहते हैं'। अकबर नें सूर को धन-द्रव्य और जो वस्तु वे चाहे, लेने को कहा। निर्भीक और त्यागी सूर ने कहा—"आज पाछे हमको कबहूँ फेरि मत बुलाइयो और मोको कबहूँ मिलियो मती।" इस प्रसङ्ग से ज्ञात होता है कि जो कथा सूरदास के अकवरी दरबार से सम्बन्ध रखने की और उनके अकवर से सम्मानपूर्ण पद पाने की कही जाती है वह सूर के इस त्यागपूर्ण व्यवहार पर विचार करने से बिल्कुल बेमेल और असङ्गत प्रतीत होती है।

अष्टछाप कवियो मे सूर सबसे अधिक सिद्ध भक्त थे। उनके सत्सङ्ग की कामना बहुत से सज्जन करते थे। सूरदास केवल आत्मानुभूति मे मग्न रहनेवाले ही भक्त न थे। वे अपने निकटवर्ती लोगो के प्रबोधन मे भी अपना समय व्यतीत करते थे। उनके सत्सङ्ग का लाभ लेने बहुत से भक्त जाया करते थे[१]।

सूरदास एक त्यागी, विरक्त और प्रेमी भक्त थे। ज्ञानोपदेश के जो भाव अपनी रचनाओ मे प्रकट किये है, उनका उन्होंने अपने जीवन मे अनुभव कर लिया था।

स्वभाव और चरित्र

वल्लभाचार्य के मार्ग के सिद्धान्तो के वे पूर्ण ज्ञाता थे[२]। पुष्टिमार्ग मे भगवान की तीन विधि से सेवा बताई गई है—तनजा, वित्तजा और मनसा; और इसमे मानसी सेवा सर्वश्रेष्ठ बताई गई है। सूरदास जी इसी मानसी सेवा के अधिकारी सिद्ध भक्त थे[३]। दीनता-नम्रता की तो वे साक्षात् प्रति-मूर्ति थे। जैसा कि पीछे कहा गया है, उनके सत्सङ्ग का बड़ा शान्तिदायी प्रभाव होता था। उन्होने अपने सत्सङ्ग से एक बनिये को परोपकारी और भक्त बनाया था[४]।

१—अष्टछाप कांकरौली, पृष्ठ ४४।

२—"जो सूरदास जी सों आय के पूछतो तिनको प्रीति सों मारग को सिद्धान्त बतावते और उनको मन प्रभून में लगाय देते तासो सूरदास जी सरीखे भगवदीय कोटिन मे दुर्लभ है।" अष्टछाप, कांकरौली पृष्ठ ५७,

३—"या प्रकार सूरदास जी मानसी सेवा में सदा मग्न रहते। ताते इनके माथे श्री आचार्य जी ने भगवत सेवा नाही पधराए। (सो काहे ते) जो सूरदास जी को मानसी सेवा में फल रूप अनुभव है सो ये सदा लीला-रस में मगन रहते हैं।" अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ५६,

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३७,

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने स्वयं अपने मुख से सूरदास की प्रशंसा बडे भावपूर्ण शब्दों मे की है। वार्ता से प्रकट है कि सूर के अन्त समय मे गोस्वामी विट्ठलनाथ ने उनके विषय मे कहा था—"पुष्टि मारग को जहाज जात है सो जाको कछू लेनो होय सो लेउ[1]।" सूर भगवान् के अनन्य भक्त थे। भगवान् की लीला और उनके माहात्म्य को छोड किसी लौकिक पुरुष का सूर ने गान नही किया। यहाँ तक कि अपने गुरु श्रीवल्लभाचार्य की प्रशंसा मे भी, जिनको सूर साक्षात् कृष्ण का अवतार मानते थे, केवल एक पद ही, और वह भी अपने जीवन की अन्तिम दशा में, गाया था। सूर के अन्त समय मे अनेक वैष्णव उनके पास खड़े थे। उस समय चतुर्भुजदास ने कहा,—"सूरदास ने श्री ठाकुर जी के लक्षावधि पद किये है, परन्तु श्री आचार्य जी को जस बरनन नाही कियो[2]।"

सूरदास जी का गोलोकवास परासौली स्थान पर हुआ। अन्त समय मे उनका ध्यान युगल-रूप राधा-कृष्ण मे लगा था।[3] सूरदास जी इतने सिद्ध महात्मा थे कि उनको अपने अन्त समय का अनुमान हो गया। वे गोवर्द्धन से परसौली

सूरदास का गोलोकवास

(परम रासस्थलि) स्थान पर चले गये और वहाँ शिथिल होकर श्रीनाथ जी की ध्वजा के सम्मुख लेट गये। इधर गोवर्द्धन पर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथ जी के शृङ्गार के समय देखा कि आज कीर्तन मे सूरदास जी नही है। उनके पूछने पर एक वैष्णव ने कहा,—"महाराज, सूरदास जी तो आज मङ्गला आरती के दर्शन करके और सब सेवको को भगवत् स्मरण कराके परासौली चले गये हैं।" गोस्वामी जी सभझ गये कि सूरदास का अन्त समय है। उन्होने वैष्णवों से कहा—"पुष्टि मारग को जहाज जात है सो जाको कछू लेनों होय सो लेउ।" तब सब वैष्णव सूरदास जी के पास पहुँचे। उधर गोस्वामी जी भी राजभोग की आरती करके उनके पास पहुँच गये श्रीहरिराय जी ने ८४ वार्ता मे लिखा है,—"गुसाई जी के सङ्ग रामदास, कुम्भनदास, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास आदि सगरे वैष्णव आये[4]।"

गोस्वामी जी तथा उनके साथी वैष्णवो ने देखा कि सूरदास जी अचेत पड़े है। जब गोस्वामी जी ने सूर को पकड़ कर सचेत किया तो सूरदास जी बहुत प्रसन्न हुये। उसी समय चतुर्भुजदास ने उनसे पूछा,—"आपने लक्षावधि पद किये, परन्तु आचार्य जी का यश-वर्णन

१—अष्टछाप, कॉंकरौली, पृ० ५०

२—पृ० ५१ तथा ५२, अष्टछाप, कांकरौली।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ५५—सूरदास जी जुगल स्वरूप को ध्यान करि के यह लौकिक शरीर छोड़ि लीला में जाय प्राप्त भए।"

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १४।

नही किया"। सूर ने उत्तर दिया,—"मैंने तो सब यश उन्ही का वर्णन किया है। मैं उन्हे कृष्ण भगवान् से अलग नही देखता।" उसी समय उन्होंने यह पद गाया—

राग विहागरो

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्री वल्लभ-नख-चन्द्र-छटा बिन सब जग माँझि अँधेरो।
साधन और नही या कलि में जासों होत निवेरो।
सूर कहा कहे दुविध आँधरो विना मोल को चेरो[1]।

इसके वाद चतुर्भुजदास जी ने सूर से कहा—"अब थोरे मे श्री आचार्य जी को यह पुष्टिमारग है ताको स्वरुप सुनावो, सो कौन प्रकार सों पुष्टिमारग के रस को अनुभव करिये[2]।" सूर ने एक पद गाकर बताया कि गोपीजनो के भाव से भावक भगवान् कृष्ण को भजने से 'पुष्टि मारग' के रस का अनुभव होता है। इस 'मारग' मे वेद-विधि (मर्यादा) का नियम नही है। केवल एक प्रेम की ही पहचान है[3]—

राग केदार

भजि सखि, भाव भावक देव।
कोटि साधन करो कोऊ तऊ न माने सेवा।
× × ×
वेद विधि को नेत्र नाही न प्रीति की पहचान।
व्रज बधू बस किए मोहन सूर चतुर सुजान।

गोस्वामी विट्ठनाथ जी ने सूर से पूछा,—"सूरदास तुम्हारे चित्त की वृत्ति कहाँ है।" सूर ने पद गाया—

राग विहागरो

वलि वलि वलि हो कुँवर राधिका नंद सुवन जासो रतिमानी।

१—८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय जी के भाव-प्रकाश-सहित तथा अष्टछाप कांकरौली; पृ० ५२।
२—अष्टछाप, कांकरौजी, पृ० ५२।
३—८४ वैष्णवन की वार्ता, हरिराय जी की भावना-सहित सूरदास की वार्ता तथा अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ५३।

फिर उसी समय दूसरा पद गाया—

राग विहागरो

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसे चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के उलट फिरत ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके नातरु कवै उड़ि जाते।

सूर ने युगल-लीला मे प्रवेश किया और उनके भौतिक शरीर का अग्नि-संस्कार वैष्णवो ने परासौली मे ही किया।

सूरदास की जीवनी सम्बन्धी तिथियाँ

जन्म-तिथि

कवि द्वारा दिये हुये आन्तरिक उल्लेखो के आधार पर पीछे कहा गया है कि सूरदास ने साहित्यलहरी ग्रन्थ सं० १६१७ वैसाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतीया) रविवार को समाप्त किया[1] और सूरसारावली उन्होंने अपनी ६७ वर्ष की अवस्था मे लिखी। हिन्दी के विद्वानों ने साहित्यलहरी और सूरसारावली, दोनो ग्रन्थो को एक ही साल की रचना मानकर तथा उनके द्वारा मान्य साहित्यलहरी के रचना-काल संवत् १६०७ मे से ६७ वर्ष घटाकर सूर का जन्म संवत् लगभग संवत् १५४० विक्रमी निकाला है। विद्वानों का मत है कि सूरासारावली, सूरसागर और साहित्यलहरी ग्रन्थो के वाद रची गई, क्योकि सूरसारावली में दृष्ट-कूट पदो के विषय की भी सूची है जो एक प्रकार से सूरसागर के ही अश हैं। इस विषय मे लेखक की सम्मति है कि सूरसारावली यद्यपि सूरसागर के आशय की वहुत अंश मे सूची अवश्य है, जिसमे दृष्ट-कूट पद भी सम्मिलित हैं और जिसमे कुछ भागवत के अनुसार सूरसागर से अलग स्वतन्त्र स्थल भी हैं, सूरसागर के वाद की रचना है, परन्तु सूर ने साहित्य-लहरी नाम से अपने दृष्ट-कूट पदो का स्वतन्त्र संग्रह सूर-सारावली के वाद में ही किया। यदि हम सूरसारावली की रचना 'साहित्यलहरी' से लगभग पन्द्रह साल पहले मान ले, दूसरे शब्दो मे, सूर की ६७ वर्ष की अवस्था मे सूरसारावली की तथा ६७ + १५ = ८२ वर्ष की अवस्था में (१६१७ सं० विक्रमी में) साहित्यलहरी की रचना माने तो सूर की आयु के विषय में वल्लभसम्प्रदाय मे प्रचलित यह किंवदन्ती,—"सूर श्री वल्लभाचार्य जी से १० दिन छोटे थे" और निजवार्ता का यह उल्लेख, "सो सूरदास जी जव श्री आचार्य जी महाप्रभु को प्राकट्य भयो है तव इनको जन्म भयो है"—ये दोनो कथन मेल खा जाते हैं[2]।

१—देखिये इसी ग्रन्थ का पृष्ठ ८६ : ८७ फुटनोट।

२—निज वार्ता, घरु वार्ता तथा ८४ वैठकन के चरित्र, लल्लूभाई छगनलाल देसाई, पृ० २६, तथा कांकरोली में स्थित, हस्तलिखित निज वार्ता, सं० १८५१ की प्रतिलिपि।

—

आचार्य जी की जन्म-तिथि सं० १५३५ है और सं० १६१७ से ८२ वर्ष निकालने पर १५३५ सूर की जन्म-तिथि भी आ जाती है।

पीछे कहा गया है कि श्रीनाथद्वार में सूरदास जी का जन्मोत्सव श्री वल्लभाचार्य जी के जन्म-दिन वैसाख वदी ११ के बाद वैसाख सुदी ५ को मनाया जाता है[1]। सूर के इस जन्म-दिवस का मनाने का उत्सव सम्प्रदाय में नया नही है; यह परम्परा बहुत प्राचीन है। इस प्रकार हम सूरदास का जन्म समय सं० १५३५ वैसाख सुदी पञ्चमी निर्धारित करते हैं।

श्री हरिराय-कृत भाव-प्रकाश वाली ८४ वैष्णवन की वार्ता मे लिखे वृत्तान्त के आधार से पीछे कहा गया है कि सूरदास जी गऊघाट पर श्री वल्लभाचार्य जी की शरण गये थे[2]।

सूर का वल्लभ सम्प्रदाय में शरणागति समय।

वल्लभ-दिग्विजय से विदित है कि वल्लभाचार्य जी अपने विवाह तथा द्विरागमन के बाद एक बार व्रज मे आये और उस समय उन्होंने सूर को शरण मे लिया। आचार्य जी का विवाह सं० १५६३ के लगभग हुआ था और उस समय उनकी आयु २८ वर्ष की थी। वल्लभाचार्य जी, गऊघाट पर सूर को शरण लेते समय विवाहित थे, इस बात की पुष्टि ८४ वार्ता के एक कथन से भी होती है। उक्त वार्ता के अन्तर्गत सूरदास की वार्ता मे लिखा है,—"आचार्य जी गऊघाट पर गद्दी तकियान के ऊपर विराजे"[3]। वल्लभसम्प्रदाय के सिद्धान्त और प्रचलित तथा परम्परागत प्रथाओं के ज्ञाता वैष्णवो से लेखक को ज्ञात हुआ कि आचार्य जी ने अपने विवाह के बाद ही 'गद्दी' के

१—श्री वल्लभाचार्य जी का जन्म-समय सं० १५३५ वैसाख बदी ११।

नोट-सूर की आयु के विषय में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि सूर श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। इसलिए वे अपने गुरु से अवश्य चार-पाँच साल छोटे रहे होंगे। यह बात अधिक अंश में सत्य हैं कि बहुधा शिष्य गुरु से छोटा होता है; परन्तु सर्वत्र ऐसा होना आवश्यक नहीं है कि दीक्षा-गुरु शिष्य से आयु में बड़ा ही हो। श्री वल्लभाचार्य जी सूर के दीक्षा-गुरु थे, शिक्षा-गुरु नहीं। यदि वल्लभसम्प्रदायी ग्रन्थ और प्रचलित किंवदन्तियों से यह सिद्ध होता है कि गुरु और शिष्य समवयस्क थे तो इसमें हम कोई असङ्गत बात नहीं समझते।

२—वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृ० ४९ तथा श्री द्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ५४।

'श्री द्वारिकानाथ जी के प्राकट्य की वार्ता' में आचार्य जी की तृतीय यात्रा की समाप्ति का सं० १५६७ दिया है। वल्लभसम्प्रदायी लेखकों ने बहुधा गुर्जर संवत् लिखे हैं। व्रज संवतों के साथ मिलान करने पर दोनों प्रकार के संवतों में लगभग एक वर्ष का अन्तर आता है।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ११।

ऊपर बैठना आरम्भ किया था । उससे पहले वे अपने ब्रह्मचर्य-व्रत से आसन पर ही बैठते थे ।

वार्ता तथा 'वल्लभ-दिग्विजय' से यह भी विदित है कि जिस समय श्री वल्लभाचार्य जी ने गऊघाट पर सूरदास को और मथुरा मे कृष्णदास को शरण मे लिया, उस समय श्रीनाथ जी का नया मन्दिर बना था । गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता से विदित है[1] कि गोवर्द्धननाथ जी का मन्दिर पूरणमल खत्री के द्रव्य-दान से सं० १५५६ विक्रमी मे बनना आरम्भ हुआ और बीच में द्रव्य समाप्त होने के कारण वह अधूरा ही छोड दिया गया; फिर सं० १५५६ के बीस साल बाद, सं० १५७६ में वह पूरा किया गया और उसी समय श्री नाथ जी का बृहत् पाटोत्सव हुआ[2] । परन्तु वल्लभ-दिग्विजय से यह ज्ञात होता है कि आचार्य जी ने सं० १५६६ के लगभग (श्री गोपी नाथ जी के जन्म समय सं० १५६७ आश्विन १२ से पहले) अधूरे नूतन आलय मे श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा कर दी थी और फिर सं० १५७६ मे पूरणमल द्वारा दिये हुये द्रव्य से मन्दिर की पूर्ति की गई और तभी श्रीनाथ जी का पाटोत्सव हुआ । कांकरौली और नाथद्वारे मे लेखक ने इस विषय में सम्प्रदाय के मर्मज्ञ तथा वृद्ध जनों से पूछा तो उसे ज्ञात हुआ कि श्रीनाथ जी का नवीन मन्दिर मे प्रवेश (प्रतिष्ठा)[3] स० १५६५ या सं० १५६६ मे हुआ था । इस सम्मति को मान लेने से दिग्विजय तथा वार्ता के कथनों की सङ्गति भी बैठ जाती है । इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार से ज्ञात होता है कि सूरदास जी लगभग सं० १५६६ में श्री वल्लभाचार्य जी की शरण मे गये । इस समय सूरदास जी की आयु लगभग ३१ वर्ष की थी । डा० जनार्दन मिश्र जी का विचार है कि सूरदास एक बड़ी आयु के बाद श्री वल्लभाचार्य के शिष्य हुये थे[4] । यदि इस कथन से उनका तात्पर्य ४० वर्ष की युवावस्था के बाद का है तो उनका यह कथन मान्य नहीं है ।

श्री सूरदास जी सं० १५७६ के पाटोत्सव के समय श्री वल्लभाचार्य की शरण में नही गये, वरन् उससे पहले ही गये थे, इस बात का प्रमाण निजवार्ता ग्रन्थ से भी मिलता है[5] । निजवार्ता में एक प्रसङ्ग आता है कि जब सं० १५७२ मे श्री विट्ठलनाथ जी का जन्म हुआ,

---

१—श्री गोवर्द्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता ।

२—वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ, पृ० ५० ।

३—वल्लभसम्प्रदाय में स्वरूपों की मंदिर में प्रतिष्ठा नहीं होती, इस क्रिया को प्रवेश कराना तथा पाट बिठाना कहते हैं ।

४—सूरदास, डा० जनार्दन मिश्र,

५—निजवार्ता, घरु वार्ता तथा ८४ बैटकन के चरित्र, लल्लूभाई छगनलाल देसाई, पृ० ५८ तथा ५६ ।

उसके कुछ समय बाद ही श्री आचार्य जी शिशु विट्ठलनाथ जी को लेकर श्रीनाथ जी के चरण-स्पर्श कराने के लिए गोवर्द्धन से गोपालपुर आये थे। उस समय सूरदास जी ने आचार्य जी को श्री नन्दराय और श्री विट्ठलनाथ जी को कृष्ण-रूप मान कर तथा अपने को ढाढ़ी रूप देकर उनकी बधाई गाई थी। इस बधाई का यह पद सम्प्रदाय मे प्रसिद्ध है—

नन्द जू मेरे मन आनन्द भयो हो सुनि गोवर्धन ते आयो।

हिन्दी-साहित्य के लगभग सभी इतिहासकार तथा सूर के लेखकों ने मिश्रबन्धुओ का अनुकरण करते हुए सूरदास का गोलोकवास समय सं० १६२० माना है। डा० रामकुमार वर्मा ने सूर की मृत्यु का संवत् सन्दिग्ध रूप से सं० १६४२ दिया है और अपने इतिहास मे लिखा है[2],—"सूर की मृत्यु गोसाईं विट्ठलनाथ के सामने ही हुई थी जैसा कि 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे लिखा हुआ है। विट्ठलनाथ की मृत्यु संवत् १६४२ मे हुई, अतएव सूरदास जी संवत् १६४२ मे या उससे पहले ही मरे होगे।" इस कथन के बाद डा० वर्मा ने सूर का सम्बन्ध अकबरी दरबार से स्थापित करते हुये कहा है,—"सं० १६४२ के श्रावण कृष्ण मे सूरदास को अबुल फ़ज़ल द्वारा पत्र लिखा गया......अभी तक के प्रमाणो से ज्ञात होता है कि सूरदास का जन्म सं० १५४० और मृत्यु सं० १६४२ है" डा० वर्मा ने सूर के निधन-काल के विषय मे कोई प्रतीतिजनक प्रमाण नही दिया। केवल एक प्रमाण, सूरदास के नाम अकबर के हुक्म से लिखा गया अबुल फ़ज़ल का पत्र उन्होंने दिया है। पीछे इस ग्रन्थ मे इस पत्र का अष्टछापी सूरदास के सम्बन्ध मे होना अप्रामाणिक सिद्ध किया गया है, जहाँ इस ग्रन्थ के लेखक ने कहा है कि सूरदास का अकबर के दरबार से कोई सम्बन्ध नही था। इसलिए डा० रामकुमार वर्मा जी द्वारा दिया हुआ तर्क तथा सूर का निधन-सम्वत् लेखक को मान्य नही है।

सूर के गोलोकवास की तिथि

शिवसिंह सेगर ने 'शिवसिंह सरोज' मे सूरदास का जन्म अथवा निधन समय तो नही दिया, परन्तु सूर का उदय उन्होने सं० १६४० लिखा है। इस कथन की पुष्टि मे उन्होने कोई प्रमाण नही दिये। सूर-काव्य पर लिखनेवाले हिन्दी के विद्वानो ने जैसे श्री हजारी-प्रसाद द्विवेदी तथा 'सूर साहित्य की भूमिका' के लेखक ने सूर के निधन का कोई सम्वत् नही दिया।

सूरदास के गोलोकवास की तिथि निश्चित करने से पहले यह देखा जायगा कि उपलब्ध प्रमाण उनकी स्थिति किस सम्वत् तक ले जाते है। ८४ वार्ता के अन्तर्गत सूर की

१—सूरसागर, वें० प्रे०, पृ० १०४।
२—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६१५, ६१६।
३—शिवसिंह सरोज, सातवां संस्करण, पृ० ५०२।

वार्ता में लिखा है,—"सो बीच बीच में जब कुम्भनदास, परमानन्ददास के कीर्तन के 'ओसरा' आवते तब सूरदास जी श्री गोकुल में नवनीतप्रिय जी के दर्शन कूँ आवते।"[1] सूर का नवनीतप्रिय जी के दर्शनों को गोकुल जाना और नवनीतप्रिय जी के नग्न-श्रृङ्गार पर उनके मन्दिर में पद गाना, ये कार्य सम्वत् १६२८ के एक दो साल बाद के होने चाहिए; क्योंकि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का गोकुल में स्थायी निवास सं० १६२८ में हुआ था।[2] और तभी नवनीतप्रिय जी के मन्दिर की स्थापना हुई थी। इससे पहले लगभग सम्वत् १६२४ तक आचार्य जी के शिष्य गज्जनधावन खत्री द्वारा प्रदत्त श्री नवनीतप्रिय जी का स्वरूप, गुसाईं जी के अड़ैल छोड़कर ब्रज-निवास तक, अड़ैल मे ही विराजमान था।[3] वार्ता के इस कथन से यह निष्कर्ष, अनुमान के रूप में, निकाला जा सकता है कि सूरदास जी लगभग सं० १६३० वि० तक जीवित थे।

८४ वैष्णवन की वार्ता में लिखा है कि अकबर एक बार दिल्ली से आगरे जाते समय मथुरा में सूरदास जी से मिला। श्री महाराज रघुराजसिंह, मुन्शी देवीप्रसाद आदि ने अकबर और सूर की भेट के भिन्न-भिन्न स्थान दिये हैं। परन्तु इन सब कथनों में लेखक वार्ता के लेख को सबसे अधिक प्रामाणिक मानता है। वार्ता की प्रामाणिकता का विवेचन पीछे किया जा चुका है। सं० १६४२ से पहले सूर की मृत्यु का प्रमाण तो, जैसा कि अन्य इतिहासकारों ने भी दिया है, यही है कि सूर की मृत्यु स्वामी विट्ठलनाथ जी के समक्ष हुई थी जो सं० १६४२ में गोलोकवासी हुये। अब अगर हमें अकबर और सूर की भेंट का समय ज्ञात हो जाय तो उस समय तक भी हम सूर की स्थिति मान सकते हैं।

श्रीमाखनलाल राय चौधरी, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया के लेखक, इतिहासकार वी० ए० स्मिथ तथा पं० श्रीराम शर्मा आदि मुग़ल राज्य के इतिहासकारों का बदायुनी

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २९।

२—......अथ स्वाधिकृतैर्भूमेः पत्रं संलेख्य भूपतिः। स्वनाममुद्रा सहितं दीक्षितेभ्यस्त-दार्पयत्। ५ ततो मौहूर्तिकादिष्टे मुहूर्ते विधिपूर्वकम्। ग्रामगोकुलनामानं स्थले तत्र न्यवासयन् ६ अब्देऽष्टनेत्रांग महीप्रमाणे, (१६२८) तपस्य मासस्य तमिस्र पक्षे। दिने ७ दिनेशस्य शुभे मुहूर्ते, श्री गोकुल ग्राम निवास आसीत् ७
वंशावली, मधुसूदन भट्ट-कृत। तथा इम्पीरियल फरमान, झावेरी, पृ० १६५।

३—निजवार्ता, लल्लूभाई छगनलाल, पृ० ६३।
"श्री द्वारिकानाथ जी नाव में विराजि कें अड़ैल में श्री आचार्यजी महाप्रभुन के घर पधारे। तब सिंहासन पे पांच स्वरूप विराजे।
१. नवनीतप्रिय जी। २. श्री विट्ठलनाथ जी। ३. श्री द्वारिकानाथ जी ४—श्री गोकुलनाथ जी। ५. श्री मदन मोहन जी, ये पाँचों स्वरूप एक सिंहासन पै विराजै।

तथा अब्बुलफ़जल के कथनों के आधार पर कहना[1] है कि अकबर के जीवन में एक ऐसा समय आया था, जिसमें उसकी मानसिक प्रवृत्ति धार्मिक सत्य की खोज मे लगी थी और वह भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के फ़कीर, साधु-महात्मा तथा आचार्यों से मिलता था। अकबर की इस मानसिक परिस्थिति को स्मिथ महोदय ने बदायुनी तथा अब्बुल फ़जल के लेखो से प्रमाण देते हुये तीन अवस्थाओ में विभाजित किया है।[2] राज्यारोहण के कुछ साल बाद, आरम्भ में कई वर्ष तक अकबर एक उत्साही कट्टर सुन्नी मुसलमान रहा।[3] इसके बाद[4] सन् १५७४ ई० से १५८२ ई० तक उसकी धार्मिक वृत्ति उदार रही। इस समय ही वह सभी धर्मों के साधु-महात्मा तथा पण्डितो से एक जिज्ञासु के रूप में मिलता था। सन् १५७८ : ७९ ई० में उसकी धार्मिक जिज्ञासा अतुल हो गई और इस समय उसने अनेक धर्मों के प्रतिनिधियों को फतहपुर सीकरी में अपने इबादतखाने में निमन्त्रित किया।[5] और उनसे धर्म के सिद्धांतो पर बहस सुनी। फिर सन् १५८२[6] में उसने अपने को ईश्वर का दूत

१—दीनइलाही, रायचौधरी, सन् १९४१ संस्करण, पृ० ७२, ८२ तथा ९६। तथा अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ३४२।

२—For many years he was zealous, tolerably orthodox Sunni Musalman willing to execute Shias and other heretics- Next he passed through a stage (1574—82 A. D.) in which he may be described as a sceptical rationalizing Muslim and finally rejecting Islam, utterly he evolved an eclectic religion of his own with himself as its prohet. (1582—1605 A. D.) pp, 348, Akbar the Great Mogul by V. Smith 1917 Edition.

३—दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० ५७ : ६६।

४—दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० ७०। 'पीरियड आफ़ क्रैस्ट' चैपटर तथा कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भा० ४, पृ० १२०, १२१।

५—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भाग ४, पृ० १२१।
तथा, अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० १६२।
और अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ४५५।
तथा, अकबरनामा, भाग ३, पृ० ३६५ : ६६।
तथा, मुगल ऐम्पायर इन इण्डिया श्रीराम शर्मा, पृ० ३३२, ३४७-४८
तथा, दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० ७२ टिप्पणी।

६—दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० २७६।
तथा कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भाग ४, पृ० १२९।
तथा अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ४५६, क्रानालौजी।

मानकर तथा हिन्दू, मुसलमान, पारसी, जैन आदि धर्मों से विचार चुनकर एक स्वतन्त्र 'दीनइलाही' मत चलाया। अकबर की यह धार्मिक उदारता और जिज्ञासा चाहे उसके मन की सच्ची धार्मिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप रही हो और चाहे राजनीतिक गुप्त नीति के उद्देश्य से हो, इस विषय में स्मिथ तथा रायचौधरी मे मतभेद है[1], परन्तु इतना सभी इतिहासकार मानते हैं कि यह समय अकबर के जीवन मे उसकी धार्मिक उदारता का था। दीनइलाही मत चलाने के पहले उसके जिज्ञासु मन की दैन्यावृत्ति अवश्य कुछ अहङ्कार से रञ्जित हो गई होगी और ईश्वर के गुणगान के साथ वह अपने गुणगान सुनने का भी इच्छुक हो गया होगा। अपने को ईश्वर के दूतत्व-पद का अधिकारी कहना उसके अहङ्कार-भाव का द्योतक था। पीछे कहा गया है कि अकबर ने सूरदास से भी ईश्वर के गुणगान के अतिरिक्त अपना (अकबर के) गुणगान करने को कहा था और सूर ने इसके उत्तर मे गाया था—

नाहिंन रह्यो मनमें ठौर,
नन्द नन्दन अछत कैसे आनिये उर और
× × ×

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि अकबर सूरदार से सन् १५७४ ई० और सन् १५८२ ई० के बीच के समय मे कभी मिला।

'अकबरनामा' तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों से पता चलता है कि अकबर अजमेर-शरीफ की पवित्र यात्रा करने कई साल तक गया। सन् १५६८ से १५७९ ई० तक वह वहाँ की प्रत्येक वर्ष यात्रा करता रहा। बहुधा वह अजमेर की यात्रा से दिल्ली होकर आगरे या फतहपुर सीकरी लौटता था। सन् १५७९ ई० की यात्रा से लौटकर वह फिर अजमेर नही गया।[2] इस समय तक उसकी धार्मिक वृत्ति मुसलमान धर्म की कट्टरता से हटकर उदार हो चुकी थी। इस संवत् के कुछ ही समय पहले सन् १५७७ ई० मे अकबर ने गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी के नाम एक फर्मान[3] भी जारी किया था जिसमे उसने वल्लभसम्प्रदाय और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रति अपनी श्रद्धा का भाव प्रकट किया है। इसके बाद सन् १५८१ ई० में भी उसने गोस्वामी जी के लिए एक उदार फरमान जारी किया था।[4]

१—दीनइलाही, रायचौधरी, पृ० ६५।
२—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया, भाग ४, पृ० १२३।
और, अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० १८१।
तथा अकबरनामा, भाग ३, पृ० ४०५।
३—इम्पीरियल फरमान, झावेरी, पृ० ४१।
४—इम्पीरियल फरमान, झावेरी, पृ० ४२।

वल्लभसम्प्रदाय और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के परिचय के साथ-साथ अकबर को इस सम्प्रदाय के प्रमुख भक्तो से मिलने की अभिलाषा हुई होगी। लेखक का अनुमान है कि अकबर सूरदास जी से या तो सन् १५७७ ई० की अजमेर-यात्रा से लौटकर मिला हो अथवा सन् १५७९ ई० की अजमेर-यात्रा से फतहपुर सीकरी को[1] लौटता हुआ रास्ते मे मथुरा मे उनसे मिला हो। सन् १५७६ ई० में मिलना अधिक सङ्गत जँचता है, क्योकि अकबर ने उसी साल धार्मिक आचार्यों की वहसे सुनी थी और अपने दरबार में भी भिन्न-भिन्न मतो के महात्माओं को वुलाया था। इतिहास से ज्ञात होता है कि इसके वाद अकबर कई स्थानो पर उपद्रवो को शान्त करने, राज्यो को जीतने तथा राजकीय प्रवन्ध करने मे व्यस्त हो गया। सन् १५८१ का समय उसके लिए बड़ी चिन्ता का था। अनेक स्थानो पर खड़े होनेवाले उपद्रवो को शान्त करके वह पूरे एक एक वर्ष वाद अपनी राजधानी लौटा और आते ही सन् १५८२ मे उसने, जैसा कि अभी कहा गया है, अपना स्वतन्त्र धर्म स्थापित कर दिया। इसलिए सन् १५८१ के वाद सूरदास, कुम्भनदास आदि भक्तो से अकबर की भेट का स्थापित करना उचित प्रतीत नही होता। साधु और धर्माचार्यों से वह उसी समय अधिक जिज्ञासा के साथ मिला था, जव उसकी धार्मिक खोज प्रवल थी। इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सूरदास जी सन् १५७६ ई० अथवा सं० १६३६ वि० तक जीवित थे।

यदि हम सूरदास की मृत्यु का समय सं० १६२० मान ले, जैसा कि अव तक हिन्दी के विद्वानो ने माना है तो सं० १६२० (सन् १५६३) से पहले अकबर का, जो थोडे समय पहले ही राजगद्दी के सम्हालने मे समर्थ हुआ था और जिसकी धार्मिक प्रवृत्ति उस समय तक प्रवल और उदार नही हुई थी, सूर से मथुरा मे मिलना असङ्गत ही प्रतीत होता है।

८४ वैष्णवन की वार्ता मे हरिराय जी ने सूरदास के अन्त समय के वारे मे लिखा है कि जैसे कृष्ण ने पहले यादवो का अन्तर्द्धान किया और फिर स्वयं अन्तर्द्धान हुये उसी प्रकार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का भी पुरुषोत्तम का स्वरूप है और वे अपने प्रमुख भक्तो को लीला मे प्रवेश कराकर उनके पीछे ही स्वयं जायँगे। हरिराय जी कहते हैं,—"जो प्रभून की यही रीति है, जो जव वैकुण्ठ सो भूमि पर प्रकट होयवे की इच्छा करते हैं, तव वैकुण्ठवासी जो भक्त है सो पहले भूमि पर प्रकट करत हैं। पाछे अपने को या जगत् सो तिरोधान होय ता पाछे वैकुण्ठ मे लीला करत है............सो तैसे ही श्री आचार्य जी, श्री गुसाइँ श्री पूर्ण पुरुषोत्तम को प्राकट्य है। सो लीला सम्वन्धी वैष्णव प्रकट किये। अव श्री आचार्य जी आप अन्तर्द्धान लीला किये और श्री गुसाइँ जी को करनो है सो पहले

१—कैंब्रिज हिस्ट्री श्राफ़ इण्डिया, भाग ४, पृ० १२३।

भगवदीयन कूं नित्य लीला मे स्थापन करि के आपु पधारेंगे।"[1] हरिराय जी के इस कथन से ज्ञात होता है कि गुसाईं श्री विट्ठलनाथ की मृत्यु के कुछ ही साल पहले अनुमान से तीन चार साल, सूरदास जी का निधन हुआ होगा। पीछे के कथन से सूर की स्थिति स० १६३६ तक सिद्ध है। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का निधन सं० १६४२ माघ कृष्ण ७ को माना जाता है। इस अनुमान से सूरदास जी की मृत्यु लगभग सं० १६३८ अथवा १६३९ वि० में हुई। उस समय सूरदास जी की आयु लगभग १०३ वर्ष की थी।

परमानन्ददास के जीवन की रूप-रेखा

जन्म-स्थान, जाति-कुल

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार परमानन्ददास का जन्म स्थान कन्नौज[2] ज़िला फ़रुखाबाद था। कन्नौज एक प्राचीन नगर है जहाँ इत्र का व्यापार प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। वल्लभाचार्य जी की यहाँ पर एक बैठक अभी तक विद्यमान है। वार्ता के अतिरिक्त परमानन्ददास के जीवन वृत्तान्त का परिचय देनेवाले अन्य किसी ग्रन्थ मे उनके जन्म-स्थान अथवा बाल्यकाल के निवास-स्थान के विषय मे लिखा नही मिलता। वार्ता के अनुसार परमानन्ददास का जन्म एक निर्धन कान्यकुब्ज ब्राह्मण-कुल मे हुआ था।[3]

माता, पिता, कुटुम्ब तथा गृहस्थी

वार्ता अथवा अन्य किसी भी सूत्र से परमानन्ददास के माता-पिता का नाम ज्ञात नही होता। वार्ता में लिखा है कि कवि के माता-पिता पहले निर्धन थे; परन्तु कवि के जन्म-दिन ही एक सेठ ने उन्हे बहुत-सा द्रव्य दिया। उस समय उन्हें परमानन्द हुआ। वार्ताकार ने लिखा है कि इसी से कवि के माता-पिता ने कवि का नाम परमानन्द रक्खा[4] परमानन्ददास का बाल्यकाल बड़े सुख से व्यतीत हुआ। इनका यज्ञोपवीत

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ४५ : ४६ तथा लेखक के पास रक्षित, हस्तलिखित '८४, वैष्णवन की वार्ता'।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ ५८।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ ५८।

ब्रज से प्रयाग जाते समय प्राचीनकाल में लोग कन्नौज होते हुये ही जाया करते थे। लाहौर से कलकत्ते जानेवाली ग्रांड ट्रंक सड़क, जिसका जीर्णोद्धार बहुत समय के बाद अकबर के समय में हुआ था, इस स्थान पर होकर भी जाती है। परमानन्ददास के रहने के प्राचीन स्थान का लेखक ने कन्नौज में पता लगाया परन्तु वहाँ पर कवि के अथवा उसके किसी स्थान के विषय में उसे कोई पता नहीं चला। और न वहाँ कवि के वंशजों का ही कोई पता है।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ५९।

भी बडे उत्सव के साथ हुआ। एक बार कन्नौज में अकाल पड़ा तो वहाँ के हाकिम ने इनके पिता का सब द्रव्य लूट लिया।[1] तब इनके माता-पिता ने इनसे कहा—"हम तेरा विवाह भी नही कर पाये और सब द्रव्य लुट गया, अब कुछ कमाने की फिक्र करो।" परमानन्ददास की वृत्ति बाल्यकाल ही से वैराग्यमयी थी; इसलिए उन्होंने अपना विवाह और द्रव्य सञ्चय करने से इनकार कर दिया और माता-पिता से कहा,—"आप लोग बैठे-बैठे भजन करो, और खाने के लिए मैं कमाकर दूँगा।" परन्तु इनके पिता को धनी होने की लालसा थी, इसलिए वे धन कमाने के लिए पूर्व देश की ओर चल लिये। परमानन्ददास कन्नौज में ही रहते रहे। पूर्व देश में जब उनको जीविका न मिली तब वे दक्षिण देश गये। वहाँ उन्हे द्रव्य मिला और वे वही रहने लगे।[2] इसके बाद परमानन्ददास जी अपने माता-पिता के पास कभी गये अथवा नही, इस बात का उल्लेख वार्ताकार ने नही किया है। परमानन्ददास ने अपना विवाह नही किया। इसलिए इनके गृहस्थी का कोई बंधन नही था। हाँ, कीर्तन करनेवालो का समाज वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले ही इनके साथ बहुत था और उस समाज में ये स्वामी कहलाते थे।[3] पदो के आत्मचारित्रिक उल्लेखो में जहा उन्होंने कहा है कि परमानन्द घर में बटोही की तरह रहता है, वहाँ वार्ता के आधार से यही ज्ञात होता है कि घर का तात्पर्य वे अपने माता-पिता के संसर्ग को ही लेते हैं न कि स्त्री-पुत्रादि की पूरी गृहस्थी को। वार्ताकार ने कवि के किसी भाई अथवा बहिन का उल्लेख नही किया। सम्भव है, इनके माता के दक्षिण देश में कोई अन्य सन्तान हुई हो; परन्तु इस बात का कोई वृत्तान्त नही मिलता।

शिक्षा

परमानन्ददास जी की शिक्षा कन्नौज मे हुई होगी। "वे कही अन्यत्र विद्या पढ़ने गये", इस बात का कोई प्रमाण नही मिलता। उनके शिक्षागुरु कौन थे, इसका भी उल्लेख वार्ता अथवा अन्य किसी ग्रन्थ मे नही है। वार्ता से ज्ञात होता है कि कविता करने और गाने का शौक इन्हें बचपन ही से था और साधु-सङ्गति में इनका मन बहुत लगता था। वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले ही ये एक योग्य व्यक्ति, कवीश्वर, उच्चकोटि के गायक और कीर्तनियाँ प्रसिद्ध हो गये थे।[4]

१—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ५९।

२—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ६०।

३—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० ५९।

४—सो परमानन्ददास ने अपने घर कीर्तन को समाज कियो, सो गाम गाम में प्रसिद्ध भये। सो परमानन्ददास गान-विद्या में परम चतुर हते।

अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६०।

पीछे ये बड़े योग्य भये और कवीश्वर हू भये। वे अनेक पद बनाय के गावते सो स्वामी कहावते और सेवक हूँ करते सो परमानन्ददास के साथ समाज बहोत, अनेक गुनीजन सङ्ग रहते। अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ५९।

उस समय इनके कीर्तन का समाज वहुत वडा था। उस समाज मे परमानन्ददास 'स्वामी' की पदवी से सुशोभित थे, यह वात पीछे कही जा चुकी है। कविता और गान-विद्या सीखने के लिये इनके अनेक शिष्य हो गये थे तथा हमेशा गुणीजनो का ही इनका सग रहता था।

परमानन्ददास के मन की वृत्ति वाल्यकाल से ही वैराग्यमयी थी, यह पीछे कहा गया है। इनकी कविता और कीर्तन की कीर्ति दूर-दूर फैल गयी थी। एक वार परमानन्ददास जी मकर स्नान के लिये प्रयाग गये। वहाँ भी इनके कीर्तन की ख्याति फैली। उस समय आचार्य वल्लभजी प्रयाग के निकट अड़ैल स्थान पर रहा करते थे। अड़ैल के लोगो ने भी परमानन्ददास के कीर्तन सुने और इनके विपय मे श्री वल्लभाचार्य जी से कहा। वार्ता में लिखा है कि एक समय उष्णकाल का था।[1] इस समय परमानन्ददास जी विरह के पद ही गाते थे।[2] एकादशी की सम्पूर्ण रात्रि को कीर्तन करने के वाद, दूसरे दिन परमानन्ददास जी, स्वप्न में प्रेरणा पाकर अड़ैल गये। वहाँ वे श्री वल्लभाचार्य जी के अद्भुत-अलौकिक दर्शन से वहुत प्रभावित हुये। जव आचार्य जी से भेट हुई तव आचार्य जी ने परमानन्ददास से भगवत्-लीला गाने को कहा। परमानन्ददास ने उस समय भी विरह[3] के पद गाये। जव आचार्य जी ने वाललीला के पदगान की आज्ञा दी। उस समय कवि ने कहा,—महाराज, मुझे वाललीला का वोध नही हैं। तव आचार्य जी ने परमानन्ददास

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ६५।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ६५।

३— राग सारङ्ग

जिय की साध जिय ही रही री,
वहुरि गुपाल देखन नहि पाए विलपति कुंज अहीरी।
एक दिन सो जु सखी इहि मारग वेचन जाति दही री।
प्रीति केलि ··दान मिस मोहन मेरी वाँह गही री।
विनु देखे छिनु जात कलप भरि विरहा अनल दही री।
परमानन्द स्वामी विनु दरसन नैनन नदी वही री।

अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ७१ तया लेखक की ८४ वैष्णवन की वार्ता।

राग सारङ्ग

सुधि करत कमल दल नैन की।
भरि भरि लेत नीर अति आतुर, रति वृन्दावन चैन की।
दे दे गाढ़े आलिगन मिलती कुंज लता द्रुम रेन की,
वे वतियां कैसे करि विसरति वॉह उसीसा सैन की।

को स्नान कराकर शरण मे लिया। शरणागति की तिथि ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी चौरासी वार्ता के कथन से सिद्ध होती है।[1]

वल्लभ-दिग्विजय में लिखा है कि आचार्य जी ने जगदीश-यात्रा के वाद अड़ैल मे परमानन्द कान्यकुब्ज पर अनुग्रह कर उसे लीला दर्शन करवाये। इसके वाद श्री द्वारिकेश जी का आगमन[2] हुआ। इस प्रकार संवत् १५७६ वि० के लगभग श्री वल्लभाचार्य जी की शरण मे आने के वाद परमानन्ददास जी अड़ैल मे ही नवनीतप्रिय जी के समक्ष कीर्तन गाते रहे।[3] कुछ समय वाद परमानन्ददास जी ने श्री वल्लभाचार्य जी के साथ व्रज को प्रस्थान किया। रास्ते मे उनका गाँव कन्नौज पडा। वहाँ पर आचार्य जी तथा अन्य वैष्णवो को

१—'एकादशी के जागरण और व्रत के दूसरे दिन परमानन्ददास आचार्य जी से अड़ैल में मिले थे।' अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६४ : ७०।

२—तत्र संवत् १५७२ द्विसप्तत्युत्तरपञ्चदशशतेऽब्दे महालक्ष्म्यां गोस्वामिश्रीविट्ठलनाथानां प्रादुर्भावः समभवत् ···।···अथ पुनर्व्रजयात्रा कृता। ततः श्रीगोपीनाथयज्ञोपवीतमहोत्सवः समभूत्।······ततो जगदीशयात्रायां गङ्गासागरप्राप्तिः। कृष्ण-चैतन्यमिलनम्। रथयात्रोत्सवो जातः। ततो जगदीशात्प्रत्यागमनं चाभूत्। ततो हरिद्वारयात्रा।······ततः पुनरलर्कपुरे समागमनमभूत्। तत्र कविराजशिक्षणं कृतम्। कान्यकुब्जपरमानन्दमनुगृह्य लीलादर्शनं च कारितम्।······तत श्रीविट्ठलेशानां यज्ञोपवीतोत्सवः कृतः। ततः श्रीद्वारकेशागमनम्।
श्री वल्लभ-दिग्विजय, श्री यदुनाथ-कृत, पृष्ठ ५२-५३।

नोट :—श्री यदुनाथ जी-कृत "श्री वल्लभ-दिग्विजय" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि १५७२ वि० में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रादुर्भाव के बाद आचार्य जी चरणाद्रि से अड़ैल (अलर्कपुर) आये और वहाँ उन्होंने बालक विट्ठलनाथ जी का संस्कार किया। फिर उन्होंने कुछ समय बाद जगदीश्वर की यात्रा की जिसकी पूर्ति का संवत् वल्लभसम्प्रदाय में सं० १५७६ वि० माना जाता है। इस जगदीश्वर यात्रा से लौट कर आचार्य जी अड़ैल आये। उसी समय दामोदरदास सम्भलवाले के पास से 'श्री द्वारिकानाथ जी' का स्वरूप अड़ैल आया। श्री द्वारिकानाथजी के प्राकट्य की वार्ता में दामोदरदास सम्भलवाले की मृत्यु के बाद श्री द्वारिकानाथ जी के स्वरूप आने की तिथि सं० १५७६ वि० दी है। परमानन्ददास की वार्ता में श्री द्वारिकानाथ जी के आगमन का कोई उल्लेख नहीं है।

३—"तब परमानन्ददास नित्य नये पद करि के समय समय के श्री नवनीतप्रिय जी को सुनावते।" अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ ७५।

अपने घर ले गये[1] और सब का अतिथि-सत्कार किया। यहाँ पर परमानन्ददास ने विरह का एक पद गाया जिसको सुनकर आचार्य जी तीन दिन ध्यानावस्थित रहे। पद यह है—

[2]हरि तेरी लीला की सुधि आवै।

जब चौथे दिन आचार्य जी सावधान हुये, तब परमानन्ददास जी ने यह पद गाया—

[3]बिमल जस वृन्दावन के चन्द को।

उसी समय परमानन्ददास के जितने सेवक थे वे सब श्री वल्लभाचार्य जी की शरण मे आ गये। परमानन्ददास जी ने आचार्य जी से निवेदन किया—"महाराज यह तो पहली दशा मे स्वामीपनो हतो, तासो सेवक किये हते और अब तो मै आपु को दास हो·········· मैं अज्ञान दशा मे सेवक किये सो अब आप इनको शरण लेके उद्धार करिये।"[4] इसके बाद आचार्य जी परमानन्ददास को गोकुल ले गये। वहाँ रह कर परमानन्ददास ने गोकुल की बाल-लीला के अनेक पद बनाये। कुछ समय बाद वे गोकुल से आचार्य जी के साथ गोवर्द्धन

१—"सो व्रज को आवत मारग में परमानन्ददास को गाम कन्नौज आयो। तब परमानन्ददास ने श्री आचार्य जी सों विनती करि अपने घर पधराये।

अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ७७।

२—

राग सोरठ

हरि तेरी लीला की सुधि आवै।
कमल नैन मन मोहनी मूरति मन मन चित्र बनावै।
एक बार जाहि मिलत मया करि सो कैसे बिसरावै।
मुख मुसकानि बंक अवलोकनि, चाल मनोहर भावै।
कबहुँक निबड़ तिमर आलिंगित कबहुँक पिक स्वर गावै।
कबहुँक संभ्रम क्वासि क्वासि कहि सङ्गहीन उठि धावै।
कबहुँक नैन मूंदि अन्तरगति मनि माला पहिरावै।
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गमावै।
हरि तेरी लीला की सुधि आवै।

अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ७८।

राग गौरी

३—बिमल जस वृन्दाबन के चन्द को।
कहा प्रकास सोम सूरज को सो मेरे गोविन्द को।
कहत जसोदा सखियन आगे वैभव आनन्द कंद को।
षेलत फिरत गोप बालक सँग ठाकुर परमानंद को।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १८।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ८१।

गये और वहाँ पर श्री गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन से उन्हे परम आनन्द मिला। गोवर्द्धननाथ जी के समक्ष उन्होंने अनेक पद गाकर सुनाये। इसके कुछ समय बाद आचार्य जी ने परमानन्ददास को भी मन्दिर में कीर्तन की सेवा दी। और फिर जीवन पर्यन्त इसी सेवा मे वे रहे।

स्वभाव और चरित्र

परमानन्ददास जी बाल्यकाल से ही त्यागी और उदार चरित्र के प्राणी थे। यद्यपि इनके माता-पिता धनलोलुप थे, परन्तु इन्हे लोभ का लेश भी न था। वार्ता मे लिखा है कि इनके माता-पिता ने जब इनसे विवाह के लिए द्रव्य इकट्ठा करने को को कहा तो इन्होंने उत्तर दिया—"मेरे तो व्याह करनो नाही है और तुमने इतनो द्रव्य मेलो करि के कहा पुरुषारथ कियो, सगरो द्रव्य योही गयो। तासो द्रव्य आये को फल यही है जो वैष्णव ब्राह्मण को खवावनो। तासो मैं तो द्रव्य को संग्रह कबहूँ नाही करूँगों, और तुम खायवे लायक मोसो नित्य अन्न लेहू और बैठे-बैठे श्री ठाकुर जी को नाम लियो करो, जो अब निर्धन भये हो तासो अब तो धन को मोह छोड़ो।"[1] उस समय इनके पिता ने इनकी प्रकृति बताते हुये कहा,—"तू तो बैरागी भयो, तेरी संगति वैरागिनी की है, तासो तेरी ऐसी बुद्धि भई। और हम तो गृहस्थी हैं, तासो हमारे धन जोरे बिना कैसे चले, जो कुटुम्ब मे जाति में खरचै तब हमारी बड़ाई होय।"[2] पिता के आग्रह करने पर भी परमानन्ददास ने अपना विवाह और धन-सञ्चय नही किया। इससे सिद्ध होता है कि वे बहुत दृढ-सङ्कल्पी थे।

वार्ता से विदित है कि परमानन्ददास एक कला-प्रेमी व्यक्ति थे। उनको गान और कविता से प्रेम था और इन विद्याओ में वे निपुण भी थे। परन्तु इन शक्तियो का प्रयोग लौकिक विषयो मे नही किया, वरन् भगवद्-यश-कीर्तन मे उन्हे लगाया। इससे ज्ञात होता है कि बाल्यकाल से ही उनके मन की वृत्ति भक्ति की ओर झुकी थी। उनका स्वभाव बडा नम्र और विनयशील था और वे अपने को भगवान् के दासों का भी दास समझते थे। उनके सखा-भाव के पदो मे कही भी गोविन्दस्वामी की सी उच्छृङ्खलता नही है। वार्ता मे लिखा है कि एक बार[3] सूरदास, कुम्भनदास तथा रामदास आदि बहुत से वैष्णव उनकी कुटी पर मिलने गये। उस समय भगवद्भक्तो के शुभागमन से उनकी आत्मा

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६०।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ६०।

३—"सो सब भगवदीयन को अपने घर आये देखि के परमानन्ददास अपने मनमें बहोत प्रसन्न भये जो आज मेरो वड़ो भाग्य है, सब भगवदीय मेरे ऊपर कृपा करि के पधारे, ये भगवदीय कैसे हैं जो साक्षात् श्री गोवर्द्धननाथ जी को स्वरूप ही है। तासों आज मोपर श्री गोवर्द्धननाथ जी ने बड़ी कृपा करी है।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ८९।

एकदम फूल उठी, उनको प्रतीत हुआ कि भगवान् कृपा करके साक्षात् भक्त-रूप मे दर्शन दे रहे हैं।

योग्यता सम्पादन

वार्ताकार और भक्तमाल के रचयिता, दोनो ने परमानन्ददास के काव्य, कीर्तन और भक्ति की प्रशंसा की है। परमानन्ददास के काव्य और कीर्तन का ऐसा प्रभाव था कि सुननेवाले भावमग्न हो जाते थे। यह बात भक्त-माल मे कही गई है।[1] वार्ता में अनेक स्थलो पर परमानन्ददास के कीर्तनो की ख्याति का उल्लेख है। वार्ता और भक्तमाल, दोनो में ही कवि के काव्य-विषय का भी निर्देश हुआ है। भक्तमाल से विदित है कि परमानन्ददास ने कृष्ण की बाल, पौगण्ड और किशोर-लीलाओ का बड़ा प्रभावशाली तथा भक्ति-भाव से ओतप्रोत वर्णन किया। वार्ता मे भी परमानन्ददास के एक पद में उनके सम्पूर्ण काव्य का विषय दे दिया गया है। उन्होंने प्रथम अवतार-लीला का वर्णन किया, फिर कुञ्ज की लीला (रासादि) का, फिर चरणारविन्द की वन्दना, स्वरूप-वर्णन और प्रभु का माहात्म्य वर्णन किया।[2] और भी अनेक स्थानो पर वार्ताकार ने बताया है कि परमानन्ददास ने बहुत से पद कृष्ण की बाललीला पर बनाकर गाये।

उक्त वार्ता मे आये हुये कई स्थलो के उल्लेखो के आधार से हम कह सकते हैं कि परमानन्ददास ने बालभाव[3], कान्ता-भाव और दास[4]—भाव से भक्ति की और इन्ही भावों के अनुसार उन्होंने अधिक संख्या मे पद बनाकर गाये। वैसे उनके ग्रन्थो के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि उन्होंने सख्य और सखी भावो से भी कृष्ण की भक्ति की थी।

सूरदास और परमानन्ददास के काव्य, कीर्तन और भक्ति की प्रशंसा श्री विट्ठलनाथ जी, वार्ताकार श्री गोकुलनाथ जी और हरिराय जी, तीनो ने की है। वार्ता से ज्ञात होता है

१—भक्तिसुधा-स्वाद-तिलक, भक्तमाल, पृ० ५६५।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ ८४।

३—"या प्रकार सहस्रावधि कीर्तन परमानन्ददास ने किये, तासों परमानन्ददास के पद में बाल-लीला-भाव, और रहस्यहू झलकत है। सो जा लीला को अनुभव परमानन्ददास को भयो, ताही लीला के पद परमानन्ददास गाये।"
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ८६।

४—"या भांति परमानन्ददास ने बहोत कीर्तन किये। सो श्री गोकुल के दर्शन करि कें परमानन्ददास को श्री गोकुल पै वहोत आसक्ति भई। अब आचार्य जी के आगे ऐसे प्रार्थना के पद गाये जो, मोकों श्री गोकुल में आपके चरणारविन्द के पास राखो।·········सो ऐसे कीर्तन परमानन्ददास ने प्रार्थना के गाये"।
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ८३।

कि गोस्वामी जी अष्टसखा भक्तो मे इन्ही दो को सर्वश्रेष्ठ मानते थे; क्योकि इन्होंने कृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओ का गान सब से अधिक मार्मिक शब्दो मे किया था। गोसाई जी ने सूर और परमानन्द, दो ही को 'सागर' कहा है। परमानन्ददास की मृत्यु के बाद गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनके काव्य की जो प्रशसा की, उसके विषय मे वार्ता मे लिखा है,—"सो ता समय श्री गुसाई जी आपु उन वैष्णवन के आगे यह वचन श्री मुख सो कहे, जो ये पुष्टिमार्ग मे दोइ सागर भये—एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिन को हृदय अगाध रस, भगवद् लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं सो या प्रकार श्री गुसाई जी आपु श्रीमुख सों परमानन्ददास की सराहना किये।"[1]

एक स्थान पर वार्ताकार कहता है,—"तासों वैष्णव तो अनेक श्री आचार्य जी के कृपापात्र है, परन्तु सूरदास और परमानन्ददास ये दोऊ सागर भये, इन दोऊन के कीर्तन की संख्या नाही, सो दोऊ सागर कहवाये।"[2]

परमानन्ददास ने बहुत काल तक श्री गोवर्द्धननाथ जी के कोर्तन की सेवा की। इस सेवा को छोड़ कर वे कभी कही तीर्थ-यात्रा अथवा अपने गाँव कन्नौज गये, इस बात का वार्ता मे कोई उल्लेख नही है। वार्ता के कथन से यही विदित होता है कि परमानन्ददास जी अन्त समय तक गोवर्द्धनाथ की सेवा मे ही रहे। एक बार जन्माष्टमी के दिन गोस्वामी विट्ठलनाथ जी परमानन्ददास जी को साथ लेकर गोकुल आये और वहाँ जन्माष्टमी मनाई गई। उस समय परमानन्ददास ने श्री नवनीतप्रिय जी के समक्ष बधाई के कई पद गाये।[3] उनमें से एक पद निम्नलिखित है—

अन्तकाल तथा मृत्यु स्थान

राग कान्हरो।

रानी तिहारो घर सुबस बसो।
सुनो हो जसोदा तिहारे ढोटा को न्हातहू जिनि बार पसो।

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १००।

२—अष्टछाप, कांकरौली पृ० ७५।

नोट :—वास्तव में भक्तमाल और वार्ता के कथनों की पुष्टि परमानन्ददास के पदों से होती है। अब तक हिन्दी-संसार को परमानन्द-सागर और उसके अमूल्य भाव-रत्नों का पता नहीं था। सौभाग्य से हमें कांकरौली, विद्या-विभाग में परमानन्द सागर की तीन प्रतियां देखने को मिल गई हैं, उनमें पद-संख्या लगभग दो हजार है। सम्भव है, इनके पदों का संग्रह अन्यत्र भी मिले।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ६४।

कोउ करत बेद मंगल धुनि कोऊब गावो कोऊ हँसो ।
निरखि निरखि मुख कमल नैन को आनन्द प्रेम हियो हुलसो ।२
देत असीस सकल गोपीजन कोऊब अति आनंद लसो ।
परमानन्द नंद घर आनन्द पुत्र जनम भयो जगत जसो ।३

दूसरे दिन नवमी को दधिकाँदो का उत्सव मनाया गया । उस समय परमानन्ददास आनन्द मे नाचने लगे और प्रेम में इतने विभोर हो गये कि उनको अपने ताल-स्वर का भी भान न रहा । उसी समय उन्हे मूर्छा आगई । थोड़ी देर की समाधि के बाद गुसाईं जी के उपचार से वे सावधान हुये ।[1] फिर उन्होंने उपर्युक्त एक पद आशीर्वाद का गाया—

'रानी तिहारो घर सुबस बसो ।'

इसके बाद इसी दिन गोसाईं जी के साथ वे श्री गोवर्द्धन आये और वहाँ श्रीगोवर्द्धन-नाथ जी के समक्ष फिर भावमग्न हो गये । उस समय श्री गोसाईं जी ने कहा—"जो जैसे कुम्भनदास को किशोरलीला मे निरोध भयो सो तैसो वाललीला मे परमानन्ददास को निरोध भयो ।"[2] इसके बाद परमानन्ददास की मूर्छा फिर जगी और वे गोवर्द्धन से उतर कर सुरभी कुण्ड के ऊपर अपने ठिकाने कुटी में आये । वहाँ उन्होंने बोलना छोड दिया । जब गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को यह बात ज्ञात हुई कि परमानन्ददास जी विकल हैं और बोलते नही हैं तो वे उनके पास आये । गुसाईं जी ने उनके मस्तक पर हाथ फेरा और कहा,—"परमानन्ददास हम तिहारे मन की जानत हैं, जो अब तिहारो दर्शन दुर्लभ भयो ।"[3] उस समय परमानन्ददास ने आँख खोली और गाया[4]—

प्रीति तो नन्द नन्दन सो कीजै ।
संपति विपति परे प्रति पाले कृपा करे तो जीजे ।१
परम उदार चतुर चिंतामनि सेवा सुमिरन माने ।
चरन कमल की छाया राखे अंतरगति की जाने ।२
वेद पुरान भागवत भाषै कियो भक्त को भायो ।
परमानन्द इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पायो ।३

उसी समय एक वैष्णव ने परमानंददास से पूछा,—"परमानददास जी ! मुझे कुछ साधन बताओ, जिससे भगवान मुझ पर कृपा करें ।" उस समय परमानंददास ने कहा,—

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ९६ ।
२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ९७ ।
३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ९८ ।
४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ९८ तथा लेखक की ८४ वैष्णवन की वार्ता ।

"या बात को मन लगायके सुनोगे तो फल सिद्धि होयगी।" उसी समय उन्होंने श्री आचार्यजी श्री गोस्वामी जी और उनके सात बालको के चरणो की वंदना का निम्नलिखित पद गाया—

प्रातकाल उठि करि करिये श्री लछमन सुत गान।
प्रकट भए श्री वल्लभ प्रभु देत भक्ति दान।
श्री विट्ठलेस पूरन कृष्न रूप के निधान।
श्री गिरिधर श्री गिरधर उदय भयो आन।
श्री गोविद आनन्द कन्द कहा वरनों गुन आन।
श्री बालकृष्न वालकेलि रूही सुहान।
श्री गोकुलनाथ प्रकट कियो मारग बखान।
श्री रघुनाथ लाल देखि मन्मथ ही लजान।
श्री यदुनाथ (महाप्रभु) महाप्रेम पूरन भगवान।
श्री घनस्याम पूरन काम पोथी मे ध्यान।
पांडुरंग श्री विट्ठलेस करत वेद गान।
परमानन्द निरखि लीला थके सुर विमान।[1]

अंत समय में गोस्वामी जी ने पूछा,—परमानददास तुम्हारा मन कहाँ हैं? उन्होंने उत्तर में फिर गाया—

राधे वैठी तिलक सँभारति।[2]

इस प्रकार युगल-लीला मे मन लगाकर[3] परमानददास ने अपनी देह छोड़ी। उस समय, जैसा कि पीछे कहा गया है, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने परमानददास को, सूर का समकक्ष वताते हुये 'सागर' की पदवी से सुशोभित किया और उनकी भक्ति और काव्य की प्रशंसा की।

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ६६ तथा ८४ वार्ता, लेखक पास सुरक्षित।

२— राधे बैठी तिलक सँभारति।
मृगनैनी कुसुमायुध कर धरि नन्द सुवन को रूप बिचारति।
दर्पन हाथ सिंगार बनावति, बासर जुग सम टारति।
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सों हरि संग केलि संभारति।
वासर गत रजनी व्रज आवत मिलत गोवर्द्धन प्यारी।
परमानन्द स्वामी के सँग मुदित भई ब्रजनारी।
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ६६ तथा लेखक की ८४ वैष्णवन की वार्ता।

३—"सो या प्रकार जुगल-स्वरूप की लीला में मन लगाय के परमानन्ददास देह

वार्ता से विदित है कि परमानंददास की मृत्यु सुरभी कुण्ड पर, जहाँ उनका स्थायी-निवास स्थान था, हुई। यह स्थान अब भी इस बात के लिए प्रसिद्ध है कि यहाँ परमानंददास जी रहते थे। वार्ता से यह भी विदित होता है कि परमानंददास की मृत्यु सूरदास और कुम्भनदास के बाद[1] हुई।

कवि के आत्मचारित्रिक उल्लेख, चौरासी वैष्णवन की वार्ता अथवा अन्य किसी लिखित ग्रंथ से परमानंददास जी की जन्मकाल अथवा अंतकाल की तिथियाँ नहीं मिलतीं। वल्लभ-सम्प्रदाय मे एक विश्वास प्रचालित है कि परमानंददास जी श्री वल्लभाचार्य जी से १५ वर्ष छोटे थे और सूरदास जी आचार्य जी के समवयस्क थे। श्री वल्लभाचार्यजी का जन्म संवत् १५३५ वि० में हुआ। इस संवत् में १५ वर्ष जोड़ने से परमानंददास का जन्म संवत् १५५० वि० आता है। वल्लभसम्प्रदाय मे अष्ट-सखाओं के जन्म-दिवस प्रकट रूप से नहीं मनाये जाते; क्योंकि आचार्यों के सिवाय दास अथवा भक्तो के दिवस मनाने की प्रथा वल्लभसम्प्रदाय में नही है। फिर भी कुछ महानुभावों के जन्म-दिवस यदि किसी आचार्य के जन्म-दिवस पर आ पडते हैं तो गुप्त रूप से मना लिये जाते हैं। इस बात को वे लोग ही जानते हैं जो परम्परा-प्राप्त सेवा-विधि के जाननेवाले हैं और वे इस बात को गुप्त रखते हैं। वल्लभसम्प्रदाय परमानंददास जी का जन्म दिवस श्री गोकुलनाथ जी के प्राकट्य के दिन अर्थात् अगहन सुदी सप्तमी सोमवार के दिन मनाया जाता है।

परमानन्दास जी की जन्म, शरणागति तथा गोलोकवास की तिथियां—जन्मतिथि

इस प्रकार प्राचीन किंवदन्ती और वल्लभसम्प्रदाय में प्रत्येक वर्ष कार्य-रूप में लाने-वाली परम्परा के आधार से परमानंददास जी की जन्म-तिथि संवत् १५५० वि० अगहन सुदी ७ सोमवार सिद्ध होती है।

पीछे हम श्री यदुनाथ जी-कृत 'वल्लभ दिग्विजय' के आधार पर कह आये हैं कि परमानंददास जी संवत् १५७६ वि० जेष्ठ शुक्ल द्वादशी को अर्थात् लगभग २६ वर्ष की

छोड़ि के श्री गोवर्द्धननाथ जी की लीला में जाय प्राप्त भये।"

अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ९९।

१—"जैसे कुम्भनदास कों किशोरलीला में निरोध भयो तो तैसे बाललीला में परमानन्ददास को निरोध भयो है।" अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ९७। 'जो ये पुष्टि मार्ग में दोई सागर भये, एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास।"
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १००

शरणागति-समय अवस्था में श्री वल्लभाचार्य की शरण में आये।[1] परमानन्ददास जी सूर के वाद श्री वल्लभाचार्य जी की शरण में गये थे।[2]

पीछे कहा गया है कि परमानन्ददास जी ने गोस्वासी विट्ठलनाथ जी के सातों बालकों की बधाई और बंदना गाई है। गोस्वामी जी के सातवे पुत्र 'घनश्याम जी' का जन्म संवत् १६२८ वि० मे हुआ था। इससे यह सिद्ध होता है कि

परलोकवास तिथि परमानन्ददास जी कम-से कम संवत् १६२८ वि० तक तो जीवित थे ही। सात वालकों की बधाईवाले पद में कवि ने श्री घनश्याम जी के विषय में इस प्रकार लिखा है,—"श्री घनस्याम, पूरन कांम, पोथी में ध्यान।"[3] श्री घनश्याम जी को परमानन्ददास ने विद्याध्ययन करते देखा होगा तभी तो उन्होंने लिखा है,—'पोथी मे ध्यान।' उस समय अनुमान से घनश्याम जी की आयु लगभग आठ या दश वर्ष की अवश्य रही होगी; क्योकि दत्तचित्त होकर पढ़नेवाले वालक की आयु नौ या दश वर्ष की अवश्य होनी चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि परमानन्ददास ने इस पद की रचना सवत् १६३८ वि० के लगभग की। वार्ता में लिखा है कि सात वालको की बधाई का पद परमानन्ददास ने अपने अन्त समय मे गाया था।[4] सम्भव है कि इस पद की रचना कुछ पहले की हो और वैष्णवों को उपदेश देते समय यह पद अन्त समय में गा दिया हो। परमानन्ददास का गोलोकवास कुम्भनदास जी की मृत्यु के बाद हुआ था। लेखक ने प्रमाण देकर कुम्भनदासजी के निधन का सम्वत् १६३९ वि० माना है। लेखक का विचार है कि परमानन्ददास की मृत्यु भी सूरदास और कुम्भनदास की मृत्यु के बाद लगभग सम्वत् १६४० वि० मे हुई होगी।

श्री हरिरायजी-कृत भावप्रकाश वाली चौरासीवार्ता मे अष्टछाप कवियो के साम्प्रदायिक विश्वासानुसार लीलात्मक स्वरूप दिये हुये हैं। उक्त वार्ता मे परमानन्ददास जी को दिन की गोचारण-लीला मे 'तोक' सखा और रात्रि की कुञ्जलीला में 'चन्द्रभागा' सखी लिखा है।[5]

१—वल्लभ-दिग्विजय श्री यदुनाथ-कृत, पृ० ५२ तथा ५३।

२—"सो श्री आचार्य जी आपु अनुक्रमणिका द्वारा श्री भागवत रूपी समुद्र परमानन्ददास के हृदय में स्थापन कियो। सों तैसे ही प्रथम सूरदास के हृदय मे अनुक्रमणिका द्वारा श्री भागवत रूपी समुद्र स्थापन कियो हतो।"
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ७४।

३—इसी ग्रन्थ में पीछे दिया हुआ कवि के अन्तकाल का वर्णन, पृ० २२८।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ ६६।

५—अष्टछाप, कांकरौली पृ० ५८।

कुम्भनदास के जीवन-चरित्र की रूपरेखा

पीछे कहे आधारों से कुम्भनदास जी के जीवन की रूप-रेखा इस प्रकार है।

जन्मस्थान, जाति-कुल

हरिराय-कृत भावप्रकाशवाली तथा संवत् १६९७ वि० की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि कुम्भनदास जी ब्रज मे गोवर्द्धन पर्वत से कुछ दूर 'जमुनावतो' गाँव मे रहा करते थे।[1] गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता के कथन से इस बात की पुष्टि होती है तथा उससे यह भी ज्ञात होता है कि कुम्भनदास का जमुनावतो गाँव मे ही जन्म हुआ था।[2] वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि परासौली चन्द्रसरोवर के पास इनके बाप-दादो के खेत थे। कुम्भनदास वहाँ रहकर खेती कराया करते थे और इनका कुटुम्ब जमुनावतो में ही रहता था। परासौली, चन्द्रसरोवर से ही ये श्रीनाथ जी के मन्दिर में समय-समय की सेवा पर कीर्तन करने जाते थे। इनका जन्म गोरवा क्षत्रिय कुल मे हुआ था।[3]

माता-पिता, कुटुम्ब

वार्ताओ से अथवा अन्य किसी सूत्र से कुम्भनदास जी के माता-पिता का नाम ज्ञात नही होता।[4] गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता से ज्ञात होता है कि इनके एक चचा का नाम धर्मदास था जो बड़ा भगवद्-भक्त था। वार्ता में लिखा है कि कुम्भनदास की स्त्री 'जैत' गाँव के पास बहुला वन की रहनेवाली थी।[5] कुम्भनदास जी का कुटुम्ब बहुत बडा था। इनके सात पुत्र थे और सातों पुत्रों की स्त्रियाँ थी। इनकी एक विधवा भतीजी भी थी जिसे ये बहुत प्यार करते थे।[6] कुम्भनदास के यहाँ धन का सदैव अभाव रहता था।[6] खेती से जो आय होती उसी पर ये अपना निर्वाह करते थे। एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने विनोद में इनसे पूछा—"कुम्भनदास जी, तुम्हारे कितने पुत्र हैं?" इन्होंने उत्तर दिया,—

१—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ६ तथा ७।

२—"सो जमुनावतो में कुम्भनदास रहते, सो परासौली चन्द्रसरोवर के ऊपर कुम्भनदास के बाप दादान के खेत हते, तहाँ कुम्भनदास खेती करते, सो कुम्भनदास खेत अर्थ बहोत रहते हते।" चौरासी वैष्णवन की वार्ता, हरिराय जी-कृत भावप्रकाश, तथा अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०४।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०१

४—"जमुनावतो ग्राम में एक धर्मदास व्रजवासी हतो सो बड़ो भगवद्भक्त हतो। सो कुम्भनदास को काका लगत हतो और चतुरानागा को शिष्य हतो वाके दोय से चार सै गाय हती।" श्री गोवर्द्धनाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें प्रे०, पृष्ठ ६।

५—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०५।

६—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १३६

"डेढ़, महाराज ! यों तो सात बेटा है तामें पाँच तो लौकिकासक्त हैं, जो वे बेटा काहे के हैं। और पूरो एक बेटा तो चत्रभुजदास है और आधो बेटा कृष्णदास है, सो गोवर्द्धननाथ जी की गायन की सेवा करत है।"[1] तब गुसाईं जी ने प्रसन्न होकर कहा,—"कुम्भनदास जी तुम सच कहते हो, जो भगवदीय है सोई बेटा है और अधिक बेटा हुये तो किस काम के।" कुछ समय बाद इनके पुत्र कृष्णदास को श्रीनाथ जी की गाय चराते हुये सिंह ने मार डाला। पाँच बड़े पुत्र इन्होंने अलग कर दिये। केवल चतुर्भुजदास इनके मन का पुत्र था जिसके साथ ये रहा करते थे।[2]

कुम्भनदास जी के चाचा धर्मदास जी बड़े भगवद्भक्त थे। बाल्यकाल में इनके ही सङ्ग मे ये रहा करते थे। उन्ही से कुम्भनदास ने भगवन्भक्ति की शिक्षा बाल्यकाल ही से पाई थी।

शिक्षा

धर्मदास जी कृष्णभक्त चतुरोनगन (नागा चतुरदास जी) के शिष्य थे[3] जो सदा ब्रज में विचरण किया करते थे। चतुरनागा जी के भक्ति का वर्णन नाभादास जी ने भी किया है।[4] सम्भव है कि वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहले कुम्भनदास जी भी उन्ही से शिक्षा ग्रहण करते रहे हों। वल्लभसम्प्रदाय में आने के बाद तो कुम्भनदास का वैष्णवों के साथ सत्सङ्ग हुआ ही करता था। कुम्भनदास की रचनाओ से ज्ञात होता है कि ये अधिक विद्वान न थे। चौरासीवार्ता में लिखा है कि वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले ये कीर्तन अच्छा गाते थे।[5] इसीलिए श्रीवल्लभाचार्य जी ने इन्हें श्रीनाथ जी के मन्दिर मे कीर्तन की सेवा दी थी।

सम्प्रदाय में आने के बाद कुम्भनदास जी ने वल्लभाचार्य जी के उपदेशों को बड़ी एकाग्रता के साथ ग्रहण किया। उन्होंने आचार्य जी के सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त कर केवल अपना पाण्डित्य ही नही बढाया, वरन् उन सिद्धान्तों को कार्य-रूप मे लाकर अपने को भगवान् का उच्चकोटि का भक्त और सेवक भी बनाया था। आचार्य जी द्वारा

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १४२।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २६०, चतुर्भुजदास की वार्ता।

नोट—इनके वंशज अब भी कांकरौली में विद्यमान हैं जो संवत् १७२६ वि० में ब्रज से श्री द्वारिकानाथ जी के साथ, कांकरौली चले गये थे। श्री नरेन्द्र वर्मा जी, कांकरौली राज्य के एक कर्मचारी इन्हीं के वंशज हैं जो बड़े विद्यानुरागी और हिन्दी के कवि हैं।

३—"धर्मदास, व्रजवासी बड़ो भक्त हतो सो कुम्भनदास को काका हतो और चतुरानागा को शिष्य हतो।"श्रीगोवर्द्धननाथजी के प्राकट्य की वार्ता,बें० प्रे०,पृ० ६।

४—भक्तमाल, छप्पय नं० १४८।

५—"सो कुम्भनदास कीर्तन बहोत सुन्दर गावते। कण्ठहू इनको बहोत सुन्दर हतो।" अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०८

कुम्भनदास जी के शिक्षा-ग्रहण करने का वृत्तान्त वार्ता में इस प्रकार दिया है—एक बार कुम्भनदास ने आचार्य जी से पुष्टिमार्ग का सिद्धान्त पूछा। आचार्य जी ने तब चौरासी अपराध, राजसी, तामसी, सात्विकी भक्तो के लक्षण और प्रातःकाल से शयन पर्यन्त की सेवा का प्रकार तथा बाललीला और किशोरलीला के भाव का रहस्य कुम्भनदास जी को समझाया।[1]

श्री वल्लभाचार्य जी के अष्टछापी चार शिष्यो मे कुम्भनदास ही आचार्य जी के सबसे प्रथम शिष्य हुये। श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में लिखा है कि संवत् १५३५ वि० वैसाख वदी ११ बृहस्पतिवार को श्री गोवर्द्धन के मुखारविन्द का प्राकट्य गोवर्द्धन पर हुआ।[2] उस समय कुम्भनदास जी दश वर्ष के बालक थे और श्रीनाथ जी के निकट खेला करते थे।[3] सम्वत् १५४९ वि० फाल्गुन सुदी ११ को झारखण्ड की यात्रा मे आचार्य जी को प्रेरणा हुई कि गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी का प्राकट्य हुआ है। वे उसी समय यात्रा छोडकर व्रज मे आये और मथुरा होते हुए श्री गोवर्द्धन की तरहटी में बसे हुये 'आन्योर' गाँव में आकर उतरे। उन्होंने गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी के स्वरूप का दर्शन किया और वहाँ के वैष्णवो की सहायता से गोवर्द्धन पर एक छोटा-सा मन्दिर बनवाया। उसमें श्रीनाथ जी को पाट बैठाया। उसी समय एक रामदास चौहान भवगद्भक्त को उन्होंने अपना शिष्य बनाया था, उसे उन्होंने श्रीनाथ जी की सेवा दी।[4]

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन

चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे लिखा है कि उसी समय कुम्भनदास जी ने समाचार सुना कि आन्योर के पास एक महापुरुष आये हैं और उनके बहुत से सेवक हुये हैं। उनके मनमे भी उनके सेवक बनने की आई और वे अपनी स्त्री-सहित वल्लभाचार्य के पास

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १६७।

नोट :—श्रीनाथ द्वार के निज पुस्तकालय में व्रजभाषा का एक ग्रन्थ 'सेवा प्रकार' है जिसकी प्रतिलिपि लेखक के पास है। इस ग्रन्थ में लिखा है कि यह ग्रन्थ श्री आचार्य जी ने कुम्भनदास जी को सुनाया। श्री वल्लभाचार्य जी का हिन्दी भाषा में कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। संभव है, इस प्रकार के उपदेश आचार्य जी ने कुम्भनदास जी को दिये हों और उन्हें कुम्भनदास जी के बाद हरिराय जी ने व्रजभाषा में लिपिबद्ध करा दिया हो। इस ग्रन्थ में उन्हीं विषयों का वर्णन है जो ऊपर कहे चौरासी वार्ता के आधार से कहे गये हैं।

२—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ४, वें० प्रे०।

३—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ७, वें० प्रे०।

४—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० ९ से १३ तक।

पहुँचे।[१] उस समय कुम्भनदास जी के कोई सन्तान नही थी। उनकी स्त्री ने मनोरथ किया,—"मेरे कोई सन्तति नही है, सो वे महापुरुष देय तो होय।" आचार्य जी के पास पहुचकर कुम्भनदास जी ने आचार्य जी से निवेदन किया—"महाराज, वहोत दिन ते भटकत हतो सो अव आप मो ऊपर कृपा करो।" तव आचार्य जी ने कुम्भनदास और उनकी स्त्री को शरण मे लिया। उस समय उनकी स्त्री ने आचार्य जी से वेटा होने का आशीर्वाद माँगा। कुम्भनदास ने उसी समय अपनी स्त्री से कहा,—"यह कहा तेने आचार्य जी के पास माँग्यो, जो ठाकुर जी माँगती तो ठाकुर जी देते।" तब स्त्री ने उत्तर दिया—'जो मोको चहियत हुतो सो मैंने माँग्यों और जो तुमको चाहिये सो तुम माँग लेहु।"[२] उसी समय, जैसा कि पीछे कहा गया है, आचार्य जी ने श्रीनाथ जी को छोटे मन्दिर में विठाकर उनकी सेवा रामदास चौहान को दी थी। उस समय कुम्भनदास जी कीर्तन वहुत अच्छा गाते थे और उनका कण्ठ भी मधुर था।[३] इसलिये आचार्य जी ने कुम्भनदास को कीर्तन की सेवा दी। आचार्य जी कुम्भनदास के युगल-लीला-सम्वन्धी कीर्तनो को सुनकर वहुत प्रसन्न हुये और उन कीर्तनो के 'मधुर' भाव के आधार से उन्होंने कुम्भनदास जी से कहा,—"कुम्भनदास तुम्हे निकुञ्ज लीला सम्वन्धी ्स को अनुभव भयो।"[४] कुम्भनदास ने स्वीकार करते हुये कहा,—"महाराज मो को तो सर्वोपरि यही रस को अनुभव कृपा करि के दीजिये।"[५] इसके वाद कुम्भनदास जी ने वहुत से कीर्तन वना कर गाये।

वार्ता मे कुम्भनदास जी के साम्प्रदायिक जीवन की अनेक घटनाये ऐसी भी दी है जिनसे उनकी भगवद्भक्ति, भाव की महानता और त्याग का परिचय मिलता है।

जिस समय गोवर्द्धननाथ जी (श्रीनाथ जी) छोटे ही मन्दिर में विराजते थे, उस समय किसी म्लेच्छ ने चढाई की और सव गाँवो को लूटता हुआ श्रीनाथजी के मन्दिर की ओर आया। उस समय म्लेच्छ के भय से सद्दू पाँडे, माणिकचन्द पाण्डेय, रामदास चौहान और कुम्भनदास जी, ठाकुर जी को एक भैंसे पर विठाकर टोड के वन मे भगाकर ले गये। यह घटना सम्वत् १५६५ वि० से पहले की है; क्योकि सम्वत् १५६५ वि० मे श्रीनाथजी ने वडे मन्दिर मे प्रवेश किया था। उससे पहले छोटे मन्दिर मे ही विराजते थे। वहां वन

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०७।

३—"सो कुम्भनदास कीर्तन वहुत सुन्दर गावते, कण्ठहू इनको वहुत सुन्दर हतो तासों कुम्भनदास सों श्री आचार्य जी आपु कहे जो तुम समय समय के कीर्तन नित्य श्री गोवर्द्धननाथ जी को सुनाइयो।' अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०८।

४—तथा ५—अष्टछाप कांकरौली पृ० १०९।

में सब वैष्णवों के पैरों में कांटे गड़ गये और उनकी धोतियाँ फट गईं। सब लोग कई दिन के भूखे थे। उस समय कुम्भनदास जी ने श्रीनाथ जी के समक्ष एक विनोदपूर्ण पद गाया—

राग सारङ्ग

भावत है तोहि टोड़ को घनो।[1]

काँटे लगे गोखरू टूटे फट्यो जात सब तनौ।
सिहो कहा लोखटी को डर यह कहा बानक बन्यो।
कुम्भनदास प्रभु तुम गोवर्द्धन धर वह कोन रॉड ढेडनी को जन्यो।

इसके बाद जब म्लेच्छ का उपद्रव मिट गया तब कुम्भनदास आदि वैष्णव श्रीनाथजी को गोवर्द्धन पर वापिस ले आये।[2]

कुम्भनदास जी ने बहुत से पद बनाये और उनके पद देश मे विख्यात हुये।[3] एक बार उनका एक पद किसी कलावान ने अकबर बादशाह के समक्ष फतेहपुर सीकरी मे गाया। पद को सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उस कलावान से पद के रचयिता का परिचय पूछा। कलावान के परिचय देने पर अकबर बादशाह की इच्छा कुम्भनदास जी से मिलने की हुई। उसने कवि को बुलाने के लिए जमुनावतो सवारी भेजी। जब हलकारे कुम्भनदास जी के पास पहुँचे और बादशाह का हुकुम उन्हे सुनाया तो उन्होंने उत्तर दिया,— "भाई, हमारा बादशाह से क्या काम है?" परन्तु जब उन्होने सोचा कि यह आपदा टलनेवाली नहीं है, वे उन हलकारो के साथ पैदल चल दिये, सवारी पर नहीं बैठे। कुम्भनदास जब फतेहपुर सीकरी मे पहुँचे और दरबार के भीतर बुलाये गये, उस समय वे "तनिया पहरे, फटी मैली पाग, पिछोरा, टूटे जोड़ा सहित देशाधिपति के आगे जाय ठाढ़े भये।[4]" बादशाह ने कहा,—"बाबा साहब, बैठिये।" स्थान शाही ढङ्ग से सजा हुआ था। इस सजावट का वर्णन करते हुये वार्ताकार कहता है,—"तहाँ जड़ाऊ रावटी ही, तामे मोतिन की झालरि लागी रही है और सुगन्ध की लपट आवत है, परन्तु कुम्भनदास जी के मन मे महादुख, जो जीवतो मानो नरक मे बैठ्यो हूँ, यासों तो मेरे व्रज के हीसन के रुख आछे हैं जहाँ साक्षात श्री गोवर्द्धन खेलत हैं।"[5] देशाधिपति ने कुम्भनदास से पद गाने के लिए

१—'टोड़ का घना' व्रज में जतीपुरा से सात फरलांग पर है। इस स्थान पर आजकल श्याम तमाल और कदम्ब के बहुत वृक्ष हैं।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०६ : ११७।

३—"सो कुम्भनदास जी के पद जगत में प्रसिद्ध भये।" अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ११७।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ११६ तथा १२०।

५—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १२०।

कहा। कुम्भनदास जी लाचार होकर पद गाने को उद्यत हुये; परन्तु सोचा कि कोई ऐसा पद गाऊँ जो देशाधिपति को बुरा लगे। "जाको मन मोहन अङ्गीकार करै। एको केस खसे नही सिर ते जो जग वैर परे।" उस समय उन्होंने यह नया पद बनाकर गाया।[1]—

भक्तन को कहा सीकरी सों कामं।
आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरि नाम।
जाको मुख देखे दुख लागे ताको करन परी परनाम।
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन यह सब झूठो धाम।[2]

इस पद को सुनकर देशाधिपति बहुत कुढ़ा और उसने सोचा—"इनको कुछ मुझसे लालच हो तो ये मेरा यश गावे, इनको तो अपने परमेश्वर से सच्चा स्नेह है।" बादशाह ने कुम्भनदास जी से कुछ माँगने के लिये कहा। कुम्भनदास ने उत्तर दिया—आज पाछे मोको कबहूँ बुलाइयो मति" तब देशाधिपति ने कुम्भनदास को बिदा किया।[3] भक्त कवि को ये दो दिन श्रीनाथ जी के वियोग मे दो युग के समान दुखदायी बीते। इस घटना से कुम्भनदास की दृढ भक्ति, ईश्वर मे पूर्ण विश्वास, लौकिक आश्रय का त्याग, हृदय की निर्भीकता तथा निस्पृहता का परिचय मिलता है।

एक बार राजा मानसिह दिग्विजय करके आगरे लौट रहा था। रास्ते मे वह मथुरा मे केशवराय जी के दर्शन करता हुआ गोवर्द्धन आया।[4] वहाँ उसने गोवर्द्धननाथ जी के दर्शन किये। मन्दिर मे कुम्भनदास जी भोग-दर्शनो के कीर्तन कर रहे थे। जैसा कोटि कन्दर्प लावण्ययुक्त श्रीनाथ जी का रूप था वैसे ही सुन्दर कुम्भनदास जी के कीर्तन थे।[5] वार्ता मे लिखा है कि उन दिनो श्रीनाथ जी की सेवा बडे वैभव के साथ होती थी। गर्मी के दिन थे, उस समय श्रीनाथ जी का बड़ा मन्दिर तैयार हो चुका था।[6] गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता के अनुसार नवीन मन्दिर की पूर्ति तथा उसमे श्रीनाथ जी का पाटोत्सव सवत् १५७६ वि० मे हुआ था।[7] इसलिए कुम्भनदास जी की राजा मानसिह से

१—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १२१।
२—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १२१।
३—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १२१।
४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १२३ तथा १२४।
५—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १२४।
६—"तिन दिनन में श्रीनाथ जी की सेवा वैभव सों होत हुती, बड़ो मन्दिर सिद्ध भयो हुतो।" अष्टछाप, डा० वर्मा पृ० ७६।
७—"और जो वड़ो मन्दिर सिद्ध भयो हतो तामे श्रीनाथ जी कू श्रीआचार्य जी महाप्रभून ने संवत् १५७६ वैसाख वदी ३ अक्षय तृतीया के दिन पाट वैठायो।" गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता पृ० १६।

भेंट संवत् १५७६ वि० के थोड़े समय बाद हुई थी। कुम्भनदास जी ने उस समय एक पद यह गाया—

राग नट

रूप देखि नैना पल लागै नाहीं।
गोवर्द्धनधर के अंग-अंग प्रति निरखि नैन मन रहत तहीं।
कहा कहौं कछु कहत न आवै चित्त चोरचो माँगि वै दही।
कुम्भनदास प्रभु के मिलन की सुन्दर बात सखियन सों कही।

राजा मानसिंह कुम्भनदास के कीर्तनो से ऐसे प्रभावित हुए कि दूसरे दिन वे चन्द्र सरोवर पर कुम्भनदास से मिलने गये। उस समय वे भगवान् के सानुभव में मग्न थे। थोडी देर मे उनकी चेतना खुली तो उन्होंने अपनी भतीजी से बैठने के लिए आसन और तिलक करने के लिए आरसी (दर्पण) माँगे। उनकी भतीजी ने उत्तर दिया—"बाबा, आसन पड़िया खाय के आरसी पी गई।" तब कुम्भनदास ने कहा—'तो और आसन करिके ले आउ।" इस वार्तालाप को सुनकर मानसिंह को बडा आश्चर्य हुआ। इतने ही मे वह लड़की, एक घास का पूरा और कटोरी मे पानी भर के ले आई और उस पूरा पर बैठकर तथा कटोरी के पानी मे मुख देखकर कुम्भनदास जी ने तिलक किया। उस समय राजा मानसिंह ने जाना कि कुम्भनदास जी के घर द्रव्य का बहुत सङ्कोच है। राजा मानसिंह ने अपनी सोंने की आरसी मँगाई और कुम्भनदास जी के सामने पेश की। उस पर कुम्भनदास जी ने कहा—"भैया, हमारे तो छानि के घर हैं जो यह आरसी हमारे घर में होय तो याके पीछे कोई हमारो जीव लेय, तासो हमारे नाहीं चहियत है।" तब राजा मानसिंह ने हजार मोहरों की एक थैली कुम्भनदास जी के आगे रक्खी। उस पर भी कुम्भनदास ने कहा—"यह हमारे काम की नाही है, हमारे तो खेती होत है तामे धान उपजत है सो हम खात हैं और कछू हमको चहियत नाही"। राजा मानसिंह ने फिर जमुनावतो गाँव कुम्भनदास के नाम करने को कहा। फिर भी कुम्भनदास ने अपने त्याग की टेक न छोड़ी और कहा—"जो मैं ब्राह्मण तो नाही जो तेरो उदक लेऊँ, और जो, तेरे देनो होय तो काहू ब्राह्मण को दीजियो, मोको तिहारो कछु नाही चहियत है।" कुम्भनदास ने राजा को एक करील का और एक बेर का वृक्ष दिखाकर कहा—"उष्णकाल मे तो मोदी करील है सो फूल और टेंटी देत हैं, और सीतकाल को मोदी झाड़ है सो बेर बहोत देत है सो ऐसे काम चल्यो जात है।"[३] राजा इस महान त्याग पर चकित हो गया। उसके मुख से सहसा

१—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० १२८।

२—'अष्टछाप', कांकरौली, पृ० १२६।

३—'अष्टछाप', काँकरौली, पृ० १२६, १३०।

प्रशंसा निकली—"धन्य है, जिनके वृक्ष मोदी हैं, जो मैंने आज ताईं बड़े-बडे त्यागी वैरागी देखे, परन्तु ये गृहस्थ, जो ऐसे त्यागी हैं, सो ऐसे धरती पर नाही हैं।"[१] राजा मानसिंह ने आग्रहपूर्वक कुम्भनदास से कुछ आज्ञा करने को कहा। इस पर कुम्भनदास जी ने कहा—"आज पाछे तुम हमारे पास कबहूँ मत आइयो।" फिर राजा मानसिंह ने दण्डवत की और उनकी सराहना करते हुए कहा—"तुम धन्य हो, माया के भक्त तो मैं सगरी पृथ्वी मे फिरयो, सो बहुत देखे परन्तु श्री ठाकुर जी के साँचे भक्त तो एक ही तुम देखे।"[२] इस घटना से कुम्भनदास के महान् त्याग का परिचय मिलता है।

एक बार, श्री हितहरिवंशजी, स्वामी हरिदास जी आदि भक्त कुम्भनदास के उत्कृष्ट काव्य और कीर्तन की प्रशसा सुनकर उनसे मिलने आये और उनसे कहा,—"कुम्भनदास जी आपने युगल स्वरूप के तो कीर्तन बहुत किये हैं, परन्तु स्वामीनी जी का कीर्तन हमने आपके नही सुने।" तब कुम्भनदास जी ने स्वामिनी जी का एक पद बनाकर गाया।[३] श्री हितहरिवश जी तथा श्री स्वामी हरिदास जी कुम्भनदास जी के कीर्तन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उनके काव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। इस प्रसंग से कुम्भनदास के काव्य की उत्कृष्टता का परिचय मिलता है।

एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने ब्रज से द्वारिका, गुजरात जाने का विचार किया।[४] उन्होने अपने साथ कुम्भनदास जी को भी ले लिया। यात्रा से एक दिन पहले वे अप्सरा कुंड पर ठहरे। कुम्भनदास जी की श्री नाथ जी में इतनी अगाध आसक्ति थी कि उनको बिछुडना असह्य हो गया। कुम्भनदास विचार करते-करते गाने लगे—

कहिये कहा कहिबे की होय।
प्राननाथ बिछुरत की वेदन जानत नाहिन कोय।[५]

उसी समय श्रीनाथ जी के उत्थापन का समय हुआ। कुम्भनदास जी के हृदय मे श्रीनाथ जी का विरह उमड आया और आँखो से अश्रुधारा बहने लगी। वे गुसाईं जी के डेरा के निकट एक वृक्ष के नीचे खडे होकर मन्द स्वर मे गाने लगे—

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १३०।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ १३०।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १३४। कुंवरि राधिके तुव सकल सौभाग्य सीमा, या बदन पर कोटिसत चन्द्र वारि डारौं।"

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १३६।
'गुसाईं जी ने यह यात्रा सम्वत् १६३१ में की।' कांकरौली का इतिहास। ले० प्रो० कण्ठमणि शास्त्री जी, पृ० ६६।

५—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १३८।

राग सारङ्ग

कितै दिन ह्वै जु गए विनु देखे।
तरुन किसोर रसिक नन्दनन्दन कछुक उठति मुख रेखे।
वह सोभा वह कान्ति बदन की कोटिक चन्द विसेषे।
वह चितवनि वह हास मनोहर वह नागर नट वेषे।
स्यामसुन्दर सङ्ग मिलि खेलन की आवत जीय उपेषे।
कुम्भनदास लाल गिरधर विन जीवन जनम अलेषे।[1]

जब गुसाई जी ने कुम्भनदास का यह विरह-वेदना-पूर्ण पद सुना तो उन्होंने कुम्भनदास के पास जाकर कहा,—"कुम्भनदास जी, जब तुम्हारी यह दशा है तो तुम्हारा परदेश हो चुका, जाओ गोवर्द्धनदास जी के दर्शन करो।" कुम्भनदास जी गुसाईं जी की आज्ञा पाकर रोम-रोम से प्रसन्न हो गये। वे तुरन्त उत्थापन के दर्शनो पर मन्दिर मे आये और उन्होंने श्रीनाथ जी के समक्ष यह पद गाया—

राग सारङ्ग

जो पै चोप मिलन की होय।
तौ क्यों रहे ताहि विनु देखे लाख करौ जिन कोय।
जो यह विरह परस्पर व्यापै तो कुछ जीय वनै।
लोक लाज कुल की मर्यादा एकौ चित न गनै।
कुम्भनदास प्रभु जाय तन लागी और न कछू सुहाय।
गिरधरलाल तोहि विनु देखे छिन छिन कलप विहाय।[2]

उस समय श्रीनाथ जी के समक्ष कुम्भनदास जी ने प्रार्थना की,—"महाराज ! मोको यही चहियत हतो और यह अभिलाषा हती, जो तुमसों विछोय न होय।"[3] इस प्रसङ्ग से श्रीनाथ जी में कुम्भनदास की अगाध आसक्ति का परिचय मिलता है।

एक बार गुसाईं विट्ठलनाथ जी का जन्म-दिवस आया। रामदास चौहान, कुम्भनदास आदि वैष्णवो ने उस दिवस को बड़े समारोह के साथ मनाया। गुसाईं जी उस दिन गोकुल में थे। सब वैष्णवों ने चन्दा डालकर श्रीनाथ जी का विशेष तैयारी के साथ भोग बनाया। कुम्भनदास जो के यहां धन का तो सदैव अभाव रहता था ही, परन्तु गुसाई जी के प्रति उनकी अगाध भक्ति थी। उन्होंने अपने दो पड्डे और दो पड़िया वेचकर पांच रुपये

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १३९ तथा लेखक के पास की ८४ वैष्णवन की वार्ता।
२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १४१ तथा लेखक के पास की ८४ वैष्णवन की वार्ता।
३—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ १४१।

चन्दे में दिये। उस दिन कुम्भनदास जी ने बड़े हर्ष और प्रेम के साथ गोस्वामी जी की अनेक बधाइयाँ बनाकर गाईं। जब गोस्वामी जी को कुम्भनदास के चन्दे में रुपये देने की बात ज्ञात हुई तो उन्होने कुम्भनदास से पूछा—"कुम्भनदास जी, आपने चन्दा कहाँ से दिया? आपके घर तो रुपये थे नही।" इस पर कुम्भनदास जी ने अपनी भक्ति प्रकट करते हुये गुसाईं जी से कहा,—"महाराज! मेरो घर कहाँ है! मेरो घर तो आपके चारणारविन्द मे है जो यह तो आपको है। अपनो शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र वेचि के आपके अर्थ लागे तब वैष्णव सिद्ध होय, जो महाराज हम संसारी गृहस्थ है, सो हमसों वैष्णव धर्म कहा बने, यह तो आपकी कृपा है, दीनि जानि के करत हो।" गुसाईं जी का हृदय कुम्भनदास की इस दीनता पर भर आया और वे उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।[१]

वार्ता से ज्ञात होता है कि कुम्भनदास जी बाल्यकाल ही से त्यागी और सत्यप्रिय व्यक्ति थे।[२] इनके लौकिक आश्रय के त्याग और निर्लोभता का परिचय अकबर बादशाह तथा राजा मानसिंह के भेंट के प्रसङ्गो से ज्ञात होता है। ये

कुम्भनदास का स्वभाव, चरित्र तथा उनकी सम्पादित योग्यता :—

बड़े सन्तोषी जीव थे, जो कुछ अपने परिश्रम से खेती मे उपज होती थी, बस उसी पर अपना और अपने कुटुम्ब का निर्वाह करते थे। इनका जीवन सादा था, विचार उच्च थे। ये सदैव पैदल ही चलते थे, सवारी पर नही बैठते थे, यह बात भी वार्ता से विदित है।[३] राजा मानसिंह को इन्होंने अपने मोदी करील और बेर के वृक्ष बताये थे जिससे ज्ञात होता है कि इनका हृदय कितना निस्पृह, कितना निर्लिप्त और कितना सन्तोषी था! इस पर राजा मानसिंह ने, इनकी यह उचित ही प्रशंसा की थी—"तुम धन्य हो, माया के भक्त तो, मैं सगरी पृथ्वी मे फिर्‌यो, सो बहुत देखे परन्तु श्री ठाकुर जी के सांचे भक्त तो एक ही तुम देखे।"[४]

एक बार कुम्भनदास जी ने अपने घर से श्रीनाथ जी को छाक भेजी, उस छाक के वर्णन से इनके सादा, विनम्र जीवन तथा सादा भोजन का परिचय मिलता है—'ज्वार की महेरी, दही-दूध, वेझरि की रोटी, और टेंटी को साक सँधानो।'[५] यद्यपि कुम्भनदास जी के

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १६३-१६७ तक।

२—"कुम्भनदास को बालपने ते गृहासक्ति नाहीं और झूठ बोलते नाहीं और पापादिक कर्म नाहीं करते, सूधे व्रजवासी की रीति सों रहते।"
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १०५ तथा लेखक के पास सुरक्षित, ८४ वैष्णवन की वार्ता।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ११६ तथा पृ० १५०।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १३०।

५—अष्टछाप कांकरौली; पृ० १७३।

घर धन का सदैव संकोच था, परन्तु कभी इन्होंने द्रव्य-प्राप्ति के विचार से भगवद्-आश्रय को छोड़ अन्य किसी सांसरिक व्यक्ति का आश्रय ग्रहण नहीं किया। इनकी भक्ति की प्रशंसा तो गुसाईं जी ने अनेक स्थानों पर अपने मुख से की थी। इनके गोलोकवास के बाद गोस्वामी जी ने रामदास चौहान से कहा—"जो ऐसे भगवदीय अन्तर्धान भये अब भूमि में भक्तन को तिरोधान भयो।।[1] कुम्भनदास जी के पदों से उनकी अनन्य और अगाधभक्ति का परिचय मिलता है। ध्रुवदास जी ने भी कुम्भनदास की भक्ति की प्रशंसा की है।[2]

वार्ता से कुम्भनदास जी की काव्य-रचना के विषय में भी अनेक बातें ज्ञात होती हैं। वार्ता से विदित होता है कि शरणागति के समय कुम्भनदास को कृष्ण की कुञ्ज-लीला के रस का अनुभव हुआ था। उन्होंने उसी रस में अपने मन को रमाया और सम्पूर्ण[3] कीर्तन युगल-स्वरूप-सम्बन्धी रस के ही किये।[4] कुम्भनदास के पद उनके जीवनकाल में ही देश में दूर दूर प्रसिद्ध हो गये थे।[5] ८४ वार्ता में इनके काव्य की जो प्रशंसा मिलती है उसका समर्थन इनके उपलब्ध पदों के पढ़ने से होता है।

अन्त समय और गोलोकवास

वार्ताकार कहता है कि पीछे कुम्भनदास जी की देह बहुत अशक्त हो गई। एक बार ये जान्योर के पास सङ्कर्षण कुण्ड के ऊपर जा बैठे। इनके अशक्त होने के कारण इनके पुत्र ने कहा—"गोद में लेकर आपको जमुनावतो गाँव में ले चलें।" तब कुम्भनदास जी ने कहा कि अब तो दो चार घड़ी में देह छूटेगी, इसलिए अब मैं यहीं रहूँगा।[6] राजभोग के दर्शनों के समय कुम्भनदास जी के पुत्र चतुर्भुजदास ने गोस्वामी जी को ज्ञात हुआ कि कुम्भनदास जी सङ्कर्षण कुण्ड पर अशक्त बैठे हैं। गोस्वामी जी कुम्भनदास जी के पास पहुँचे और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनसे पूछा,—"कुम्भनदास जी तुम्हारा मन किस लीला में लगा है।" कुम्भनदास जी अशक्त थे, उनसे उठा नहीं गया। उन्होंने यह पद गाया—

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७५।

२—भक्तनामावली, ध्रुवदास, छन्द नं० ६३।

३—"सो कुम्भनदास सगरे कीर्तन जुगल-स्वरूप-सम्बन्धी किये। सो बधाई पलना, बाल-लीला गाई नाहीं, सो ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ११७।

६—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७३।

राग सारङ्ग

लाल तेरी चितवन चितहि चुरावै।
नन्द ग्राम वृषभानपुरा बिच मारग चलन न पावै।
हों भरिहों डरिहों नहि काहू ललिता दृगन चलावै।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्धनधर धरचो सो क्यों न बतावै।[1]

इसको सुनकर गोस्वामी जी ने फिर पूछा—"कुम्भनदास तुम्हारा अन्तःकरण कहाँ है?" कुम्भनदास ने फिर गाया—

राग केदार

रसिकनी रस में रहत गड़ी।
कनक बेलि वृषभानु नन्दिनी स्याम तमाल चढ़ी।
विहरत श्रीगिरधरन लाल सँग, कोने पाठ चढ़ी।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्द्धन घर रति रस केलि वढ़ी।[2]

यह गाकर कुम्भनदास ने देह छोड दी। वार्ताकार कहता है कि "कुम्भनदास जी देह छोड़ि निकुञ्ज लीला मे जाय के प्राप्त भये।"[3] कुम्भनदास जी ने अन्त समय मे भी युगल-स्वरूप का ही वर्णन किया और उसी के ध्यान मे प्राण समर्पण किये। इसके बाद चतुर्भुजदास आदि उनके सब बेटों ने उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की।

जन्म, शरणागति और गोलोकवास की तिथियाँ

पीछे कहा गया है कि जिस समय गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी के मुखारविन्द का प्राकट्य हुआ था, उस समय कुम्भनदास जी की आयु दश वर्ष की थी। श्रीगोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता से ज्ञात होता है कि श्रीनाथ जी के मुखारविन्द का प्राकट्य संवत् १५३५ वि० वैसाख वदी ११ वृहस्पतिवार को हुआ।[4] इस हिसाब से कुम्भनदास जी का जन्म संवत् लगभग १५२५ वि० सिद्ध होता है। गोवर्द्धननाथ जी की वार्ता से ज्ञात होता है कि सम्वत् १५४६ वि० मे श्री वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी को छोटे मन्दिर में पाट बैठाया।[5] चौरासी वार्ता तथा गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७४ तथा ८४ वैष्णवन की वार्ता, लेखक के पास की।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७४ तथा ८४ वैष्णवन की वार्ता, लेखक के पास की।
३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७४ तथा ८४ वैष्णवन की वार्ता, लेखक के पास की।
४—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ४।
५—गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ६ तथा १३।

की वार्ता से ज्ञात होता है कि उसी समय कुम्भनदास जी स्त्री सहित आचार्य जी की शरण आये[1] इस प्रकार कुम्भनदास जी का शरणागति-काल सम्वत् १५४९ वि० है।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने प्रथम साम्प्रदायिक छप्पन भोग का उत्सव संवत् १६१५ वि० में किया था। इस बात का प्रमाण काँकरौली और नाथद्वार के मन्दिरो मे प्रचलित परम्परा से मिलता है। उस समय तक आठों अष्टछाप भक्त जीवित थे, ऐसी भी किंवदन्ती उक्त सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। आठों कवियों के, छप्पन भोग के पद भी, सम्प्रदाय में गाये जाते हैं। कुम्भनदास जी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सातो बालको की बधाई गाई है। इससे सिद्ध होता है कि कुम्भनदास जी श्री घनश्याम जी के जन्म-समय स० १६२८ वि० तक जीवित थे। पीछे कहा गया है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने ब्रज-गोकुल-निवास (सं० १६२८ वि०) के बाद गुजरात की दो यात्राएँ वहाँ से की, एक सम्वत् १६३१ वि० में और दूसरी संवत् १६३८ वि० मे। वार्ता मे, जो कुम्भनदास जी के गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के साथ गुजरात जाने और उनके श्रीनाथ जी के प्रति विरह का वर्णन है,[2] वह सम्वत् १६३१ वि० की यात्रा[3] के समय की घटना प्रतीत होती है। इससे सिद्ध है कि कुम्भनदास जी सम्वत् १६३१ वि० तक जीवित थे।

८४ वैष्णवन की वार्ता में लिखा है कि अकबर ने कुम्भनदास को फतहपुर सीकरी बुलवाया था और वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा था कि दरबार खूब सजा हुआ है और बहुत से डेरे पड़े है। इतिहास से विदित है कि फतहपुर सीकरी नगर और राजभवन का निर्माण लगभग सन् १५७० ई०[4] (सम्वत् १६२७ वि०) मे आरम्भ हुआ और सन् १५८० ई० तक बनता रहा। फतहपुर सीकरी नगर केवल सन् १५८५ ई० तक ही अकबर की राजधानी[5] रहा। इस सन् के बाद अकबर का दरबार इस स्थान पर कभी नही हुआ। सन् १५७५ ई० मे धार्मिक प्रार्थना तथा कृत्यो के लिये वहाँ 'इबादतखाना' बना था। इससे हम कह सकते हैं कि अकबर ने कुम्भनदास जी को सन् १५७० ई० से सन् १५८५ ई० तक के किसी समय मे बुलाया होगा। अकबर की जीवनी से, जैसा कि सूरदास के जीवन-भाग मे कहा जा चुका है, विदित होता है कि उसकी मुसलमान धर्म की कट्टर मनो-

---

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १०६।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १३८।

३—काँकरौली का इतिहास, ले० कण्ठमणि शास्त्री, पृ० ९९।

४—अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० १०५ तथा ४३७।

५—अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ४३७।

वृत्ति छूटकर हिन्दू और अन्य धर्मों के महात्माओ से मिलने और उनके धार्मिक विचारो को सुनने की उदार प्रवृत्ति सन् १५७४[1] ई० (सम्वत् १६३१ वि०) से सन् १५८२ ई० (सम्वत् १३३९ वि०) तक रही। इसी बीच मे उसने सन् १५७६[2] ई० मे लगभग सब धर्मों के प्रतिनिधियो की धार्मिक बहसे फतहपुर सीकरी मे ही सुनी। सम्भव है, इन बहसो के सुनने के काल मे ही उसने कुम्भनदास की भक्ति की प्रशंसा सुनकर उनको राजधानी मे बुलाया हो। वार्ताकार का, जैसा कि ऊपर कहा गया है, कहना है कि उस समय वहाँ बहुत से डेरे पडे हुये थे और दरबार सजा था। इतिहास से यह भी विदित होता है कि अकबर ने सन् १५८१ ई० मे काबुल से लौटकर अपनी राजधानी फतहपुर सीकरी मे जीत की खुशी मे उत्सव[3] मनाया था और उस दरबार मे सम्पूर्ण भारतवर्ष के अधीन-सूबेदार (गवर्नर) आये थे। सम्भव है, जिन डेरो और सजावटो का वर्णन वार्ता मे है वे इसी उत्सव मे बाहर से आनेवाले लोगो के ठहरने के लिए हों। इससे हम कुम्भनदास और अकबर की भेट सन् १५८१ ई० अथवा सं० १६३८ मे रख सकते है। उक्त कथन से हम कम-से-कम इतना तो अनुमान लगा सकते है कि कुम्भनदास जी सन् १५८१ ई० नही तो १५७९ ई० अथवा सम्वत् १६३६ वि० तक तो जीवित थे ही।

८४ वैष्णवन की वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि सूरदास जी की मृत्यु के समय कुम्भनदास जी जीवित थे।[4] उक्त वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि परमानन्ददास के गोलोकवास से पहले ही कुम्भनदास का निधन हो चुका था।[5] लेखक ने पीछे सूरदास का गोलोकवास लगभग सं० १६३८ वि० या सम्वत् १६३९ वि० माना है और परमानन्ददास जी का गोलोकवास काल सम्वत् १६४० वि० माना है। इसलिये कुम्भनदास जी का गोलोक-वास-काल संवत् १६४० वि० से कुछ पहले और उपर्युक्त कथन के अनुसार सम्वत् १६३८ वि० के बाद होना चाहिए। लेखक का अनुमान है कि कुम्भनदास का निधन लगभग सम्वत् १६३९ वि० मे हुआ। उस समय उनकी आयु लगभग ११४ वर्ष की थी। वल्लभसम्प्राय मे यह किंवदन्ती भी प्रचलित है कि अष्टसखाओ मे कुम्भनदास जी ने बहुत बड़ी, लगभग ११३ वर्ष की आयु, पाई थी।

कृष्णदास अधिकारी के जीवन-चरित्र की रूपरेखा।

कृष्णदास अधिकारी का जन्म गुजरात मे राजनगर (अहमदाबाद) राज्य के एक

१—अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ३४८।

२—अकबर दी ग्रेट मुग़ल, स्मिथ, पृ० ४५३ तथा ४५४।

३—कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग ४, पृ० १२८।

४—अष्टछाप, कॉंकरौली, पृ० ५१।

५—अष्टछाप, कॉंकरौली, पृ० ६७।

चिलोतरा नामक गांव मे हुआ[1]। अन्य किसी ग्रन्थ में कृष्णदास का गुजराती होना नही लिखा और न उनके जन्म-स्थान का ही उल्लेख हुआ है। हरिराय जी की भावप्रकाश वाली ८४ वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णदास अधिकारी का जन्म 'कुनवी' पटेल कुल मे हुआ था[2]। 'कुनवी' शूद्र जाति है, क्योकि वार्ता मे कई स्थानो पर कृष्णदास को शूद्र कहा गया है[3]। श्री वल्लभाचार्य जी तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने सम्प्रदाय मे सभी जाति के लोगों को शरण दी थी। उस समय वल्लभशरण मे आने वाले अनेक नीच जाति के लोगो ने भी अपनी भक्ति और योग्यता से वह स्थान पाया था जो उच्चकुल के ब्राह्मणो को भी उस प्रकार के साधन बिना कठिन था। द्विजाति के बड़े प्रतिष्ठित लोग भी इन भक्तो के समक्ष नतमस्तक रहते थे।

जन्म-स्थान, जाति-कुल

माता-पिता, कुटुम्ब, गृहस्थी

कृष्णदास के पिता यद्यपि शूद्र जाति के थे, परन्तु अपने गाँव मे इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। वे उसके मुखिया थे। गाँव के हाकिम होने पर भी वे एक धन-लोलुप व्यक्ति थे और असत्य आचरण से भी धनोपार्जन करते थे[4]। जब कृष्णदास की आयु बारह-तेरह वर्ष की थी, उसी समय उनके गाँव मे एक बनजारा आया। उसने चिलोतरा गाँव में १४ हजार रुपये का व्यापार किया। जब उन रुपयो को लेकर वह रात्रि को सोया तो कृष्णदास के पिता के भेद से चोरो ने उसका सब द्रव्य चुरा लिया जिसमे से १३ हजार रुपये कृष्णदास के बाप ने लिये[5]। कृष्णदास एक सत्यभाषी बालक था, उसने भेद खोल

१—"सो ये कृष्णदास गुजरात में एक चिलोतरा गांव है तहां एक कुनबी के घर जन्मे" अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ११७ तथा लेखक के पास की हरिराय-कृत, भावप्रकाश वाली ८४ वार्ता।

नोटः-नाथद्वार में श्री कृष्ण भण्डार में आचार्य जी के समय से ही हिसाब गुजराती भाषा में लिखे जाने की अब तक परम्परा चली आती है। उक्त भण्डार के अधिकारी जी का कहना है कि गुजराती मे हिसाब लिखने की प्रथा कृष्णदास अधिकारी ने चलाई थी, क्योंकि वे गुजरात के रहनेवाले थे। इस परम्परागत किवदन्ती और रीति से वार्ता के कथन की पुष्टि होती है।

२—"जा समय कृष्णदास या कुनबी पटेल घर जन्मे।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७७,

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १९३।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७७।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७७ तथा १७८।

दिया और राजनगर के राजा के सामने पिता के विरुद्ध गवाही दे दी[1]। इस पर इनके पिता मुखिया के पद से हटा दिये गये। वार्ता मे लिखा है कि पिता के असत्य आचरण से इनको घर से छोटी अवस्था में ही निकल जाना पडा[2]। घर से निकल कर कुछ दिन कृष्णदास तीर्थों मे पर्यटन करते रहे और फिर श्री वल्लभाचार्य जी की शरण मे आये[3]। इन्होने अपना विवाह नही किया। इसलिए इनके स्त्री न थी और न कोई सन्तान।

कृष्णदास की शिक्षा इनके बाल्य-काल में चिलोतरा गाँव में ही हुई होगी और वह शिक्षा गुजराती भाषा के माध्यम से हुई होगी, क्योकि ये श्रीनाथ जी के मन्दिर के अधिकारी होने के बाद वहाँ का हिसाब गुजराती भाषा में ही करते थे।

शिक्षा

साधु-सङ्गति की ओर इनका विशेष ध्यान था। इसलिए लौकिक शिक्षा के अतिरिक्त उपदेशात्मक शिक्षा उन्हे बाल्यकाल से साधु-महात्माओ के सङ्ग से ही मिली। पिता से यह शिक्षा नही मिली, क्योकि वह तो स्वय एक असत्याचरण वाला व्यक्ति था। वार्ता मे लिखा है कि जब ये पाँच वर्ष के थे तभी जहाँ कथा-वार्ता होती, वहाँ जाते थे, यद्यपि इनके माता पिता इन्हे वहुत रोकते थे[4]। वल्लभसम्प्रदाय मे आने के बाद तो इन्होने बहुत योग्यता का सम्पादन कर लिया था। ब्रजभापा के ये इतने बडे पण्डित हो गये कि भक्त नाभादास ने इनकी ब्रजभाषा की कविता को निर्दोष और पण्डित द्वारा आदृत लिखा है[5]। हिसाव-किताब मे ये वहुत कुशल थे। इसलिए श्री वल्लभाचार्य जी ने इन्हे मन्दिर का अधिकारी वनाया था। इनकी व्यावहारिक शिक्षा भी वढी-चढ़ी थी। वार्ता में लिखा है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी इनकी व्यावहारिक बुद्धि की प्रशसा किया करते थे।[6]

धन और पद छिन जाने के बाद पिता ने इनसे कहा था;—"तू वा जन्म को फकीर है तासो तैने हमको हू फकीर कियो है। अव तेरे मन मे कहा है। तू घर ते कहूँ दूर चल्यो जा, न तोको देखेंगे, न दुख होयगो[7]"। यह सुनकर कृष्णदास

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन

पिता को नमस्कार कर वहाँ से चल दिये। उस समय उनकी आयु तेरह वर्ष की थी।[8] उन्होने सोचा कि ब्रज मे होते हुये सब तीर्थों मे जाना चाहिए। कुछ दिन पर्यटन के वाद कृष्णदास

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७९।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८१।
३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८२।
४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७७।
५—भक्तमाल, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, पृ ५८१, छन्द नं० ८१।
६—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १९६ तथा पृ० २४६।
७—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८१।
८—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १७७।

मथुरा आये और वहाँ से फिर गोवर्द्धन गये। उन्होंने सुना था कि गोवर्द्धन पर 'देवदमन' का नया मन्दिर बना है और दो चार दिन मे वे उस मन्दिर मे प्रवेश करेगे।[1] कृष्णदास देवदमन-दर्शन की लालसा से ही गोवर्द्धन आये थे। कृष्णदास ने गोवर्द्धन नाथ के दर्शन किये। दर्शन मात्र से उनका मन भगवान् के स्वरूप में जा लगा। उसी समय वे श्री वल्लभाचार्य जी से मिले। रुद्रकुण्ड पर स्नान करने के बाद उन्होंने आचार्य से 'नाम' लिया। उसी समय वल्लभाचार्य जी ने गोवर्द्धननाथ जी के नये मन्दिर मे सेवा का मण्डान किया था और बङ्गाली ब्राह्मणो को सेवा मे रक्खा था। कृष्णदास की व्यावहारिक तथा कुशाग्र बुद्धि से आचार्यजी बहुत प्रभावित हुये। उन्होने कृष्णदास को भेटिया[2] का कार्य सौपा। कृष्णदास भेट 'उघाने' के लिए परदेश जाते थे और जो भेट आती उसे श्रीनाथ जी के बङ्गाली सेवको को लाकर दे देते थे। भेटिया का कार्य उन्होने बडे हित के साथ किया। कुछ समय बाद वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथ जी (गोवर्द्धन नाथ) के मन्दिर का अधिकार इन्हे सौप दिया।[3] उस कार्य को भी इन्होंने बड़ी योग्यता के साथ किया। कदाचित् उस समय कृष्णदास गान-विद्या और काव्य-रचना मे प्रवीण नही थे। इसीलिए आचार्य जी ने उनको कीर्तन का कार्य नही सौपा। भेटिया-कार्य करने के समय मे उन्होने साम्प्रदायिक सिद्धान्त और सेवा का ज्ञान प्राप्त कर लिया और सूरदास जैसे परम-भक्तों के ससर्ग से गान और काव्य की कलाएँ भी सीख ली।

मन्दिर के अधिकार का कार्य करने के साथ-साथ कृष्णदास भगवान् की भक्ति भी करते थे। उसी भक्ति के आवेश में उन्होने समय-समय पर कृष्ण की लीलाओ का वर्णन पदो मे किया। आचार्य जी ने भगवान् की तीन प्रकार की सेवाएँ, मनजा, धनजा और तनजा, बताई हैं[4]। उनमे से कृष्णदास ने श्रीनाथ जी की तनजा सेवा अधिक की। कृष्णदास के साम्प्रदायिक जीवन मे कुछ ऐसी भी घटनाएँ हुई थी, जो एक ओर तो उनके व्यावहारिक कौशल, बुद्धिमत्ता, सिद्धान्त की दृढता और परोपकारिता का प्रकाशन करती है, दूसरी ओर उनके चरित्र और विनम्र भक्ति-भाव की पुनीतता की ओर सकेत करती है। इन घटनाओ मे एक, श्रीनाथ जी की सेवा से बङ्गाली सेवकों को कृष्णदास द्वारा निकाला जाना है। बंगालियो के निकालने मे कृष्णदास ने बड़ी चालाकी और कठोर हृदयता से काम लिया था। इस घटना से उनकी अधिकार की उचित क्षमता, कूटनीतिज्ञता और व्यवहार कौशल अवश्य

१—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १८१।

२—अष्टछाप, कॉंकरौली, पृ० १८३ तथा सन्तदास-कृत चौरासी-भक्त-नाममाला (अप्रकाशित)।

नोट :—'भेंटिया' का अर्थ है वैष्णवों से भेट उघानेवाला।

३—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १८६।

४—सिद्धान्त-मुक्तावली, श्लोक २, षोडश ग्रन्थ।

प्रकट होते हैं, परन्तु साथ ही इस षटचक्र के कारण कृष्णदास एक उच्च कोटि के भक्त के पद से कुछ नीचे भी उतर जाते हैं।

उक्त घटना के बाद विट्ठलनाथ जी ने कृष्णदास को सर्वाधिकार सौंप दिया और सर्वाधिकार का दुशाला उढ़ाते हुए उन्होंने कहा—"कृष्णदास तुमने बड़ी सेवा करी है, तासों अब सगरो अधिकार श्री गोवर्द्धननाथ जी को तुम ही करो, हम हू चूकें तो कहियो, जो कोई बात को सङ्कोच मत राखियो जो सगरे सेवक टहलुअन के ऊपर तिहरो हुकम और की कहा है।"[1] आगे एक स्थान पर वार्ताकार कहता है—"और सगरे सेवकन के ऊपर कृष्णदास अधिकारी को मुखिया किये, सो जो काम होय से पूछनो। सो श्री गुसाईं जी तो सेवा-शृंगार करि जायँ और काहू सो कछू कहे नाही। कोई बात कोई सेवक श्री गुसाईं जी सो पूछे तब श्री गुसाईं जी आप कहे जो कृष्णदास अधिकारी के पास जावो जो हम जाने नाही।"[2] एक बार आगरे के बाजार मे[3] कृष्णदास एक मुग्धा वेश्या पर मोहित हो गये।[4] इन्होंने सोचा कि इसे श्री गोवर्द्धननाथ जी के पास ले चले। रात्रि को उन्होंने उस वेश्या को अपने ठहरने के स्थान पर १०० रु० देकर बुलाया और उसका रात को गाना सुना। दूसरे दिन उस वेश्या को वे अपने साथ गोवर्द्धन ले गये। वहाँ श्रीनाथ जी के समक्ष नाचते-नाचते वह परलोक को चली गई। वार्ताकार का कहना है कि उसको श्री गोवर्द्धन नाथ जी ने आप अङ्गीकार कर लिया। इस घटना पर श्री हरिराय जी ने भावप्रकाश मे शङ्का उठाई है—"कृष्णदास जी आचार्य महाप्रभु जी का कृपापात्र सेवक जो सदैव ठाकुर जी पर मोहित रहनेवाला प्राणी जिनको अप्सरा-देवाङ्गना भी तुच्छ मालूम होती हैं, एक वेश्या पर क्यो मोहित हो गया? कृष्णदास तो परम ज्ञानवान् थे।"[5] आगे हरिराय जी इस सन्देह का समाधान करते हुए कहते हैं—"कृष्णदास ने जो किया उसकी देखा-देखी जो करेगा सो बहिर्मुख होगा। वास्तव मे वह वेश्या एक शापित दैवी जीव थी। प्रभु की प्रेरणा से कृष्णदास उस पर मोहित हुये और उन्होंने उसे श्री गोवर्द्धनधर की सेवा में समर्पित किया।"[6] इस घटना मे कृष्णदास का कार्य साम्प्रदायिक दृष्टि से एक परोपकारपूर्ण कार्य कहा गया है, परन्तु लोक-दृष्टि से, वेश्या को अपने पास बुलाने के कार्य में, इन्द्रियलोलुपता का भाव प्रतीत होता है।

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० १९७।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २०१ : २०२।

३—प्रियादास जी ने इस घटना को दिल्ली के बाजार में होना लिखा है। भक्तमाल, सुधास्वादतिलक, रूपकला, पृ० ५८२।

४—'सो भीड़ सरकाय कें वा छोरी को रूप देखे तो तहां गान सुनके मोहित होय गये।' अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २०९।

५—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २०९।

६—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २०१ : १०।

कृष्णदास की एक क्षत्राणी गङ्गावाई से वहुत मित्रता थी। वार्ताकार का कहना है—"कृष्णदास के सङ्ग ते गङ्गा क्षत्राणी को मन अलौकिक भयो।"[1] एक वार भोग की सामग्री पर गङ्गावाई की दृष्टि पड़ गई; उससे श्री नाथ जी के लिए गुसाईं जी को भोग की सामग्री दुवारा वनवानी पडी। इससे अनुमान होता है कि गङ्गावाई को गुसाईं जी अच्छी दृष्टि से नही देखते थे। इस पर कृष्णदास ने श्री गुसाईं जी पर एक व्यङ्ग वाक्य कहा। किसी वैष्णव ने गुसाईं जी से कहा—महाराज आज प्रसाद वहुत वढ़िया वना है। कृष्णदास ने कहा—"जो आपुही करन हारे आपु ही आरोगन हारे, सो क्यो न स्वाद होय।"[2] इस पर गोस्वामी जी ने गङ्गावाई और कृष्णदास के सम्वन्ध पर व्यङ्ग कसते हुए कहा—"जो तिहारो ही कियो भोग भोगत हैं।"[3] हरिराय जी ने वार्ता के इस स्थल पर टिप्पणी दी है—"सो यह कहि के दोऊ वात जताये, जो गङ्गावाई क्षत्राणी सो प्रीति करि वाको वैठारि राखे, सो वाकी राजभोग की सामग्री पै दृष्टि परी सो यह तिहारो कार्य है और तुमने लीला मे श्री स्वामिनी जी सो श्राप दिवायो सो तिहारो कार्य है सो तिहारे ही किये भोग भोगत हैं।"[4] गोस्वामी जी की यह वात कृष्णदास के मन मे चुभ गई।

कृष्णदास के गङ्गावाई से प्रेम करने मे किसी अलौकिक पूर्व कथा का सहारा डाल कर उस प्रेम को पवित्र रूप दिया जा सकता है। परन्तु जव पाठक गुसाईं जी के व्यङ्ग वाक्य पर हरिराय जी की टीका पढ़ता है—"सो प्रीति करि वाको वैठारि राखे," तो उसे कृष्णदास के चरित्र पर सन्देह होने लगता है। इस घटना के फलस्वरूप एक और घटना भी हुई। कृष्णदास गुसाईं जी के वाक्य से चिढ़ गये। उन्होंने गुसाईं जी से वदला लिया। उन्होंने अपने अधिकार से मन्दिर मे गुसाईं जी के वडे भाई के पुत्र श्री पुरुषोत्तम जी को सेवा-शृङ्गार का अधिकारी वना दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी परासौली में रहकर श्रीनाथ जी के वियोग मे दिन विताने लगे।[5] इस प्रकार छै महीने व्यतीत हो गये। इसी समय वीरवल गोकुल आये। उन्होने गुसाईं जी के वडे पुत्र श्री गिरिधर जी से गुसाईं जी के विषय मे पूछा। गिरिधर जी ने गुसाईं जी की सेवा वन्द होने का सम्पूर्ण वृत्तान्त वीरवल को कह सुनाया। इस पर वीरवल ने कुपित होकर आगरे मे कृष्णदास को वन्दीखाने मे डलवा दिया।[6] जव गोस्वामी विट्ठलनाथ को ज्ञात हुआ कि उनके कारण वीरवल ने

१—अष्टछाप कॉंकरौली, पृ० २१८।

२—अष्टछाप कॉंकरौली, पृ० २२०।

३—अष्टछाप कॉंकरौली, पृ० २२०।

४—अष्टछाप कॉंकरौली, पृ० २२६।

५—अष्टछाप कॉंकरौली, पृ० २२८।

६—अष्टछाप कॉंकरौली, पृ० २३३।

कृष्णदास को बन्दीखाने मे डाल दिया है तो उन्होने प्रण किया कि जब तक कृष्णदास छूटकर नही आ जायगा तब तक अन्न-जल न करूँगा। बीरबल गुसाईं जी का बहुत आदर करता था। उसे जब यह बात ज्ञात हुई तब उसने कृष्णदास को गुसाईं जी की कृपालुता और उसकी (कृष्णदास की) क्षुद्रता का बोध कराकर छोड दिया। इस घटना से कृष्णदास के अधिकार-प्रभुत्व का मिथ्या अहङ्कार प्रकट होता है। इसके बाद फिर कृष्णदास जी गुसाईं जी मे अनन्य भक्ति-भाव रखने लगे। उन्होने तब गुसाई जी की स्तुति और प्रशंसा मे अनेक पद गाये।

एक और महत्त्वपूर्ण घटना कृष्णदास के जीवन के अन्तकाल की है। किसी वैष्णव ने श्रीनाथ जी का कुआँ बनवाने के लिए कृष्णदास को ३००रु० दिये थे। उन रुपयो मे से सौ रुपये कृष्णदास ने छिपा लिये और दो सौ रुपयो से कुआँ बनवाया। एक दिन वे अधूरे कुएँ को देखने गये। वहां उनका पैर फिसल गया और उसी कुएँ में गिर गये।[१] लोगो ने उनको निकालने का प्रयत्न किया, परन्तु उनका शरीर भी लोगों को नही मिला। वार्ताकार का कहना है कि वे फिर प्रेत बन गये। प्रेतरूप मे ही उन्होने एक दिन गोपीनाथ ग्वाल से कहा कि अमुक जगह सौ रुपये गढ़े है। उन्हे लेकर गुसाईं जी अधूरे कुएँ को बनवा दे तो मेरी प्रेत योनि छूटे। गोस्वामी जी ने ऐसा ही किया और फिर कृष्णदास का उन्होंने श्राद्ध किया। इस प्रसङ्ग मे भी कृष्णदास के चरित्र की निर्बलता प्रकट होती है।

स्वभाव और चरित्र

वार्ता से ज्ञात होता है कि कृष्णदास बाल्यकाल से ही एक विरक्त जीव थे। इनकी बाल्यकालीन सत्यप्रियता का परिचय राजा के सामने अपने पिता का अपराध प्रकट करने में मिलता है। उस समय उन्हे धन-वैभव की लालसा न थी। पिता की हाकिमी छूटने पर इन्होंने कहा—"पिता तैंने ऐसो बुरो कर्म कियो हतो जो येहू लोक जातो और परलोकहू बिगरतो, जो जीव तो बच्यो। ···· ·· ······जो हाकिमी होती तो और पाप कमावते।'[२] अधिकार-लिप्सा और अहङ्कार का जो त्याग इनके आरम्भिक जीवन मे मिलता है वह इनके 'अधिकारी' जीवन मे नही मिलता। कृष्णदास सिद्धान्त के पक्के आदमी थे। एक बार भेटिया की हैसियत से ये विदेश गये। द्वारिका से लौटते समय ये मीराँबाई (हिन्द काव्य की प्रसिद्ध कवयित्री और भक्तिनी) के गांव मे उसके घर गये।[३] वहाँ अन्य कई वैष्णव बैठे थे। कृष्णदास जब चलने लगे तब मीराँबाई ने उनसे ठहरने को कहा और वह ११ मोहर भेट मे इनको देने लगी। कृष्णदास ने मोहरो को फेरते हुये कहा कि हम न तो अन्यमार्गीय के यहा ठहरते है और न अन्यमार्गीय से भेट लेते हैं। इसी प्रकार एक

१—अष्टछाप कांकरौली, पृ० २३७ से २३६ तक।
२—अष्टछाप कांकरौली, पृ० १८१।
३—अष्टछाप कांकरौली, पृ० १८४।

वार ये वृन्दावन गये। वहाँ उनको ज्वर आ गया और बड़ी जोर की प्यास लगी। वृन्दावन के वैष्णवो ने इनको जल दिया; परन्तु इन्होने अन्यमार्गीय वैष्णवो का जल नही ग्रहण किया। एक वैष्णव ने कहा—यहाँ पुष्टिमार्गीय एक भङ्गी तो है। कृष्णदास ने उस भङ्गी से जल मँगाया; परन्तु अन्यमार्गीय ब्राह्मणो का जल स्वीकार नही किया।[1] इन दोनो प्रसङ्गो से कृष्णदास के दृढ़ सिद्धान्त-सेवी होने का भाव प्रकट होता है। साथ ही, यह भी प्रकट होता है कि स्वमार्ग मे ये छुआछूत का विचार नही रखते थे।

पीछे कहा जा चुका है कि वे बड़े व्यवहारकुशल और युक्ति-प्रवीण व्यक्ति थे। यद्यपि बाल्यकाल के जीवन से इनके भावी जीवन की पूर्ण विषय-विरक्ति प्रकट होती है, परन्तु श्रीनाथ जी के मन्दिर के अधिकारवाले जीवन में इनके मन की शृङ्गारिक वृत्ति का वैषयिक सम्मान, वेश्या के तथा गङ्गाबाई के प्रसङ्गों से, स्पष्ट झलकने लगता है। कृष्णदास की रचनाओं से भी इनके मन की रसिकता प्रकट होती है। लेखक ने इनके जितने पदों (लगभग ८००) का अध्ययन किया है वे प्रायः सब शृङ्गार के ही है, जिनमे राधाकृष्ण की निकुञ्ज-केलि का वर्णन है। अधिकार करते-करते कुछ समय के लिए इनका अहङ्कार भी प्रबल हो गया था, जिसके कारण गोसाईं विट्ठलनाथ जी श्रीनाथ जी के दर्शनों से छै महीने तक वचित रहे। गोस्वामी जी स्वयं कृष्णदास के इस अहङ्कार विकार से भिज्ञ थे। कृष्णदास की मृत्यु के बाद जब किसी को अधिकार देने का प्रश्न रामदास ने उठाया तब गोसाईं जी ने कहा—"हम कौन से जीव को कहें, जो कौन से जीव को बिगार करे, सुधारनो तो बहुत कठिन है और बिगारनो तो तत्काल है। तासो श्री गोवर्द्धनधर को अधिकार हम कौन को देय।"[2] श्रीनाथ जी के कुआँ बनवानेवाले प्रसङ्ग से इनके अन्तिम जीवन काल मे मन की तामसी वृत्ति का भी भान होता है। इनके कुएँ में गिरने का दुःख-समाचार सुनकर गोसाईं जी के समक्ष एक वैष्णव ने कहा था—"तामसानां अधोगतिः।"[3] तामस प्रकृतिवालो की अधोगति ही होती है।

चरित्र के उपर्युक्त अल्प छिद्र होते हुए भी कृष्णदास अधिकारी एक महान् कवि और श्रीनाथ जी के अनन्य सेवक थे। कृष्ण की कुञ्ज-लीला के इनके पद भाव और भाषा, दोनो दृष्टियो से उत्कृष्ट हैं। कृष्णदास के अधिकार की जिस योग्यता का पीछे उल्लेख हुआ है उसकी तथा उनके काव्य की सराहना गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी स्वय अपने श्रीमुख से किया करते थे। कृष्णदास की मृत्यु के बाद आचार्य जी ने वैष्णवों से कहा—"कृष्णदास रासादिक कीर्तन ऐसे किये सो कोई दूसरे सो न होय और श्री आचार्य जी के सेवक होय के सेवा हू

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २३६।
२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४०।
३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २३९।

ऐसी करी जो दूसरे सो न बनेगी और श्रीनाथ जी को अधिकार हू ऐसो कियो जो दूसरे सो न होयगो ।"[1]

वार्ता मे कई स्थानो पर इनकी रचना के विषय मे लिखा है कि इन्होंने बहुत कीर्तन गाये और ये नित्य नये पद बनाकर श्री गोवर्द्धननाथ जी को सुनाते थे ।[2] कृष्णदास के अधिकार सेवा और काव्य की प्रशंसा भक्त नाभादास जी ने भी मुक्त-कण्ठ से इन शब्दों मे की है—"श्री वल्लभ-गुरु-दत्त भजन-सागर, गुन-आगर, कवित नोख निर्दोष नाथ-सेवा मे नागर ।"[3] पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त-पक्ष के ये इतने ज्ञाता थे कि बहुत से वैष्णव इनसे मार्ग की रीति पूछने आते थे । एक बार कुम्भनदास जी कुछ वैष्णवो को साथ लेकर इनके पास गये और कहा,—"कृष्णदास, जो सगरे वैष्णवन को मन पुष्टिमारग की रीति सुनिवे को है, सो कहा कहिये, कहा सुमिरन करिये । सो ऐसे पुष्टिमारग को अनुभव होय सो कृपा करिके सुनावो ।"[4] कृष्णदास ने विनम्र भाव से उत्तर दिया—"कुम्भनदास जी, तुम बड़े हो, तिहारे आगे मैं कहा कहूँ तुम सो कछू छानी नाही है ।" फिर कुम्भनदास के आग्रह से कृष्णदास ने निम्नलिखित दो कीर्तन गाये और उनसे सब वैष्णवो का सन्देह दूर कर दिया ।—'कृष्ण श्री कृष्णशरणं मम उच्चरे' तथा कृष्ण मन माँहि गति जानिये ।'[5] कृष्णदास एक सुन्दर व्यक्ति थे । वार्ता मे एक स्थान पर लिखा है कि कृष्णदास की आकृति बड़ी तेजस्विनी थी ।[6]

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४६ ।

२—"सो कृष्णदास नित्य नये पद करिके श्री गोवर्द्धनधर को सुनावते ।"
अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २०२ ।

तथा:—"सो या प्रकार बहोत कीर्तन कृष्णदास जीने गाये ।" अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० २०५।

३—भक्तमाल, छन्द ८१ ।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २१६ ।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृष्ठ २१६ ।

नोट :—कृष्णदास का अधिकार-कार्य इतना सुव्यवस्थित और मन्दिर के हित के लिए इतना सुचारु वल्लभसम्प्रदाय में समझा जाता रहा है कि आज तक श्रीनाथ जी के स्थान पर "कृष्णदास अधिकारी" के नाम की ही मोहर लगती है और कृष्णदास के नाम के नीचे काम करनेवाले अधिकारी के हस्ताक्षर रहते हैं। कृष्णदास की प्रतिष्ठा के स्मारक-रूप में श्रीनाथ जी के भण्डार का नाम भी कृष्णदास के नाम के पीछे कृष्णभण्डार लिखा जाता है ।

६—इतने ही में कृष्णदास हाकिम के पास आये, सो कृष्णदास को तेज देखत ही वह हाकिम उठिके कृष्णदास सों पूछि पास बैठाय के कही जो तुम बड़े हो और श्री गोवर्द्धननाथ जी के अधिकारी हो तासों तुम इन बङ्गालीन को गुन्हा माफ करो । अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १९४ ।

पीछे कहा गया है कि कृष्णदास की मृत्यु पूछरी के पास कुएँ में गिरकर हुई।[1] कृष्णदास की जीवनी के आधारभूत ग्रन्थो मे उनकी जन्म, वल्लभसम्प्रदाय मे प्रवेश और गोलोकवास की तिथियाँ नही मिलती ; परन्तु श्री यदुनाथकृत वल्लभदिग्विजय, ८४ वार्ता के कुछ प्रसङ्गों, किंवदन्तियों तथा कवि के पदो के आधार से उक्त तिथियों का अनुमान लगाया जा सकता है।

जन्मतिथि तथा शरणागति का समय

हरिराय जी के भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता का यह लेख—कि 'कृष्णदास १३ वर्ष की आयु मे घर से निकल गये थे'—पीछे दिया गया है। कुछ दिन के पर्यटन के बाद वे सीधे व्रज में आये और वहाँ आकर गोवर्द्धन पर श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य हो गये। उस समय श्रीनाथ जी का नया मन्दिर बना था और उसमे श्रीनाथ जी का प्रवेश होनेवाला था।[2] मन्दिर सं० १५५६, मे बनना आरम्भ हुआ।[3] कुछ समय बाद पूर्णमल खत्री ने द्रव्य के अभाव के कारण इस मन्दिर को अपूर्ण ही छोड दिया; परन्तु श्री वल्लभाचार्य जी ने सं० १५६६ वैशाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतीया) के दिन श्रीनाथ जी को नये मन्दिर मे प्रविष्ट करा दिया। इसलिए कृष्णदास इसी सम्वत् १५६६ में अक्षय तृतीया के दो-चार दिन पहले आचार्य जी की शरण में गये। वल्लभ-दिग्विजय से भी इस बात की पुष्टि होती है।[4] वल्लभ-दिग्विजय से यह भी विदित है कि सूरदास को शरण लेने के बाद ही, एक-दो दिन के अन्तर से, आचार्य जी ने कृष्णदास को शरण लिया। उस समय, जैसा कि ऊपर कहा गया है, कृष्णदास लगभग १३ वर्ष के थे। सम्भव है, पर्यटन मे उन्हे चार-छः

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २३८।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १८१।

३—गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, बें० प्रे०, पृ० १६।

४—वल्लभ-दिग्विजय, श्रीयदुनाथ के पृ० ५० के कथन के आधार से लेखक ने सूरदास की जीवनी में यह सिद्ध किया है कि श्रीनाथ जी का नये मन्दिर में प्रवेश पहले सं० १५६६ में ही हो गया था। वल्लभ-दिग्विजय में पृ० ४६ और ५० पर लिखा है कि आचार्य जी ने अपनी स्त्री के द्विरागमन के बाद तथा श्रीगोपीनाथ जी के जन्म (सं० १५६७) से पहले कृष्णदास को शरण में लिया और नये मन्दिर में श्रीनाथ को प्रविष्ट किया। गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में लिखा है कि श्रीनाथ जी का नये मन्दिर में पाटोत्सव सं० १५७६ में हुआ। कॉकरौली के इतिहास, पृ० ४६, पर श्री कण्ठमणि शास्त्री जी ने लिखा है कि श्रीनाथ जी का पाटोत्सव सं० १५७६ में ही हुआ, परन्तु आचार्य जी ने श्रीनाथ जी का प्रवेश सं० १५६६ में ही कर दिया था तथा कीर्तन आदि सेवा का मण्डान बाँध दिया था।

महीने लगे हो। सं० १५६६ में से १३½ वर्ष निकालने से सं० १५५२ वि० के लगभग का समय कृष्णदास के जन्म का आता है।

कृष्णदास जी ने गुसाईं विट्ठलनाथ जी के सातों पुत्रो की वधाई गाई है। इससे सिद्ध होता है कि कृष्णदास जी सातवे पुत्र श्रीघनश्याम जी के जन्म समय, संवत् १६२८, तक जीवित थे। इन वधाई के पदों मे से निम्नलिखित पद के लिखे जाते समय घनश्याम जी की आयु तीन वर्ष की अवश्य रही होगी। इस हिसाब से उनका संवत् १६३१ तक जीवित रहना सिद्ध होता है।

अन्त समय

धमार राग गौरी

श्रीवल्लभ कुल मंडन प्रगटे श्रीविट्ठलनाथ,
जे जन चरन न सेवत तिनके जनम अकाथ।१
भक्ति भागवत सेवा निस दिन करत आनन्द,
मोहन लीला सागर नागर, आनन्द कन्द।२
सदा समीप विराजे श्रीगिरधर गोविन्द,
मानिनी मोद वढावे निज जन के रवि चन्द।३
श्रीवालकृष्ण मन रंजन खंजन अम्बुज नयन,
मानिनी मान छुड़ावें वङ्क कटाक्षन सेन।४
श्रीवल्लभ जग वल्लभ करुणा-निधि रघुनाथ,
और कहाँ लगि वरनों जग वन्दन यदुनाथ।५
श्रीघनश्याम वाल वल अविचल केलि कलोल,
कुञ्चित केश कमल मुख जानों मधुपन के टोल।६
जो यह चरित वखाने श्रवन सुने मन लाय,
तिनके भक्ति जु वाढ़े आनन्द द्योस विहाय।७
श्रवन सुनत सुख उपजत गावत परम हुलास,
चरण कमल रज पावन वलिहारी कृष्णदास।८[1]

दो सौ वावन वैष्णवन की वार्ता तथा श्रीनाथ द्वार मे प्रचलित परम्परा के आधार से ज्ञात होता है कि कृष्णदास अधिकारी की मृत्यु के वाद गुसाईं जी ने चाँपा भाई[2] गुजराती

१—वसन्त धमार, कीर्तन-संग्रह, भाग ३, लल्लू भाई छगनलाल देसाई, पृ० १८१।
२—'गुसाईं जी के सेवक चांपा भाई की वार्ता' २५२ वैष्णवन की वार्ता, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० ४७३।

को श्रीनाथ जी का अधिकार सौपा । चाँपा भाई अधिकारी वनने से पहले गोस्वामी विट्ठलनाथ की प्रदेश-यात्राओं मे भण्डारी रहा करते थे । श्रीगुसाईं जी ने गुजरात की कई यात्राएँ की । इन यात्राओ मे [1] एक यात्रा व्रज से सम्वत् १६३१ मे और दूसरी व्रज से ही सं० १६३८ मे की । चाँपा भाई गोस्वामी जी की सं १६३१ वि० की गुजरात यात्रा में उनके साथ उपस्थित थे । यह वात गोस्वामी जी के यात्राओ के वर्णन से ज्ञात होती है । उनकी दूसरी यात्रा मे जो उन्होंने सं० १६३८ मे की, चाँपा भाई के साथ जाने का उल्लेख नही मिलता । अनुमान से वे उस समय श्रीनाथ जी के अधिकार के पद पर थे । इसलिए यह कहा जा सकता है कि कृष्णदास का गोलोकवास सं० १६३१ और सं० १६३८ के बीच मे हुआ । दो सौ वावन वार्ता में चाँपा भाई के वृत्तान्त मे लिखा है कि जब चाँपा भाई अधिकारी थे, उस समय गुसाई जी ने गुजरात की यात्रा की । शीतकाल था । राजा बीरवल ने गोस्वामी जी को शीतकाल मे विदेश जाने से रोका ।[2] गुसाई जी की यह यात्रा लेखक के विचार से स० १६३८ विक्रमी की गुजरात यात्रा थी । इस समय चाँपा भाई को अधिकार ग्रहण किये हुए साल-दो साल तो हो ही गये होगे । इसलिए, अनुमानतः कृष्णदास का निधन सं० १६३२ से सँ० १६३८ के बीच मे हुआ ।

श्रीहरिराय-कृत भावप्रकाशवाली वार्ता मे इनके लीलात्मक स्वरूप[3] के बारे में लिखा है कि ये दिन की गोचारण लीला मे ऋषभ सखा और रात्रि की कुञ्जलीला मे ललिता सखी हैं ।

नन्ददास जी के जीवन चरित्र की संक्षिप्त रूपरेखा

पीछे कहे आधारो के अनुसार नन्ददास के जीवन-चरित्र की संक्षिप्त रूप-रेखा इस प्रकार है—

नन्ददास का निवास स्थान 'भक्तमाल' मे रामपुर ग्राम दिया हुआ है ।[4] कवि ने स्वयं अपनी रचनाओ मे इसका कही उल्लेख नही किया । 'दो सौ वावन वैष्णवन की वार्ता' उसे पूर्व देश का निवासी बताती है । पाटन की हस्तलिखित अष्टछाप वार्ता में नन्ददास को रामपुर निवासी लिखा है । भक्तमाल की टीकाएँ तथा 'भक्त-नामावली' कवि के निवास तथा जन्म-स्थानो

जन्म स्थान

---

१ – काँकरौली का इतिहास पृ० ६६ । काँकरौली-इतिहास के लेखक प्रो० कण्ठमणि शास्त्री जी का कहना है कि ये तिथियां एक गुर्जर डायरी के आधार से निश्चित की गई हैं ।

२—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ० ४७३ ।

३—अष्टछाप वार्ता, काँकरौली से प्रकाशित, पृ० १७६ ।

४—भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ६०२ ।

के विषय मे मौन हैं। वार्ता तथा भक्तमाल के आधार से इस विषय मे केवल इतना ही कहा जा सकता है कि नन्ददास गोकुल-मथुरा से पूर्व की ओर स्थित रामपुर ग्राम के रहनेवाले थे। रामपुर स्थान की ठीक-ठीक स्थिति का पता लेखक नही लगा सका है। सोरो जिला एटा वाली सामग्री रामपुर की स्थिति सोरों के पास सिद्ध करती है, परन्तु जब तक इस सामग्री की प्रामणिकता सन्दिग्ध हैं, तब तक सोरो जिला एटा का रामपुर कवि की जन्मभूमि नहीं कही जा सकती।

'भक्तमाल' में नन्ददास को सुकुल (शुक्ल आस्पद अथवा उच्च कुल) कुल का व्यक्ति बताया गया है। भावसहित दो सौ बावन वार्ता मे उन्हे सनौढिया लिखा है।[1] 'मूल गुसाईं चरित्र' मे नन्ददास को कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताया है, परन्तु 'वार्ता' इन्हे सनाढ्य ब्राह्मण बताती है। 'मूल गुसाईंचरित' का कथन ग्राह्य नही है, क्योकि यह ग्रन्थ प्रामाणिक नही है। वार्ता तथा भक्तमाल के आधार से कहा जा सकता है कि नन्ददास का जन्म शुक्ल आस्पद वाले सनाढ्य ब्राह्मण कुल मे हुआ था। वार्ता मे नन्ददास के माता-पिता, वंश आदि के विषय मे कुछ नही बताया गया और न भक्तमाल मे ही इस सम्बन्ध मे कोई उल्लेख है। २५२ वार्ता में रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास को नन्ददास का भाई कहा गया है। तुलसीदास उनके सगे भाई थे अथवा चचेरे यह बात वार्ता मे स्पष्ट नही की गई। नन्ददास और तुलसीदास के भाई होने का कथन लेखक की देखी हुई सभी' '२५२ वैष्णवन की वार्ता' तथा अष्टछाप वार्ताओं, मे दिया हुआ है।

जाति-कुल

वार्ता से विदित है कि नन्ददास के दीक्षागुरु श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य और पुत्र, श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी थे। नन्ददास की रचनाओ के देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका अध्ययन गभीर था, तथा विद्वत्ता के लिए उनका बड़ा मान था। साथ ही यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि वे संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे और उनको हिन्दी भाषा से बहुत प्रेम था। उनका सस्कृत का अध्ययन तथा भाषा प्रेम तो इससे स्पष्ट है कि उन्होंने दशमस्कन्ध की कथा सस्कृत से भाषा में इसलिए की कि संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ व्यक्ति भी उसका आनन्द पा सके। संस्कृत भाषा नन्ददास के समय मे साधारण वर्ग के लिए दुरूह हो गई थी। नन्ददास का ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया, सर्वसाधारण की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर उन्होंने सम्पूर्ण दशम स्कन्ध भाषा मे किया भी, पर ब्राह्मणो के सकुचित

१—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ३२६।

नोट:—कॉकरौली-विद्याविभाग में स्थित संवत् १६९७ वि० की '८४ वैष्णवन की वार्ता' के साथ लगी गुसाई जी के चार मुख्य सेवकन की वार्ता में भी नन्ददास और तुलसीदास को एक दूसरे का भाई और सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है।

विचार तथा स्वार्थपरता से उसका अधिक भाग नष्ट कर दिया गया। वार्ता के इस प्रसङ्ग से नन्ददास के संस्कृत-ज्ञान और उनकी मनोवृत्ति का परिचय अच्छी तरह मिल जाता है।

'भक्तमाल', भक्तमाल की टीकाएँ, भक्तनामावली' आदि ग्रन्थ नन्ददास के वैराग्य लेने और उनके वल्लभ-सम्प्रदाय मे जाने की घटना का कोई उल्लेख नही करते। इस प्रसङ्ग को

वैराग्य और वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश

२५२ वार्ता तथा 'अष्टसखान' की वार्ताएँ देती है। परन्तु वार्ता का दिया हुआ यह वृत्तान्त काशी से ही आरम्भ होता है। घर छोडकर नन्ददास काशी कैसे और कब पहुँचे, यह सूचना किसी सूत्र से नही मिलती। महात्मा तुलसीदास के प्रभाव से वे रामानन्द सम्प्रदाय के अनुयायी बन गये। कुछ समय बाद एक 'सङ्ग' काशी से रणछोर जी के दर्शनो को चला। नन्ददास भी अपने बडे भाई तुलसीदास की आग्रहपूर्वक अनुमति पाकर उस 'सङ्ग' के साथ चल दिये। वे सीधे मथुरा पहुँचे, वहाँ से वे, अपने साथियो को छोड़कर अकेले ही रणछोरजी को चल पडे। चलते-चलते वे द्वारिका का रास्ता भूल गये और कुरुक्षेत्र के आगे एक सीहनन्द नामक ग्राम में पहुँच गये। वहाँ एक क्षत्री साहूकार रहता था। नन्ददासजी उसके घर भिक्षा माँगने गये। उस साहूकार की स्त्री बड़ी रूपवती थी। नन्ददासजी उस स्त्री पर मोहित हो गये। वे नित्य उस क्षत्राणी के मुख को देखने उसके घर जाते। वह क्षत्री गोस्वामी विट्ठलनाथजी का शिष्य था। लोकापवाद के भय से वह सकुटुम्ब गोकुल-यात्रा को चल दिया। नन्ददास भी उस क्षत्री के पीछे-पीछे चल दिये। रास्ते मे यमुना तट पर आये। पर नाविक ने नन्ददास को पार नही उतारा। यह स्थिति नन्ददास के जीवन की एक उल्लेखनीय घटना है, क्योकि लौकिक विषय में आसक्त रसिक नन्ददास के जीवन का यह अन्तिम परिच्छेद है। यही कवि नन्ददास का सर्वप्रथम परिचय मिलता है।

लौकिक प्रेम में मुग्ध नन्ददास ने यमुना के किनारे बैठकर यमुना-स्तुति के पद गाये। ये पद वल्लभसम्प्रदाय मे जाने से पहले ही उनके, उच्चकोटि के कवि होने का परिचय देते हैं। यमुना-महिमा-वर्णन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि नन्ददास एक धर्मभीरु व्यक्ति थे और तत्कालीन कृष्णभक्ति की लहर, जिसने समस्त भारत को आप्लावित कर दिया था, उनके हृदय मे पहले ही से घर कर गई थी। रणछोर जी (द्वारिका जी) के दर्शनो के उत्सुक नन्ददास के जीवन की धार्मिक गति को उस रूपवती क्षत्राणी ने कुछ समय के लिए रुद्ध कर दिया था। यमुना के किनारे गाये हुये यमुना-स्तुति के पदो से यह स्पष्ट है कि नन्ददास के मोह के बन्धन उसी समय टूट गये थे, क्योकि यदि ऐसा न होता तो ये पद उस क्षत्राणी का सङ्ग छूट जाने की विरह-वेदना का वर्णन करते। इन पदो मे रूपासक्ति, कामुकता, कातरता, विह्वलता, विछोह-दुःख आदि भाव व्यक्त नही हैं। उनमे तो निराशापूर्ण हृदय की आत्मिक शान्ति के आश्रय की खोज है। वास्तव मे ये पद नन्ददास के चरित्र की कसौटी हैं। इनसे स्पष्ट हो जाता है कि नन्ददास अपार मोहाग्नि मे जलकर खरे सोने की तरह चमक उठे थे। वियोग-

जन्य दुःख से वे अधीर नही हुये। कवि नन्ददास के जीवन के अनुभवो मे यह एक ऐसी घटना थी जिसने उनकी कवित्व-शक्ति को परिपक्व किया, उनके वर्णन को सूक्ष्म और उनकी अन्तर्दृष्टि को तीक्ष्ण बनाया। कवि ने इस रूपवती क्षत्राणी के दर्शन और चिन्तन मे सौन्दर्य देखा था, प्रेम की भावना को आँका था, वासना को तोला था, विरहातुरता समझी थी, सम्मिलन की सुखद कल्पना की थी और अन्त मे उसने संसार में लिप्त मनुष्य के हृदय की विकलता को समझा था। तभी तो रासपञ्चाध्यायी आदि ग्रन्थों मे उनके वर्णन इतने सजीव और सच्चे बन पडे हैं।

उक्त सन्ताप का अब अन्त आ चुका था, क्योकि यमुना के किनारे यमुना-स्तुति करते हुये निरुपाय नन्ददास को गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने सेवक द्वारा बुलवा लिया। उनके दर्शनो तथा उपदेशो से नन्ददास का मन सांसारिक जाल से छूटकर भगवान् कृष्ण के चरणो मे जा लगा। उन्हे गुरुवन्दना और बालकृष्ण के पद गाने ही में जीवन का सार मिलने लगा। कहते हैं कि घर का मोह एक बार फिर उन्हें गृहस्थी में खीच ले गया और फिर कुछ साल गृहस्थी मे रहकर ये गोकुल आये। इस समय मोह-बन्धन छूट जाने पर विरागी नन्ददास ने फिर संसार की ओर दृष्टि नही उठाई। उनकी जीवनी के आधार-रूप ग्रन्थो मे उनके गृहस्थी मे वापस जाने का कही उल्लेख नही है, परन्तु कांकरौली के कुछ वैष्णव विद्वानों का ऐसा ही अनुमान है। नन्ददास ने भी अपने एक पद मे श्री विट्ठलनाथ जी की वन्दना करते हुये कहा है—'रहो सदा चरनन के आगे'। इससे भी स्पष्ट है कि वे सदा गोस्वामी जी के पास ही रहते थे। विरागी नन्ददास अपने मानस-पटल पर सदा ही कृष्ण की लावण्यमयी मूर्ति को रास मे थिरकते हुये देखते थे :—

> मोहन पिय की मुसकनि, ढलकनि मोर मुकट की।
> सदा बसौ मन मेरे, फरकनि पियरे पटकी।
>
> रासपञ्चाध्यायी।

स्वभाव और चरित्र

नन्ददास रसिक व्यक्ति थे। उनके 'परम रसिक' मित्र के सङ्ग से भी इस बात की पुष्टि होती है। रसिक होने के साथ नन्ददास दृढ़ सङ्कल्पी भी थे, क्योकि वे तुलसीदास के मना करने पर भी रणछोर जी के दर्शनो को चल दिये थे। साथ ही उनके क्षत्राणी के ऊपर मोहित होने की घटना से भी उनके हठी होने का परिचय मिलता है, क्योकि वे बार-बार मना करने पर भी उसे देखने जाते ही रहे। उनका यह हठ केवल बालक का हठ नहीं था, वे धुन के पक्के व्यक्ति थे और अपनी इच्छित वस्तु को पाने का शक्ति भर प्रयत्न करते थे। असफल होने पर निराश भी नही होते थे। नन्ददास के स्वभाव में चपलता और उतावलापन भी था, क्योकि जब वह 'सङ्ग', जिसके साथ वे रणछोर जी के दर्शनो को काशी से गये थे, कुछ समय के लिए मथुरा मे रुक गया तो इन्हे सब्र न हुआ, अकेले ही चल पडे। नन्ददास सौन्दर्य-प्रेमी

मी थे। रणछोर जी की यात्रा में वे पहले तो मथुरा की रचना पर रीझे और फिर क्षत्राणी के रूप सौन्दर्य पर। रूपमञ्जरी की कथा भी उनके सौन्दर्य-प्रेमी होने का प्रमाण देती है। यह सब होते हुये भी नन्ददास अवश्य एक धर्मभीरु व्यक्ति थे। उनके मोह की अवस्था मे भी किसी ऐसी बात का उल्लेख नही मिलता, जिससे मालूम पड़े कि वे सदाचार से डिग गये थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उनकी यह धर्मभीरुता क्षत्राणी के सङ्ग छूटने के बाद गाये हुए यमुना-स्तुतिवाले उनके पदों से भी स्पष्ट है। इन सब बातो पर विचार करने के बाद कहा जा जा सकता है कि नन्ददास एक सहृदय, सौन्दर्य-प्रेमी तथा रसिक व्यक्ति थे। इनके चरित्र में दृढ़ता थी, परन्तु कुछ चपलता का भी समावेश था और वे धर्मभीरु थे।

वल्लभसम्प्रदाय मे स्थायी रूप से आने के बाद, उनका जीवन कृष्णभक्ति तथा गोकुल और गोवर्द्धन पर स्थित मन्दिरों की कृष्ण-मूर्तियों के दर्शन और सेवा में ही बीता। उनकी **वैराग्य के बाद का** जीवनचर्या केवल भगवद्चर्चा तथा पद और छन्द-रचना कर भगवान्

जीवन तथा मृत्यु के समक्ष उन्हे गाने मे ही थी। इस बीच मे नन्ददास ने अनेक ग्रन्थो की रचना की।

उनके वल्लभ-भक्ति के जीवन मे निम्नलिखित घटनाओ का भी उल्लेख २५२ तथा अष्टसखान की वार्ताओं में मिलता है:—

१—तुलसीदास का उनको रामभक्त बनाने का प्रयत्न करना, तथा उनसे मिलने व्रज मे आना[1]।

२—नन्ददास का अकबर की वैष्णव लौंडी से मिलने के लिए उसके डेरे मानसी गङ्गा पर जाना[2]।

३—बीरबल का उनसे मिलने आना[3]।

४—अकबर का उन्हे बुलाना[4]।

तुलसीदास का नन्ददास को रामभक्ति की ओर आकर्षित करने का असफल प्रयत्न सम्भव है, वल्लभसम्प्रदाय के गौरव को बढ़ाने के लिए साम्प्रदायिक कल्पना हो, परन्तु इतना

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३४२-३४३
२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३४८।
३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३५१।
४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३५१।

अवश्य माना जा सकता है कि तुलसीदास एक वार अपने भाई नन्ददास से व्रज मे मिले थे। अकवर के मानसी गङ्गा पर डेरा डालने पर नन्ददास उसकी एक वैष्णव लौडी 'रूपमञ्जरी' से मिलने गये। 'वार्ता' के इस प्रसङ्ग में नन्ददास के एक अत्यन्त प्रेमी मित्र 'रूपमञ्जरी' के होने की सूचना मिलती है। उसी समय राजा वीरवल भी नन्ददास से मिले। बीरबल का इनसे मिलने जाना सम्भव हो सकता है, क्योंकि वह एक धर्मनिष्ठ हिन्दू था! वह सन्तो, भक्तों तथा कवियों के सत्सङ्ग का इच्छुक रहता था और उनका आदर करता था। अकवर का इन्हें वुलाना भी सम्भव हो सकता है, क्योकि तानसेन के गाये हुये पद ("देखो देखो री नागर नट निर्तत कालिंदी तट") से अकवर ने इन्हे एक भक्तकवि के रूप में ही जाना था। इतिहास इस वात का प्रमाण है कि अकवर कवियो और दूसरे धर्मानुयायियों का भी निष्पक्ष रूप से आदर करता था। इसलिए अकवर द्वारा नन्ददास के बुलाये जाने की घटना को असङ्गत कहना अथवा उसमें कोई शङ्का करना निराधार प्रतीत होता है। वार्ता में लिखा है कि नन्ददास की मृत्यु अकवर के सामने हुई थी। जिस प्रकार से यह प्रसङ्ग वार्ता में दिया गया है, वह साम्प्रदायिक महत्व की दृष्टि से देखा जा सकता है। परन्तु अन्य सब वृत्तान्त छोड कर हम इतना ऐतिहासिक तात्पर्य निकाल सकते हैं कि नन्ददास की मृत्यु अकवर तथा वीरवल के जीवनकाल मे ही मानसी गङ्गा पर हुई थी। इस वात की किंवदन्ती भी मानसी गङ्गा पर सुनने मे आती है कि यही नन्ददास का गोलोकवास हुआ था, और वे यही अपनी यशकाया से निवास करते हैं।

जन्म तथा वल्लभ-सम्प्रदाय में शरणागति की तिथियाँ

अष्टछाप वार्ता मे लिखा है शरणागति के वाद गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने नन्ददास को कुछ समय सूरदास के सत्सङ्ग मे रक्खा। कांकरौली के वैष्णवो से लेखक ने यह भी किंवदन्ती सुनी थी कि साहित्य-लहरी की रचना सूरदास ने उसी समय नन्ददास को मन की एकाग्रता प्राप्त कराने तथा उनकी विद्वत्ता के अभिमान को चूर्ण करने के लिए की थी। पीछे कहा जा चुका है कि साहित्य-लहरी की इन पक्तियो में—"नंद नन्दनदास हित साहित्य लहरी कीन्ह,"—'नन्दनन्दनदास' से तात्पर्य नन्ददास का है। साहित्य लहरी की रचना संवत् १६१७ वि० मे हुई थी। इसलिए नन्ददास की शरणागति का समय संवत् १६१६ वि० के लगभग अनुमान किया जा सकता है। इनके साथ यह भी किंवदन्ती-रूप मे कहा जाता है कि नन्ददास की लौकिक वृत्ति उन्हे फिर से गृहस्थी मे खीच ले गई और फिर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोकुल मे स्थायी रूप मे निवास करने के वाद लगभग संवत् १६२४ को वे फिर गोस्वामी जी की शरण मे आये और फिर वे गोवर्द्धन छोड़ कर कही नही गये। २५२ वार्ता मे जो पद—'जयति रुक्मिणी नाथ पद्मावती प्राणपति विप्रकुल छत्र आनदकारी'—नन्ददास द्वारा गाया हुआ वताया गया है, वह सवत् १६२४ वि० के वाद का है, क्योकि इस पद मे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की द्वितीय पत्नी पद्मावती का उल्लेख है जिसका विवाह लगभग संवत् १६२३ मे हुआ था।

अप्टछाप-वार्ता मे लिखा है कि शरणागति के समय नन्ददास की मानसिक वृत्ति लौकिक विषयो की ओर अधिक थी तथा वे तुलसीदास के साथ काशी में रहा करते थे। उस समय तक उनका विवाह हुआ था अथवा नही, वार्ता-साहित्य से इस बात की कोई सूचना ही मिलती। परन्तु लेखक का अनुमान है कि जैसे तुलसीदास विवाह के कुछ साल बाद स्त्री के प्रबोधन से वैराग्य लेकर तथा रामानन्दी सम्प्रदाय को अङ्गीकार कर काशी मे रहते थे, उसी प्रकार नन्ददास का भी विवाह हो गया था और वे भी अद्धराग्य से काशी मे तुलसीदास के साथ रहते थे। अनुमान से उस समय उनकी आयु २५ या २६ वर्ष की रही होगी। इस प्रकार संवत् १६१६ (शरणागति समय) मे से २६ वर्ष निकालने पर इनका जन्म संवत् लगभग १५९० वि० आता है।

नन्ददास की मृत्यु अकबर बादशाह के समक्ष हुई थी, यह बात '२५२ वैष्णवन की वार्ता' से विदित है। इतिहास बताता है कि अकबर बादशाह की मृत्यु स० १६६२ मे हुई थी। इसलिए नन्ददास की मृत्यु सं० १६६२ से पहले होनी चाहिए।

गोलोकवास की तिथि

वार्ता मे यह भी लिखा है कि अकबर बीरबल को साथ लेकर ब्रज गया था और ब्रज मे अपने आने की सूचना बीरबल के द्वारा ही नन्ददास के पास भिजवाई थी। इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास की मृत्यु बीरबल के जीवन-काल ही मे हुई थी। बीरबल की मृत्यु [1] स० १६४३ मे काश्मीर की लडाई मे हुई थी। इसलिए नन्ददास की मृत्यु का समय संवत् १६४३ से पहले होना चाहिए।

उन हस्तलिखित '२५२ वार्ताओ' मे जिसका पीछे हवाला दिया जा चुका है, और गुसाईं जी के मुख्य सेवक तिनकी वार्ता" नामक ग्रन्थ मे नन्ददास जी की वार्ता के छठे प्रसङ्ग मे, इनकी मृत्यु कैसे हुई, इसका वर्णन है। यही प्रसङ्ग वेंकटेश्वर प्रेस से छपी 'वार्ता' मे रूपमञ्जरी की वार्ता मे है। उपर्युक्त हस्तलिखित वार्ता में लिखा है कि नन्ददास और रूपमञ्जरी की मृत्यु का समाचार वैष्णवो ने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को सुनाया, जिन्होंने नन्ददास की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इससे विदित होता है कि नन्ददास की मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सामने हुई थी। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का गोलोकवास सं० १६४२ मे हुआ। इसलिए नन्ददास की मृत्यु सं० १६४२ से पहले ही हुई होगी। पीछे सूरदास की जीवन-तिथियो के विवेचन के अन्तर्गत कहा जा चुका है कि अकबर की धार्मिक जिज्ञासा

[1]—'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया भाग ४ पृ० १३५, बीरबल की मृत्यु, सन् १५८६ ई० में हुई।

"Of the Twelve officers personolly known to Akbar, who fell the most important was Birbal .... and on the 24th Feb. 1586 A D. Zain Khan and Abdul Fateh led the remnant into Akbar's Camp."

तथा उदारवृत्ति दीन-इलाही मत के चलाने के ठीक पूर्व समय में बहुत प्रबल थी, उसी समय वह हिन्दू देवस्थानो मे अधिक जाता था, संत और भक्तो से मिलता था तथा उनके प्रवचनो को उत्सुकता के साथ सुनता था। यह समय इतिहासकारो ने सन १५८२ ई० के पूर्व दो तीन साल पहले का बताया है। लेखक का अनुमान है कि अकवर इसी समय के लगभग मानसी गङ्गा तथा गोवर्द्धन पर गया था। उस समय वीरवल जीवित था और उसके साथ था। इसी समय उसने नन्ददास के पद से प्रभावित हो उनसे भेट की थी। इसलिए नन्ददास के निधन का संवत् अनुमान से लगभग १६३९ वि० कहा जा सकता है।

चतुर्भुजदास जी के जीवन की रूपरेखा

जन्मस्थान, जातिकुल

चतुर्भुजदास जी का जन्म-स्थान व्रज मे जमुनावतो गाँव था, [१] जिसका वर्णन कुम्भनदास जी की वार्ता मे दिया जा चुका है। चतुर्भुज जी अष्टछाप के कवि कुम्भनदास जी के पुत्र थे। और उनकी जाति गोरवा क्षत्री थी। [२]

माता, पिता, कुटुम्ब, गृहस्थी

चतुर्भुजदास अपने पिता के सातवे तथा सवसे छोटे वेटे थे। बाल्यकाल से ही भगवद्भक्त होने के कारण माता-पिता का इनके ऊपर विशेष प्रेम था; क्योंकि इनके पिता जी स्वयं एक त्यागी भक्त थे। चतुर्भुज दास जी के पाँच वडे भाइयो की बुद्धि लौकिक व्यवहार मे वहुत संलग्न थी। इसलिए वे पाँचो अपने भक्त भाई चतुर्भुजदास और पिता कुम्भनदास से अलग रहते थे। [४] इनके एक भाई कृष्णदास को श्रीनाथ जी की गाय चराते समय सिंह ने मार डाला। ये और एक इनकी चचेरी बहन जो गुसाई श्री विट्ठल नाथ जी की शिष्या थी, अपने पिता कुम्भनदास जी के साथ रहते थे। वार्ता मे लिखा है कि इनकी प्रथम स्त्री का, विवाह के कुछ समय वाद ही, देहान्त हो गया था। [५] इसके वाद इन्होंने एक विधवा स्त्री से विवाह किया। [६] वार्ता से यह भी ज्ञात होता है कि इनके राघवदास नाम का एक पुत्र भी था जो भगवद्भक्त और कवि था। [७] यद्यपि चतुर्भुजदाम अपने

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६०।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६०।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६०, अष्टसखान की वार्ता तथा २५२ वार्ता से इस कथन की पुष्टि होती है।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६०।

५—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३०६।

६—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३१०।

७—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० ३२४।

पिता की तरह गृहस्थ थे, परन्तु उनका गृहस्थी मे मोह न था। वे सदैव श्रीनाथ जी की कीर्तन-सेवा मे ही रहते थे।

शिक्षा

चतुर्भुजदासजी की शिक्षा उनके पिता कुम्भनदास तथा श्री गोस्वामी विट्ठलनाथजी की देखरेख मे ही हुई। गान-विद्या इन्होंने अपने पिता से सीखी थी। काव्य-रचना भी इनके पिता की ही देन थी। कुम्भनदासजी इनके वाल्यकाल मे ही इनको कृष्ण की लीलाओ का रहस्य समझाया करते थे—"ता दिन ते कुम्भनदास जी रहस्य-लीला वार्ता चतुर्भुजदास सो करते।"[1] वार्ता से यह विदित ही है कि ये श्रीनाथजी के समक्ष कीर्तन किया करते थे और इन्होंने बहुत से पद कृष्ण की वाल-लीला,[2] विनय[3], और विरह[4] के भावो के बनाये।

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन

वार्ता में लिखा है कि चतुर्भुजदास के जन्म के वाद जब शुद्धि स्नान हुआ तब उनके पिता कुम्भनदासजी वालक चतुर्भुज को श्री गुसाईं विट्ठलनाथजी के पास ले गये और विनती की—"महाराज कृपा करके चतुर्भुजदास को नाम सुनाइये......... यह सुनि के चतुर्भुजदास ताही समे किलक के हँसे।" इसके वाद उसी दिन राज-भोग के समय गुसाईंजी ने नवजात शिशु को शरण मे लिया। उन्होंने कुम्भनदास जी से कहा—"या पुत्र सो तुमको बहुत ही सुख होयगो। सो तुम्हारे मन मे जैसो मनोरथ हतो ताही भाँति सो तुम्हारे मनोरथ सिद्ध भये हैं।"

जब चतुर्भुजदास कुछ वडे हुये तो श्रीनाथजी की गायो को चराने के लिए जाने लगे। उनकी शिक्षा उनके पिता और श्रीगुसाईं जी के निकट हुई। वार्ता में वालक चतुर्भुजदास की आरम्भिक काव्य-रचना से सम्बन्ध रखनेवाला एक प्रसङ्ग इस प्रकार दिया हुआ है—

१—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ३००।

२— ,, ,, ,, ३१८ और ३१९।

३—"ऐसे प्रार्थना के चत्रभुजदास ने बहुत कीर्तन करिके सूतक के दिन बितीत किये।" अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ३०९।

४—"चत्रभुजदास के मन में बहुत विरह भयो, तब श्रीगिरिराज के ऊपर बैठि के विरह कीर्तन करन लागे।" अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ३१२।
"या भाँति सो अत्यन्त बिरह के कीर्तन चत्रभुजदास ने किये।"
अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० ३१३।

५—"ता समय मन्दिर में श्रीगोवर्द्धननाथजी और कुम्भनदासजी रहे। ता समय श्रीगुसाईंजी चत्रभुजदास को नाम सुनाय पाछे तुलसी लेके कुम्भनदास तें कहे, जो चतुर्भुजदास को लावो, सो श्री गोवर्द्धननाथजी के सम्मुख चत्रभुजदास को ब्रह्म सम्बन्ध करवायो। पाछे तुलसी श्री गोवर्द्धननाथजी के चरण कमल पर समर्पे।' अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० २९५।

एक समय कुम्भनदास और चतुर्भुजदास दोनों जमुनावतो गाँव मे अपने घर वैठे थे। आधी रात्रि का समय था। श्री गोवर्द्धननाथजी के मन्दिर मे दीपक जल रहा था। उसका प्रकाश झरोखों से निकलकर वाहर दिखाई देता था। उसे देखकर कुम्भनदासजी ने चतुर्भुजदास को सुनाकर एक चरण कविता मे कहा—'वह देखो वरत झरोखन दीपक हरि पौढे ऊँची चित्र सारी' और इस चरण को कहकर वे चुप हो गये। उसी समय चतुर्भुजदास ने सहसा दूसरा चरण इस प्रकार कहा—'सुन्दर वदन निहारन कारन, राखे है बहुत जतन करि प्यारी।' यह सुनकर कुम्भनदास वहुत प्रसन्न हुये।[1] इसके वाद चतुर्भुजदास ने समय-समय पर अनेक लीलाओ के पद वनाकर गाये।

स्वभाव और चरित्र

चतुर्भुजदास के जन्म से पहले कुम्भनदासजी अपने छै पुत्रो की लौकिक वृत्ति देखकर कामना किया करते थे कि मेरे कोई भगवद्भक्त सन्तान हो। चतुर्भुजदास के जन्म से उनकी यह कामना पूर्ण हो गई। चतुर्भुजदासजी भी अपने पिता की तरह आरंभ से त्यागी थे। उन्होने अपना पहला विवाह लोगो के वहुत आग्रह के वाद किया था। इनकी लोक से अनासक्ति और भगवान् के साथ आसक्ति का भाव वार्ता के इन शब्दो से प्रकट होता है—"तव श्रीगोवर्द्धननाथजी ने चत्रभुजदास सो कह्यो, जो चत्रभुजदास तू व्याह करि, तव चत्रभुजदास ने कही, जो महाराज मैं यह सुख छाँडि के आपदा मे क्यो पडूँ, तव श्रीगोवर्द्धननाथजी ने फिर आज्ञा करी जो वेगि व्याह करि।"[2]

चतुर्भुजदासजी श्रीनाथजी के मन्दिर को छोडकर अन्यत्र नही जाते थे।[3] इससे विदित होता है कि ये एकान्तप्रिय व्यक्ति थे। एक वार गोस्वामी विट्ठलनाथजी गुजरात-यात्रा को गये[4], उस समय गुसाईंजी के वडे पुत्र गिरधरजी श्रीनाथजी के स्वरूप को मथुरा ले गये। जितने दिन श्रीगोवर्द्धननाथ (श्रीनाथजी) मथुरा रहे उतने दिन गोवर्द्धन पर चतुर्भुजदास ने अपने दिवस बहुत विरह मे काटे। उस समय इन्होने वहुत से विरह के पद लिखे थे।

'अष्टसखान की वार्ता' मे लिखा है कि जव श्री विट्ठलनाथ जी ने श्री गिरिराज की

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३००।

२— ,, ,, ,, ३०८।

३—"ता दिन ते चत्रभुजदास श्रीगिरिराजजी की तलेटी छांड़ि के कहूँ न जाते।"
चतुर्भुजदास की वार्ता, अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३२०।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३१८, ३१३।

कन्दरा मे प्रवेश कर नित्यलीला में प्रवेश किया, उस समय चतुर्भुजदास अपने गाँव से इस समाचार को सुन कर गिरिराज पर आये और कन्दरा के आगे गिर कर महाविलाप करने लगे और कहने लगे—"महाराज पधारत समय मोको आपके दरशन हू न भये और मै आप विना या पृथ्वी ऊपर कोन को देखूंगो ताते अब या पृथ्वी ऊपर मोको मति राखो। मोहु को आप के चरणारविन्द के पास निकट ही राखो, मोहू कू वुलाय लीजे[1]।" उसके वाद उन्होने उस विरह मे निम्नलिखित दो पद गाये जिनका उल्लेख कवि द्वारा दिये हुये आत्मचारित्रिक वृत्तान्त मे किया जा चुका है :—

गोलोकवास।

"फिर व्रज बसहु श्री विट्ठलेश"

तथा

"विट्ठल सो प्रभु भये न ह्वै है।"

इसी प्रकार के विरह के कीर्तन करते करते चतुर्भुजदास ने भी अपनी देह छोड़ दी[2]। चतुर्भुजदास के बेटे राघवदास तथा अन्य वैष्णवो ने उनका अग्नि संस्कार किया[3]।

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी स० १५९७ वि० मे गिरिधर जी के जन्म (प्राकट्य) के बाद नन्द महोत्सव करके व्रज मे आये[4]। अष्टछाप वार्ता मे लिखा है कि कुम्भनदास जी ने चतुर्भुजदास जी के जन्म के बाद 'पिड़रु' संस्कार किया और फिर शुद्ध होकर पुत्र चतुर्भुजदास को स्नान कराया और दूसरे दिन उन्हे श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण मे दिया[5]। श्री द्वारिकानाथ जी के मन्दिर काँकरौली मे लेखक को ज्ञात हुआ कि वल्लभ-सम्प्रदाय के गृहस्थ लोगो मे बालक के जन्म से ४१ वे दिन शुद्धि स्नान हुआ करता है। इस हिसाब से कहा जा सकता है कि चतुर्भुजदास अपने जन्म से ४१ वे दिन गोस्वामी जी की शरण मे गये। इस तरह इनका जन्म तथा शरणागति संवत् एक ही है जो सम्प्रदाय-कल्पद्रुम के अनुसार सं० १५९७ वि० है[6]।

जन्मतिथि।

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३२२।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३२४।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३२५।

४—सम्प्रदाय-कल्पद्रुम पृ० ५१।

५—अष्टछाप, कॉकरौली, पृ० १९४।

६—विद्वानों को सम्प्रदाय-कल्पद्रुम में दिये हुये सम्वत् बहुधा ग्राह्य नहीं है। यहां अन्य विश्वस्त प्रमाणों के अभाव में लेखक ने इस ग्रन्थ में दिया हुआ उक्त संवत् ले लिया है।

कवि के आत्मचारित्रिक उल्लेख से एक तो यह सिद्ध होता ही है कि वे सं० १६२८ वि० (श्री विट्ठलनाथ जी के सातवें पुत्र घनश्याम जी का जन्म-संवत्) तक विद्यमान थे, क्योंकि उन्होंने घनश्याम जी को बधाई गाई है। दूसरे, उनके पीछे दिये पदों के स्वयं लेख से यह भी सिद्ध है कि उनका देहान्त श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोलोकवास के बाद हुआ था। अष्टछाप वार्ता से विदित है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ के गोलोकवास के तत्काल इन्होंने भी देह छोड़ दी थी[1]। गोस्वामी जी के गोलोकवास की तिथि सं० १६४२ वि० फाल्गुण कृष्ण ७ वल्लभ सम्प्रदाय में भी मानी जाती है। 'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' में सं० १६४४ वि० दिया है, परन्तु वल्लभ-सम्प्रदायी अनेक प्राचीन प्रमाणों के आधार से सं० १६४२ वि० ही गुसाईं जी के गोलोकवास की निश्चित तिथि है। इस हिसाब से चतुर्भुजदास जी का गोलोकवास लगभग ४५ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर सं० १६४२ वि० के फाल्गुण मास में ७ या ८ को हुआ। ब्रज में रुद्र कुण्ड के ऊपर एक इमली के वृक्ष के नीचे इनका मृत्यु स्थान बताया जाता है।

गोलोकवास का समय

गोविन्द स्वामी के जीवन-चरित्र की रूपरेखा

वार्ता के अनुसार इनका लीलात्मक स्वरूप विशाल सखा और विमला सखी है[2]।

गोविन्द स्वामी का जन्म आँतरी ग्राम में हुआ था[3]। आँतरी ग्राम भरतपुर राज्य के अन्तर्गत बताया जाता है। वार्ता ने लिखा है कि गोविन्दस्वामी वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले महावन में[4] रहते थे परन्तु; साथ में यह भी लिखा है कि ये पहले आँतरी ग्राम में रहते थे। इससे विदित होता है कि इनका जन्म-स्थान आँतरी ग्राम ही था।

जन्म-स्थान

आँतरी गाँव से आकर ये कुछ दिन महावन रहे, फिर वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद ये गोकुल और महावनो के टीलो पर बैठकर कीर्तन किया करते थे।[5] बाद को जब

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० १० १२४।

२—अष्टछाप, काँकरौली पृ० १० २६१।

३—"सो वे प्रथम आँतरी ग्राम में रहते" अष्टछाप काँकरौली, पृ० २६४।
एक 'आँतरी' गाँव ग्वालियर स्टेट की भिण्ड तहसील में भी है।

४—"अब गुसाईंजी के सेवक गोविन्दस्वामी, सनौढ़िया ब्राह्मण, अष्टछाप में जिनके पद गाइयत हैं। महावन में रहते तिनकी वार्ता"
अष्टसखान की वार्ता तथा अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २६४

५—अष्टछाप डा० वर्मा, पृ० १२१ तथा लेखक के पास की अष्टछाप वार्ता।

स्थायी निवास-स्थान

ये गोवर्द्धन चले गये, तब अन्त समय तक वही रहे। वहाँ गिरिराज की कदम-खण्डी इनका स्थायी निवास-स्थान है। यह स्थान अब भी गोविन्द स्वामी की कदम खण्डी के नाम से गोवर्द्धन पर प्रसिद्ध है।

जाति-कुल, माता-पिता, कुटुम्ब तथा गृहस्थी

वार्ता से विदित है कि इसका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण-कुल मे हुआ था।[१] वार्ता से तथा अन्य किसी भी सूत्र से इनके माता-पिता का नाम ज्ञात नही होता। वार्ता से यह तो ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले यद्यपि इनके मन की वृत्ति भगवान् की भक्ति की ओर लग गई थी, परन्तु ये थे एक गृहस्थ। इनके सन्तान भी थी। इनकी बडी बहन कानबाई थी जो इनके साथ गुसाईं जी की सेविका हो गई थी और उन्ही के साथ रहती थी। अष्टछाप मे इनकी एक बेटी का भी उल्लेख है।[२] एक बार इनकी बेटी आँतरी से इनके पास आई। वह कुछ दिन इनके पास रही, परन्तु गोविन्दस्वामी उससे बोले नहीं। उनकी बहन ने पूछा—"गोविन्ददास ! तू कबहूँ बेटी सो बोलत ही नाही, योहूँ न पूछे जो तू कब आई है, सो कहा है।" इस पर गोविन्दस्वामी ने कानबाई से कहा, "कन्हीयाँ ! मन तो एक है, सो श्री ठाकुरजी मे लगाऊँ के बेटी में लगाऊँ। इससे ज्ञात होता है कि एक बार गृहस्थी छोड़ने के बाद इन्होंने अपने कुटुम्ब की ओर से पूर्ण वैराग्य ले लिया था।

शिक्षा

गोविन्दस्वामी की आरम्भिक शिक्षा और उनके शिक्षा-गुरु का उल्लेख किसी ग्रन्थ मे उपलब्ध नही है। वार्ता से ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले ये कवीश्वर थे और पद बनाकर गाया करते थे।[३] साधु-सङ्गति से इनके मन की वृत्ति भक्ति की ओर झुक गई थी। आँतरी गाँव मे रहते हुए ही उनके उस स्थान पर बहुत से सेवक हो गये थे।[४] वार्ता से यह स्पष्ट नही है कि सेवक गान-विद्या और काव्य-विद्या सीखने के लिए हुये थे अथवा गोविन्द

१—"अथ श्री गुसाईंजी के सेवक गोविन्दस्वामी सनोढिया ब्राह्मण अष्टछाप में जिनमें पद गाइयत हैं, महावन में रहते तिनकी वार्ता।"
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २६४।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २८८।

३—"सो गोविन्दस्वामी कवीश्वर हते सो आप पद करते।"
अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २६४।

४—"सो पहले गोविन्दस्वामी आँतरी में सेवक करते, सो उहां गोविन्द स्वामी कहावते। आँतरी में इनके सेवक बहुत हते।"
अष्टसखान की वार्ता।

स्वामी किसी सम्प्रदाय के आचार्य बनकर लोगों को दीक्षा देते थे। अनुमान है कि लोग उनके पास गान और कविता करने की शिक्षा लेने ही आते थे। उनकी साधुवृत्ति तो थी ही, इसी से उन्हें लोग स्वामी कहने लगे थे। गान की और कविता करने की विद्या इन्होंने किस गुरु से सीखी, इसका किसी भी सूत्र से पता नहीं चलता। वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद तो इन्होंने अपने सम्प्रदायी सूरदास जैसे महात्माओं से तथा श्री गोस्वामी विट्ठलनाथजी से ज्ञान प्राप्त किया था।

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन

पीछे वार्ता के आधार से कहा गया है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले गोविन्दस्वामी का मन भगवान् की भक्ति की ओर झुक गया था। उनके मन की वृत्ति का यह आध्यात्मिक मोड़ कैसे हुआ, यह वार्ता से विदित नहीं है। अनुमान से कहा जा सकता है कि जीवन की किसी विषम परिस्थिति से ठेस पाकर तथा साधु-महात्माओं के उपदेश से उनकी यह वृत्ति बनी होगी। कुछ समय गृहस्थाश्रम का भोग करने के बाद इनके मन में ब्रज-धाम में निवास करने का विचार आया। घर छोडकर ये ब्रज आये और महावन में रहने लगे। वहाँ रहकर ये अपना समय पद बनाने और भगवद्कीर्तन करने में बिताने लगे। जब कुछ वैष्णव गोविन्दस्वामी के पद सीखकर गोकुल में श्री गोसाईं विट्ठलनाथजी के समक्ष गाते तो ये बहुत प्रसन्न होते।[1] उन वैष्णवों ने यह बात गोविन्दस्वामी से आकर कही। धीरे-धीरे गोविन्दस्वामी का मन गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की ओर आकृष्ट हो गया और उनसे मिलने की उत्कण्ठा जाग्रत हो गई। एक दिन वैष्णव के साथ वे गोकुल आये। उस समय गोस्वामी जी जमुना पर सन्ध्या-वन्दन कर रहे थे। गोविन्दस्वामी जी को गुसाईं जी का यह आचरण देख कर बड़ा विस्मय हुआ, कहाँ यह वेदोक्त सन्ध्या-वन्दन का कर्मकाण्ड और कहाँ भगवान् की भक्ति !"[2] जब गोस्वामी जी से उनका साक्षात्कार हुआ और मन्दिर में उन्होंने दर्शन किये तब अपनी शङ्का उनके समक्ष प्रकट की। इस पर गोस्वामी जी ने उत्तर दिया—"जो भक्ति मार्ग है सो तो फूल रूपी है और कर्ममार्ग काँटारूपी है। सो फूल तो रक्षा बिना फूले न रहे, ताते वेदोक्त कर्म मारग है सो भक्तिरूपी फूलन को काँटेन की बाड़ है। ताते कर्म मार्ग की बाड बिना भक्ति रूपी फूल को जतन न होय।"[3] कर्म और भक्ति के योग का उपदेश सुन कर गोविन्दस्वामी का मन बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद गोविन्दस्वामी ने शरणागति की प्रार्थना की और गोस्वामी जी ने उन्हे शरण मे ले लिया। गोविन्द स्वामी अब 'स्वामी' से 'दास' बन गये।

कुछ समय महावन मे निवास करने के बाद गोविन्ददास गोकुल मे ही आ गये और

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २६४।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २६६।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २६७।

वहाँ रह कर भगवद्भक्ति और श्री गुसाईं जी के व्याख्यानों से श्रीमद्भागवत का ज्ञान प्राप्त करने लगे। गोविन्द स्वामी जी की यमुना में परम भक्ति थी; परन्तु वे कभी यमुना में स्नान नही करते थे।[१] इनका विचार था कि अपनी पापी देह को पवित्र यमुना से कैसे स्पर्श कराऊँ। वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले आँतरी ग्राम मे जो लोग इनके शिष्य हो गये थे वे भी गोविन्दस्वामी के प्रभाव से गोकुल मे आकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गये। इस विषय में वार्ता में एक बड़ी रोचक कथा दी है।[२] एक समय गोविन्दस्वामी के कुछ शिष्य आँतरी गाँव से उनकी खोज मे गोकुल आये। जब वे पूछते-पूछते गोविन्दस्वामी के घर पहुँचे तो उन्हें उनकी बहन कानबाई से ज्ञात हुआ कि वे स्नान करने गये हैं। शिष्यगण यशोदा घाट पर आये। वहाँ उन्होंने स्वामी जी को पहचाना नहीं और उन्ही से पूछा—गोविन्दस्वामी कहाँ है ? गोविन्दस्वामी ने उन्हें पहिचान लिया था; परन्तु अपने को गुप्त रखते हुये उत्तरदिया कि गोविन्दस्वामी तो मर गये और उन्हे मरे बहुत दिन हो गये। यह उत्तर पाकर वे सब आश्चर्य में पडे और गोविन्दस्वामी के घर फिर गये। इतने मे ही गोविन्द स्वामी भी घर पहुँच गये। जब उन शिष्यों ने उन्हें पहचाना तब उनसे पूछा कि आपने यह क्यों कहा कि गोविन्दस्वामी तो मर गये। गोविन्द स्वामी ने उत्तर दिया कि गोविन्द स्वामी तो अब हम नही हैं, अब तो हम गोविन्ददास है, 'स्वामीपना' बहुत दिन का छुट गया। उसके बाद उन सब शिष्यो ने भी श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण ले ली।

गोकुल मे कुछ समय रहने के बाद गोविन्दस्वामी श्रीनाथ जी की सेवा में गोवर्द्धन चले गये और फिर मरणपर्यन्त वही रहे। वहाँ रह कर भी उन्होंने अनेक पदो की रचना की। श्रीनाथ जी के मन्दिर मे इनको भी कीर्तन की सेवा दी गई थी। अपने बनाये पदों को वे अपने इष्ट श्रीनाथ जी के समक्ष गाया करते थे। गोविन्दस्वामी की सखा-भाव की भक्ति तथा श्रीनाथ जी के साथ उनके सानुभाव के कई प्रसङ्ग [३] वार्ता मे दिये हुये हैं जिनमे से कुछ का उल्लेख प्रियादास जी ने भी भक्तमाल की टोका मे किया है।[४]

नाभादास जी ने लिखा है कि गोविन्दस्वामी उदार प्रकृति के व्यक्ति थे।[५] इनके मन की दृढ़ वैराग्यवृत्ति का परिचय इनकी बेटी के गोकुल आगमन पर उसके प्रति उदासीन

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ २६६।

२—अष्टछाप, कांकरौली पृ० २६८।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ २७४, वार्ता प्रसङ्ग ६।
  अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २७५, वार्ता प्रसङ्ग ७।
  अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २८१, वार्ता प्रसङ्ग १०।

४—भक्तमाल, भक्तिसुधास्वादतिलक, रूपकला, पृ० ६५८, ६५९।

५—भक्तमाल, नाभादास, छन्द नं० १०३।

स्वभाव, चरित्र तथा अर्जित योग्यता

भाव के प्रसङ्ग से चलता है, जब इन्होंने अपनी बहन से कहा था कि जो कन्हीयां ! मन तो एक है, सो श्री ठाकुर जी में लगाऊँ के बेटी मे लगाऊँ ।[1] वार्ता से पता चलता है कि भक्ति पक्ष मे गोविन्दस्वामी में दैन्य भाव न था। वे श्रीनाथ जी की सखा-भाव से भक्ति करते थे ।[2] इनकी प्रकृति कुछ विनोदशीला भी थी। जब आँतरी गाँव के शिष्य इमसे मिलने आये तब इन्होंने उनसे 'गोविन्दस्वामी तो मरि गये,' कह कर भ्रम में डाल दिया था। वार्ता का यह प्रसङ्ग पीछे दिया जा चुका है। इनकी अनन्य सखा-भाव की भक्ति प्रकट करते हुये वार्ताकार ने इनकी विनोदशीला अल्हड प्रकृति का कई प्रसङ्ग मे उल्लेख किया है। एक बार इन्होंने श्रीनाथ जी के कङ्कड़ी मारी। गोस्वामी जी के हटकने पर इन्होंने उनसे कहा—"महाराज ! आपनो सो पूत, परायो ढठीगर, मोकों इनने तीन कांकरी मारी हैं।"[3] और एक समय वसन्त के दिनों में गोविन्दस्वामी मन्दिर के मणिकोठा मे खडे ध्यान-मग्न कीर्तन करते थे। उन्होने एक नई धमार बनाकर गाई। जब तीन तुक गा चुके तब चुप हो गये। गोस्वामी जी ने पूछा,—"गोविन्ददास धमार क्यो नही गाते ? उन्होंने उत्तर दिया,—"महाराज ! धमार तो भाजि गाई अरु मन अरुझाय गयो, सो वह तो भाजि गये ताते ख्याल उतनो ही रह्यो।"[4] यद्यपि इस प्रसङ्ग से गोविन्ददास की मानसिक भक्ति की अनुभूति का परिचय मिलता है, परन्तु जिस ढङ्ग से "महाराज ! धमारि तो भाजि गई" कहकर उन्होंने गुसाईं जी को उत्तर दिया उससे उनकी विनोद-शीला प्रकृति का भी परिचय मिलता है। इसी प्रकार के और प्रसङ्ग वार्ता में आते है। गोविन्दस्वामी पाग बहुत अच्छी बाँधते थे। अपनी कई टुकड़ो मे फटी हुई पाग को ये ऐसी युक्ति से बाँधते थे कि उसके फटे होने का किसी को अनुमान भी नही था। एक बार एक ब्रजवासी ने उनकी पाग के पेच सुन्दर देखकर उसको उनके सिर से उतार लिया और लेकर चलने लगा। गोविन्दस्वामी ने अपनी हँसोड़ प्रकृति का परिचय देते हुए कहा—"सारे, सोलह टूक हें, समारि लीजो, हो सकारे तेरे घर आय के ले जाऊँगो ।" यह सुनकर वह ब्रजवासी बहुत लज्जित हुआ और उसने पाग वापिस दे दी।[5]

गोविन्दस्वामी भक्त और उच्च कोटि के कवि होने के साथ एक सिद्ध संगीतकार (गवैये)

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २८८।

२—अष्टछाप, कांकरौली, पृष्ठ २७३।

नोट :—कवि ने गोचारण तथा कुञ्जलीला के ही पद अधिक संख्या में लिखे हैं। विरह, प्रार्थना के पद इन्होने नहीं लिखे।

३—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २७५।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २७६:२७७।

५—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २८६।

भी थे। गान-विद्या मे ये इतने निपुण थे कि वल्लभसम्प्रदाय मे आने के पहले ही इनके अनेक शिष्य हो गये थे, जिन्होने इन्हे 'स्वामी' की पदवी से विभूषित किया था। वल्लभसम्प्रदाय मे आने के बाद तो इनके गान की ख्याति दूर दूर फैल गई थी। अकबर के दरबार के नवरत्नो मे से एक रत्न 'तानसेन' जो पहले स्वामी हरिदास जी का शिष्य था, इनसे गाना सीखने आता था।[1] वार्ता मे इनके सहस्रावधि पद लिखने का उल्लेख है और इनकी गान-विद्या की कई स्थलो पर वार्ताकार ने प्रशसा की है।[2] २५२ वार्ता मे नवगढ़ के राजा आसकरन की कथा मे भी गोविन्दस्वामी के सहस्रावधि पद लिखने और उनके 'तानसेन को पद' सिखाने का उल्लेख है।[3] परन्तु गोविन्दस्वामी के २५२ पद बहुत प्रसिद्ध है जिनकी प्रतियाँ वैष्णव घरानो मे उपलब्ध हैं। २५२ पदो का एक सग्रह लेखक के पास भी है। इन २५२ पदो के अतिरिक्त इनके और भी पद लेखक के देखने मे आये है।

गोविन्दस्वामी विद्वान्, गायनाचार्य, कवीश्वर और परमभक्त थे। उनका स्वभाव निशःङ्क और निर्भीक था। मोह उनको छू तक न गया था। वे एक गुणशाली व्यक्ति थे।

गोविन्दस्वामी के अन्त समय और गोलोकवास का प्रसङ्ग न तो २५२ वार्ता मे दिया हुआ है और न 'अष्टसखान की वार्ता' मे। 'श्री गिरिधरलाल जी के १२० वचनामृत' नामक

अन्त समय और गोलोकवास

ग्रन्थ मे लिखा है कि जब श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने लीला में प्रवेश किया तभी गोविन्दस्वामी ने देह सहित गोवर्द्धन की कन्दरा मे प्रवेश किया और नित्य लीला मे पहुँचे।

'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' मे लिखा है कि सं० १५९२ मे गोविन्द स्वामी गोस्वामी विट्ठलनाथजी की शरण मे आये। वार्ता मे लिखा है कि शरणागति के समय ये एक कवीश्वर और

जन्म तथा शरणागति की तिथियाँ

प्रसिद्ध गवैये थे। गान-विद्या सीखने के लिए इनके अनेक शिष्य भी हो गये थे जिसके कारण ये'स्वामी' कहलाने लगे थे। उस समय इनका विवाह भी हो गया था। और सन्तान भी थी। लेखक

१—२५२ वार्ता में तानसेन की वार्ता में उल्लेख है कि एक बार तानसेन ने गोविन्दस्वामी के कीर्तन सुनकर अपने गान को बहुत निम्न कोटि का समझा और उन्होंने गोविन्दस्वामी से गाने सिखाने की विनय की। गोविन्दस्वामी ने फिर इन्हें गान विद्या सिखाई।

२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृ० २३७।

२—"सो गोविन्ददास भैरव राग अलाप्यो, सो गोविन्ददास को गरो बहोत आछो हतो और आप गावत हू बहोत आछो हते, सो भैरव राग ऐसो जाम्यो जो कछु कहिबे में नाहीं आवे।"

अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २८५।

३—२५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, आसकरण राजा, पृ० १९२।

का अनुमान है[१] कि कुछ समय गृहस्थी का भोग करने के बाद ही इनके चित्त मे भगवद्भक्ति-प्राप्ति की इच्छा प्रवल हुई होगी। भगवद्-प्राप्ति की प्रेरणा ही इन्हे व्रज मे लाई और कुछ समय तक ये महावन मे रहे। इस समय गोविन्दस्वामी की अवस्था कम-से-कम तीस वर्ष की अवश्य रही होगी। इस प्रकार सं० १५६२ वि० मे से ३० वर्ष निकालने पर इनका जन्म सं० लगभग १५६२ वि० आता है।

'श्रीगिरिधरलालजी के १२० वचनामृत' नामक ग्रन्थ के आधार से ज्ञात होता है कि गोस्वामी विट्ठलनाथजी की मृत्यु का शोक-संवाद सुनकर इन्होने भी गोवर्द्धन की कन्दरा मे प्रवेश कर देह छोड़ी।[२] गोस्वामीजी का निधन सं० १६४२ फाल्गुण कृष्ण ७ वल्लभ-सम्प्रदाय मे वहुमत से निश्चित है। इसलिए गोविन्दस्वामी के गोलोकवास की तिथि भी सं० १६४२ फाल्गुण कृष्ण ७ ही है।

गोलोकवास की तिथि

इनके आत्म-चारित्रिक उल्लेखो मे कहा जा चुका है कि इन्होंने भी गोस्वामीजी के सातवे पुत्र की वधाइयाँ गाई हैं, जिनसे इनका सं० १६२८ विक्रमी (श्रीगोस्वामी जी के सातवे पुत्र घनश्यामजी को जन्म-तिथि) तक जीवित रहना सिद्ध होता है। ८४ वार्ता मे सूरदास की वार्ता के अन्तर्गत लिखा है कि सूरदास को मृत्यु के समय रामदास कुम्भनदास, गोविन्दस्वामी चतुर्भुज आदि वैष्णव उपस्थित थे।[३] सूरदास के निधन का समय पीछे सं० १६३८ से सं० १६३९ के बीच का माना गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गोविन्दस्वाम, सं० १६३८ तक अवश्य जीवित थे। श्रीगिरिधरलालजी के १२० वचनामृत' नामकी ग्रन्थ से तो गोविन्दस्वामी के गोलोकवास की तिथि स० १६४२ निश्चित हो जाती है।

वार्ता में इनके लीलात्मक स्वरूप के विषय मे लिखा है कि वे श्रीदामा सखा हैं और भामा सखी हैं।[४]

छीतस्वामी के जीवन-चरित्र की रूपरेखा।

वार्ता से विदित होता है कि छीतस्वामी का जन्म-स्थान मथुरा था और वे मथुरा

१—'नैन' 'भक्ति' 'सर' 'सोम' के कृत युगादि दिन पाय।
छीतस्वामी अरु गोविन्द को गिरधर भक्ति वताय। सम्प्रदाय-कल्पद्रुम, पृ० ५५।

२—गोस्वामी गिरिधरलालजी के १२० वचनामृत।

३—अष्टछाप, कांकरोली, पृ० ५१।

४—अष्टछाप, कांकरोली, पृ० २६४।

ही में रहा करते थे[1]। वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद वे गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन करते थे, परन्तु इनका कुटुम्ब मथुरा ही मे रहता था। वार्ता से तथा नागरीदास की पद-प्रसङ्ग-माला[2] रचना से ज्ञात होता है कि छीतस्वामी मथुरिया चौबे थे[3]।

जन्म-स्थान, जाति-कुल

वार्ता-साहित्य अथवा अन्य सूत्रो से इनके माता पिता का कोई वृत्तान्त ज्ञात नही होता। इनका विवाह हुआ था अथवा नही, इनके कोई सन्तान भी थी अथवा नही, इन बातो का स्पष्ट समाधान वार्ता ने नहीं किया है। परन्तु वार्ता के कुछ प्रसङ्गो से यह अनुमान किया जा सकता है कि छीतस्वामी गृहस्थ थे। वार्ता में लिखा है कि ये अकबर के दरबार के रत्न बीरबल के पुरोहित थे।[4] बल्लभ-सम्प्रदाय मे शरण जाने के बाद एक बार ये बीरबल के पास अपनी 'बरसोड' लेने गये, जहाँ से ये बीरबल के एक वाक्य पर रुष्ट होकर बिना 'बरसोडी' लिये चले आये[5]। जब गोस्वामीजी ने यह समाचार सुना तो उन्होने लाहौर के वैष्णवो को छीतस्वामी के बारे में लिखा कि यह ब्राह्मण गरीब है, इसकी सेवा अच्छी प्रकार से करना[6]। छीतस्वामी पत्र लेकर लाहौर तो नही गये; परन्तु पत्र उन वैष्णवों के पास भेज दिया गया और प्रत्येक वर्ष सौ रुपये की हुण्डी लाहौर के वैष्णवो से छीतस्वामी के पास आने लगी। इस वृत्तान्त से अनुमान हो सकता है कि छीतस्वामी विरक्त व्यक्ति न थे। उनके कुटुम्ब भी रहा होगा जिसके पोषण के लिए वे बीरबल के यहाँ से बरसोडी लाते थे और जिसके लिए गोस्वामी ने सौ रुपये सालाना उनको लाहोर से दिलवाये। वार्ता से ज्ञात होता है कि शरणागति के बाद छीतस्वामी ने गोस्वामी से आज्ञा माँगी—"महाराज, आज्ञा होय तो मैं अपने घर जाऊँ।"[7] इससे भी ज्ञात होता है कि छीतस्वामी गृहस्थ थे।

माता-पिता-कुटुम्ब

१—"सो वे छीतस्वामी मथुरिया चौबे हते तिनसों सब कोऊ छीतू कहते सो सब मथुरा में पाँच चौबे हते।"

अष्टछाप,कांकरौली, पृ० २८७। तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे० पृ० १६।

२—नागर-समुच्चय, पद-प्रसङ्गमाला, सिङ्गार-सागर, पृ० २०७।

३—"श्रीगुसाईंजी के सेवक छीतस्वामी मथुरिया ब्राह्मण चौबे हते सो वे मथुरा में रहते।" 'अष्टसखान की वार्ता' तथा अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २४७।

४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २५६।

५— ,, ,, पृ० २५८।

६— ,, ,, पृ० २६२।

७—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २५५।

वार्ता से विदित है कि छीतस्वामी वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले कवि थे और गान-विद्या जानते थे। गोस्वामी विट्ठलनाथजी की प्रथम भेंट पर ही उन्होंने पद बनाकर गाया था।[1] वार्ता नागर-समुच्चय तथा पद-प्रसंग-माला से यह भी पता चलता है इनकी चारित्रिक शिक्षा अच्छी नही थी। वार्ता में इनको सम्प्रदाय मे आने से पहले एक मसखरा, लम्पट और गुण्डा लिखा है।[2] और यह भी लिखा है कि ये 'छीतू' नाम से प्रसिद्ध थे। नागरीदास ने इनको झगडालू प्रकृति का व्यक्ति लिखा है।[3]

शिक्षा

जब वल्लभ-सम्प्रदाय की शरणागति के बाद उन पर गोस्वामी विट्ठलनाथजी की शिक्षा का प्रभाव पडा तो इनका चरित्र भी सुधर गया और वे एक उच्चकोटि के कवि और भक्त बन-गये। इनके इन गुणो की प्रशंसा, जैसा कि पीछे कहा गया है, इनके समकालीन भक्त नाभा-दास[5] जी तथा ध्रुवदास[6] जी ने भी की है।

नोट :—मथुरा में छीतस्वामी के रहने के प्राचीन घर का दर्शन लेखक ने किया है। श्यामघाट मथुरा में एक सज्जन श्री गोपालजी चौबे रहते हैं। वे मथुरा में छीतस्वामी के वंशजों में प्रसिद्ध है। उनसे बातें करने पर लेखक को ज्ञात हुआ कि जिस घर में छीतस्वामी रहते थे, उसमें 'श्यामजी' कृष्ण की मूर्ति भी है, जिसकी स्थापना को वे छीतस्वामी के समय से ही बताते हैं। लेखक को श्री गोपालजी चतुर्वेदी से छीतस्वामी का अधिक वृत्तान्त ज्ञात नहीं हो सका। मथुरा में एक प्रसिद्ध उच्चकोटि के कवि नवनीत लालजी चतुर्वेदी हो गये हैं जिनके पुत्र श्रीगोविन्दजी चतुर्वेदी आजकल मथुरा में अच्छे कवि समझे जाते हैं। स्वर्गीय नवनीतलालजी ने मथुरा के चौबे कवियों के समय अपनी डायरी में लिखे हैं। यह डायरी गोविन्द चतुर्वेदी जी के पास है। उसमें छीतस्वामी का भी उल्लेख है।

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २५०।

२—'सो वे छीतस्वामी मथुरिया चौबे हते, तिनसो सब कोऊ 'छीतू' कहते, सो सब मथुरा में पांच चौबे सिरनाम हते, पांचन हू मे छीतू बड़े सिरनाम हते सो वे स्त्रीन को देखते, उनसों मस्करी करते··· ··· ··· ···सो वे पांच आपसु में मित्र हते, परि वे गुंडा हते।" अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २४७।

३—''छीतस्वामी सो 'स्वामी' तो पाछे कहाये, पहिले छीतू मथुरिया' कहावत हैं। चित में वहोत रिंद कुटीचर रहै, शैव हुते।" नागर-समुच्चय, पृ० २०७।

४—"सो वे गुसाई जी की कृपा ते वड़े कवीश्वर भये, सो वहुत कीर्तन किये।" अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २५६।

५—भक्तमाल, छन्द नं० १४६, भक्ति-सुधा-स्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ८२६।

६—भक्त-नामावली, ध्रुवदास, छन्द नं० १०३, पृ० १०।

इनका पैतृक व्यवसाय पुरोहिती था। वार्ता मे लिखा है कि ये बीरवल के पुरोहित थे।[1] वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले गोविन्दस्वामी की तरह ये भी 'स्वामी' कहलाते थे।[2] संभव है, गान-विद्या और कविता सीखने के लिए इनके पास आने वाले शिष्यो ने इनको 'स्वामी' की पदवी दे दी हो। इनके किसी सम्प्रदाय की दीक्षा देने वाले स्वामी होने का कोई प्रमाण नही मिलता।

नागरीदास जी के कथनानुसार छीतस्वामी वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले शैव थे और वहुत लौकिक प्रकृति के व्यक्ति थे। इनके चार चौवे मित्र मथुरा मे और थे। एक वार इन पाँचो ने सोचा कि गोकुल के गुसांई श्री विट्ठलनाथ जी की परीक्षा लेनी चाहिए। एक खोटा रुपया और थोथा नारियल राख से भरा हुआ साथ लेकर ये पाँचो गोकुल मे श्री विट्ठलनाथ के निकट 'मसकरी' करने आये। वहाँ छीतस्वामी के चार मित्र तो वाहर वैठे रहे और छीतस्वामी भीतर गोस्वामी जी के पास गये। उस समय गोस्वामी जी के स्वरूप को देखकर इन पर ऐसी मोहिनी पड़ी कि इनके स्वभाव की चञ्चलता और 'मसकरी' सव गायव हो गई और पश्चात्ताप का भाव इनके मन मे सञ्चारित हो गया। ये हाथ वाँधकर कहने लगे,—"महाराज, मेरो अपराध क्षमा करो, और मोको शरण लीजे। हम नाहीं जानत जो कोन अपराध तें स्वामी भये है, हमारे अव भाग्य खुले है जो आपके दरशन पाये। अव ऐसी कृपा करो जो स्वामित्व छूटे। जो आपके दास कहाइवे की इच्छा है, और मन की कुटिलता तो वहोत हुती, परि आपके दरसन करत ही सव कुटिलता दूरि भाजि गई, ताते अव हो आपके हाथ विकानों हों, प्रभु हो, दीनानाथ हो, दयासिन्धु हो, या जीव की ओर प्रभुन को कहा देखनो। ताते महाराज अव मोको आपनो ही करि जानिये, आपुनो सेवक करिये[3]"। इस प्रकार छीतस्वामी के विनय करने पर गोस्वामी जी ने उन्हे नाम सुनाया और शरण मे ले लिया। उसी समय छीतस्वामी ने यह पद गाया:—

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश और साम्प्रदायिक जीवन।

राग विहाग।

भई अव गिरधर सों पहिचान[4]।

कपट रूप धरि छलिवे आयो, पुरुपोत्तम नहिं जान।

१—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २५६।

२—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४६।

३—अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २४६ तथा २५०।

४—अष्टछाप, काँकरौली, पृ २५०।

छोटो बड़ो कछू नहिं जान्यो, छाय रह्यो अज्ञान।
छीतस्वामी देखत अपनायो, श्री विट्ठल कृपानिधान।

इसके बाद छीतस्वामी बैठे-बैठे मन में विचारने लगे,--"मैं संसार-समुद्र मे बह्यो जात हतो, मोको बाँह पकरि के काढ़े और मेरे मन मे खोटे नारियल को और खोटे रुपिया को पश्चात्ताप हतो सोऊ ताप मेरी दूरि कर्‍यो, जो मो पर श्री गुसाईं जी ने बड़ी कृपा करी"। यह सोचते-सोचते वे हर्ष में यह पद गा उठे: —"हौं चरणातपत्र की छैयाँ[1]।"

इसके बाद छीतस्वामी ने गोकुल में श्री नवनीतप्रिय जी के और गोवर्द्धन पर श्री गोवर्द्धननाथ जी (श्रीनाथ जी) के दर्शन किये। उन दर्शनों से उनके मन की परिवर्तित वृत्ति और भी निखर गई और फिर आत्मसमर्पण कर गुसाईं जी से आज्ञा माँग कर अपने घर मथुरा वापिस चले गये। मथुरा मे उनके मित्र उनसे मिले, छीतस्वामी के चरित्र के उस महान् परिवर्तन को देख कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। वार्ता में लिखा है कि इसके बाद श्री गुसाईं जी की कृपा से छीतस्वामी भगवदीय कवीश्वर और कीर्तनकार हुये। उन्होंने अपने जीवन मे फिर अनेक पद बनाकर गाये और श्रीनाथ जी की सेवा में अपना जीवन व्यतीत किया।

वार्ता तथा नागरीदास जी के कथन के आधार पर पीछे कहा जा चुका है कि छीतस्वामी वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले लौकिक विषयों मे लिप्त लम्पट, कुटिल स्वभाव वाले तथा मसखरे मौजी जीव थे। श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रभाव से इनके मन की कुटिल और कुत्सित वृत्ति बदल गई और ये परम भक्त और उदार व्यक्ति बन गये।

स्वभाव और चरित्र

छीतस्वामी अपनी आन के पक्के दृढ़ सङ्कल्पी पुरुष थे। इन्होंने बीरबल के समक्ष गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को साक्षात् कृष्ण-रूप मानकर उनकी प्रशंसा में एक पद गाया जो उनको पसन्द नही आया। इस पर अपने विश्वास का अपमान समझ कर छीतस्वामी बिना 'बरसौंडी' लिए ही चले आये। इससे यह भी विदित होता है कि इनमे कोई धन-द्रव्य की लिप्सा न थी। जब गोस्वामी जी पत्र देकर इन्हे लाहौर के वैष्णवो के पास भेजने लगे तो इन्होंने विनम्र होकर गोस्वामी जी के समक्ष निवेदन किया—"जो महाराज मैं वैष्णव भयो सो कछु वैष्णव के पास ते भीख माँगन को नाही भयो। जो महाराज! मेरे तो राज के चरण

१—पीछे कवि के आत्मचारित्रिक उल्लेख तथा अष्टछाप, काँकरौली, पृ० २५२।

नोट :—पीछे कहा गया है कि मथुरा में छीतस्वामी के वंशजों के पुराने घर में एक 'श्यामजी' की मूर्ति स्थापित है। घरवालों का कहना है कि यह मूर्ति छीतस्वामी जी के समय से ही चली आती है। सम्भव है, श्याम जी के स्वरूप की स्थापना छीतस्वामी ने वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने के बाद की हो। वल्लभ-सम्प्रदाय में आने से पहले ये, नागरीदास जी के कथनानुसार, शैव थे।

कमल छांड़ि के कछू काम नाही और कहूँ न जाऊँगो। और अब कहा ऐसे कर्म करूँगो, जो वैष्णव होय के कहा भीख मागूंगो [1]।" इससे भी छीतस्वामी के मन का सन्तोष-भाव प्रकट होता है। गुरु की भक्ति और व्रज-प्रेम का परिचय तो इनके अनेक पदो से मिलता है। मथुरा के चतुर्वेदियो मे यह बात प्रचलित है कि वल्लभ-सम्प्रदाय की सेवा-विधि का जो मराडान गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने विस्तार से प्रचलित किया था उसकी उद्भावना मे बहुत-कुछ हाथ छीतस्वामी का था।

२५२ वैष्णवन की वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ताओ में इनके अन्त-समय का वृत्तान्त नही दिया हुआ है। इनके गोलोकवास का प्रसंग केवल श्री गिरिधरलाल जी के "१२० वचनामृत" मे दिया हुआ है। उक्त ग्रन्थ के लेख का आशय इस प्रकार है कि जब गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी का गोलोकवास हो गया और जब छीतस्वामी ने यह दु:खद समाचार सुना तो उन्हें मूर्च्छा आ गई। उस मूर्च्छा में श्रीनाथ जी के साक्षात् दर्शन उन्हें, यह सांत्वना देते हुये कि अब तक तो मैं दो रूपों द्वारा (श्री आचार्य जी और श्री गुसाईं जी) अनुभव कराता था अब मैं सात रूपों से अनुभव कराऊंगा। यह अनुभव करके छीतस्वामी की चेतना जागी और फिर उन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सातों पुत्रो की बधाई गाकर देह त्याग दी।[2] इस प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि छीतस्वामी का गोलोकवास भी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोलोकवास के समय ही हुआ।

गोलोकवास

'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' के कथनानुसार छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी दोनों सम्वत् १५९२ वि०मे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण आये।[3] इस विषय पर कोई अन्य प्रामाणिक सूत्र न होने पर यहाँ 'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' के सम्वत् को ही स्वीकार किया गया है। जैसा कि पीछे कहा गया है वार्ता तथा नागरीदास जी के कथन से ज्ञात होता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले छीतस्वामी पाँच प्रसिद्ध 'गुराडे' चौबो मे सबसे अधिक प्रसिद्ध थे और ये स्त्रियो की ओर बहुत देखा करते और उनसे मसखरी भी किया करते थे। इससे अनुमान होता है कि इस समय छीतस्वामी की पूर्ण यौवन अवस्था रही होगी जिसको हम बीस या पच्चीस वर्ष की मान सकते हैं। वार्ता के

शरणागति, जन्म तथा गोलोकवास की तिथियाँ

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २६२।

२—श्री गिरिधरलाज जी महाराज के १२० वचनामृत।

३—नैन भक्ति सर सोम के कृत युगादि दिन पाय, (२ ९ ५ १)
छीतस्वामी अरु गोविन्द को गिरिधर भक्ति बताय।
सम्प्रदाय-कल्पद्रुम, पृ० ५५।

कथनानुसार शरणागति के समय ये कवि थे और स्वामी कहलाते थे। जिस समय गोस्वामी जी को छलने के लिए ये गये और पास जाके उनको दण्डवत् प्रणाम किया, उस समय गोस्वामी जी ने इनसे कहा—"तुम तो चौवे हो, हमारे पूजनीय हो; तुमको तो सव आपही ते सिद्ध है, तुम हमको दण्डवत् काहे को करत हो और ऐसे कहा कहत हो।[1]" गोस्वामी जी के ये शब्द भी इस वात की सूचना देते हैं और छीतस्वामी के कवि होने और स्वामी कहलाने से यह वात पुष्ट होती है कि उनकी इस समय वालक अवस्था नही थी। वे २५ वर्ष के अवश्य रहे होगे। सं० १५९२ वि० (शरणागति का समय) मे से २५ घटाने पर इनका जन्म संवत् लगभग सं० १५६७ वि० आता है।

पीछे कहा गया है कि छीतस्वामी का निधन गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोलोकवास के शोक-संवाद को सुनने के कुछ समय की मूर्च्छा के वादही हो गया। गोस्वामी जी का निधन समय सं० १६४२ वि० फाल्गुन कृष्ण ७ को हुआ था। इसलिए छीतस्वामी के गोलोकवास की तिथि स० १६४२ वि० फाल्गुन कृष्ण ८ है। यश-काया से इनकी स्थिति का स्थान गिरि-राज (गोवर्द्धन) के ऊपर, 'पूछरी' स्थान पर श्याम तमाल वृक्ष के नीचे वताया जाता है। इनके लीलात्मक स्वरूप के विषय में वार्ता मे लिखा है कि ये सखा रूप मे सुवल हैं और सखी रूप में पद्मा हैं।[2]

१—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २०९।
२—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २४५।

चतुर्थ अध्याय

अष्टछाप के ग्रन्थ

सूरदास जी की रचनाएँ

सूरदास के अध्ययन की, पीछे दी हुई आधारभूत-सामग्री के विवरण तथा सूर के नाम से छपे हुये ग्रन्थो के अवलोकन से, सूरदास-कृत कहे जानेवाले कुल निम्नलिखित ग्रन्थ सामने आते हैं—

१—सूरसागर	प्रकाशित	२—भागवत-भाषा	अप्रकाशित
३—दशमस्कन्ध भाषा	अप्रकाशित	४—सूरदास के पद	,,
५—नागलीला	अप्रकाशित	६—गोवर्द्धन-लीला	,,
७—सूर-पचीसी	प्रकाशित	८—प्राणप्यारी	,,
९—व्याहलो	अप्रकाशित	१०—भँवरगीत	प्रकाशित
११—सूर-रामायण	प्रकाशित	१२—दान-लीला	अप्रकाशित
१३—मान-लीला	अप्रकाशित	१४—सूर-साठी	प्रकाशित
१५—राधारस-केलि-कौतूहल	प्रकाशित	१६—सूरसागर-सार	अप्रकाशित
१७—सूर-सारावलि	,,	१८—साहित्य-लहरी	प्रकाशित
१९—सूर-शतक	अप्रकाशित	२०—नल-दमयन्ती	अप्रकाशित
२१—हरिवंश-टीका	,,	२२—रामजन्म	,,
२३—एकादशी-माहात्म्य	,,	२४—सेवाफल	,,

सूरदास के ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार

८४ वार्ताकार से लेकर अब तक के लेखको के एकमत से तथा इस ग्रन्थ की अनेक उपलब्ध प्रतियों से ज्ञात होता है कि सूरसागर सूरदास की प्रमाणिक रचना है। वार्ता के कथन से, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, यह भी सिद्ध है कि इस रचना का नाम सूर के समय में ही रख दिया गया था। सूर-

सूरसागर

सागर की पद-सख्या तथा उसमें वर्णित विषय पर साहित्यिकों में मतभेद है। ८४ वार्ता के

कथन से और सूरसागर में आये हुये कवि के अनेक आत्मचारित्रिक उल्लेखो से यह भी ज्ञात होता है कि कवि ने सूरसागर भागवत के विषय के अनुसार लिखा। जो पद कीर्तन तथा रागो के विभाजन-क्रम के अनुसार लिखे हुये सूरसागर नाम से कहे जाते हैं, वे वास्तव मे सूरसागर के पद ही उस क्रम में वैष्णवों ने रख लिये हैं। इसलिए लीला और कथा-क्रम को रखनेवाले सूरसागर ही सूर के वास्तविक सूरसागर के रूप है। हस्तलिखित रूप मे इस ग्रन्थ की जो प्रतियाँ खोज मे नागरी-प्रचारिणी-सभा को मिली हैं उनका व्यौरा पीछे खोज-रिपोर्टों के आधार से एक तालिका मे दिया जा चुका है।

छापे मे आई हुई सूरसागर की मुख्यतः दो प्रतियाँ प्रचलित है। एक वेकटेश्वर प्रेस की और दूसरी रागकल्पद्रुम के आधार पर छपी नवलकिशोर प्रेस की। नवलकिशोर प्रेस की प्रति के दो भाग हैं। एक नित्य कीर्तन के पद, जिसमे भिन्न-भिन्न रागो के अनुसार पद हैं, दूसरे लीला के पद, जिसमे कृष्ण की कथा के अनुसार पद हैं। इसमे सूरदास के अतिरिक्त अन्य अष्टछाप कवियो के भी पद मिले हुये हैं। उधर वेकटेश्वर प्रेस वाले सूरसागर में भी प्रामाणिक रूप से यह नही कहा जा सकता कि ये सब पद अष्टछाप वाले सूरदास के ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि वेकटेश्वर प्रेस से छपे सूरसागर का सम्पादन एक वल्लभसम्प्रदायी विद्यानुरागी व्यक्ति द्वारा हुआ है। इसलिए उसमें कुछ थोड़े से इधर-उधर के पदों को छोड़कर पूरा अंश सूर-कृत ही होना चाहिए। डा० जनार्दन मिश्र जी के इस कथन से, कि सूरश्याम और सूरजदास छापवाले पद सूरदास के नही हैं, लेखक सहमत नही है। आठो कवियो की रचनाओ की प्राचीन पोथियों मे एक-एक कवि की कई-कई छापे मिलती है। वल्लभ-सम्प्रदायी मन्दिरो मे सुरक्षित सूर के पदों मे भी लेखक ने सूरदास की ये छापे देखी हैं। नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी ने, सूर-सागर का एक प्रामाणिक सस्करण निकालने का भार लिया था, परन्तु किसी कारणवश वह स्तुत्य कार्य बीच ही में रुक गया।[1] श्रीनाथ जी के मन्दिर मे कीर्तन रूप मे गाये जाने वाले पद केवल संयोग शृंगार के ही होते हैं। वियोग की भावना मन्दिर मे नही है। प्रातःकाल की मंगलार्ति से लेकर रात्रि की शयन आर्ति तक की सेवा के समयानुकूल कृष्ण की विभिन्न संयोगात्मक व्रज लीलाओ से सम्वन्धित प्रसंगों पर रागानुसार जो पद सूर द्वारा गाये गये थे और जो अब भी कीर्तनियाओ द्वारा गाए जाते है, उनका संग्रह 'कीर्तन सूरसागर' है। और जो पदसंग्रह श्री वल्लभाचार्य से सुनी हुई भागवत की कथा के अनुसार, भगवान के अनेक अवतारों की, विशेष रूप से कृष्णावतार की, लीलाओ का वर्णन करता है वह प्रबन्धात्मक सूरसागर है। इस में संयोग-वियोग दोनो भावो से संबंधित लीलाएँ है। और भागवत का आधार लेकर इसके पद रचे और गाए गए है। ये पद सूर ने अपनी कुटी मे बैठ कर बनाए थे। मन्दिर के कीर्तन रूप मे गाए हुए संयोगात्मक पद भी इस मे सम्मिलित है।

१—स्व० रत्नाकर के छोड़े हुए सूरसागर के सम्पादन कार्य को पंडित नन्ददुलारे बाजपेयी जी ने पूरा कर दिया है। और सभा से भागवत के अनुरूप बारह स्कंधी सूरसागर प्रकाशित हो गया है।—द्वि० संस्करण।

प्रबन्धात्मक सूरसागर में अनेक जगह प्रसगो का वर्णन करते हुए सूरदास ने यह कथन किया है कि वे भागवत के अनुसार कह रहे हैं[1] अथवा भागवत के अनुसार गा रहे हैं और जैसे व्यास जी ने कहा वही सूरदास ने भाषा में।

नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टो से इस ग्रन्थ के सूर-कृत होने की सूचना मिलती है। उसी के आधार पर अन्य विद्वानों ने सूरसागर के अतिरिक्त, इसे सूर का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा है। ग्रन्थ अप्रकाशित है। किन्तु नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्टो के वक्तव्य से तथा उसमें दिये उद्धरणो से ज्ञात होता है कि ग्रन्थ सूरसागर का ही रूप है। सूरसागर भी तो एक प्रकार से भागवत का ही भाषा में छायानुवाद है। सभा की रिपोर्ट से पता चलता है कि यह ग्रन्थ पदो में है अथवा पद्यवद्ध है। खोज-रिपोर्ट[2] में दिया हुआ ग्रन्थ का आरम्भिक उद्धरण वही है जो सूरसागर का है—चरण कमल बन्दौं हरिराई। इसलिए यह ग्रन्थ सूरसागर से अलग, सूर का कोई ग्रन्थ नही माना जा सकता।

भागवत भाषा

खोज-रिपोर्ट[3] में लिखा है कि यह ग्रन्थ भागवत दशम स्कन्ध का, सूरदास द्वारा पदों मे किया गया, अनुवाद है जिससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ भी सूरसागर का दशमस्कन्ध ही है। सूरसागर के, केवल दशमस्कन्ध की, अलग लिखी हुई कई हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक की देखी हुई हैं। इसलिए यह भी सूरसागर से अलग कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

दशमस्कन्ध-टीका

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[4] से ज्ञात होता है कि यह पोथी सूर के पदो का संग्रह है। इस प्रकार के पद-संग्रह, जिनमें संग्रहकर्ता की रुचि के अनुसार पद सगृहीत हैं, वहुत से मिलते हैं। स्व० पं० मयाशङ्कर याज्ञिक के संग्रहालय तथा

१—सुनि भागवत सबनि सुख पायो सूरदास सो वरनि सुनायो।

पद २२७ सूरदास प्र० स्कंध

कहो सु कथा सुनो चित धारि, सुर कह्यो भागवत अनुसार।

सूरसागर पद ४०२ च० स्कंध

सुक ज्यौं राजा को समुझायो, सूरदास त्यौं ही कहि गायो।

पद ४०६ च० स्कंध सूरसागर।

श्रीमुख चारि श्लोक दए ब्रह्मा कौं समुझाइ,
ब्रह्मा नारद सौं कहे नारद व्यास सुनाइ
व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादस स्कंध बनाइ
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ॥ —सूरसागर प्र० स्कंध

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९१२-१४ ई० न० १८५ (ए)।

३—ना० प्र० सभा०, खो० रि० सन् १९०६-८ ई० नं० ४४ (डी)।

४— ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, (बी)।

सूरदास के पद — मथुरा-गोकुल के प्रतिलिपिकारों के पास ऐसे अनेक सग्रह लेखक ने देखे हैं। ये सब पद वास्तव में सूरसागर से ही उद्धृत हैं। ये संग्रह सूर के स्वतन्त्र ग्रन्थ नही हैं। उसी प्रकार इस संग्रह को भी सूर का स्वतन्त्र ग्रन्थ नही कहा जा सकता।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट में इस ग्रन्थ से कोई उद्धरण नही दिया गया है, परन्तु रिपोर्ट के वक्तव्य से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ में कृष्ण द्वारा 'काली-नाग-नाथन' प्रसङ्ग से सम्बन्ध रखनेवाले सूरदास-कृत पद हैं।

नागलीला — इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ कवि की कोई स्वतन्त्र रचना नही कही जा सकती। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट में इस ग्रन्थ का उल्लेख है तथा अन्य विद्वानो ने भी इसे सूर का एक ग्रन्थ लिखा है। काँकरौली विद्या-विभाग पुस्तकालय में लेखक ने सूर-कृत दो गोवर्द्धन लीलाएँ देखी हैं। एक नं० ९३७ की प्रति है जो दोहा-रोला मिश्रित छन्द में लिखी गई है और दूसरी चौपाई छन्द मे। सूर-सागर के (वेंक्टेश्वर प्रेस) पृष्ठ २१३ पर दोहा-रोला छन्दवाली एक गोवर्द्धन-लीला वर्णित है और पृष्ठ २२२ पर चौपाई छन्दवाली दूसरी गोवर्द्धनलीला है। खोज-रिपोर्ट में सूर-कृत गोवर्द्धन-लीला के जो उद्धरण दिये गये हैं वे सूर-सागर (वेंक्टेश्वर प्रेस) पृ० २२२ पर दी हुई गोवर्द्धन-लीला से मिलते हैं। इस प्रकार यह भी सूर का स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है, वरन् सूद-सागर का ही एक अंश है।

गोवर्द्धन-लीला

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[1] में इस ग्रन्थ का उल्लेख है। उक्त रिपोर्ट में इसका विषय ज्ञान और उपदेश के दोहे बताये गये है। अतः इसमें दिये हुये उद्धरणो को देखने से ज्ञात होता है कि यह सूर का एक लम्बा पद है जो सूर-सागर (वेंक्टेश्वर प्रेस), पृष्ठ ३१ पर 'परज' राग के अन्तर्गत दिया हुआ है। इसलिए इसे सूर के स्वतन्त्र ग्रन्थो की सूची में नही रक्खा जा सकता। इस ग्रन्थ की छपी प्रतियाँ मथुरा में सावन के मेले में बहुत बिकती हैं।[2]

सूर-पच्चीसी

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[3] में इस पुस्तक का उल्लेख है। रिपोर्ट में इसका विषय 'श्याम-सगाई' दिया हुआ है और उसमें पूरी रचना उद्धृत है। राग 'विलावल' के अन्तर्गत यह एक लम्बा पद है। सूर-सागर (वेंक्टेश्वर प्रेस) पृष्ठ १९५ पर श्याम-सगाई का प्रसङ्ग वर्णित है, परन्तु उसमे यह पद लेखक को नही मिला; सम्भव है, सूर-सागर की अन्य

प्राणप्यारी

१—ना० प्र० सभा, खो० रि० १९१२ न० १८६ (बी)।

२—सूर पचीसी, सूर-साठी और सूर-शतक, तीनो एक पुस्तक रूप में छपी हुई मथुरा में मिलती हैं। प्रकाशक :—मनसुख शिवलाल कण्ठीवाले, श्यामघाट मथुरा।

३—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९१७-१९ ई०, न० १८६ (एफ)

प्रतियो मे यह हो। इस पद की भाषा और शैली बहुत शिथिल है जिससे इसे सूर-कृत मानने में सन्देह भी होता है। वस्तुत: सूर-कृत यह कोई ग्रन्थ नही कहा जा सकता। खोज-रिपोर्ट के उद्धरणों की भाषा शिथिल होते हुये भी रचना मे 'सूर के प्रभु' छाप आई है। इस प्रकार की छाप सूरदास के अन्य पदो में भी मिलती है। सूर का यह संदिग्ध रचना कही जा सकती है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[1] में इस ग्रन्थ का उल्लेख हुआ है। रिपोर्ट मे कोई उद्धरण नही दिये गये, परन्तु उसके वक्तव्य से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ राधाकृष्ण-विवाह पर लिखे सूर के पदों का सग्रह है। सूर-सागर (वेंक्टेश्वर प्रेस), पृष्ठ ३४८ पर राधाकृष्ण-विवाह के पद हैं। इन्ही पदो मे चौपाई और गीतिका छन्द के क्रम मे आनेवाला एक लम्बा पद भी है। उसमे भी राधाकृष्ण के विवाह का सुन्दर वर्णन है। ज्ञात होता है किसी ने इन्ही पदो को अलग ले लिखकर 'व्याहलो' शीर्षक दे दिया है। वैसे व्याहलो (विवाह-प्रसङ्ग) के वर्णन अन्य कई कवियो के भी मिलते हैं। खोज-रिपोर्ट में ही कई कवियों के 'व्याहलो' का उल्लेख है[2]। श्रीमयाशङ्कर याज्ञिक सग्रहालय में भी व्याहलो नाम की नारायणदास-कृत एक पुस्तक है।

व्याहलो

इसमें चौपाई छन्दों में राधाकृष्ण के खेल-खेल में होनेवाले विवाह का वर्णन है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वास्तव में यह ग्रन्थ भी सूर-सागर का ही प्रसङ्ग है। उससे इतर यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है।

भँवरगीत, सूर-रामायण, दान-लीला, सूर-साठी, मान-लीला आदि जो ग्रन्थ सूर के नाम से प्रचलित हैं और छपे हैं, वे वास्तव में सूरसागर के ही अश हैं। भँवरगीत तो सूर ने छन्द और पद दोनों शैलियो में लिखा है, परन्तु दोनो का सन्निवेश सूरसागर में है। सूर-रामायण, सूरसागर के नवम स्कन्ध का भाग है। सूर-कृत दानलीला और मानलीला की कई प्रतियाँ लेखक ने नाथद्वार कांकरौली में स्वतन्त्र ग्रन्थ-रूप में लिखी देखी हैं, परन्तु सूरसागर (वें० प्रे०) पृ० २५२ तथा पृ० ४०६ से, उनका मिलान करने पर ज्ञात होता है कि वे क्रमश: ज्यो की त्यो सूरसागर के उक्त पृष्ठो पर दी हुई हैं। सूर की 'मान-लीला' नामक पुस्तक का, वही लम्बा पद लेखक ने नाथद्वार पुस्तकालय में 'सूरदास-कृत राधा-रस केलि-कौतूहल'[3] नाम की पुस्तक-रूप में देखा है। जिसमे राग सारङ्ग के अन्तर्गत 'मान-मनावो-राधाप्यारी' टेक का लम्बा पद है। इसी को सूरदास का 'मान-सागर' भी कहा जाता है। नाथद्वार की इस प्रति के अन्त में लिखा है—'इति सम्पूर्ण मानसागर।" विक्रम संवत् १९९९ कार्तिक

१—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट १९०६-८ ई०, न० २४४ (ए)

२—इस ग्रन्थ के साथ लगी, खोज-रिपोर्ट में दिये सूर के ग्रन्थो की तालिका में 'व्याहलो'।

३—नाथद्वार निजपुस्तकालय पोथी न० २८।७

मास की 'व्रजभारती' में पण्डित जवाहर लाल चतुर्वेदी ने 'मानसागर' को निकाला है। वह रचना सूरसागर (वेंक्टेश्वर प्रेस) पृष्ठ ४०९:४१२ पर दी हुई है। इस प्रकार उक्त वर्णन से यही निष्कर्ष निकलता है कि सूरसागर के बहुत से प्रसङ्गो को लोगो ने सूरसागर से निकाल कर अलग ग्रन्थ मान लिया है। सूरसागर के दो भाग हैं। एक तो पदो मे गाये हुये प्रसङ्गों का सूरसागर; दूसरे, पद के रूप में छन्दों में गाया हुआ सूरसागर। लोग कभी पद-संग्रह से, कभी छन्द में लिखे सूरसागर से, प्रसङ्ग अलग कर सूर के अनेक ग्रन्थ बनाते रहे हैं। नन्ददास के भी बहुत से ग्रन्थ वास्तव में इसी प्रकार के प्रसङ्ग और लम्बे पद मात्र हैं।

ग्रन्थ के नाम से अनुमान होता है कि यह सूरसारावली का ही परिवर्तित नाम है। परन्तु खोज-रिपोर्ट इस ग्रन्थ के विषय में एक दूसरी ही प्रकार की सूचना देती है। खोज-रिपोर्ट १९०९-११ ई०, नं० ३३३ (बी). में ग्रन्थ के विषय के बारे मे लिखा है कि यह रचना पदो में है और इसका विषय ज्ञान, भक्ति और वैराग्य है। इस ग्रन्थ के आदि और अन्त के उद्धरणो के साथ खोज-रिपोर्ट ने इसकी पुष्पिका भी इस प्रकार दी है—"इति श्री सूरसागर-सार सक्षेप प्रथम स्कन्धादि नवम् तरङ्ग समाप्त।" उक्त रिपोर्ट दिये हुये ग्रन्थ के आदि और अन्त के पद नीचे उद्धृत किये जाते है। ये पद सूरसागर मे भी मिलते हैं.—

सूरसागर-सार

आदि—

विनती केहि बिधि प्रभुहिं सुनाऊँ।
महाराज रघुवीर धीर को समय न कबहूँ पाऊँ[1]।

अन्त—

देखो कविराज भरत वे आए।
मम पाँवरी सीस पर जाके कर अंगुली रघुनाथ बताए।
छीन शरीर वीर के बिछुरे राजभोग चित ते बिसराए[2]।

ज्ञात होता है कि किसी सज्जन ने अपनी रुचि के अनुसार सूरसागर के पदों को ही उसके भिन्न-भिन्न प्रसङ्गों से छाँटकर अलग लिख लिया है और उसे सूरसागर-सार नाम दे दिया है, जैसे पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संगृहीत तथा सम्पादित 'भँवर-गीत-सार' नामक ग्रन्थ है जिसमें सूरसागर के ही गोपी-विरह तथा गोपी-उद्धव-सवाद के पद एकत्र हैं। अत: उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि सूर का सूरसागर-सार कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है।

यह ग्रन्थ सूरसागर की कुछ प्रतियो के साथ उपलब्ध होता है। वेंक्टेश्वर प्रेस से छपे सूरसागर के साथ भी यह छपा है। इसके नाम तथा पदों के विषय के अध्ययन से ज्ञात

१— सूरसागर, वेंक्टेश्वर प्रेस, पृष्ठ ९५।
२—सूरसागर, वेंक्टेश्वर प्रेस पृष्ठ ९४।

सूरसारावली

होता है कि यह ग्रन्थ सूरसागर की एक प्रकार की साराश सहित भूमिका है। इसको हम सूरसागर की केवल विषय-सूची ही नही कह सकते, जैसा कि कुछ विद्वानो ने कहा है। यह भागवत तथा सूरसागर की कथा का संक्षेप में साराश है। वन्दना के बाद इसमें सरसी और सार छन्दों मे ११०६ द्विपद छन्द दिये हुये हैं। इसमें वर्णित विषय उपलब्ध सूरसागर के पदों के अनुपात से नहीं मिलता। इसमें भागवत की कथा का बहुत ही संक्षेप में अविच्छिन्न प्रवाह के साथ कथन है। सूरसागर में अनेक स्थानो पर यह प्रवाह टूट-भी जाता है। इसमे सम्पूर्ण बारहों स्कन्धो का सार एक साथ दिया गया है और स्कन्धो में विभाजित नही किया गया है। इसके लिखे जाने के समय, तथा सूर द्वारा बनाये गये पदो की सख्या, को सूचित करनेवाले भी कुछ छन्द इसमे आये हैं। लेखक के विचार से सूरसारावली सूर-कृत एक प्रामाणिक रचना है। सूरसागर की केवल सूची मात्र न होकर उसका सारांश होने के कारण यह रचना एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही है।

निम्नलिखित कारणो से यह ग्रन्थ अष्टछापी सूरदास की ही रचना सिद्ध होती है।

(१) इस ग्रन्थ में आरम्भिक वन्दना का पद कुछ पाठभेद से वही है जो सूर-सागर के आरम्भ में वन्दना के रूप मे है। (२) इस ग्रन्थ में व्यक्त विचार वल्लभ-सम्प्रदायी विचारो से साम्य रखते हैं जिनका व्यक्तीकरण स्थान-स्थान पर सूर-सागर मे भी हुआ है, जैसे, अविगत, आदि, अनन्त, अविनाशी, पूर्ण रस पुरुषोत्तम कृष्ण सदैव वृन्दावन धाम मे युगल रूप से आनन्दमग्न रहता है, उसने खेल-खेल मे ही अपनी लीला का विस्तार करना चाहा और उसने उसी क्षण सृष्टि रचना की आदि। (३) वल्लभाचार्यजी ने सृष्टि-विकास में २८ तत्त्व माने हैं। सत्, रज, तम इन गुणो को उन्होंने प्रकृति के गुण न मानकर स्वतन्त्र तत्त्व माना है। सारावली में भी २८ तत्त्वों का उल्लेख है।[१] (४) सूरदास ने युगल-खेल तथा रास की कल्पना अनेक प्रकार से व्यक्त की है—नृत्यवाद्य के साथ रास-क्रीड़ा मे, यमुना की जलक्रीड़ा में, श्रावण के हिंडोल-झूलन में और होली के उन्मत्त रङ्गरस में। सूर-सारावली में यह रस युगल की होली के रूप में प्रकट हुआ है जिसे वासती रास कहते हैं। होली खेलते-खेलते पूर्णरस कृष्ण अपनी लीला का विस्तार करते हैं।(५) सूरदास के वसन्त और धमार के पद, सूर-सागर के अतिरिक्त, वल्लभसम्प्रदायी वर्षोत्सव कीर्तन तथा वसन्त-धमार संग्रहों में बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। उनमें से अनेक पदो मे भी युगल की होली और फगुआ[२] का वर्णन है। इस प्रकार सूरसागर के पद और सूरसारावली के पदो और विचारों में साम्य है।

सूर-सारावली में वर्णित विषय बहुत संक्षेप में व्यक्त हैं। इसलिए सूर-सागर के अनेक प्रसङ्गों का समावेश इसमें नहीं हुआ है। जैसा कि पीछे संकेत किया गया है, कुछ प्रसङ्ग केवल भागवत से साम्य रखते हैं, सूर-सागर से नही। (६) सूरसागर की तरह इस

१—सूर-सारावली, पृ० १, वें० प्रे० संवत् १९६४ वि०।

२—सूर-सागर, पृ० ४०४, वें० प्रे०—आली री नन्दनदन वृषभानु कुंवरिसों.....

गन्थमें भी कृष्ण की ऐश्वर्य और रस, दोनों प्रकार की लीलाओं का संक्षेप में वर्णन है, परन्तु कृष्ण के ऐश्वर्य रूप पर वल अधिक है और सूर-सागर के प्राप्त पदो में कृष्ण के आनन्द रूप (व्रज रूप) पर है। सूरदास की इन दोनो रचनाओं मे प्रसङ्गों की कुछ विभिन्नता और भाव की घटा-वढ़ी देखकर एक को सूर की रचना न मानना कुछ तर्कयुक्त बात नही जँचती। महात्मा तुलसीदास के रामचरितमानस और कवितावली अथवा गीतावली के विषय एक होते हुए भी उनके विस्तार और प्रसङ्गों में अनेक स्थलों पर विभिन्नता है। इस प्रकार की विभिन्नता सारावली को सूर-सागर से इतर एक स्वतन्त्र रचना का रूप अवश्य देती है।

(७) सूर-सागर और सारावली मे साम्प्रदायिक भाव-साम्य के अतिरिक्त, कवि के आत्म-विषयक कथनों में भी साम्य है। सारावली में कवि आत्मिक-शान्ति लाभ का भाव प्रकट करते हुये कहता है,—"आज मुझे गुरु के प्रसाद से इष्ट-दर्शन हो रहे हैं।[१] और मैं कर्म, योग, ज्ञान और उपासना के अनेक साधनों में भ्रमता फिरा, परन्तु मुझे शान्ति नही मिली। अब श्रीवल्लभाचार्य गुरु की कृपा से मैं आनन्द-मग्न हूँ और उसी आनन्द मे हरि की लीला का गान करता हूँ।" इसी प्रकार के गुरुप्रसाद-फल तथा आत्मिक शान्ति-लाभ के भाव सूर-सागर में भी प्रकट हुये हैं। नीचे के पद में कवि अपने गुरु की कृपा के प्रताप को बताता है--

हरि के जन की अति ठकुराई
महाराज ऋषिराज राज हूँ देखत रहत रजाई।
× × × ×
हरिपद पंकज पियो प्रेम रस ताही के रँग रातौ।
मन्त्री ज्ञान न औसर पावै कहत बात सकुचातौ।
× × ×
माया काल कछू नहिं व्यापै यह रस रीति जु जानी।
सूरदास यह सकल समग्री गुरु प्रताप पहिचानी।

—सूरसागर

आत्मिक शान्ति का भाव प्रकट करते हुये कवि राजा परीक्षित के शब्दों में कहता है :—

नमो नमो करुणानिधान।
चितवत कृपा कटाक्ष तुम्हारी मिटि गयो तम अज्ञान।
मोह निसा को लेस रह्यो नहिं भयो विवेक विहान।
आतम रूप सकल घट दरस्यो उदय कियो रवि ज्ञान।
मैं-मेरी अब रही न मेरे छुटयो देह अभिमान।

१—सूर-सारावली, पृ० ३४, वें० प्रे०।

भावै परौ आजु ही यह तन भावै रहो अमान।
मेरे जिय अब यहै लालसा लीला श्री भगवान।
श्रवण करौ निसि वासर हित सों सूर तुम्हारी आन।

तथा—

हरिलीला अवतार पार शारद नहि पावै।
सतगुरु-कृपा-प्रसाद कछुक ताते कहि गावै।
सूरदास कैसे कहै हरि गुन कौ विस्तार।
सेष सहस मुख रटत है, तऊ न पावै पार।[१]

—सूरसागर

तथा—

धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ।[२]

—सूरसागर

सूरसारावली मे कथा का रूप सक्षिप्त और वर्णनात्मक होने के कारण वह भावाभिव्यक्ति नही हुई जैसी सूरसागर में है। सूरसागर में भी जो लीलाएँ चौपाई छन्द में गाई गई है उनमें भी भावपूर्ण शब्दावली का अभाव है, फिर भी (८) सूरसारावाली मे भाषा का वही ब्रज-रूप और वही लालित्य है जो सूरसागर मे है। भाव और शब्दावली का साम्य दोनों ग्रन्थों के निम्नलिखित उद्धरणों से ज्ञात होगा—

घुटुरुन चलत कनक आँगन में[३]' —सूरसारावली
'घुटुरुन चलत स्याम मनि आँगन[४]' —सूरसागर

खंजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार।
खंजन युग मनों लरत लराई कीर बझावत रार।
नासा के बेसर में मोती बरन बिराजत चार।
मनों जीव सुनि सुक्र एक ह्वै बाढ़े रवि के द्वार[५]॥

—सारावली

प्रिय मुख देखो स्याम निहारि।
× × ×
चंचल नैन चहूँ दिसि चितवत युग खंजन अनुहारि।
मनहु परस्पर करत लराई, कीर बचाई रारि।

१—सूरसागर ना० प्र० भाग १ पृ० ४३१
२— ,, ,, ,, ,, पृ० ६६२
३—सूरसारावली, छन्द न० ११६, पृ० ६ वें० प्रे० बम्बई।
४—सूरसागर, प्र० स्कंध पृ० ११३, वें० प्रे०।
५—सूरसारावली, पृ० ७ छन्द १७५-१७६, वें० प्रे० बम्बई।

वेसरि के मुकता में झाँई वरन बिराजत चारि।
मानों सुर गुरु सुक्र भौम सनि चमकत चन्द्र मँझारि [१]

—सूरसागर

सूर समुद्र की बुंद भई यह कवि बर्नन कहँ करि है[२]।

—सारावली

सूर सिंधु की बुंद भई मिलि मति गति दृष्टि हमारी[३]।

—सूरसागर

(९) सरावली में उद्धव को ब्रज भेजते हुये कृष्ण कहते हैं।

वन में मित्र हमारो यक है, हम हीं सो है रूप।
कमल नयन घनस्याम मनोहर सब गोधन को भूप।
ताको पूजि वहुरि सिर नइयो अरु कीजो परनाम [४]।

—सारावली

यही भाव सूरसागर में हैं:—

पहिले करि परनाम नंदसों समाचार सब दीजो।
× × ×
मन्त्री इक वन वसत हमारो ताहि मिले सचुपाइयो।
सावधान ह्वै मेरे हूते ताही माथ नवाइयो।
सुन्दर परम किसोर वयक्रम चंचल नैन बिसाल,
कर मुरली सिर मोर पंख पीताम्बर उर बनमाल[५]।

—सुर-सागर भँवरगीत

इन दोनों स्थलो पर मथुराधीश, राजकिरीटधारी तथा ऐश्वर्यशाली कृष्ण ने निरन्तर ब्रज मे रहनेवाले आनन्दस्वरूप, मोर-मुकुट पीताम्वरधारी ब्रजरूप की ओर सकेत किया है। सूर की यह विश्वास-भावना और साम्प्रदायिक विचार की वारीकी दोनो मे व्यक्त हुई है।

(१०) सूर-सागर में जो दृष्टकूट पद आये हैं उनके अनुरूप-भावो का दृष्टकूट-शैली में, सूर-सारावली मे भी व्यक्तीकरण है। (११) जिस प्रकार सूरदास ने सारावली के गान का माहात्म्य वर्णित किया है उसी प्रकार सूरसागर में भी कई कृष्ण-लीलाओं के तथा भागवत के गान का माहात्म्य कवि ने कहा है; जैसे—

१—सूरसागर, दशम स्कंध, पृ० ३०८, वें० प्रे०।
२—सूरसारावली, पृ० १९, वें० प्रे०।
३—सूरसागर, दशम स्कंध, पृ० ११२, वें० प्रे०।
४—सूरसारावली, १९-वें० प्रे०।
५—भँवरगीत-सार, पं० रामचन्द्र शुक्ल।

धरि जिय नेम सूर सारावलि उत्तर दक्षिण काल,
मनवांछित फल सब ही पावे मिटे जनम जंजाल।
सीखै सुनै पढ़ै मन राखै लिखै परम चित लाय,
ताके संग रहत हों निसि दिन आनन्द जनम बिहाय।
सरस सम्बतसर लीला गावें युगल चरन चित लावें,
गर्भवास बन्दीखाने में सूर बहुरि नहि आवें।[१]

--सारावली

श्रीभागवत सुनै जो कोई, ताको हरिपद होई।
× × × ×
सुनै भागवत जो चित लाई, सूर सु हरि भजि भव तरि जाई॥[२]

--सूरसागर

सूरसागर में यमलार्जुन उद्धारण लीला के गान का माहात्म्य कवि इस प्रकार कहता है:—

सूरदास यह लीला गावै, कहत सुनत सबके मन भावै।
जो हरि चरित ध्यान उर राखै आनंद सदा दुरित दुख नाखै॥[३]

—सूरसागर

इसी प्रकार सूरसागर मे कवि ने रासपञ्चाध्यायी की महत्ता का वर्णन किया है—

रास रस लीला गाइ सुनाऊँ।
यह यस कहै सुनै मुख श्रवनन तिन चरनन सिर नाऊँ॥[४]

तथा—

धनि सुक मुनि भागवत बखान्यो।
गुरु की कृपा भई जब पूरन तब रसना कहि गान्यो।
धन्य स्याम वृन्दावन को सुख संत भया ते जान्यो।
जो रसरास रंग हरि कीन्हें वेद नहीं ठहरान्यो।
सुर-नर मुनि मोहित सब कीन्हें, सिवहि समाधि भुलान्यो।
सूरदास तहँ नैन बसाए और न कहूँ पत्यानो।[५]

—सूरसागर

उक्त पद की, भावावली की सारावली के नीचे लिखे छन्द के साथ तुलना कीजिये—

१—सूरसारावली, वें० प्रे०, पृ० ३८।
२—सूर-सागर प्र०, स्कन्ध, पृ० १६, वें० प्रे० बम्बई।
३—सूर-सागर, पृष्ठ १४७, वें० प्रे०।
४— „ पृष्ठ ३६३, वें० प्रे०।
५— „ पृष्ठ ३६०, वें० प्रे०।

वृन्दावन निज धाम परम रुचि बर्नन कियो बनाय,
व्यास पुरान सघन कुंजन में जब सनकादिक आय।
धीर समीर बहत त्यहि कानन बोलत मधुकर मोर,
प्रीतम प्रिया बदन अवलोकत उठि-उठि मिलत चकोर।
×　　×　　×　　×
नलिन पराग मेघ माधुरि सों मुकुलित अम्ब कदम्ब।
मुनिमन मधुप सदा रस लोभित सेवत अज सिव अम्ब।
गुरुप्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरष प्रवीन,
सिव विघात तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहि लीन।[1]

(१२) सूरदास के नाम की जो छापें जैसे, सूर, सूरदास, सूरज, सूरदास आदि सूरसागर में हैं वे सूरसारावली में भी हैं। (१३) सूरदास के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे, इस बात का उल्लेख भी इस ग्रन्थ में स्पष्ट शब्दों मे है। (१४) कुछ सज्जन यह तर्क देते हैं कि सूरसारावली में राधाकृष्ण युगल-श्रृंगार और कवि के युगल-ध्यान का वर्णन है, वल्लभाचार्य जी ने तो उन्हें बालभाव की भक्ति दिखाई थी, इसलिए यह कृति किसी अन्य कवि सूर की है। लेखक के विचार से उनका यह तर्क भ्रान्त है। वल्लभाचार्य जी ने बाल, सख्य, दास्य और कान्ता, चारो भावो की भक्ति करने का उपदेश दिया है और उनसे सूर ने भी यही सीखा था। साधन की आरम्भिक अवस्था के लिए आचार्य जी ने सूर को तथा अपने अन्य भक्तो को बालभाव की भक्ति का उपदेश दिया था। राधाकृष्ण की युगल भक्ति और ध्यान का प्रसाद भी उन्हें वल्लभाचार्य जी से ही मिला था। सम्प्रदाय में इस भाव का उत्कर्ष श्री विट्ठलनाथ जी के समय में अवश्य बढ़ गया था। सूरसागर में चारों प्रकार की भक्ति और युगल ध्यान के अनेक पद विद्यमान हैं जिनका स्पष्टीकरण 'अष्टछाप भक्ति' भाग में आगे किया जायगा। युगल का ध्यान करते हुये सूरसागर में कवि कहता है—

बसौ मेरे नैनन में यह जोरी
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन संग वृषभानु किसोरी।
×　　×　　×
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को का बरनो मति थोरी[2]।

तथा

मैं कैसे रस रासहि गाऊँ।
श्री राधिका स्याम की प्यारी कृपा बास ब्रज पाऊँ।

१—सूरसारावली, नवल किशोर प्रेस

नोट :—सूरसारावली वें० प्रे० पृ० ३४ पर पाठ विघात के स्थान पर 'विधान' है। और बहुधा लेखकों ने यही पाठ लिया है। 'विघात' पाठ ठीक जँचता है।

२—सूरसागर, पृ० ४२०, वें० प्रे०।

आन देव सपनेहु न जानौं दम्पति कौं सिर नाऊँ।
भजन प्रताप चरन महिमा तें गुरु की कृपा दिखाऊँ।
नव निकुंज बनधाम निकट इक आनँद कुटी रचाऊँ।
सूर कहा विनती करि विनवै जनन जनम यह ध्याऊँ।[१]

—सूरसागर

फागु खेलि अनुराग बढ़ायो, सबके मन आनन्द।
चले यमुना अस्नान करन को सखा सखी नँदनन्द।
दुष्टन दुख संतन सुख कारन ब्रज लीला अवतार।
जय-जय ध्वनि सुनगन सुर बर्षत निरखत स्याम बिहार।
युगल किसोर चरन रज माँगों, गाऊँ सरस धमार।
श्रीराधा गिरिवरधर ऊपर सूरदास बलिहार।[२]

चार-छै शब्दों को पकड़ कर जो सम्भवतः अब तक के छपे सूरसागरों में नहीं मिलते, इस ग्रन्थ को सूर-कृत न कहना उचित नहीं है; प्रक्षिप्त शब्द और वाक्य सूर के सभी ग्रन्थों में हो सकते हैं। अतएव यह रचना लेखक के विचार से सूर-कृत ही है।

साहित्य-लहरी

यह ग्रन्थ सूरदास जी के दृष्टकूट पदों का संग्रह है। यह कई स्थानों से प्रकाशित भी हो चुका है। इसके अनेक पद वेंकटेश्वर प्रेस से छपे सूरसागर में भिन्न-भिन्न प्रसङ्गों के अन्तर्गत आ गये हैं। सम्भव है, सूरसागर की किसी प्रति में सभी दृष्टकूट पद सम्मिलित हों। प्रश्न यह होता है कि साहित्यलहरी-रूप में इन पदों का संग्रह कवि ने स्वयं कराया था अथवा उसके जीवनकाल के बाद में किसी ने किया। साहित्यलहरी में दिये निम्नलिखित पद से तो यही ज्ञात होता है कि इस प्रकार के पद-संग्रह का नाम सूरदास के जीवन-काल में ही दे दिया गया था—"मुनिपुनि रसन के रस लेख।[३]"

साहित्यलहरी रचना का वर्णित विषय, कई रूपों में व्यक्त, राधाकृष्ण का अनुराग है, जैसे पूर्वराग अवस्था में गोपियों की मिलन-उत्कण्ठा तथा कृष्ण के रूप की मोहनी, राधाकृष्ण का श्रृङ्गार वर्णन, युगल का संयोग, राधा का मान तथा सखियों द्वारा मानमनावन, मानवती राधा की वियोग-दशा, वासकसज्जा राधा, गोपी और राधा का प्रवास-वियोग, उद्धव प्रति वियोग दशा-कथन आदि। इन विषयों का कवि ने पाण्डित्य और चमत्कार-कौशल के साथ अर्थ-गोपन करते हुये वर्णन किया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस प्रकार की शैली और ऐसे विषयों पर, सूर के पद सूरसागर में भी विद्यमान हैं। सूर के समकालीन कवि, महात्मा तुलसीदास ने भी अर्थ-चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य की काव्य-शैली में बरवै

१—सूरसागर—ना० प्र० भाग १ पृ० ६६२

२—सूरसागर, पृ० ४४६, वें० प्रे०।

३—साहित्यलहरी, रामदीन सिंह, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १०१ : १०२।

रामायण लिखी थी। सूर के पूर्ववर्ती महात्मा कबीर की उलटवासियाँ प्रसिद्ध ही है। अमीर खुसरो की पहेलियाँ और दो सखुनी भी प्रसिद्ध हैं। युक्ति से छिपाये हुये और क्लिष्ट-कल्पना तथा मनोयोग द्वारा खुलनेवाले अर्थो से युक्त ये पद, मानसिक एकाग्रता लाने के अभ्यास-रूप, मानों गोरखधन्धे हैं। पदो में सूर के नामकी छाप भी है।

उक्त ग्रन्थ का परिचय देनेवाली दो महत्वपूर्ण टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। सरदार कवि की टीका में, जो नवलकिशोर प्रेस से सं० १९०४ वि० में प्रकाशित हुई थी, दो भाग हैं। प्रथम भाग में ११८ पद हैं (गलती से ११७ और ११८ पद मिल गये हैं), और द्वितीय भाग में ६३ पद हैं। इस प्रकार इस प्रति में कुल १८१ दृष्टकूट पद हैं। इस ग्रन्थ का नाम प्रकाशक ने 'श्री सूरदास का दृष्टकूट सटीक' टीका के अन्त में दिया है। टीका के अन्त में लिखा है—"इति श्री सुकवि सरदार कृता साहित्यलहरी समाप्ता।" इससे विदित होता है कि दृष्टकूट पदो का संग्रह ही साहित्यलहरी ग्रन्थ है। ग्रन्थ की दूसरी टीका खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर की छपी भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र द्वारा सगृहीत तथा श्री बाबू रामदीनसिंह द्वारा प्रकाशित मिलती है। प्रकाशक ने इसका नाम, 'साहित्यलहरी सटीक अर्थात् श्री सूरदास-कृत साहित्यलहरी का तिलक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संगृहीत,' दिया है। इस प्रति के बीच में पदो की टिप्पणी के रूप मे, प्रकाशक ने अपना वक्तव्य भी दिया है। इन टिप्पणियो के कथन से ज्ञात होता है कि सरदार कवि की टीका का, जो अब काशी और लखनऊ से प्रकाशित मिलती है, इसमें प्रयोग किया गया है। साहित्यलहरी मे दिये हुये बाबू रामदीन सिंह जी के वक्तव्य से ग्रन्थ के बारे मे कई सूचनाएँ मिलती हैं[1]।

१—सरदार कवि की टीका के पहले (संवत् १९०४ वि०) सूर के दृष्टकूट पदों पर कोई टीका थी जिसका उपयोग सरदार कवि ने किया।

२—सरदार कवि से पहले की टीका को भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने भी संगृहीत किया और साथ में उन्होने सरदार कवि की टीका और पुरानी टीका के अन्तर को भी उसमें दिखाया।

३—प्रकाशक, श्री रामदीन सिंह जी को भारतेन्दु जी ने यह टीका प्रकाशन के लिए दी; परन्तु यह भारतेन्दु जी के निधन के बाद प्रकाशित हुई।

४—अपनी इस सगृहीत टीका के विषय मे भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने अपने 'चरितावली' ग्रन्थ में सूरदास के जीवन-चरित्र के अन्तर्गत अनुमान किया है कि यह टीका सूरदास-कृत[2] है।

१—साहित्यलहरी, रामदीन सिंह, प्रथम संस्करण, पृ० ३८, पृ० १०३ तथा पृ० १०४।

२—सूरसागर, वेंकटेश्वर प्रेस, के आदि में बा० राधाकृष्णदास ने 'सूर' के जीवन चरित्र में, पृष्ठ ३ पर भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित इस आशय का नोट दिया है—'एक और पुस्तक, सूरदास के दृष्टकूट पर टीका (टीका भी, सम्भव होता है, उन्हीं की है; क्योंकि टीका में जहाँ अलङ्कारों के लक्षण दिये हैं वे दोहे

५—श्री रामदीन मिश्र जी ने इस टीका के सूर-कृत होने के मत को असिद्ध किया है कि इस पुरानी टीका में 'जसवन्त सिंह भाषाभूषण' के उद्धरण और हवाले हैं, और जसवन्तसिंह जी सूर के बाद हुये। इसलिए यह टीका भाषा-भूषण की रचना के बाद में हुई[1]। अतः यह सूर-कृत नहीं हो सकती। इस टीका का उपयोग सरदार कवि ने किया था।

६—सरदार कवि और हरिश्चन्द्र की टिप्पणियों वाली टीकाओं से पहले की पुरानी साहित्यलहरी की टीका का नाम 'सूरसागर की टीका' था।

७—सरदार कवि ने इस पुरानी टीका के अर्थों को अपनाया, कुछ अपनी ओर से भी अर्थ लगाये, तथा मूल पाठों को जहाँ तहाँ अपनी सुविधानुसार बदल कर अपनी एक नई टीका तैयार की। पुरानी टीका के दृष्टकूट पदों के साथ उन्होंने लगभग ६३ पद और मिला कर उसका आकार बढ़ा दिया[2]। बा० रामदीन सिंह जी ने सरदार कवि द्वारा बढाये पदों को भी हरिश्चन्द्र द्वारा संगृहीत साहित्यलहरी में अलग दे दिया है।

सरदार कवि ने अपनी टीका के अन्त में लिखा है कि सूरसागर का मन्थन कर मैंने रत्न निकाले हैं और उन्हीं पर यह टीका लिखी है। इससे पता चलता है कि उनके जोड़े हुये पद सब सूरसागर के ही हैं[3]। सरदार कवि की टीका वाली प्रति तथा भारतेन्दु द्वारा संगृहीत पुरानी प्रति, दोनों पदों का मिलान करने पर तथा बा० रामदीन सिंह जी की टिप्पणियों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि सरदार कवि ने पुरानी टीका के पदों के क्रम को बदल दिया है और कुछ पद सूरसागर से छाँटकर उसमें और मिला दिये हैं[4]। भारतेन्दु

और चौपाई भी सूर नाम से अङ्कित हैं) मिली है। इस पुस्तक में ११६ दृष्टकूट पद अलङ्कार और नायिका के क्रम से हैं और उनका स्पष्ट अर्थ और उनके अलङ्कार, नायिका इत्यादि सब लिखे हैं।'

१—महाराज जसवन्त सिंह का समय संवत् १६८२ : १७३८ वि० है। मिश्रबन्धु-विनोद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४१४।

२—नवलकिशोर प्रेस से छपी सरदार कवि वाली टीका के दूसरे भाग में ६३ पद हैं जिनको सरदार कवि ने पुरानी सङ्ख्या में सूरसार से निकाल कर मिलाया था।

३—रतन सतन ते सूर कवि सागर कियो उदार।
बहुत यतन ते मथन करि, रतन गहे सरदार।
तिन पर रुचि टीका रची, सजन जानिबे हेतु।
मनु सागर के तरन को, सुन्दर सोभा सेतु।
संवत बेद्रु सून्य ग्रह औ आतमा विचार।
कातिक सुदि एकादसी, समुझि सुद्धवर वार।
इति श्री सुकवि सरदार कृता साहित्य लहरी समाप्ता।
सूरदास का दृष्टकूट सटीक, नवलकिशोर प्रेस, पृ० १४२।

४—साहित्यलहरी, रामदीनसिंह, पृ० १९ तथा ३२।

बा० हरिश्चन्द्र ने पुरानी प्रति के पदो का क्रम ज्यो का त्यों रक्खा है। उन्होने सरदार कवि द्वारा मिलाये हुये पद अलग से दे दिये हैं।

उक्त सम्पूर्ण विवरण से विदित होता है कि बा० रामदीनसिंह द्वारा प्रकाशित दृष्टकूट पद नं० ११८ तक इस पुरानी प्रति का रूप है, जिसका सरदार कवि तथा भारतेंदु बा० हरिश्चन्द्र दोनो ने प्रयोग किया है। इस पुरानी प्रति के देखने से एक बात और लेखक के विचारानुसार उत्पन्न होती है। इसके बाद नं० १०९ में तथा सरदार कवि की टीका पद नं० १०९ में सूरदास ने ग्रन्थ का नाम साहित्य-लहरी दिया है और ग्रन्थ-समाप्ति का सवन् तथा उसके लिखे जाने का कारण दिया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस पुरानी प्रति में भी इस पद के बाद वे पद प्रथम टीकाकार ने मिला दिये हैं, क्योकि इस पद न० १०९ पर सूरदास की ओर से ग्रन्थ की समाप्ति ही प्रतीत होती है। बहुत से ग्रन्थो में समाप्ति का सवत् और रचना-हेतु आदि ग्रन्थ की समाप्ति में ही लोग देते हैं। सूर के जन्म और जाति आदि के विषय में प्रस्तुत किया जानेवाला पद इन दोनों प्रतियों मे न० १०९ के बाहर आता है जिसको प्रक्षिप्त कहा जा सकता है। इस प्रकार के इसमे और भी प्रक्षिप्त पद हो सकते है।

पीछे दिये हुये विवरण का साराश यह है कि साहित्य-लहरी सूरदास के दृष्टकूट पदो का एक ग्रन्थ है जिसका संकलन सूर के ही जीवनकाल में हो गया था। इसकी रचना के बाद मे भी सूर ने सूरसागर में दृष्टकूट पद लिखे और उनको छाँटकर लोगो ने बाद को मूल साहित्य-लहरी मे मिला दिया। यह ग्रन्थ यद्यपि सूरसागर का अश कहा जा सकता है फिर भी एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है, जो अपनी निजी विशेषता रखता है।

काँकरोली विद्या-विभाग में सूरदासजी के दृष्टकूट पदो की टीका की दो प्रतियाँ लेखक ने देखी है। इनका विवरण इस प्रकार है—

प्रति नं० ८८/१ .—अथ श्रीसूरदासजी-कृत दृढ गूढ के पद तिनकी टीका अर्थ लिख्यते।

प्रति न० ३४/९ .—'सूर-शतक', —इसमें सूरदास के १०० दृष्टकूट पदों के अर्थ दिये हुये हैं। पुस्तक की प्रतिलिपि नाथद्वार की लिखी संवत् १९२४ वि० की है।

सूरदास के दृष्टकूट-पद-संग्रह की नीचे लिखी एक प्रति 'नाथद्वार निज पुस्तकालय' में भी लेखक ने देखी है। प्रति नं० १६/१० :—सूरदास के दृष्टकूट पद।

सूर-शतक ग्रन्थ की सूचना सन् १९०० ई० की खोज-रिपोर्ट नं० ६ मे दी हुई है। खोज-रिपोर्ट के उद्धरण और वक्तव्य से ज्ञात होता है कि यह सूरदास के दृष्टकूटो का टीका-सहित सग्रह है। इस प्रकार का एक ग्रन्थ काँकरोली विद्या-विभाग में भी है।[1] यह सूरदास का साहित्य-लहरी से अलग कोई ग्रन्थ नहीं है।

सूर-शतक

१—काँकरोली विद्याविभाग की पोथियों में सूर-शतक का नं० ३९/९ है।

इस ग्रन्थ के सूर-कृत होने का उल्लेख सूर की जीवनी में स्व० राधाकृष्णदासजी तथा मिश्रबन्धुओं ने किया है और उनके बाद अन्य लेखक भी इसे सन्दिग्ध रूप से सूर-कृत कहते आये हैं। लेखक के देखने में यह ग्रन्थ नहीं आया।

नल-दमयन्ती

पीछे कहा गया है कि अष्टछाप-काव्य कृष्ण अथवा कृष्णभक्ति सम्बन्धी कथानकों पर ही लिखा गया है। वस्तुतः इन कवियों ने नरचरित्र की ओर ध्यान ही नहीं दिया, बल्कि उसकी निन्दा ही की है। इसलिए नल और दमयन्ती की लौकिक कथा को कहनेवाला यह ग्रन्थ अष्टछाप के भक्त सूर कृत नहीं हो सकता।

डा० मोतीचन्द,[1] एम० ए०, पी० एच-डी०, ने नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में कवि सूरदास-कृत 'नलदमन' काव्य पर एक महत्वशाली लेख लिखा था। उसमें उन्होंने बताया है कि उन्हें बम्बई के "प्रिंस आफ़ वेल्स म्यूज़ियम' में सूरदास-कृत 'नलदमन' सूफी ढङ्ग का लिखा प्रेम-काव्य-ग्रन्थ फ़ारसी लिपि में मिला है। उसकी परीक्षा करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उसके रचयिता कवि सूरदास, सूरसागर के कर्ता-भक्तवर सूरदास से भिन्न हैं। नलदमन के लेखक सूरदास ने अपना वंश-परिचय उक्त ग्रन्थ में दे दिया है। उसने अपने को गोवर्द्धनदास का पुत्र कहा है। वे कम्बू गोत्र के थे और उनके पुरखे गुरदासपुर जिला कलानौर के रहनेवाले थे। इस सूरदास के बाप गोवर्द्धनदास लखनऊ में आकर बस गये थे। यह रचना संवत् १७१४ वि० अथवा सन् १६५७ ई० की लिखी हुई है। डा० मोतीचन्दजी की खोज से यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह ग्रन्थ अष्ट-छापी सूर का नहीं है। डा० मोतीचन्द के बताये ग्रन्थ के अतिरिक्त यदि कोई इस विषय का कथानक सूर के नाम पर हो, तो भी लेखक इस प्रकार के ग्रन्थ को सूर-कृत रचनाओं में गिनने को तैयार नहीं है, क्योंकि यह 'नर-काव्य' है।

'कैटेलोगस कैटेलोग्रम' में सूरदास-कृत हरिवंश नामक संस्कृत टीका का उल्लेख हुआ है[2]। संस्कृत ग्रन्थ तथा लेखकों के इस रजिस्टर के सम्पादक मि० थियोडर आफ्रेक्ट (Theodor Aufrecht) ने हवाला दिया है कि दक्षिण कालिज, पूना, पुस्तकालय के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों के कैटेलाग पृ० ६०३[3]

हरिवंश टीका

१—नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, वर्ष ४३, संवत् १९९५, भाग १६, अङ्क २।

२—Catalogus Catalogorum. an alphabetical Register of Sanskrit works and authors by Theodor Aufrecht, 1891 Ebition, pages 731 and 761.

३—A Catalogue of Sanskrit Manuscrip's in the library of the Deccan College; Patr 1, prepared under the Superintendence of F. Kiel Born and Part II under the Superintendence of R. G. Bhandarkar 1884, Poona, Page 603.

पर इस ग्रन्थ का सूरदास-कृत होने का उल्लेख है। इस पूना वाले कैंटेलाग का सम्पादन एफ् कील बोर्न (F Kiel Born) तथा आर० जी० भण्डारकर ने सन् १८८४ ई० मे किया था। उक्त कैंटेलाग में ग्रन्थ से कोई उद्धरण नहीं दिया हुआ है।

लेखक का अनुमान है कि यह ग्रन्थ अष्टछाप के सूरदास-कृत नहीं है। इसके लेखक कोई अन्य सूरदास, सम्भवत दक्षिण भारत के रहे होगे। लेखक के इस अनुमान का कारण एक तो यह है, कि अष्टछाप के किसी भी कवि की संस्कृत भाषा में लिखी कोई रचना नही मिलती। सूर-कृत संस्कृत भाषा में ग्रन्थ लिखने की न तो कोई किंवदन्ती सुनने मे आती है और न उनकी जीवनी और काव्य का परिचय देनेवाले किसी प्राचीन लेख में ही उल्लेख है। यदि सूरदास हरिवंश पुराण की टीका करते भी तो वे भाषा मे ही करते, जैसी उस समय की प्रथा थी और जैसे भागवत की टीका के रूप मे उनका सूरसागर है। दूसरा कारण यह है कि वल्लभसम्प्रदायी विद्याकेन्द्रो मे तथा वैष्णव मन्दिरो में यह ग्रन्थ अभी तक अष्टछापी सूर के नाम से लिखा नहीं मिला, जहाँ सूर आदि सभी अष्टछाप कवियो का काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

रामजन्म

खोज रिपोर्ट[1] में इस ग्रन्थ को सूरजदास-कृत लिखा गया है। इसी के आधार पर हिन्दी साहित्य के कुछ इतिहासकारो ने खोज-रिपोर्ट की बिना अच्छी तरह जाँच किये, इसे अष्टछापी सूरदास का ग्रन्थ कह दिया है। खोज-रिपोर्ट मे दिये हुये उद्धरण[2] इस बात को स्पष्ट कर देते हैं, कि यह ग्रन्थ अष्टछाप के महात्मा सूरदास का नही है। यद्यपि सूरदास के पदो मे भी 'सूरज' या 'सूरजदास' की छाप आती है और वे वस्तुत सूरदास के ही है, परन्तु इन उद्धरणों की शैली, भाषा आदि सूर की शैली से नितान्त भिन्न है। इन उद्धरणों की भाषा अवधी है। ग्रन्थ दोहा-चौपाई में रामचरितमानस तथा पद्मावत की शैली पर लिखा गया है। इसके कुछ उद्धरण नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट के आधार पर पीछे दी हुई तालिका मे दे दिये गये है। ग्रन्थ के वन्दना-भाग में गणपति और राम की स्तुति है। सूर कृष्ण के अनन्य भक्त थे। सूरसागर के आदि में उन्होने हरि और कृष्ण की ही वन्दना की है। इस ग्रन्थ की स्तुतियो से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ रामोपसक सूरदास का लिखा है, अष्टछापी कृष्णोपासक सूर-कृत नही है।

इस ग्रन्थ के भी सूरजदास-कृत होने का उल्लेख नागरी-प्रचारिणी-सभा सन्

१—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९१७-१९ ई०, न० १८७ (ए)

२—अष्टछाप के अध्ययन की आधारभूत सामग्री के साथ लगी हुई खोज-रिपोर्ट के उल्लेख की तालिका।

१९१७–१९ ई० की खोज-रिपोर्ट नं० १८७ (वी) में हुआ है। ग्रन्थ का विषय खोज-रिपोर्ट के अनुसार प्रथम वन्दना, फिर राजा हरिश्चन्द्र सत्यवादी तथा उसके पुत्र रोहिताश्व की प्रशंसा का कथन यथा एकादशी-माहात्म्य सम्बन्धी अन्य कथाएँ हैं। सूरजदास-कृत रामजन्म की तरह यह ग्रन्थ भी दोहा-चौपाई-छन्द में लिखा गया है। इसकी भाषा अवधी है। खोज-रिपोर्ट के आधार से इस ग्रन्थ के भी उक्त रिपोर्ट में दिये हुए उद्धरण सूर के ग्रन्थो की तालिका मे पीछे दिये जा चुके हैं। इन उद्धरणो मे भी सूरदास कवि की ही छाप है। उद्धरणो की भाषा अवधी है। शैली दोहा-चौपाई की है। वन्दना मे गणेश, शारदा, तेतीस देवता, महादेव, माता-पिता तथा अक्षर ज्ञान करानेवाले गुरु की स्तुति उन्होने की है। ज्ञात होता है कि राम जन्म और इस एकादशी-माहात्म्य के दो भिन्न-भिन्न कवि न होकर, एक ही है। इस प्रकार उक्त कारणो के आधार पर यह ग्रन्थ भी अष्टछाप के अनन्य कृष्णोपासक महात्मा सूरदास-कृत नही प्रतीत होता।

एकादशी-माहात्म्य

नाथद्वार निज पुस्तकालय तथा काँकरौली विद्या-विभाग में लेखक को सूरदास के नाम से सेवाफल नामक एक ग्रन्थ मिला है। नाथद्वार पुस्तकालय मे इस ग्रन्थ की पोथी का न० ४६/५ है तथा काँकरौली की पोथी का न० ४२/१० है। नाथद्वार की पोथी के आदि मे रचना का नाम 'सूरदास-कृत सेवाफल' दिया हुआ है तथा काँकरौली की पोथी में 'सेवाफल सूरदास' है। लेखक ने दोनो स्थानो की पोथियो के पाठ मिलाये हैं। मिलान करने पर ज्ञात होता है कि कुछ पाठ-भेद से दोनो रचनाएँ एक ही हैं। इस रचना के देखने से पता चलता है कि यह एक लम्बा पद है जो चौपाई तथा चौपाई छन्दो मे लिखा गया है। सूर के इस छन्द मे लिखे बहुत से लम्बे पद सूरसागर में मिलते है। दोनो स्थानो की रचना के आधार से इसके कुछ उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं :—

सेवाफल

आदि—

राग रामकली

भजो गोपाल भूलि जिन जाहु, मानुष जन्म को ये ही लाहु। १
गुरु सेवा करि भक्ति कमाई, कृपा भई तब मन में आई। २
याहि देह सों सुमिरे देवा, देह धरी करिये हरि सेवा। ३
सुनो सन्त सेवा की रीति, करो कृपा राखो मन प्रीति। ४

अन्त

सेवा को फल कह्यो न जाई, सुख सुमिरो श्री वल्लभ राई। ४८
सेवा को फल सेवा पावे, सूरदास प्रभु हृदय समावे। ४९

इति श्री सेवा प्रकरणं सम्पूर्णम्।

इस रचना की भाषा व्रजभाषा है, परन्तु शैली और शब्द-गठन शिथिल हैं। सूर के चौपई या चौपाई छन्दो में लिखे पदों की शैली बहुधा शिथिल ही हुआ करती है। भगवान् की सेवा का माहात्म्य तथा भिन्न-भिन्न प्रकार से सेवा करने से प्राप्य फल का कथन, इस रचना का विषय हैं। अन्त में कवि के नाम की छाप भी है। अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी का स्मरण भी कवि ने किया है। इससे ज्ञात होता है कि यह रचना सूरदास-कृत ही है। प्रतिलिपिकारो की असावधानी से इसमे पाठान्तर मिलते है। लेखक को सूरसागर मे यह पद नही मिला। इस रचना को सूर-कृत मानते हुये भी यह नही कहा जा सकता कि यह सूरदास का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ है। विविध प्रसङ्गों के अन्य पदो की तरह यह भी एक लम्बा पद मात्र ही है जो राग रामकली के अन्तर्गत मिलता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण के आधार से सूरदास के नाम पर पीछे दिये हुये ग्रन्थो का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:—

अष्टछापी सूर के प्रामाणिक तथा मुख्य ग्रन्थ—

१—सूरसागर।
२—सूर सारावली।
३—साहित्य-लहरी।

अष्टछापी सूर-कृत सूरसागर तथा साहित्य-लहरी के प्रसङ्ग तथा लम्बे पद रूप में आनेवाली प्रामाणिक रचनाएँ :—

१—भागवत भाषा।
२—दशमस्कन्ध-भाषा।
३—सूरदास के पद।
४—नागलीला।
५—गोवर्द्धन लीला।
६—सूर-पचीसी।
७—व्याहलो।
८—भँवर-गीत।
९—सूर-रामायण।
१०—दानलीला।
११—सूर-साठी।
१२—मानलीला।
१३—राधारस-केलि-कौतूहल अथवा मान-सागर।
१४—सेवा-फल।
१५—सूर-शतक।[1]
१६—सूरसागर-सार।

अष्टछापी सूर की सन्दिग्ध रचना—

१—प्राणप्यारी।

सूर की अप्रामाणिक रचनाएँ—

१—नलदमयन्ती।
२—हरिवंश-टीका।
३—राम-जन्म
४—एकादशीमाहात्म्य।

१—सूर-शतक, साहित्यलहरी का भी अंश है।

परमानन्ददासजी की रचनाएँ ।

अष्टछाप के अध्ययन की आधारभूत सामग्री के विवरण से ज्ञात होता है कि वेंकटेश्वर प्रेस से छपी '८४ वैष्णवन की वार्ता' द्वारा परमानन्ददास के 'सहस्रावधि' पदों की तथा परमानन्द-सागर की सूचना मिलने पर भी हिन्दी ससार को अभी तक इनके पदों का कोई संग्रह अथवा इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिला है। जैसा कि पीछे कहा जा जा चुका है, हिन्दी-साहित्य के सभी इतिहासकारो ने यही लिखा है,—इनके फुटकल पद, कृष्ण-भक्तो के मुंह से प्र य सुनने में आते हैं।'[1] इस कवि द्वारा रचित माने हुये ग्रन्थो की किसी विद्वान् ने वाहरी जाँच भी नही की, यहाँ तक कि वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-सग्रहो मे छपे पदों को भी हिन्दी के विद्वानों ने एकत्र करके नही देखा। लेखक की खोज मे उसे परमानन्ददास के एक बड़ी सङ्ख्या में पद तथा परमानन्द-सागर मिले है, जिनका विवरण आगे दिया जायगा।

अब तक अष्टछापी परमानन्ददास द्वारा रचित मानी हुई तथा लेखक द्वारा खोजी हुई कुल निम्नलिखित रचनाएँ हैं जिनकी जाँच और जिनके विवरण नीचे की पङ्क्तियो में दिये जाते हैं :—

१—दान-लीला।

२—ध्रुव-चरित्र।

३—परमानन्ददासजी का पद।

४—वल्लभ-सम्प्रदायी कीर्तन सग्रहो में पद।

५—हस्तलिखित परमानन्द-सागर तथा परमानन्ददास जी के पद-कीर्तन सग्रह।

दानलीला ग्रन्थ के परमानन्ददास-कृत होने की सूचना नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] से मिलती है। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारो ने खोज-रिपोर्ट[2] के कथन के आधार से इसे परमानन्ददास-कृत लिखा है। खोज-रिपोर्ट में इस ग्रन्थ के विषय में न कोई विशेष वक्तव्य है और न उससे उद्धरण ही दिये गये हैं। लेखक के देखने में भी यह गन्थ नही आया है।

दान-लीला

परमानन्ददास जी के पद संग्रहो में दान-लीला के भी पद आते है। सम्भव है, किसी ने इन्ही पदों के सङ्ग्रह को दान-लीला, का शीर्षक देकर अलग से लिख लिया हो। परमानन्ददास की उपलब्ध रचनाओ के देखने से पता चलता है कि उन्होने बहुत थोड़े प्रसङ्ग,

१—हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, स० १९९७ सं०, पृ० २१५।

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९०२ ई०।

जैसे-भँवरगीत, ही छन्द शैली मे लिखे हैं। परमानन्ददास का भँवरगीत भी सूरदास के लम्बे पदो की तरह एक लम्बा पद मात्र ही है, जिसके अन्तरे में चौपाई छन्द आते हैं। लेखक को दान-लीला के विषय मे कवि का कोई वहुत लम्बा पद भी उपलब्ध नही हुआ। इसलिए इस ग्रन्थ के विषय में निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि यह अष्टछापी परमानन्ददास-कृत ही है अथवा नही।

ध्रुवचरित्र ग्रन्थ के भी परमानन्ददास-कृत होने की सूचना खोज रिपोर्ट[1] से ही मिलती है। रिपोर्ट मे इसकी सुरक्षा का स्थान दतिया राज-पुस्तकालय लिखा है। खोज-रिपोर्ट मे दो अन्य ध्रुव-चरित्रो[2] के उल्लेख भी हैं—एक, जन-गोपाल कृत; दूसरा, जनजगदेव-कृत। ये भी दतिया में ही रक्षित वताये गये हैं। खोज-रिपोर्ट मे उक्त तीनो ध्रुव-चरित्रो से उद्धरण नही दिये गये और न यह वताया गया है कि ये परमानन्ददास कौन से हैं। दतिया राज-पुस्तकालय से लेखक ने इस विषय में सूचना मँगाई थी। वहाँ से उसे उक्त तीनों ध्रुव-चरित्रो का तो कोई वृत्तान्त मिला नहीं, परन्तु एक और मदनगोपाल-कृत-ध्रुव-चरित्र की सूचना मिली है। यह चरित्र चौपाई छन्द में लिखा हुआ है और पद्म-पुराण का एक अङ्ग है। इसके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

ध्रुव-चरित्र

आरम्भ—अथ श्रीध्रुव चरित्र लिख्यते मदनगोपाल-कृत।

सुक सों कहै परीछतु राजा, दरसन देहु सरे मो काजा।
नारो-नारी मृत्यु कहि प्राणो, सो गति अगति जात न जानो।

× × × ×

अन्त—रिषि नारद ध्यानं भये भूपति हिय चिंता ही।
भये ध्रुव जो चक्रवै रिषि चरन सुपुपाही।
इति श्रीपद्मपुराणे ध्रुवचरित्रे संजुगत समस्त।

इस प्रकार परमानन्ददास का ध्रुव चरित्र नामक ग्रन्थ भी लेखक के देखने मे नही आया। परमानन्ददास जी की उपलब्ध रचना मे ध्रुव-चरित्र से सम्वन्ध रखने वाले पद भी लेखक के देखने में आये। इसलिए इस गन्थ के विषय मे भी कुछ परिचय नही दिया जा सकता। इतना अनुमान लगाया जा सकता है कि पीछे कही दान-लीला के समान, सम्भव है, यह भी कोई लम्वा पदमात्र ही हो। वहुधा अष्टछाप कवियो ने भागवत के प्रसङ्गो पर इस प्रकार के लम्वे पद, छन्द शैली मे, लिखे हैं, परमानन्ददास नाम के कवि अन्य वैष्णव सम्प्रदायो के भी हुये है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो ने वहुधा अष्टछाप

१—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १६०६ ई०।

२—पीछे दी हुई खोज-रिपोर्ट के विवरण की तालिका में परमानन्ददास के ग्रन्थ।

कवियों के नामधारी अन्य सम्प्रदाय के कवियों के ग्रन्थो को अष्टछाप के ग्रन्थो में मिला दिया है। परमानन्ददास नाम के एक कवि हित हरिवंश-सम्प्रदाय के भी उसी समय हुये हैं। दतिया राजपुस्तकालय में जहाँ परमानन्ददास के ध्रुवचरित्र के होने की सूचना है, हित-सम्प्रायी हित-परमानन्दास के अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। हित-सम्प्रदाय का बुन्देलखण्ड में भी बहुत प्रचार था, सम्भव है, परमानन्ददास के नाम से खोज-रिपोर्ट-द्वारा दतिया राजपुस्तकालय में बताये हुये उक्त दोनो ग्रन्थ (दानलीला तथा ध्रुव-चरित्र) हितपरमानन्ददास के ही हो और इस समय वे ग्रन्थ वहाँ उपलब्ध न हो। यदि ध्रु-चरित्र नाम का कोई ग्रन्थ वल्लभ-सम्प्रदायी अष्टछाप के परमानन्ददास का होता तो. अधिक सम्भावना यही थी कि वह वल्लभ-सम्प्रदायी संग्रहालयों (जैसे नाथद्वार काँकरौली, कामवन) मे, अवश्य होता, परन्तु उक्त स्थानों पर लेखक को खोज करने पर भी यह ग्रन्थ नही मिला।

परमानन्ददास कृत इकतालीस पदो के इस पद-सग्रह की सूचना नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[१] मे दी हुई है। रिपोर्ट में पदो के कुछ उद्धरण भी दिये गये हैं। आदि और अन्त के ये उद्धरण काँकरौली विद्या-विभाग से प्राप्त परमा-परमानन्ददास जी का पद नन्ददास के पद-सग्रह के पदों के कुछ पाठ भेद से, अंश हैं। परन्तु रिपोर्ट के उद्धरणो के बीच में राग 'टोड़ी' के नीचे जो उद्धरण दिया गया है, उसकी भाषा बहुत फारसी मिश्रित है[२] और उसकी शैली भी परमानन्ददास की शैली से भिन्न है। परमानन्ददास के पदो में लेखक को वे पङ्क्तियाँ नहीं मिलीं। इससे ज्ञात होता है कि इस पद-सग्रह में कुछ तो अष्टछापी परमानन्ददास के पद हैं और कुछ गीत इसके संग्रहकर्ता ने अपनी ओर से मिला दिये हैं, जिनमे अन्य कवियो के भी पद सम्मिलित हैं। इस संग्रह की रक्षा का स्थान खोज-रिपोर्ट में जोधपुर लिखा है। इनके पदो के पाठ में अन्तर, और भाषा की दृष्टि से कुछ शब्दो के रूपो मे परिवर्तन, अन्यत्र प्राप्त इन्ही पदो की तुलना में, बहुत हैं। लेखक का अनुमान है कि परमानन्ददास के पदो का यह कोई महत्वपूर्ण संग्रह नहीं है, विशेष रूप से उस अवस्था मे, जब अन्यत्र कवि के पद हजारो की सङ्ख्या में प्राप्त हैं। परमानन्ददास के पदो के प्रामाणिक संग्रह के सम्पादन की दृष्टि से ये पद, किसी हद तक, महत्व के हो सकते हैं।

वल्लभसम्प्रदायी छपे हुये कीर्तन-संग्रहो में परमानन्ददास के पद अलग से एकत्र नही मिलते। ये पद अष्टछाप तथा अन्य कवियों के पदों के साथ मिले हुये मिलते हैं। नाथद्वार,

---

१—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९०२ ई०।

२—राग टोड़ी—गोविंद तुम्हरे दीदारवाज मुई हुं ए परदा।
नेक नजरि कीन करी, मरदन के मरदा।
ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९०२ ई०, नं० ९२।

वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन सग्रहों में छपे, परमानन्ददास के पद

काँकरौली, मथुरा, गोकुल आदि के वल्लभसम्प्रदायी मन्दिरो में बहुधा इन्ही पद-सग्रहो से पद गाये जाते हैं। हस्तलिखित रूप में पाये जानेवाले परमानन्ददास के एकत्र छन्द तथा छपे पदो का लेखक ने मिलान किया है। इनमे बहुतसे पद कुछ पाठ-भेद से दोनो प्रकार के संग्रहो मे मिल जाते हैं। इसी प्रकार यदि सभी छपे संग्रहों मे प्राप्य पदो का मिलान किया जाय तो इन संग्रहो से, एक बड़ी सड्ख्या में परमानन्ददास के प्रामाणिक पद निकाले जा सकते हैं। छपे कीर्तन सगहो मे अन्य परमानन्ददास के भी पद है, परन्तु उन पदो की छाप से पता चल जाता है कि अमुक पद अमुक परमानन्ददास का है, जैसे हित परमानन्ददास के पदो मे सर्वत्र 'हित' शब्द परमानन्ददास नाम के साथ लगा रहता है। जहाँ कवि की छाप मे भ्रम पड़ता है, वहाँ हस्तलिखित रूप में एकत्र मिलनेवाले अष्टछापी परमानन्ददास के पदो के मिलान से कवि-कृत पदो का पता चल जाता है। जिन कीर्तन-सग्रहो मे परमानन्ददास के छपे पद मिलते है, वे ये है—

१—वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-सग्रह, भाग १, वर्षोत्सव कीर्तन[१]।

२—वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संगह, भाग २, वसन्त धमार[१]।

३—वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह, भाग ३, नित्य कीर्तन[१]।

४—राग सागरोद्भव रागकल्पद्रुम[२]।

५—राग-रत्नाकार।

राग सागरोद्भव राग कल्पद्रुम, भाग २ में परमानन्ददास के लगभग ७२ पद हैं तथा राग-रत्नाकर में २० पद हैं। वल्लभ-सम्प्रदायी छपे उक्त कीर्तन-सगहो की लगभग पद-सड्ख्या, उनके विषयानुसार इस प्रकार है—

परमानन्ददासजी के पद

कीर्तन-सग्रह भाग १

अग १

विषय-सूची	पद-सड्ख्या	विषय सूची	पद-सड्ख्या
१—जन्माष्टमी वधाई के पद	३८	२—छटी के पद	२
३—पालने के पद	६	४—अन्नप्रासन	३

१—ये कीर्तन सग्रह, अहमदावाद से लल्लू भाई छगनलाल देसाई ने छापे हैं। इनका एक संस्करण सूरदास ठाकुरदास प्रकाशक का भी मिलता है।

२—संग्रहकर्ता, कृष्णानन्द व्यास, कलकत्ता।

५—कान छेदन	२	६—नामकरण	४
७—मृत्तिका भक्षण	१	८ करवट के पद	१
९—ऊखल के पद	१	१०—बाल-लीला	२०
११—श्रीराधाजी की बधाई के	८	१२—श्रीराधाजी ढाढी	२
१३—दान के पद	३५	१४—श्रीवामनजी	४
१५—देवी पूजन	१	१६—मुरली	१
१७—दशहरा	२	१८—रास	१०
अंश २			१४४
१९—धनतेरस	१	२०—दीवारी	१
२१—दीपमालिका	२	२२—गाय-खिलावन	७
२३—हटरी	२	२४—गोवर्द्धन पूजा	७
२५—इन्द्रमान-भग	१४	२६—गोचारन	१०
२७—देव-प्रबोधनी	४	२८—व्याह	१२
२९—भोगी-सङ्क्रान्ति	२	३०—राजभोग	१
३१—द्वुतिया-पाठ	३	३२—फूल मण्डली	८
३३—संवत्सर-ओच्छव	१	३४—भोजन	२
३५—रामनवमी	७	३६—पालने के पद	१
३७—श्रीआचार्यजी के पालने	१	३८—अक्षय तृतीया	१
३९—जगायबे को पद	१	४०—कलेऊ	२
४१—भोजन	१	४२—मान	१
४३—चन्दन	३	४४—श्रीनृसिंहजी	७
४५—नाव	१	४६—स्नान-यात्रा	३
४७—रथ-यात्रा	३	४८—मल्हार	१२
४९—कुसुम्बी घटा	१	५०—श्याम घटा	१
५१—चुँदरी	१	५२—छाक	२
५३—बीरी अरोगिबे के पद	१	५४—हिंडोरा	५
५५—श्रीगोसाईंजी के हिंडोरा	१	५६—पवित्रा के पद	५
५७—राखी के पद	३		
			१४२
			कुल २८५

कीर्तन-सङ्ग्रह, भाग २

५८—वसन्त के पद	१२	५९—धमार	७
६०—डोल	४		२३

कीर्तन-संग्रह, भाग ३

६१—श्रीआचार्यजी महाप्रभु	१	६२—यमुनाजी के	५
६३—गङ्गाजी के	३	६४—जगायवे के	११
६५—कलेऊ के	४	६६—मङ्गलार्ति के	४
६७—खण्डिता के	३	६८—व्रतचर्या के	२
६९—हिलग	१६	७०—दधि मन्थन	२
७१—शृङ्गार	७	७२—कुल्हे के टिपारे के	३
७३—ग्वाल के	३	७४—बलदेवजी के	२
७५—बाल-लीला, फल-फलारी	३	७६—गोदोहन	४
७७—माखन-चोरी	१	७८—उराहना	११
७९—भोजन	१६	८०—भोग समय	२
८१—वीरी के	३	८२—छाक के	१२
८३—उष्णकाल भोग के	३	८४—राज भोग के	७
८५—कुञ्ज के	६	८६—पनघट के	६
८७—आरती के	१	८८—उत्थान	२
८९—आवनी	९	९०—धैया के	८
९१—व्यारु के	५	९२—दूध	१
९३—शयन	९	९४—मान के	१
९५—मान छूटवे के	१	९६—पौढवे के	३
९७—कहानी के	२	९८—वैष्णवन के नित्य नियम	४
९९—विनती	२	१००—माहात्म्य	६
१०१—आसरे	६		

२०१

कुल ५०९

हस्तलिखित पद तथा परमानन्द-सागर

जैसा कि ऊपर कहा गया है लेखक ने वैष्णव मन्दिरो मे परमानन्ददास-सागर तथा कवि के पदो की खोज की थी। काँकरौली-विद्याविभाग से उसे सूचना मिली कि वहाँ अष्टछाप का वृहत् सङ्ग्रह है। सन् १९४१ ई० जून महीने में लेखक काँकरौली तथा नाथद्वार गया और वहाँ उसने अष्टछाप कवियो के पद सङ्ग्रहो का अवलोकन किया। परमानन्ददास के कीर्तनो के सात संग्रह काँकरौली[1] विद्याविभाग तथा चार संग्रह नाथद्वार के 'निज पुस्तकालय' मे लेखक को प्राप्त हुये। इन सब प्रतियो के निरीक्षण का फल संक्षेप मे, नीचे लिखी पङ्क्तियो मे दिया जाता है—

१—काँकरौली विद्याविभाग के मुख्य सञ्चालक, श्री पं० कण्ठमणि शास्त्री की कृपा से ये ग्रन्थ लेखक को प्राप्त हुये थे।

कॉकरौली विद्याविभाग की प्रतियाँ——कॉकरौली विद्याविभाग मे स्थित परमानन्ददास के पदो के सात सग्रहो मे चार का नाम परमानन्द-सासगर दिया हुआ है और तीन का 'परमानन्ददास के कीर्तन'। उक्त विभाग में पुस्तको पर बस्ते के और उनके भीतर पुस्तक के नम्बर पड़े है। उन्ही, पोथी के नम्बरो के साथ इन प्रतियो का यहाँ विवरण दिया गया है —

प्रति नं० २/५—परमानन्दसागर——इस संग्रह के आरम्भ में लिखा है,——'अथ परमानन्द दास-कृत परमानन्द सागर लिख्यते।' इसके आदि में कवि ने मङ्गलाचरण का नीचे लिखा पद दिया है।

चरन कमल बन्दों जगदीस जे गोधन के सँग धाए।

इसके बाद इसमे पदो के विषयानुसार पद दिये है। इस पुस्तक मे पद-सख्या लगभग ८०० है तथा इसमें कृष्ण के जन्म-समय से मथुरागमन और गोपी-विरह तथा भँवरगीत तक के पद है। अन्त मे रामोत्सव, नृसिह जी तथा वामन जी के भी पद है। पदो के ऊपर रागो के नाम भी दे दिये गये है।

प्रति नं० ६/३——यह पोथी अष्टछाप के कुछ कवियो के पदो का सग्रह है, परन्तु इसमे प्रत्येक कवि के पद अलग-अलग दिये गये है। छपे कीर्तनों मे जैसे मिले-जुले पद सभी अष्टछाप कवियो के है, उस प्रकार का मिश्रण इसमें नही है। सम्पूर्ण सग्रह के अन्त में प्रतिलिपि का काल[1] सवत् १७५१ वि० अथवा १७६१ वि० वैसाख कृष्ण ३ दिया हुआ है। इस पोथी में परमानन्ददास के लगभग ३०० पद है। ये पद कृष्ण की व्रजलीला के ही है। मथुरा-द्वारिका की कृष्ण-लीला के पद इसमे नही है।

प्रति नं० १६/६—'परमानन्ददास के कीर्तन।' इसमें विषय के अनुसार पदों का क्रम है और कुल पद लगभग ५०० है। इसमें भी कृष्ण की व्रजलीला तथा गोपी विरह और भँवरगीत-प्रसङ्ग तक के ही पद है।

प्रति नं० २०/८—इस प्रति में परमानन्ददास और सूरदास के केवल विरह के पद हैं। परमानन्ददास के विरह के पदों की सख्या लगभग २०० है। प्रति में कोई तिथि नही दी गई, परन्तु देखने से सौ, सवा सौ, वर्ष पुरानी ज्ञात होती है।

प्रति न० ४५/१——परमानन्द सागर—यह प्रति सबसे प्राचीन है। पद-संख्या इसमे लगभग ४०० है। पदों का लेखन विषय के अनुसार है। इसमें स्पष्ट रूप से कोई सवत् नही दिया हुआ है, परन्तु ग्रन्थ के पृष्ठ १०८ के एक गुजराती लेख से प्रतीत होता है कि पुस्तक की प्रतिलिपि सवत् १६६० के लगभग की गई है। यह समय परमानन्ददास जी के निधन के लगभग बीस या इक्कीस वर्ष बाद का ही है। उक्त गुजराती लेख इस प्रकार है :—

१ – संवत् में ५ का अक्षर घिस गया है, इसलिए वह ६ भी पढ़ा जा सकता है।

'वादरायण[1] पुष्करना मोरवी माँ रहेता, जेणे द्वारका मध्ये श्री आचार्य जी ने श्री मुखे मास १३ ताई श्री भागवत साभल्युँ । तेहने दीकरो लक्ष्मीदास श्री गुसाईजीना सेवक लक्ष्मीदास नी माता वाई भभा श्री आचार्य जीनी सेवक श्री अक्का जीनी द्वारिका माँ प्रवार की करता ते लक्ष्मीदास ना वेटा हरिजीवं तथा दामजी नग्र[2] माँ रहे छे ।'

इस लेख में लेखक कहता है कि वादरायण के वेटा लक्ष्मीदास के, जो कि श्री गुसाई जी का सेवक था, दो वेटे हरिजीवन और दाम जी हैं जो नवानगर मे रहते हैं। इस कथन मे हरिजीवन और दाम जी की नवानगर मे उपस्थिति वर्तमानकालिक क्रिया 'रहे छे' द्वारा सूचित की गई है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के आरम्भ में प्रतिलिपिकार ने, 'श्री गिरिधर लाल जी विजयतु' ऐसा लेख लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के गोलोकवास के वाद (सम्वत् १६४२ वि०) श्री गिरिधरलाल जी के आचार्यत्व काल में यह पुस्तक लिखी गई। ऊपर के लेख से श्री वल्लभाचार्य जी के सेवको की तीसरी पीढी तथा उनके वशजो की तीसरी पीढी दोनो की समान विद्यमानता मिल जाती है। श्री गिरिधरलाल जी का समय सम्वत् १५९७ वि० से सम्वत् १६८० तक है। और इनका आचार्यत्व-काल सम्वत् १६४२ वि० से सम्वत् १६८० वि० तक है। लेखक का अनुमान है कि इसी वीच मे इन कीर्तनो की प्रतिलिपि की गई है। यह समय लगभग सम्वत् १६६० वि० का रक्खा जा सकता है।

प्रति न० ५७/३ —'परमानन्द सागर।' देखने में प्रति सवा सौ वर्ष पुरानी जान पडती है। परमानन्ददास के पदो के जितने संग्रह लेखक ने देखे हैं, उनमे इस प्रति में सबसे अधिक पद हैं और पाठ भी इसके वहुत शुद्ध है। इस प्रति में कुल ११०१ पद हैं। इसमें भी आरम्भ मे 'मङ्गलाचरण' शीर्षक के नीचे, 'चरन कमल वन्दौ जगदीस, जे गोधन के संग घ ए' पद दिया हुआ है। इसमे कृष्ण के जन्म, वाल-लीला, किशोर लीला तथा कृष्ण के मथुरागमन पर गोपीविरह, प्रसङ्गो के पद हैं। अन्त में जरासन्ध के युद्ध का प्रसङ्ग, रामोत्सव, नृसिंह तथा वामन के पद हैं। इस प्रति के ऊपर श्री व्रजनाथ जी के पुत्र श्री गोकुलनाथ जी के हस्ताक्षर हैं। हस्ताक्षर का लेख इस प्रकार है—

परमानन्ददास जी के पद की चोपडी, "गोस्वामी श्री व्रजनाथात्मज श्री गोकुलनाथ-स्येद पुस्तकम्" इन श्री गोकुलनाथ[3] का समय सम्वत् १८५६ वि० है। उपर्युक्त लेख से

१—वादरायण —'चौरासी वैष्णवन' की वार्ता में वादरायण का वृत्तान्त दिया हुआ है। ये श्री वल्लभाचार्य जी के सेवक थे। ८४ वैष्णवन की वार्ता, वें०प्रे० पृ० ३४३।

२—'नग्र' से तात्पर्य नवानगर से है जिसे जामनगर भी कहते हैं।

३—श्री व्रजनाथात्मज श्री गोकुलनाथ जी, गो० विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथ जी से भिन्न आचार्य हैं। इनका समय सम्वत् १८५६ वि० है। कांकरोली का इतिहास, पृ० २३०।

सिद्ध होता है प्रतिलिपि सवा सौ वर्ष पुरानी है। इस पोथी के पदो की विषयानुसार पद-सख्या का विवरण इस प्रकार हैं—

पुस्तक संख्या ५७/३ काँकरौली पुस्तकालय

ग्रन्थ का नाम : परमानन्द-सागर

नं० विषय-सूची	पद संख्या	न० विषय सूची	पद-सख्या
१—मङ्गलाचरण	३	२—जन्म-समय	२१
३—पलना के पद	९	४—छठी के पद	२
५—स्वामिनी जी के जन्म समय के	४	६—बाल-लीला	८८
७—उराहने के वचन गोपिका जू को	३६	८—जशोदा जी को वरजिवो, प्रत्युत्तर प्रभु जी को	७
९—गोपिका जू के वचन प्रभुजी के प्रति	१२	१०—प्रभु के बचन जशोदाजी को	१
		११—परस्पर हास्य वाक्य	४
१२—सखन सो खेल	४	१३—असुर-मर्दन	५
१४—जमुना जी के तीर को मिलन	६	१५—मिसातर दर्शन	८
१६—गोदोहन प्रसङ्ग	१२	१७—अथ वन क्रीड़ा	२१
१८—गोचारण	१८	१९—दान प्रसङ्ग	३८
२०—द्विज पत्नी को प्रसङ्ग	२	२१—वन से व्रज को पाउ धारिवो	३०
२२—गोपिका जू के आसक्त वचन	७६	२३—आसक्ति को बरनन	१२
२४—आसक्ति की अवस्था	८	२५—साक्षात् स्वामिनी जू के आसक्त वचन	८
२६—साक्षात् भक्तन की प्रार्थना प्रभु प्रति	५	२७—साक्षात् प्रभु जी के वचन भक्तन प्रति	२
२८—प्रभु को स्वरूप-वर्नन	१९	३०—जुगल रस-वर्नन	७
२९—स्वामिनी जू को स्वरूप वर्नन	७	३१—व्रताचरण-प्रसङ्ग	
३२—रास-समय के पद	९	३३—अन्तर्ध्दान समय	९
३४—जल-क्रीड़ा के पद	१२	३५—खण्डिता के वचन	३
३६—खण्डिता के प्रत्युत्तर	१	३७—मानापनोदन	६०
३८—मध्या के वचन	६	३९—प्रभु जू को मनायवो	२
४०—प्रभु को मान	१	४१—किशोर-लीला	
४२—फूल-मण्डली के पद	१	४३—दीप-मालिका, श्री गोवर्द्धन धारण, अन्नकूट	२९
४४—प्रवोधनी के पद	३		
४५—वसन्त समय	१०	४६—धमारि के पद	१३

४७—श्री स्वामिनी जी की उत्कर्षता	३	४८—संकेत के पद	५
४९—व्रज वासीन को महातम	१	५०—मन्दिर की शोभा	१
५१—व्रज को महातम	१	५२—श्री यमुना जी के पद	४
५३—अक्षय तृतीया	२	५४—रथ-यात्रा	२
५५—वर्षा ऋतु	१	५६—हिंडोरा	३
५७ पवित्रा	५	५८—रक्षाबन्धन	३
५९—दसेरा	३	६०—अपनो दीनत्व, प्रभु को महातम तथा बीनती।	४९
६१—अथ समुदाय पद	५३		
६२—मथुरा गमनादि प्रसङ्ग	४०	६३—गोपिन के विरह के पद	२४७
६४—जशोदा तथा नन्द जू के वचन उद्धव प्रति	२	६५—उद्धव के वचन प्रभु सों	२
		६६—जरासघ के युद्ध के प्रसंग	१
६७—द्वारिका लीला-विरह	२१	६८—रामोत्सव के पद	६
६९—नरसिंह जी के पद	४	७०—वामन जी के पद	३
		कुल	११०१

प्रति नं० ६९/३—'परमानन्द-सागर'। इस प्रति के प्रतिलिपिकार का नाम इसमे धोलका ग्राम निवासी कान्हदास दिया हुआ है। पुस्तक के अन्त मे प्रतिलिपि का काल गुर्जर सम्वत् १८३० वि०, वसाख तेरस दिया हुआ है। इसमे भी परमानन्ददास के विषयानुसार पद हैं।

नाथद्वार निज-पुस्तकालय की प्रतियाँ—श्रीनाथद्वार मे गोस्वामी जी के निज पुस्तकालय मे भी बस्तो तथा पोथियो पर नम्बर पड़े हुये है। यहाँ की परमानन्ददास की पद-संग्रहो की पोथियो का विवरण भी इन नम्बरों के हवाले के साथ नीचे दिया जाता है—

प्रति नं० ११/१—'परमानन्ददास जी के कीर्तन'। इस प्रति में भी विषयानुसार पद लिखे गये हैं और लगभग ४०० पद है। प्रतिलिपि सम्वत् १८७३ वि० की, गोकुल की लिखी हुई है।

प्रति नं० १४/१—'परमानन्ददास-सागर।' इस प्रति में कुल ८८३ पद हैं। ग्रन्थ का आरम्भ उसी मङ्गलाचरण वाले पीछे कहे पद 'चरन कमल वन्दौं जगदीस जो गोधन के सङ्ग धाए" से होता है, जो पद काँकरौली की प्रतियो मे मङ्गलाचरण रूप मे दिया हुआ है। इसमे भी विषय के अनुसार ही पद लिखे गये है। कृष्ण के जन्म से गोपी-विरह तक के पद, इसके बाद, नज भक्तों की महिमा, व्रज का माहात्म्य, यमुना-महिमा, आत्म-प्रबोध, रामजन्म विषयों पर पद हैं। इस प्रति मे कोई सम्वत् नही दिया हुआ है। देखने से प्रतिलिपि १५० वर्ष पुरानी प्रतीत होती है। पुस्तक के आदि मे पदों की विषय-सूची तथा भिन्न-भिन्न समय के कीर्तनानुसार अनुक्रमणिका भी दी हुई है। विषय के अनुसार दिये गये पदो की संख्या इसमें लगभग १००० है। इसके पदो का विवरण इस प्रकार है :—

प्रति नं० १४/१ परमानन्द-सागर नाथद्वार, निज पुस्तकालय

विषय	पद-सङ्ख्या	विषय	पद-सङ्ख्या
१—मङ्गलाचरण	३	२—जन्म समय के पद	१४
३—स्वामिनी जी को जन्म	२	४—वाल-लीला	७०
५—शयनोछित	७	६—व्याह की वात	४
७—उराहना यशोदा जू	२१	८—यशोदा जी को प्रत्युत्तर भक्तन सो	१७
९—यशोदा जी के वचन प्रभु सो	७		
१०—प्रभु के वचन यशोदा सो	१	११—गोपिका के वचन प्रभु सो	११
१२—परस्पर हास्य	४	१३—सखन सो खेल	४
१४—असुर-मर्दन	५	१५—जमुनातीर को मिलिवे के	६
१६—मेघान्तर	७	१७—गोदोहन	१२
१८—वन-क्रीड़ा	१९	१९—गोचारण	६
२०—भोजन		२१—दान	३७
२२—द्विज पत्नी को प्रसग	२	२३—प्रभुजी को वन तै पाउ धारनो	२१
२४—वेनुगान	८	२५—मानापनोदन	६६
२६—किशोर-लीला	२	२७—प्रभु को स्वयं दूतत्व	
२८—प्रभु को मान, मध्याको वचन		२९—व्रताचरण	
३०—भक्तन के आसक्त वचन		३१—आसक्त को वर्णन १३	
३२—आसक्त की अवस्था	८	३३—साक्षात् भक्तन के आसक्त वचन	२४५
३४—साक्षात् भक्तन की प्रार्थना	४		
३५—प्रभु के वचन भक्तन प्रति	२	३६—प्रभु को स्वरूप वर्णन	२२१
३७—श्री स्वामिनी जू-को स्वरूप-वर्णन	७	३८—जुगल रस वर्णन	७
		३९—रास-समय	६
४०—अन्तर्धान समय	६	४१—जल-क्रीड़ा-समय	३
४२—सुरतान्त समय	७	४३—खण्डिता के वचन	३
४४—खण्डिता को प्रत्युत्तर	१	४५—फूल-मण्डली	१
४६—दीपमाला अन्नकूट	२१	४७—वसन्त-समय	३
४८—मथुरा-लीला	३८	४९—मथुरा-गमन	३
५०—विरह भ्रमरगीत	२४१	५१—श्री द्वारिका-लीला	१३
५२—व्रजभक्तन की महिमा	२	५३—भगवत् मन्दिर वर्णन	१
५४—व्रज को माहात्म्य		५५—श्री जमुना जी की प्रार्थना	१
५६—अक्षय तृतीया		५७—प्रभु प्रति प्रार्थना	१
५८—भगवत भक्तन की महिमा	४	५९—स्वात्म-प्रवोध	३
६०—रक्षा-बन्धन	१	६१—आरती-समय	१

६२—पवित्रा समे	१	६३—श्री रघुनाथ जी को जन्म	२
६४—हिंडोरा-समय	१	६५—प्रभुजी को महात्म्य, अपनी दीनता	४४

प्रति नं० १४/२—'परमानन्द सागर।' इस प्रति में लगभग ५०० पद हैं। पीछे कही प्रति न० ४१/१ के समान, इसमें भी विषयानुसार ही पदो का संग्रह है। इसमें कोई सम्वत् नही दिया हुआ है।

प्रति न० १४/३—'परमानन्ददास जी के कीर्तन।' इसमे लगभग ८०० पद हैं। इसमे भी पीछे कहे विषयो के अनुसार पदो का विभाजन है। इसमें कोई तिथि नही दी गई, परन्तु देखने से संग्रह लगभग १५० वर्ष पुराना ज्ञात होता है।

प्रति न० १४/४—'परमानन्ददास जी के कीर्तन।' इसमे लगभग एक हजार (१०००) पद हैं जिनका विभाजन विषय के अनुसार ही है। प्रतिलिपि का कोई सम्वत् नही है। संग्रह यह भी पुराना है।

ऊपर दिये हुए परमानन्ददास जी के हस्तलिखित पद सग्रह के अध्ययन से निम्नलिखित बाते ज्ञात होती हैं :—

१—सब प्रतियो में एक से पद नही हैं। बहुत से पद जो एक संग्रह मे हैं, दूसरे मे नही है। इससे अनुमान होता है कि यदि सब पदो का मिलान कर उन्हे एकत्र किया जाय तो परमानन्द-सागर मे लगभग (२०००) दो हजार पद निकलेगे।

२—सब प्रतियो में पदो का क्रम विषय के अनुसार है, रागो के अनुसार नही है, जैसा कि कृष्णदास अथवा अन्य अष्टछाप कवियो के अनेक पद-सग्रहो मे मिलता है।

३—परमानन्ददास के पदो मे सूरसागर की तरह भागवत की सम्पूर्ण कथा का वर्णन नहीं है। उसके पदों मे दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध कृष्ण के मथुरा-गमन और भँवर-गीत तक का ही मुख्यतः वर्णन है। सूरदास जी ने तो स्वय कई स्थलो पर अपनी रचना में कहा है कि वे भागवत के अनुसार अपने विषय को लिख रहे है।[१] परमानन्ददास के पदो में इस प्रकार का उल्लेख देखने को नही मिलता। उन्होने कुछ स्फुट पद, अक्षय तृतीया, दीपमालिका, रामजन्म-नृसिह, वामन अवतारो की प्रशसा आदि विषयो पर भी लिखे हैं जो बहुधा वल्लभ-सम्प्रदायी वर्षोत्सव कीर्तन-सग्रहों में मिलते है।

४—परमानन्ददास जी ने सब से अधिक सङ्ख्या के पद कृष्ण जी की बाल-लीला, कृष्ण के प्रति गोपियो की आसक्त अवस्था, गोपीविरह तथा भ्रमर गीत पर लिखे है। मान, खण्डिता, युगल-लीला, रास आदि के पद थोड़ी सङ्ख्या में हैं।

१—सूरसागर पद, पृ० ४७, चतुर्थ स्कन्ध, वे० प्रे०, संवत् १९६४ संस्करण।

५—परमानन्ददास ने इन पदो में कृष्ण की भावात्मक रसवती लीलाओ का ही वर्णन किया है, कृष्णावतार की व्यूहात्मक लीला और कथाओ का वर्णन नहीं किया। सूर ने इन कथाओं का भी वर्णन किया है।

६—सूरसागर में जैसे श्रीकृष्ण की लीलाओ को सूरदास ने पद और छन्द दोनों शैलियो में लिखा है उस प्रकार के परमानन्दसागर में, भँवरगीत तथा एक दो अन्य प्रसङ्गों को छोड़कर और कोई प्रसङ्ग छन्द-शैली में लिखे नही मिलते। उक्त संग्रहों में केवल पदो की ही रचना है।

नाथद्वार तथा काँकरौली के पुस्तकालयो में सुरक्षित पद-संग्रहो को परमानन्ददास की प्रामाणिक रचनाएँ माना जा सकता है, क्योंकि जिस प्रकार परमानन्द-सागर तथा परमानन्द-कीर्तनो की प्राचीन प्रतियाँ काँकरौली में मिलती हैं, वैसी ही नाथद्वार में भी। वल्लभसम्प्रदायी निज पुस्तकालयो में सुरक्षित अष्टछाप-सम्बन्धी प्राचीन सामग्री अवश्य प्रामाणिक है। उक्त दोनो स्थानो के पद-संग्रहों में परमानन्ददास के नाम की निम्नलिखित छापे मिलती हैं:—

१—परमानन्द-प्रभु	२—परमानन्द स्वामी
३—परमानन्द दास	४—दास परमानन्द
५—परमानन्द	

लेखक ने काँकरौली तथा नाथद्वार के पद-संग्रहो से परमानन्ददास के लगभग ४०० पद छाँट कर एकत्र किये हैं। उन पदो को लेखक प्रामाणिक रूप से अष्टछापी परमानन्ददासकृत मानता है। पीछे कहे हुये विवरण का निष्कर्ष यह निकलता है कि परमानन्ददास की प्रामाणिक रचना केवल एक परमानन्द-सागर है। उसी के पद पृथक्-पृथक् रूप से कीर्तन-संग्रहो में मिलते हैं। दान-लीला तथा ध्रुव-चरित्र उसकी सन्दिग्ध रचनाएँ हैं।

कुम्भनदास जी की रचनाएँ

कुम्भनदास की जीवनी तथा रचना की, पीछे दी हुई आधार-भूत सामग्री से, उनके किसी भी ग्रन्थ की सूचना नहीं मिलती। हिन्दी-साहित्य के अब तक के लेखको ने बहुधा यही कथन किया है कि इनके फुटकल पदो के अतिरिक्त इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। हिन्दी संसार में अभी तक इनका कोई पद-संग्रह भी प्रकाश में नहीं आया। लेखक को कवि की रचनाओं की खोज करने पर हस्तलिखित पद उपलब्ध हुये हैं जिनके संग्रहों का विवरण इसी प्रसङ्ग में दिया जायगा। इन पदो के अतिरिक्त छपे रूप में भी कुछ पद अन्य अष्टछाप कवियो के पदो की तरह, वल्लभसम्प्रदायी 'कीर्तन-संग्रह', 'राग सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' तथा 'राग-रत्नाकर' में मिलते हैं।

'राग सागरोद्भव राग कल्पद्रुम' में कुम्भनदास के लगभग ४६ पद दिये हुये हैं और 'राग-रत्नाकर' मे केवल दो पद मिलते हैं। इनके अतिरिक्त वल्लभसम्प्रदायी, ऊपर कहे वर्षोत्सव-कीर्तन, वसन्त-धमार-कीर्तन तथा नित्य-कीर्नन-संग्रहो में निम्नलिखित सङ्ख्या मे विषयानुसार पद है :—

कुम्भनदास जी के छपे पद

कीर्तन संग्रह, भाग १

वर्षोत्सव के कीर्तन अश १

१—जन्माष्टी के वधाई के पद	१	३—श्री राधाजी की वधाई के पद	२
२—पालने के पद	२	४—दान के पद	१२
५—रास के पद	१२		२९

वर्षोत्सव कीर्तन-अश २

६—धनतेरस के पद	१	७—गाय खिलायवे के	१
८—दीप मालिका के	३	९—गोवर्द्धन पूजा के	२
१०—इन्द्रमान भग के	३	११—गोचारन के	१
१२—गुसाईं जी की वधाई के	१	१३—गुसाईं जी के पालना के	×
१४—सङ्क्रान्ति	१	१५—फूल मण्डली के	१
१६—आचार्य जी की वधाई के	१	१७—पालना के	१
१८—चन्दन के	१	१९—रथ यात्रा के	२
२०—मल्हार के	६	२१—कुसुम्बी घटा के	१
२२—मान के	३	२३—छाक के	४
२४—हिंडोरा के	३	२५—गुसाईं जी के हिंडोरा के	२
२६—पवित्रा के	३	२७—राखी	१
			४२

कीर्तन-सग्रह भाग २

२८—वसन्त के	७	२९—धमार के	५
३०—डोल के	१	३१—होरीके	१
			१४
			कुल ८५

कीर्तन-सग्रह भाग ३

१—खण्डिता के पद	७	२—वसन्त की वहार	२
३—हिलग के	३	४—दधिमथन	१
५—सगमिल भोज के पद	१	६—राजभोग सम्मुख के पद	१
७—भोग समय के पद	१	८—साँझ समय घंया के	२
९—वीरी के	१	१०—सैन के	७
११—मान के	४		३०
			कुल ११५

कुम्भनदास जी का जो हस्तलिखित पद-संग्रह लेखक को कॉकरौली विद्याविभाग तथा नाथद्वारा में मिला है, उसका विवरण नीचे की पङ्क्तियो में दिया जाता है।

पोथी न० ६/३ में अष्टछाप के कई कवियों के अलग-अलग पद दिये हुए है, जिनमें से कुछ का विवरण दिया जा चुका है। इसमें कुम्भनदास के दो पद-संग्रह है। दोनो सग्रहो में कही-कहीं पाठ-भेद भी है, परन्तु, पद संख्या, पद के क्रम तथा विषय में दोनो प्रतियो में समानता है। जैसा कि पीछे कहा गया है, यह सम्पूर्ण सग्रह संवत् १७५१ वि० या सवत् १७६१ वि० वैसाख कृष्ण तृतीया का किया हुआ है।[1] कुम्भनदास के पदो की सङ्ख्या इसमें १८७ दी हुई है जो विषयानुसार लिखे हुये हैं।

कॉकरौली विद्याविभग में कुम्भनदास जी का पद-संग्रह

इसमे निम्नलिखित विषय और सङ्ख्या में कवि के पद हैं—

विषय	पद-सख्या
१—मङ्गलाचरण	१
२—भक्तन ने आसक्त के वचन	२५
३—आसक्त को वर्णन	६
४—आसक्त की अवस्था	१
५—दान-प्रसङ्ग	४
६—साक्षात् श्री प्रभु जू को स्वरूप वर्णन	८
७—श्री स्वामिनी जू को स्वरूप वर्णन	११
८—सखि के वचन, श्री स्वामिनी जू प्रति सुरतान्त	१४
९—खण्डिता के वचन, साक्षात् भक्तन के श्री प्रभु जू सो	८
१०—मान	३१
११—विरह-समय	२५
१२—युगल-स्वरूप को सौन्दर्य वर्णन	२
१३—प्रभु के आसक्त वचन भक्तन सों	१
१४—गोदोहन	३
१५—साक्षात् भक्तन के वचन प्रभु सो	५
१६—समीप विरह	२
१७—परस्पर हास्य वाक्य, श्री स्वामिनी जू के प्रभु प्रति	३
१८—हिंडोला प्रभु को झूलिवो	४

१—इस प्रति का विवरण परमानन्ददास के ग्रन्थों के साथ दिया जा चुका है, इसी प्रति में संवत् वाले अङ्कों में ५ का अङ्क कुछ घिस जाने के कारण ५ और ६ दोनों पढ़ा जाता है।

१९—प्रभु की आरती	...	...	...	१
२०—वसन्त समय	...	...	...	६
२१—रास	...	...	...	९
२२—उराहने के वचन भक्तन के श्री यशोदा जू सो	...		...	१
२३—दीपमालिका तथा अन्नकूट समय		...	...	४
२४—प्रभु को वन ते आगमन	...	...	...	४
२५—साक्षात भक्त की प्रार्थना		...	...	१
२६—वर्षा-ऋतु वरनन	...	...	...	४
२७—श्रीस्वामिनी जू को प्रभु प्रति गमन		...	...	१
२८—प्रभुजी की मुरली, श्री स्वामिनी जू हरन समय			...	२
			कुल पद	१८६[1]

पोथी न० १९/७—इस पोथी में भी कुम्भनदास जी के १८६ पद है। ७२ पद नन्ददास के हैं और शेष अन्य अष्टछाप के पद मिले-जुले हैं। प्रति में कोई तिथि नही दी हुई है। उपर्युक्त विषयों के अन्तर्गत ही पद इस प्रति में हैं।

प्रति न० १५/२—इस पोथी मे दो रचनाएँ है। एक, कुम्भनदास जी की दान-लीला और दूसरी, सूरदास की दान-लीला। कुम्भनदास की दान-लीला, दोहा-रोला तथा एक टेक के मिश्रित छन्द में लिखी हुई है। इसी दान-लीला की एक प्रति लेखक ने नाथद्वार में भी देखी है जिसका विवरण आगे दिया जायगा।

नाथद्वार मे कुम्भनदास के पदो का केवल एक सग्रह ही लेखक के देखने में आया है। प्रति न० २०/६ में कृष्णदास के बाद कुम्भनदास, नन्ददास तथा हरिराय जी के पद हैं। यह कुम्भनदास के ३६७ पदो का एक बृहत् संग्रह है। इसमे कॉंकरौली की प्रति नं० ६/३ के अनुसार ही पीछे दिये हुये विषयो के अनुसार पदों का विभाजन है। कुछ पद विनय भाव के भी हैं जो कॉंकरौली वाली प्रति में नही है। वहॉं १८६ पदो में से लगभग सभी पद इस सग्रह मे आ गये हैं।

नाथद्वार निज पुस्तकालय में कुम्भनदास का पद-संग्रह।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, नाथद्वार निज पुस्तकालय मे पदों के अतिरिक्त एक पोथी मे कुम्भनदास की दानलीला भी मिलती है। अष्टछाप के अन्य कवियो के लम्बे पदो की तरह यह दान-लीला भी कुम्भनदास का एक लम्बा पद है। यह दान-लीला अलग से

१—प्रति मे पद-सङ्ख्या १८७ दी हुई है और गणना में १८६ आते हैं।

छपी हुई भी मिलती है।[1] इसमें ३१ छन्द हैं। कीर्तन-सग्रह, भाग १, वर्षोत्सव कीर्तन में दान के पदो में यह पद भी राग बिलावल के अन्तर्गत दिया हुआ है।[2]

उपर्युक्त विवरण के आधार से कहा जा सकता है कि कुम्भनदास के काव्य और उनके विचारों का परिचय प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रामाणिक पद-सग्रह उपलब्ध हैं—

१—काँकरौली विद्याविभाग में १८६ पदो का सग्रह।

२—नाथद्वार निज पुस्तकालयो में ३६७ पदो का संग्रह।

३—वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रह भाग १, २ तथा ३ मे छपे पद।

ये पद वल्लभसम्प्रदायी विद्या केन्द्रों में प्राचीन रूप में सुरक्षित है। इसलिए लेखक की दृष्टि में प्रामाणिक है। उक्त सग्रहो से ही लेखक ने पद-सग्रह कर कुम्भनदास के काव्य तथा विचारों का अध्ययन किया है।

कृष्णदास अधिकारी की रचना

कृष्णदास अधिकारी के अध्ययन की आधारभूत सामग्री के आधार से उनके नाम से कही जानेवाली निम्नलिखित रचनाएँ ज्ञात होती हैं, जो वस्तुत सभी प्रामाणिक नही हैं :—

१—जुगल मान-चरित्र।
२—भक्तमाल पर टीका।
३—भ्रमरगीत।
४—प्रेम-सत्व-निरूप।
५—भागवत-भाषानुवाद।
६—वैष्णव-वन्दन।
७—कृष्णदासू की वानी।
८—प्रेम-रस।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्ति कृष्णदास अधिकारी के पद छपे हुये कीर्तन-संग्रहो में भी मिलते हैं तथा इनके कुछ हस्तलिखित पदो के संग्रह भी लेखक को उपलब्ध हुये हैं जिनका विवरण आगे दिया जायगा। कवि द्वारा रचित कहे जाने वाले उक्त ग्रन्थो की प्रामाणिकता पर नीचे की पंक्तियो में विचार किया जाता है।

जुगलमान-चरित्र ग्रन्थ, कृष्णदास अधिकारी की रचना-रूप में लेखक के देखने में नहीं आया। परन्तु उसका विचार है, कि जैसे हिन्दी के कुछ इतिहासकारो ने कृष्णदास

१—कुम्भनदास की यह दान-लीला मथुरा के ला० मोतीलाल मनोहरलाल गोयल द्वारा अग्रवाल इलेक्ट्रिक प्रेस से प्रकाशित रूप में मिलती है। लेखक के पास इसकी प्रति है।

२—कीर्तन-संग्रह, भाग, वर्षोत्सव कीर्तन, देसाई, पृ० २१७।

जुगल मान-चरित्र

पयहारी को भूल से कृष्णदास अधिकारी मान लिया है, उसी प्रकार कृष्णदास पयहारी के नाम पर खोज-रिपोर्ट में दिये हुये जुगल मान-चित्र'[1] ग्रन्थ को भी कृष्णदास अधिकारी की रचना मान लिया गया है। खोज-रिपोर्ट मे युगल बिहारी के उपासक एक और कृष्णदास का भी उल्लेख है[2] जिसका ग्रन्थ 'भागवत भाषा' उक्त रिपोर्ट ने दिया है और स्वय कवि के उल्लेख के आधार से जिसकी स्थिति का सम्वत् रिपोर्ट ने १८५२ वि० दिया है। यदि कृष्णदास पयहारी के 'जुगल मान-चरित्र' ग्रन्थ से भी भिन्न यह कोई अन्य रचना है जिसको मिश्रबन्धु[3] तथा पण्डित रामचन्द्र शुक्ल[4] जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारो ने कृष्णदास अधिकारी का रचा हुआ वताया है, तव भी लेखक की यही धारणा है कि यह ग्रन्थ अष्टछापी कृष्णदास का नही हो सकता, युगल-विहारी के उपासक कृष्णदास की यह रचना मानी जा सकती है। लेखक की इस धारणा का कारण एक तो यह है कि अष्टछाप-साहित्य के मुख्य केन्द्रो मे जहाँ उनके साहित्य का एक वृहत् सग्रह सुरक्षित है, कृष्णदास अधिकारी-कृत इस नाम का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही होता। दूसरे, इस रचना के कृष्णदास अधिकारी-कृत होने का उल्लेख खोज-रिपोर्टों मे भी नही है। वास्तव मे हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारो ने कृष्णदास पयहारी को कृष्णदास अधिकारी तथा पयहारी के 'जुगल मान चरित' ग्रन्थ को कृष्णदास अधिकारी-कृत मान कर भूल की है।

लेखक के विचार से 'भक्तमाल पर टीका' नामक ग्रन्थ भी कृष्णदास अधिकारी का रचा हुआ नही है। नाभादास जी, कृष्णदास अधिकारी के समकालीन भक्त थे, आयु मे उनसे छोटे थे। नाभादास जी ने स्वयं भक्तमाल में कृष्णदास अधिकारी का वृत्तान्त दिया है। भक्तमाल की टीकाओ का रूप प्रथम 'प्रियादास' की टीका से ही चलता है जिनका रचना-काल नाभादास जी से वहुत वाद का है। फिर भक्तमाल ग्रन्थ, कृष्णदास अधिकारी के समय मे प्रकाश मे नही आया था।[5] इसलिए भक्तमाल पर टीका नामक ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी-कृत नही माना जा सकता।

भक्तमाल पर टीका

मिश्रवन्धु-विनोद मे बूंदी के एक कृष्ण कवि[6] का विवरण दिया हुआ है, तथा उसमे कृष्ण कवि के रचनाकाल संवत् १८७४ वि० तथा उनके एक ग्रन्थ 'भक्तमाल की

१—ना० प्र० स०, खो रि० सन् १९०९—११।

२—... ... ...रि० न० १५८ (ए)

३—मिश्रवन्धु-विनोद, भाग, १, पृ० २३३ संवत् १९९४ संस्करण।

४—हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६७५।

५—भक्तमाल का रचनाकाल संवत् १६८० वि० है तथा कृष्णदास अधिकारी का निधन-काल लेखक ने संवत् १६३५–१६३८ वि० के बीच के समय में निर्धारित किया है।

६—मिश्रवन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ८९१।

टीका' का भी उल्लेख है। सम्भव है, कृष्ण कवि की यही 'भक्तमाल-टीका' कृष्णदास अधिकारी के नाम पर भूल से इतिहासकारो ने दे दी हो।

'८४ तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता', तथा अष्टसखान की वार्ता' मे अष्ट कवियो के ग्रन्थो के नाम नही दिये गये; परन्तु इन वार्ताओं में इन कवियों की रचनाओ के भाव और विषयो का बहुधा उल्लेख कर दिया गया है, जैसे कुम्भनदास जी के बारे में '८४ वैष्णवन की वार्ता में लिखा है कि उन्होने वाललीला के पद नही बनाये। इसी तरह सूरदास के विषय मे लिखा है--"सूरदास ने सहस्रावधि के पद किये, तामे ज्ञान वैराग्य के न्यारे-न्यारे भक्ति-भेद अनेक भगवद् अवतार सो तिन सबन की लीला वर्णन करी है।[1] और "परमानन्द स्वामी विरह के पद गावते।" इसी तरह कृष्णदास अधिकारी के विषय में भी वार्ताकार ने लिखा है--"सो या प्रकार रास के बहोत कीर्तन कृष्णदास ने गाये[2] "तथा" कृष्णदास रासादिक कीर्तन ऐसे अद्भुत किये सो कोई दूसरे सो न होय।[3] इसी प्रकार वार्ताकार ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि जैसे कृष्ण के श्री अङ्ग के वर्णन मे हजारों पद सूरदास के है वैसे ही कृष्णदास के भी हैं।[4] इस प्रकार के उल्लेख करते हुये वार्ता ने कृष्णदास के विरह के अथवा भ्रमरगीत लीला के पदो का कोई उल्लेख नही किया। कवि के विभिन्न स्थानों से उपलब्ध पदो से ज्ञात होता है कि उसने विरह तथा भ्रमरगीत विषयो पर चार छै साधारण पदो को छोड़कर पद नही लिखे। इसलिए लेखक का अनुमान है कि भँवरगीत ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी द्वारा रचित नही है। इस ग्रन्थ को कृष्णदास अधिकारी का परिचय देने वाले किसी लेखक ने नही देखा है और न लेखक को यह रचना कही उपलब्ध हो सकी है। इसको कृष्णदास अधिकारी की सन्दिग्ध रचना भले ही कहा जा सकता है।

भ्रमरगीत

हरिराय जी के भावप्रकाशवाली '८४ वैष्णवन की वार्ता' में लिखा है कि कृष्णदास अधिकारी, पुष्टिमार्ग की रीति को समझने मे निपुण थे[5], वैष्णव लोग अपनी शङ्का-निवारण के लिए उनके पास जाया करते थे, तथा वे अपने कीर्तनो मे उनको मार्ग का सिद्धान्त समझाया करते थे। वार्ता के कथनानुसार कृष्णदास वल्लभसम्प्रदायी प्रेमतत्व के मर्मज्ञ थे। तब यह अनुमान हो सकता है कि उन्होने "प्रेम-सत्व-निरूप" नामक कोई ग्रन्थ भी लिखा होगा। खोज करने पर भी यह ग्रन्थ लेखक को उपलब्ध न हो सका। वल्लभसम्प्रदाय के दो बड़े केन्द्रो

प्रेम-सत्व-निरूप

१—'अष्टछाप', कांकरौली पृ० २३।
२—'अष्टछाप', कांकरौली पृ० २०५।
३—अष्टछाप, कांकरौली पृ० २४६।
४—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २०७।
५—अष्टछाप, कांकरौली, पृ० २१५।

(नाथद्वार तथा कांकरोली) में भी यह ग्रन्थ नही हैं। इसलिए इस गन्थ के विषय में कोई कथन निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता । इसको कृष्णदास अधिकारी की प्रामाणिक रचना तो कह नही सकते, यह कवि की सन्दिग्ध रचना कही जा सकती है।

वार्ता तथा कृष्णदास अधिकारी के उपलब्ध पदो से ज्ञात होता है कि कवि ने कृष्ण की किशोर और युगल-लीला ही के पद गाये थे। वल्लभसम्प्रदाय मे यह भी कथन चलता है कि सूरदास तथा नन्ददास छोड़कर किसी भी अष्टछाप कवि ने सम्पूर्ण भागवत का भाषा मे कथन नही किया। नन्ददास का 'दशमस्कन्ध भाषा भागवत' भी केवल रासलीला प्रसङ्ग तक का ही उपलब्ध होता है। इस विचारानुसार 'भागवत का अनुवाद' नामक ग्रन्थ कृष्णदास अधिकारी का नही होना चाहिए।

भागवत भाषा-अनुवाद

मिश्रवन्धु-विनोद मे एक गिरिजापुर निवासी कृष्णदास कवि का वृतान्त दिया हुआ है।[1] मिश्रबन्धुओ ने नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट सन् १६०५ ई० के आधार से इस कवि द्वारा रचित दो गन्थो के नाम दिये है, एक भागवत-भाषा पद्य (रचनाकाल संवत् १८५२ वि०) तथा दूसरा भागवत माहात्म्य (रचनाकाल सवत् १८५५ वि०)। सम्भव है, इन्ही गिरिजापुर निवासी कृष्णदास का 'भागवत-भाषा' नामक ग्रन्थ भूल से कृष्णदास अधिकारी द्वारा रचित, इतिहासकारो ने कह दिया हो। पीछे कहा गया है कि खोज रिपोर्ट सन् १६०६-११ न० १५८ (ए) में युगल बिहारी कृष्ण के उपासक एक और कृष्णदास का उल्लेख है। रिपोर्ट मे इस कवि का रचा हुआ एक ग्रन्थ भागवत-भाषा द्वादश स्कन्ध' दिया हुआ है। यह भी सम्भव हो सकता है कि पीछे कहे अन्य कई ग्रन्थो की तरह नाम-साम्य के आधार से, कृष्णदास अधिकारी के भ्रम में, यह गन्थ उनके द्वारा रचित कह दिया गया हो। नागरी-प्रचारिणी-सभा खोज-रिपोर्ट में एक हित हरिवंशजी के शिष्य कृष्णदास कवि के 'भागवत भाषा' का और भी उल्लेख है।[2] इस प्रकार इस नाम के कई कवियो के द्वारा रचित एक ही नाम का ग्रन्थ है। ऐसी दशा मे, विना गन्थ देखे, विना उसके पाठो को मिलाये, और भाषा-शैली की परीक्षा किये, यह कहना कि जिस 'भागवत-भाषा' का उल्लेख हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारो ने विना गन्थ के देखे, कृष्णदास अधिकारी-कृत लिखा है, वह अमुक कृष्णदास का है, कठिन है। परन्तु कृष्णदास अधिकारी की उपलब्ध रचनाओ के विषय को देखते हुये यह अवश्य कहा जा सकता है कि अष्टछापी कृष्णदास का 'भागवत भाषा अनुवाद नाम का कोई गन्थ नही है।

भगवान् और भक्तो को एक रूप मानकर अनेक भक्तो ने भक्तो की स्तुति की है। कृष्णदास भक्त थे। इसलिए सम्भव हो सकता है कि उन्होने कोई वैष्णववदन जैसा ग्रन्थ लिखा

१—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ८०६।

२—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १६२०–२१, नं० ८७

वैष्णव-वन्दन

हो। परन्तु कृष्णदास की जीवनी पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि कवि का वह दैन्य भाव न था जो सूरदास, कुम्भनदास अथवा परमानन्ददास का था। कृष्णदास अधिकारी के विनय के पद अल्प सङ्ख्या में मिलते हैं, और सन्त-महिमा अथवा भक्तों के प्रति विनय और स्तुति-भावों के प्रकट करनेवाले पद अभी तक, कम से कम नाथद्वार, काँकरौली, गोकुल, मथुरा आदि स्थानों में उपलब्ध नहीं हुये। अहंभाव के साथ अधिकार करनेवाले, युक्ति से बङ्गालियों को और अधिकार से गोस्वामी विट्ठलनाथजी को, श्रीनाथजी की सेवा से वञ्चित करनेवाले तथा युगल-लीला के मधुरभाव के उपासक कृष्णदास ने दासभाव से वैष्णव-भक्तों की वन्दना तथा उनकी विनयपूर्ण स्तुति, कोई ग्रन्थ लिखकर, की होगी, इसमें सन्देह है। ग्रन्थ को बिना देखे और उसका बिना परीक्षण किये, इसकी प्रामाणिकता के विषय में निर्णय देना कठिन है।

कृष्णदास की बानी

वल्लभसम्प्रदाय में बहुधा भक्तों की रचनाओं को 'बानी' शब्द से नहीं कहा जाता। सन्त कवियों की रचनाएँ 'बानी' अवश्य कही जाती हैं। सम्भव है कि कृष्णदास अधिकारी के पद संग्रह का ही नाम किसी ने 'कृष्णदास की बानी' कह दिया हो। नाथद्वार, काँकरौली, सूरत, गोकुल आदि वल्लभसम्प्रदायी विद्या-केन्द्रों में इस नाम का कोई ग्रन्थ लेखक को नहीं मिला। इसलिए प्रमाण-रूप से इस ग्रन्थ को कवि का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता।

प्रेम-रस-रास

पीछे कहा गया है कि प्रियादासजी ने कृष्णदास अधिकारी का विवरण देते समय इस ग्रन्थ का सङ्केत किया है। प्रियादासजी के कथन का अर्थ यह भी हो सकता है— "कृष्णदास ने प्रेमरस से भरे रास का प्रकाशन अपने पदों में किया।"[1] शिवसिंह सेंगर ने इस नाम का कवि-कृत एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लिया है।[2] लेखक का विचार है कि प्रियादास ने कृष्णदास अधिकारी के रास-सम्बन्धी पदों के समूह को और उनकी छन्द में लिखी रास पञ्चाध्यायी[3] को ही जो वस्तुतः कवि का एक लम्बा पद है, 'प्रेम-रस-रास' नाम दिया है और उसी का आधार लेकर अन्य लेखकों ने यह स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लिया है। वल्लभसम्प्रदायी विद्या-केन्द्रों में इस नाम का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। लेखक के विचार से यह कवि का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है।

१—भक्तमाल, भक्ति-सुधास्वाद-तिलक, रूपकला, पृ० ५८२।

२—शिवसिंहसरोज।

३—कीर्तन-संग्रह, भाग १। वर्षोत्सव कीर्तन, देसाई, पृ० ३१० पर 'मोहन-वृन्दावन क्रीड़त कुञ्ज वन्यों पद ही कृष्णदास की 'रास-पञ्चाध्यायी' कहा जाता है।

छपे कीर्तन संग्रहों में कृष्णदास अधिकारी के पद

छपे हुये कीर्तन-संग्रहों मे से 'राग-सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' में कृष्णदास अधिकारी के लगभग ७६ पद मिलते हैं और 'रागरत्नागर' में २८ पद हैं। वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-सग्रह के तीनो भागो में पाये जानेवाले पदो की विषयानुसार पद-सङ्ख्या इस प्रकार है:--

कृष्णदास जी के पद

कीर्तन-संग्रह भाग १

वर्षोत्सव, अश १

१--जन्माष्टमी की वधाई के	५	२—पालना के	४
३--ढाढी के	२	४—कान-छेदन के	२
५--वाललीला के	२	६—चन्द्रावली जी की वधाई के	१
७--श्रीराधा जी की वधाई के	५	८—श्रीराधा जी की ढाढ़ी के	३
६—दान के	४	१०—नवरात्रि के	×
११—मुरली के	१	१२—करखा के	१
१३--राम के पद	४२		
			७२

वर्षोत्सव, अश २

१४—रूपचतुर्दशी के	१	१५—इन्द्रमान भङ्ग के	८
१६--देव-प्रवोधनी के	१	१७—व्याह के	३
१८—गुसाईं जी की वधाई के	५	१६—गोकुलनाथ जी की वधाई के	१
२०—सङ्क्रान्ति	२	२१- राजभोग	१
२२—फूल-मण्डली	५	२३—सवत्सरोत्सव	१
२४—गनगौर के	२	२५—आचार्य जी की वधाई के	८
२६--आचार्य जी के पालना के	१	२७—कलेऊ के	१
२८ - वीरी के	१	२६— चन्दन के	५
३०--रथयात्रा के	२	३१—मल्हार के	६
३२—कुसुम्बी घटा के	१	३३—श्याम घटा के	१
३४—मान के पद	२	३५—हिंडोरा के	१०
३६--गुसाईं जी के हिंडोरा के	१	३७– रक्षावन्धन के हिंडोरा के	५
३८--झूला उतारवे के	१	३६—राखी के	१
			७६
			कुल १५१

कीर्तन-संग्रह, भाग २

४०—वसन्त के	३१	४१—धमार के	११
४२—डोल के	३		
			४५
			कुल १९६

कीर्तन-संग्रह, भाग ३

४३—यमुना जी के	१	४४—मङ्गला समय के	१
४५—खण्डिता के	६	४६—शृङ्गार के	४
४७—कूल्हे को	१	४८—छाक को	१
४९—राजभोग सम्मुख के	१	५०—खस खाने के	१
५१—आरती के	१	५२—आवनी	२
५३—व्यारू के	१	५४—शयन के	१
५५—मान के	६	५६—पौढ़वे के	२
५७—वैष्णव नित्य नियम के	२	५८—विनती के	३
५९—आसरे के	३		
			५२
			कुल पद २४८

छपे हुये पद-संग्रहों के अतिरिक्त काँकरौली विद्याविभाग तथा नाथद्वार में कवि के जिन पद संग्रहों का लेखक ने अध्ययन किया है उनका विवरण नीचे दिया जाता है—

प्रति० नं० ५१/४. "कृष्णदास के कीर्तन।" इस प्रति में कृष्णदास अधिकारी के पद विषयानुसार विभाजित नहीं हैं। ये पद रागों के अनुसार दिये हुये हैं। कुछ पदों के रागों के साथ ताल भी दी गई है। पदों की सङ्ख्या २९३ है। पोथी के अन्त में कुछ पद गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास, हित-हरिवंश तथा स्वामी हरिदास के भी दिये हुये हैं। लगभग सभी पद राधाकृष्ण-अनुराग के हैं। पोथी के आदि में पदों की अनुक्रमणिका भी है। निम्नलिखित रागों में तथा सङ्ख्या में कवि के पद इस पोथ में हैं:—

काँकरौली विद्या-विभाग की प्रतियाँ

राग	पद-सङ्ख्या	राग	पद-सङ्ख्या
विभास	६	धनासिरी	३१
ललित	१६	आसावरी	१६
भैरव	६	सारङ्ग	१७
विलावल	१६	गौड़ी	४१
टोड़ी	३६	श्री	८
गूजरी	१२	कल्याण	१५
रामकली	२	कानरा	१५
देवगन्धार	१	केदारा	४०
		कुल पद—	२६३

प्रति नं० २२/६—'कृष्णदास के पद' इस संग्रह मे कृष्णदास अधिकारी के ६७६ पद हैं, जो रागानुसार विभाजित हैं। इस प्रति में भी लगभग वे ही राग हैं जो पीछे कही प्रति नं० ५१/४ में दिये हुये हैं। पदो का विषय राधाकृष्ण की किशोर-लीला, रास, राधा का मान, मान-मनावन, कुञ्ज-केलि आदि हैं। देखने में प्रति दो सौ वर्ष पुरानी ज्ञात होती है इसमें निम्नलिखित सख्या तथा रागो में कवि के पद हैं :—

राग	पद-संख्या	राग	पद-संख्या
विभास	४३	सारङ्ग	६७
भैरव	७	मालव गौड़ी	२४
विलावल	२८	श्री	१५
टोडी	४३	गौरी	२८
धन्यासिरी	३४	कल्यान	६४
गूजरी	१७	कानरो	१५७
र'मश्री	१	केदारो	६५
आसावरी	२३	बसन्त	३०
		कुल पद—	६७६

प्रति नं० १५/२—'कृष्णदास जी के पद'। श्रीनाथ द्वार की इस प्रति में भी कृष्णदास के पद, कांकरौली की प्रतियो की तरह, रागो मे ही विभाजित हैं। इस प्रति के पदो की

श्रीनाथद्वार के निज पुस्तकालय में कृष्णदास अधिकारी के पद-संग्रहों की प्रतियाँ

संख्या ६७६ है। पदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पदों का विषय, कृष्ण की किशोर-लीला के अन्तर्गत राधाकृष्ण-अनुराग, राधा का मान, खण्डिता के वचन, तथा दम्पति का कुञ्जविहार आदि है। प्रतिलिपि अनुमान से २०० वर्ष पुरानी ज्ञात होती है। पोथी मे कही तिथि नही दी हुई है। इसमें निम्न-लिखित संख्या तथा रागों में पद हैं—

राग	पद-संख्या	राग	पद-संख्या
विभास तथा ललित	४३	सारङ्ग	६५
		मालव गौड़ी	१५
भैरव	७	श्री	१६
विलावत	२८	गौरी	२८
टोडी	४१	कल्याण	६४
धनासिरी	३	कानरो	१५७
गूजरी	१७	केदारो	६६
रामश्री	१	मल्हार	१४
आसावरी	२१	बसन्त	३०
			कुलपद——६७६

प्रति नं० १५/१——'कृष्णदास के पद'। कागज और लिपि के देखने से यह प्रति भी लगभग १५० वर्ष पुरानी ज्ञात होती है। इसमें भी कृष्णदास अधिकारी के पद रागो मे विभाजित हैं। इसके लगभग सम्पूर्ण पद उपर्युक्त प्रति न० १५/२ में आ गये है। इसकी पद-संख्या की गणना लेखक ने नही की।

प्रति न० २०/६—"कृष्णदास जी के कीर्तन"। इस प्रति में कृष्णदास अधिकारी के ७७८ पद हैं जो रागानुसार विभाजित है। इसमे आये हुये राग वही हैं जो नाथद्वार की प्रति नं० १५/२ में आये है। पदो का विषय भी वही, राधाकृष्ण का अनुराग, मान, कुञ्ज-विहार तथा खण्डिता है। पोथी मे कोई संवत् नही है, परन्तु देखने से लगभग १५० वर्ष पुरानी ज्ञात होती है। इसके पाठ भी सुपठ्य हैं तथा अन्य प्रतियो की तुलना में इसमें सबसे अधिक सख्या में पद हैं। इसलिए यह प्रति महत्व की है।

प्रति नं० १३/२——इस प्रति के पृष्ठ ३६ पर कृष्णदास अधिकारी के नाम से एक 'पञ्चाध्यायी' नामक रचना दी हुई है। इस रचना का नाम है 'कृष्णदास-कृत पञ्चाध्यायी। इसमें ३१ छन्द है। प्रथम दोहा फिर चाल, फिर दोहा और चाल, इस क्रम से इसमे कृष्ण की रासलीला का वर्णन है। अन्तिम छन्द में कृष्णदास नाम की छाप भी है। जैसा कि

पीछे कहा गया है, सम्भव है इसी पञ्चाध्यायी को प्रियादास तथा अन्य-लेखकों ने कृष्णदास कृत 'प्रेम-रस-रास' नाम दे दिया हो। परन्तु यह रचना बहुत छोटी है जो वस्तुतः कवि का एक लम्बा पद ही है। पीछे कहा जा चुका है कि यह रचना ज्यो की त्यों कीर्तन संग्रह, भाग १, वर्षोत्सव कीर्तन में भी मिलती है।[1]

उक्त दोनो स्थानों के हस्तलिखित पद तथा छपे कीर्तन संग्रहों के पद वल्लभ-सम्प्रदायी मन्दिरो में परम्परागत गाये जाने के कारण तथा वहाँ एक अमूल्य-निधि रूप में सुरक्षित होने के कारण कवि की प्रामाणिक रचनाएँ कही जा सकती हैं। इतना अवश्य है कि छपे तथा हस्तलिखित, दोनो कीर्तनों के पदो मे भाषा की त्रुटियाँ तथा पाठ-भेद बहुत हैं।

उपर्युक्त विवेचन तथा विवरण के निष्कर्ष रूप से कृष्णदास अधिकारी के नाम पर दी जानेवाली रचनाएँ निम्नलिखित विभागो मे, लेखक के विचार से, हैं—

कवि की प्रामाणिक रचना—वल्लभसम्प्रदायी केन्द्रो में हस्तलिखित तथा छपे कीर्तन-रूप में पाये जानेवाले पद-संग्रह।

सन्दिग्ध रचनाएँ—१—भ्रमर-गीत।
२—प्रेम-सत्व-निरूप।
३—वैष्णव-वन्दन।

लम्बे पद अथवा पद-संग्रह के ही नामान्तर वाली रचना जो स्वतन्त्र ग्रन्थ नही कही जा सकती।
१—प्रेम रसरास।
२—कृष्णदास की वानी।

अप्रामाणिक रचनाएँ—१—जुगलमान चरित्र।
२—भक्तमाल टीका।
३—भागवत भाषानुवाद।

लेखक ने वल्लभसम्प्रदायी हस्तलिखित ऊपर कहे कीर्तन संग्रहो से तथा छपे कीर्तनो में से कृष्णदास अधिकारी के लगभग २०० पद छाँटकर एकत्र किये हैं। इस अध्ययन में इसी निजी २०० पद संग्रह का आधार लिया गया है।

नन्ददास की रचनाएँ

अष्टछाप के अध्ययन की, पीछे दी हुई आधारभूत सामग्री के विवरण से नन्ददास द्वारा रचित कहे जानेवाले ग्रन्थो की एक तालिका यहाँ दी जाती है। इस तालिका में आये हुये कुछ ग्रन्थो के नाम ऐसे भी हैं जो केवल दूसरे ग्रन्थो के परिवर्तित नाम हैं और जो

१—राग सोरठ, दोहा, 'मोहन वृन्दावन क्रीड़त कुञ्ज वन्यो' आदि।
वर्षोत्सव कीर्तन संग्रह, देसाई, भाग १, पृ० ३१०।

	ग्रन्थ का नाम	फ्रांसीसी विद्वान् तासी ने केवल ग्रन्थो के नाम दिये हैं; उनके निरीक्षण तथा प्रामाणिकता के विषय में लेख नही दिया।	गिर्वासिह सेंगर (सरोजकार) ने भी केवल नाम दिये है; प्रामाणिकता का उल्लेख नही है।	नागरी प्रचा[illegible] की खोज-रि[illegible] नन्ददास के प्रामाणिकत[illegible] विचार नही गया।
१	रसममंजरी	उ		उ
२	अनेकार्थमंजरी	उ	अनेकार्थमजरी तथा अनेकार्थमाला, दो पृथक् ग्रन्थ	उ
३	नाममंजरी अथवा नाममाला अथवा नाम चिन्तामणि-माला	उ नाम-मंजरी अथवा नाम-माला	उ नाममाला	नाममञ्ज[illegible] चिन्ता-मणि[illegible] दो पृथक् मानमजरी माला, ना[illegible]
४	दशम स्कन्ध	उ	उ	उ
५	श्याम सगाई	x	x	उ
६	सुदामा-चरित	उ	x	x
७	गोवर्धन-लीला	उ	x	x
८	विरहमंजरी	उ	x	उ
९	रूपमञ्जरी	उ	x	x
१०	रासपंचाध्यायी	उ	उ	उ
११	सिद्धांतपचाध्यायी	x	x	x
१२	रुक्मिणी-मगल	उ	उ	उ
१३	भँवरगीत	उ	x	उ
१४	दानलीला	x	उ	x
१५	जोगलीला	x	x	उ
१६	मानलीला	x	उ	x
१७	प्रबोधचंद्रोदयनाटक	x	उ	x
१८	फूलमंजरी	उ	x	x
१९	रानी मॉगौ	x	x	उ
२०	राजनीति-हितो०	x	x	उ
२१	नासिकेत पु.भा.	x	x	उ
२२	ज्ञान-मंजरी	x	x	उ
२३	विज्ञानार्थ प्रकाशिका	x	x	x
२४	धनिहारिन-लीला	x	x	x
२५	रासलीला	x	x	x
२६	बाँसुरी लीला	x	x	x
२७	अर्थचन्द्रोदय	x	x	x
२८	पदावली	x	x	x

नोट. उपर्युक्त ग्रन्थ अथवा सज्जनो ने नन्ददास के जिन ग्रन्थो का उल्लेख

वास्तव में पृथक् ग्रन्थ नहीं है। छन्द में लिखे ग्रन्थों के अतिरिक्त नन्ददास ने पदों की भी रचना की जो वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहो में मिलते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने नन्ददास के पदो का उल्लेख तो किया है, परन्तु प्राप्त पदो की सङ्ख्या, तथा उनके किसी संग्रह का निर्देश उन्होने नहीं किया। श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने नन्ददास नामक पुस्तक के परिशिष्ट भाग में कवि के (नन्ददास) कुछ पद दिये हैं।

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि नन्ददास द्वारा रचित कहे जानेवाले २८ ग्रन्थ हैं। नीचे की पंक्तियों में इस ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर विचार किया जाता है।

महाकवि नन्ददास की रचनाओं में से रासपञ्चाध्यायी एक प्रौढ़ रचना है। इस ग्रन्थ को गार्सां द तासे, शिवसिंहसेंगर, मिश्रबन्धु, सर जार्ज गियर्सन, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल आदि सभी विद्वानों ने नन्ददास की कृति माना है।

रासपञ्चाध्यायी

नोट—पहले पहल रासपञ्चाध्यायी ग्रन्थ सम्वत् १८७२ में मथुरा में छपा। इसके बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसे अपनी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' में सन् १८७८-७९ ई० में प्रकाशित किया, जिसमें उन्होने मूल पाठ के अतिरिक्त कोई भूमिका नहीं दी थी। उसके बाद अब तक इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण निकल चुके हैं, जिनका ब्योरा लेखक ने अन्यत्र दिया है[१]। शिवसिंह सेंगर, नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस ग्रन्थ का नाम 'पञ्चाध्यायी' दिया है, और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में यह ग्रन्थ इसी नाम से छपा है। अन्य प्रकाशित प्रतियां रासपञ्चाध्यायी' के नाम से ही छपी हैं। विविध स्थानों से प्रकाशित तथा 'रासपञ्चाध्यायी' की उन हस्तलिखित प्रतियों में जो लेखक के देखने में आई हैं अनेक पाठान्तर हैं, और छन्द संख्या मे भी असमानता है। इससे विदित होता है कि 'रासपञ्चाध्यायी' के छन्दों में पीछे से लोगो ने मेल कर दिया।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्टों मे नन्ददास[२] के अतिरिक्त छः अन्य कवियों की रास पञ्चाध्यायियों का उल्लेख है। ये कवि कृष्णदेव[३] दामोदर[४] गोपालराय[५], व्यास[६] ओरछा निवासी, राजकृष्ण चौबे[७] तथा सुन्दरसिंह[८] हैं।

१—'नन्ददास सम्बन्धी आधुनिक लेखको का निर्रूपण' यह लेख 'हिन्दुस्तानी' जुलाई सितम्बर १९४१ में प्रकाशित हुआ था। परिशिष्ट भाग।

२—खोज-रिपोर्ट, १९०१, न० ६९, १९०६-८ नं० २०० (ए)

३—वही, १९०९-११, नं० १५९। इस पञ्चाध्यायी का लिपि काल सं० १८८७ है।

४—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, १९१२-१४ नं० ४६ (जी)। रचना काल सं० १६९९। यह ग्रन्थ सवैया छन्दों में हैं। कवि हितहरि सम्प्रदाय का था।

५—वही, १९१२-१४, पृ० ८६। ग्रन्थ कवित छन्दो में है।

६—वही, १९१२-१४। यह रचना त्रिपदी और चौपाई छन्दों में है।

७—वही, १९०६-८ नं० १०० (एफ्)

८—वही, १९०४ नं० ७३, निर्माणकाल १८९९। रचना दोहा-चौपाई-छन्दों में है।

अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्ण की रासलीला के पद गाये हैं। अष्टछाप के भक्तकवि कृष्णदास ने पदो के अतिरिक्त छन्दो में भी एक छोटी सी 'रासलीला' लिखी है, जो वल्लभसम्प्रदाय के 'वर्षोत्सव-कीर्तन,'[१] मे छपी है। नन्ददास के नाम से कही जानेवाली 'रासपञ्चाध्यायी' की अनेक हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ लेखक के देखने मे आई हैं। स्वार्गीय पण्डित मयाशङ्कर याज्ञिक, अलीगढ़ निवासी, के संग्रहालय मे उसने नन्ददास-कृत रासपञ्चाध्यायी' की ९ प्रतियाँ देखी है, जिनमे सबसे प्राचीन प्रति सम्वत् १७८० की है। काँकरौली तथा नाथद्वार के पुस्तकालयो मे भी इस ग्रन्थ की प्रतियाँ हैं। इन सब में पाठ और छन्द-संख्या-भेद से एक से छन्द हैं। और सब में नन्ददास की ही छाप है। वैष्णव मन्दिरों में भी यह रचना नन्ददास-कृत ही प्रसिद्ध है। इसलिए प्रामाणिक रूप से यह कृति अष्टछाप के नन्ददास की है।

किसी-किसी प्रति में लिपिकार ने नन्ददास को 'स्वामी नन्ददास' कहकर लिखा है, यथा—"इति श्री पञ्चाध्यायी स्वामी नन्ददास-कृत सम्पूर्ण।" वल्लभसम्प्रदाय के अष्ट-सखा कवियो मे चार भक्त, सूरस्वामी, परमानन्दस्वामी, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामी 'स्वामी' कहलाते हैं और चार भक्त कृष्णदास, कुम्भनदास नन्ददास तथा चतुर्भुजदास 'दास' कहे जाते है। नन्ददास स्वामी नही कहलाते। लिपिकार ने 'भक्त' के लिए स्वामी शब्द दे दिया है।

नन्ददास-कृत ग्रन्थो में मञ्जरी नाम की पाँच रचनाएँ हैं—विरहमञ्जरी, रस-मञ्जरी, मान-मञ्जरी, अनेकार्थ-मञ्जरी तथा रूपमञ्जरी। सं० १९४५ वि० में जगदीश्वर प्रेस,

रूप-मञ्जरी

बम्बई से, वैष्णव ठाकुरदास सूरदास ने इन पञ्च मञ्जरियो को छपवाया। इसके बाद इन मञ्जरियो को स० १९७३ वि० में भाई बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ ने सरस्वती प्रेस, मूलेश्वर बम्बई, से छापा। पञ्चमञ्जरी की स० १८३५ वि० की एक हस्तलिखित प्रति बनारस के श्रीव्रजरत्न-दास के पास भी है, एक और प्रतिलिपि मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी के पास है, जिसे वे भरतपुर राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित स० १७३४ वि० की प्रति की नकल बताते हैं। नन्ददास के ग्रन्थो की सूची देनेवाले विद्वानो में शिवसिंह सेंगर, डाक्टर ग्रियर्सन तथा श्रीरामकुमार वर्मा को छोडकर सभी ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट[२] मे नन्ददास के 'रूपमञ्जरी' ग्रन्थ का उल्लेख है। उक्त रिपोर्ट में ग्रन्थ का कोई विवरण नही दिया गया, केवल इतना कहा गया है कि इसमें १६८ श्लोक हैं। अन्य वर्ष की खोजो में इसका कोई हवाला नही है।

उपर्युक्त उल्लेखो के अतिरिक्त ग्रन्थ के अध्ययन से इस बात का यथेष्ट प्रमाण मिल जाता है कि यह ग्रन्थ नन्ददास कृत ही है। ग्रन्थ के आदि और अन्त में नन्ददास के नाम की छाप आई है, यथा—

१—भाग २, पृ० ३१०-१३ प्रकाशक, लल्लूभाई छगनलाल, अहमदाबाद।

२—ना० प्र० सभा०, खोज-रिपोर्ट, नं० ३०१ (ए), सन् १९०६-१९०८।

आदि—प्रथमहि प्रणमू प्रेममय, परम जोति जो आहि,
रूपउपावन रूपनिधि नित्य कहत कवि ताहि।[1]
परम प्रेम पद्धति एक आही, नंद यथामति वरनू ताही।[2]
अन्त—यह बिधि कुँवरि रूपमंजरी।सुन्दर गिरधर पिय अनुसरी।
इंदुमती ताकी सहचरी। सो पुनि तिहि संगति निस्तरी।[3]
तिनकी ये लीला रस भरी। नन्ददास निज हित के करी।

नन्ददास के अन्य ग्रन्थो के कुछ भाव और शब्दावली इस ग्रन्थ मे भी प्रयुक्त हुये है। काव्य की दृष्टि से भाव-साम्य के अतिरिक्त साम्प्रदायिक भाव भी इसमें व्यक्त हुये हैं, जिनमे माधुर्य भक्ति के अनुयायी, एक पुष्टिमार्गीय भक्त का परिचय मिलता है और यह कविवर नन्ददास ही हैं। इस ग्रन्थ की प्राचीन प्रतियो में भी नन्ददास का ही नाम मिलता है।[4] इन प्रमाणो के आधार से हमे इस ग्रन्थ को किसी अन्य लेखक द्वारा लिखित मानने की गुञ्जाइश नही रह जाती। इस ग्रन्थ के जिन भावो और शब्दो का साम्य नन्ददास के अन्य ग्रन्थो में मिलता है। उनमें से कुछ को यहाँ दिया जाता है—

१—जगमग जगमग करै नग, जो जराय संग होइ।
कांच किरच कंचन खचे भलो कहत नहि कोइ।
—'रूपमञ्जरी'

ज्यों अमोल नग जगमगाय सुन्दर जराय संग।
—'रास पञ्चध्यायी,' प्रथम अध्याय

२—तरनि किरन सव पाहन परसै। झटकि माँहि निज तेजहि दरसै।
—'रूपमञ्जरी'

तरनि किरन ज्यों मनि पखान सबहिन को परसै।
सूर्यकांत मनि विना नाहि कहुँ, पावक दरसै।
—'रास पञ्चाध्यायी', प्रथम अध्याय

३—ज्यों-ज्यों सैसव जल थरवाने। त्यों-त्यों नैन नीन इतराने।
—'रूपमञ्जरी'

१—तथा २—छन्द १ और २, 'रूपमञ्जरी', ठाकुरदास सूरदास द्वारा प्रकाशित, 'पञ्चमञ्जरियो।'

३—'रूपमञ्जरी' ठाकुरदास सूरदास द्वारा प्रकाशित 'पञ्चमञ्जरियो', छन्द ५२२ और ५२३।

४—जैसे भरतपुर राजकीय पुस्तकालय की प्रति में।

रूप उदधि इतराति रँगीली मीन पाँति जस।
—'रास पञ्चाध्यायी', प्रथम अध्याय

रस-मञ्जरी

सर जार्ज ए० ग्रियर्सन को छोड़कर, हिन्दी-साहित्य के सभी इतिहासकारों ने नन्ददास के इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। रस-मञ्जरी की भाषा और भाव का नन्ददास के अन्य ग्रन्थो की भाषा और भावो के साथ मिलान करने पर यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत ही सिद्ध होता है। ग्रन्थ के आदि के दो छन्दों में[1] और अन्त के तीन छन्दो में 'नन्ददास की छाप आई है। शब्द और भाव-साम्य के अतिरिक्त यह दोहा, जो रूप मञ्जरी में कवि ने दिया है—

यदपि अगम ते अगम अति, निगम कहत है ताहि।
तदपि रंगीले प्रेम ते, निपट निकट प्रभु आहि।

ज्यो का त्यो, लेखक द्वारा देखी हुई, रसमञ्जरी की सभी प्रतियो मे मिलता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि रूपमञ्जरी और रसमञ्जरी का रचयिता एक ही कवि है।

नोट—यह रस मञ्जरी ग्रन्थ सूरदास ठाकुरदास तथा भाई बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ द्वारा क्रमशः संवत् १९४५ वि० तथा संवत् १९७३ वि० में प्रकाशित 'पञ्चमञ्जरियों' में छप चुका है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट में कई रस-मञ्जरियों का विवरण दिया गया है। उक्त रिपोर्ट में नन्ददास-कृत रस-मञ्जरी का भी विवरण है। श्री याज्ञिक पुस्तकालय में भी लेखक ने इस ग्रन्थ की एक प्रति देखी है।

रस-मञ्जरी, दम्पताचार्य-कृत, रामजानकी विवाह, लिपिकाल संवत् १९१३ वि०, ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०९-१०, ११ ई०।

रस-मञ्जरी नन्ददास-कृत, विषय नायिका-भेद, ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०९, १०, ११ ई०।

भाषा रस-मञ्जरी, रामानन्द-कृत, विषय नायिका-भेद, संवत् १८०७ वि०, ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०९, १०, ११ ई०।

रसमञ्जरी, रामसनेही कृत, विषय नायिका भेद, लिपिकाल संवत् १९११ वि० ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट १९०९, १०, ११ ई०।

रसमञ्जरी, रामनिवास तिवारी, वैद्यक ग्रन्थ ना० प्र० स० १९१७–१८–१९ ई०

१—आदि—रस-मञ्जरी अनुसार कै, नन्द सुमति अनुसार।
वरनत वनिता भेद जहँ प्रेम सार विस्तार २५
रसमञ्जरी, प्रकाशक बलदेवदास करसनदास।

अन्त—यह सुन्दर वर रस-मंजरी।
नन्ददास रसिकन हित करी। ३८५

ग्रन्थ रचना में अपने किसी मित्र की आज्ञा की प्रेरणा[1] का उल्लेख कवि ने इस ग्रन्थ के आरम्भ में भी किया है। ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में व्यक्त भाव[2] भी वल्लभसम्प्रदाय के अनुकूल ही है। उपर्युक्त दृष्टियो से विचार करने पर इस ग्रन्थ को लेखक निर्विवाद रूप से नन्ददास-कृत मानता है।

अनेकार्थ मञ्जरी

तासी से लेकर अब तक के सभी हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने नन्ददास-कृत 'अनेकार्थ मञ्जरी' का उल्लेख किया है। यह ग्रन्थ कई नामों से प्रसिद्ध है, जैसे अनेकार्थ-माला. अनेकार्थभाषा, अनेकार्थमञ्जरी। यह नन्ददास के प्रसिद्ध पञ्च-मञ्जरी ग्रन्थो में से एक है। हिन्दी के बड़े-बड़े विद्वान् इतिहासकारो ने अनेकार्थमाला, अनेकार्थभाषा और अनेकार्थमञ्जरी को नन्ददास के तीन पृथक्-पृथक् ग्रन्थ माना है। वास्तव मे है ये तीनो ग्रन्थ एक ही। इतिहासकारो ने तीनों नामो से मिलनेवाली प्रतियो के पाठ नही मिलाये, इसी भूल के कारण एक ग्रन्थ को अनेक ग्रन्थ मानने का भ्रम हिन्दी-संसार मे फैल गया है। यह भ्रम नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट[3] से आरम्भ हुआ है। खोज-रिपोर्ट में यदि पाठ मिलाकर सूचना दी जाती तो कदाचित् यह भ्रम न फैलता। उक्त रिपोर्ट में नन्ददास के दो ग्रन्थो—अनेकार्थ मञ्जरी और नाममाला–को भी एक ही ग्रन्थ मानकर कई स्थानों पर एक ही ग्रन्थ की सूचना दी गई है। खोज-रिपोर्ट के आधार पर इतिहासकारो ने अनेकार्थ मञ्जरी के साथ-साथ नन्ददास-कृत अनेकार्थ नाममाला को भी एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बताकर उल्लेख किया है, जैसे पण्डित रामचन्द्र

१—एक मीत हमसों अस गुन्यौं, मै नायिका भेद नहि सुन्यौं। ९
अरु जो भेद नायक के सुने, तेऊ मै नीके नहिं सुने। १०
हाउ-भाव हेलादिक जिते, रति समेत समझावहु तिते। ११
रस-मञ्जरी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ३९,

२—नमो नमो आनद घन सुन्दर नदकुमार।
रसमय, रस कारन, रसिक, जग जाके आधार।
है जु कछुक रस इहि संसार, ताको प्रभु तुमही आधार।
ज्यों अनेक सरिता जल बहै, आनि सबै सागर में रहै,
× × ×
अग्नि ते अनगन दीपक बरैं, बहुरि आनि सब तामें ररैं।
रस मञ्जरी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ३९।

३—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट १९०२ ई०, नं० ५८।
... ... १९०३ ई०, नं० १५३।
... ... १९०९–११, ई०, नं० २०८ डी।
... ... १९२० ई०, नं० १२६ बी।

शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास[१] में लिखा है—"जहाँ तक ज्ञात हुआ है, इनकी चार पुस्तकें ही अब तक प्रकाशित हुई हैं, "रास पञ्चाध्यायी, भ्रमरगीत, अनेकार्थ मञ्जरी और अनेकार्थ नाममाला"। इसके अतिरिक्त नन्ददास के ग्रन्थों की सूची में भी इन्होने पृथक्-पृथक् नामो से प्रसिद्ध एक ही ग्रन्थ को पृथक्-पृथक् ग्रन्थ मान लिया है।

अनेक उपलब्ध प्राचीन प्रतियो के आधार से तथा ग्रन्थ की भाषा शैली से यह ग्रन्थ निश्चयपूर्वक नन्ददास-कृत ही सिद्ध होता है। परन्तु यह कहना कठिन है कि नन्ददास ने कितने दोहे इस ग्रन्थ में लिखे हैं। नागरी-प्रचारिणी-सभा की रिपोर्ट[२] ने भी ग्रन्थ की श्लोक संख्या भिन्न-भिन्न दी है। लेखक ने जो छपी और हस्तलिखित प्रतियाँ देखी हैं उनमें भी छन्द संख्या विषम है संवत् १९४५ वि० मे, ठाकुरदास सूरदास द्वारा प्रकाशित 'अनेकार्थ मञ्जरी' तथा सवत् १९७३ वि० में वलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ द्वारा प्रकाशित 'अनेकार्थ मञ्जरी' मे छन्द संख्या ११९ ही है और दोनों प्रतियो में स्नेह नाम पर ग्रन्थ समाप्त होता है, जिस छन्द मे नन्ददास के नाम की छाप भी है। सन् १९१४ ई० मे बा० दुर्गाप्रसाद खत्री, काशी द्वारा प्रकाशित, अनेकार्थ माला में छन्द संख्या १५४ है और छन्द १२१ वे (स्नेहनाम) मे नन्ददास के नाम की छाप है। श्री बलभद्रप्रसाद मिश्र, एम० ए० तथा श्री विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा, एम० ए० द्वारा सम्पादित 'अनेकार्थ मञ्जरी' मे भी छन्द सख्या १५४ ही दी गई है। लेखक ने जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ इस ग्रन्थ की देखी हैं, सबमें ग्रन्थ 'स्नेहनाम' पर ही समाप्त हुआ है, परन्तु उनमें भी छन्द-संख्या एक नही है।

बाबू ब्रजरत्नदास, बनारस के सवत् १८३५ वि० की पञ्च-मञ्जरी की एक हस्त-लिखित प्रति है जो लेखक की देखी हुई है। इसमे अनेकार्थ और मानमञ्जरी मे लिपिकार ने क्षेपक की सूचना दी है, अन्य तीन मञ्जरियो में क्षेपक की सूचना नही है। अनेकार्थ की इसी प्रति मे लिखा है—

> बीस ऊपरे एक सौ नन्ददास जू कीन
> और दोहरा रामहरि, कीने है जु नवीन
> श्रीमन, श्री नंददास जू, रस मद आनंद कंद
> रामहरी की ढीठता छिमियो हो जगवंद
> कोस मेदिनी आदि अरु, कछू सब्द अधिकाइ
> मन रुचि लखि बिच सधि दिय, बांचो जाचित भाइ

इस प्रति मे छन्द न० १२१ वे (स्नेहनाम) मे नन्ददास की छाप है और वहीं नन्ददास-कृत 'अनेकार्थ' ग्रन्थ समाप्त हो जाता है।

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १९९।

२—ना० प्र० सभा, खोज रिपोर्ट १९०२ ई०, नं० ५८। १९०३ ई०, नं० १५३। १९०९–११ ई०, न० २०८ डी। १९०२ ई०, नं० १२६ बी।

खोज-रिपोर्ट सन् १६०३ ई०, न० १५३ मे नन्ददास-कृत 'अनेकार्थ नाम-माला' का रचना-काल सन् १५६७ ई० (स० १६२४ वि०) दिया है। ग्रन्थ मे कवि ने कोई रचना-काल नहीं दिया। उक्त रिपोर्ट में सन् १५६७ ई० कदाचित् किसी हस्तलिखित प्रति के आधार से दिया होगा, परन्तु इस बात को विवरणकार ने स्पष्ट करके नहीं लिखा। ग्रन्थ के अध्ययन से इतना हम अवश्य कह सकते है कि अनेकार्थ मञ्जरी की रचना कवि ने वल्लभ-सम्प्रदाय में आने के बाद तथा उस सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त की है, क्योकि ग्रन्थ के मङ्गलाचरण और आरम्भिक वन्दना मे कवि ने शुद्धाद्वैत अविकृत परिणामवाद के भावो को व्यक्त किया है।[१]

नन्ददास के 'पञ्च मञ्जरी' ग्रन्थो में 'विरह मञ्जरी' भी एक छोटा सा ग्रन्थ हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[२] और मिश्रबन्धुओ के उल्लेख के आधार पर हिन्दी साहित्य के सभी वर्तमान इतिहासकारो ने इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत माना है। शिवसिंह सेंगर और डा० ग्रियर्सन ने अपने इतिहास ग्रन्थो में इसका कोई उल्लेख नही किया। इसकी' कई हस्तलिखित तथा प्रकाशित प्रतियाँ लेखक के देखने मे आई हैं। 'पञ्च मञ्जरी' की एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति बनारस में बाबू व्रजरत्नदास जी के पास है, जिसमें यह ग्रन्थ भी सम्मिलित है। मयाशङ्कर याज्ञिक पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की तीन प्रतियाँ लेखक ने देखी हैं, जिनमे से एक प्रति संवत् १७२५ वि० की है। नन्ददास के 'पञ्च मञ्जरी' ग्रन्थों का प्रकाशन ठाकुरदास सूरदास तथा बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ द्वारा भी हुआ है जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है।

विरह मञ्जरी

नन्ददास के अन्य ग्रन्थो की कुछ शब्दावलि और भावों का प्रयोग इस ग्रन्थ में भी है। यह शब्द और भावो का साम्य इस बात का प्रमाण है कि यह ग्रन्थ नन्ददास द्वारा ही लिखा गया है। इस बात के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

१—मदन जालगोलक से भौरा, फिर गए ऊपर ठौरहि ठौरा। ४५

—विरह मञ्जरी।

१—जु प्रभु जोति मय जगतमय, कारन, करन अभेव
बिघन हरन, सब सुभ करन, नमो नमो तिहि देव।
एकै वस्तु अनेक है जगमगात जगधाम
जिमि कञ्चन ते किंकिनी कंकन कुण्डल नाम।
अनेकार्थ मञ्जरी, 'नन्ददास,' शुक्ल, पृ० ६८

२—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, नं० १५६, सन् १६०४ ई० और नं० २०८, सन् १६०६ ई०१०, ११।

ता घूँघरि के मध्य मत्त अलि भरमत ऐसे,
प्रेम जाल के गोलक कछु छवि उपजत जैसे।

—रास पञ्चाध्यायी, पाँचवाँ अध्याय।

२—कुसुम धूरि धुँधरि सी कुँजे, मधुकर निकर करत जहँ गुंजें। ५४

—विरह मञ्जरी।

कुसुम धूरि धुँधरी कुंज छवि पुंजन छाई,
गुंजत मंजु मलिन्द बेनु जनु बजति सुहाई।

—रास पञ्चाध्यायी, प्र० अध्याय, छ० १०७।

३—सीतल मृदुल वालुका सच्यो, जमुना सुकर तरङ्गिन रच्यो। १२४

—विरह मञ्जरी।

उज्ज्वल मृदुल वालुका पुलिन सुहाई,
जमुना जू निज कर तरङ्ग करि आप बनाई। १२२

—रास पञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय।

४—कल्प तरोरुह, मजुल मुरली,
मोहन मधुर सुधारस जुरली। १२५

—विरह मञ्जरी।

तैसिय पिय की मुरली जुरली अधर सुधारस।

—रास पञ्चाध्यायी, प्र० अध्याय, छ० १०१।

५—तवही कान्ह वजाई मुरली,
मधुर मधुर पञ्चम सुर जुरली। १६६

—विरह मञ्जरी।

तव लीनी कर कमल योग माया सी मुरली।
अघटित घटना घटित वहुरि अधरन सुर जुरली।

—रास पञ्चाध्यायी, प्र० अध्याय, छ० ५५।

तथा— नूपुर कंकन किंकिन करतल मंजुल मुरली,
ताल मृदंग उपंग चंग एकहि सुर जुरली।

—रास पञ्चाध्यायी, प्र० अध्याय, छन्द ११।

६—गुहि गुहि नवल मालती माला,
मोहि पहिरावहु नन्द के लाला। ५५

—विरह मञ्जरी।

सुभग कुसुम की सखी जब गुहिगुहि लावे।
—रुक्मिणी मङ्गल, छन्द ६।

७—किसलय सपन सुपेसल कीजे, सिर तर सुमन उसीसा दीजे।५८
—विरह मञ्जरी।

स्रमित होत आवत तरु तरे, किसलय सपन सुपेसल करे। १०६।[1]
—दशम स्कन्ध अध्याय, १५

मानमञ्जरी' अथवा 'नाममाला' ग्रन्थ को तासी खोज-रिपोर्ट तथा हिन्दी-साहित्य के सभी इतिहासकारो ने भिन्न-भिन्न नामो से, नन्ददास-कृत माना है। जैसा कि पीछे बताया गया है, 'अनेकार्थ मञ्जरी' की तरह इस ग्रन्थ के अनेक नामो के आधार पर हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारो ने उन अनेक नामो को नन्ददास के पृथक्-पृथक् ग्रन्थ मान लिया है। 'नाममाला', 'नामचिन्तामणिमाला', 'नाममञ्जरी' आदि कई नामो से इस ग्रन्थ की प्रतिलिपियाँ मिलती हैं।

मानमञ्जरी अथवा नाममाला

इस गन्थ की भाषा शैली और व्यक्त भाव, नन्ददास के अन्य गन्थो की भाषा और भावो से बहुत साम्य रखते हैं। जैसे—

मोतीनाम— ससि गोती मोती गुलिक, जलज, सीपसुत नाम,
मुक्ता वन्दन वार तहँ बिहँसत सुन्दर धाम।
—नाममाला।

मुक्ता वन्दन माल जो लसे, जनु आनन्द भरे घर लसे।
—'दशम स्कन्ध', अध्याय ५।

सेजनाम— कसिपु तल्प सय्या सयन, संवेसन सयनीय
दूध फेन सम सेज पर, बैठी तिय कमनीय।
—नाममाला।

दूध फेन सम सेज, रमा, मन ऐन सुहाई,
ता ऊपर बैठाइ पाइ धोए यदुराई।
—रुक्मिणी मङ्गल

१—दशमस्कन्ध, नन्ददास, प्रकाशक गुप्लानी।

चन्द्र नाम--बिछुरि चद्रिका चन्द्र तजि रहि क्यों न्यारी होय

—नाममाला।

किधौं चन्द्र सौं रुसि चन्द्रिका रहि गई पाछे।

—रास पञ्चाध्यायी।

इसी प्रकार से शब्द और भाव-साम्य के अनेक उदाहरण इस ग्रन्थ मे तथा नन्ददास के अन्य ग्रन्थो में मिलते हैं। इस ग्रन्थ के आदि-अन्त में 'नन्ददास' नाम की छाप भी आई है, इसलिए निर्विवाद रूप से यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत है। परन्तु इस ग्रन्थ के उपलब्ध दोहो मे कितने दोहे प्रामाणिक रूप से कवि-कृत हैं, यह विचारणीय है।

अनेकार्थ माला की तरह, इस ग्रन्थ के विषय में भी प्रश्न होता है कि नन्ददास ने इसमे कितने दोहे बनाये हैं। इस की भिन्न-भिन्न प्रतियो में दोहो की भिन्न-भिन्न सख्या मिलती है। बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री द्वारा प्रकाशित 'नाममाला' मे छन्द संख्या २७८ है और श्रीबलभद्रप्रसाद मिश्र तथा श्रीविश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा द्वारा सम्पादित नाममाला मे छन्द सख्या २९९ है। श्रीउमाशङ्कर शुक्ल द्वारा सम्पादित 'नन्ददास' के अन्तर्गत 'मानमञ्जरी'[1] में छन्द सख्या २३४ है। सूरदास ठाकुरदासवाली 'नाममञ्जरी' मे छन्द संख्या ३०१ है, परन्तु नन्ददास की छापवाला दोहा २९९वाँ (युगल नाम) है। भाई बलदेवप्रसाद करसनदासवाली प्रति मे भी छन्द सख्या ३०१ है और नन्ददास के नाम की छाप २२९वे दोहे मे, युगल नाम पर है। श्रीयाज्ञिक सग्रहालय की हस्तलिखित प्रतियो मे भी किसी में छन्द सख्या २८२ है तो किसी मे २९८ है।

हस्तलिखित प्रतियो मे कुछ लिपिकारो ने यह कह दिया है कि प्रति' शोध कर लिखी गई है अथवा उसमे छन्द-सख्या बढ़ा दी गई है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] मे सूचित 'नानामाला' के विवरण मे जो उद्धरण दिये गये हैं उनसे ज्ञात होता है कि वह प्रति किसी गङ्गादास ने शोधी थी। बाबू ब्रजरत्नदास के पास संवत् १८३५ वि० की पञ्चमञ्जरी

१--मानमञ्जरी, नाममाला, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० ९९।

२--ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट सन् १९०९, १०, ११ ई०, नं० २०८ (बी)।

आदि--तामें लखि कछु कठिनता, पर विभ्रमता भास,
दर्ग सु चौपाई मिले कीन्हीं गंगादास।

अन्त --कोश नाम माला रुचिर, नन्ददास कृत जोय।
सोध्यौ गंगादास तेहि, भयौ सरल अति सोय।

दिये गये हैं वे, इस ग्रन्थ के अन्तिम भाग-रूप २८वे अध्याय के अन्त के ही हैं।[1] लेखक ने इस ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ काँकरोली नाथद्वारा, मथुरा मे देखी हैं। श्रीपं० मयाशङ्कर याज्ञिक, संग्रहालय मे इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ हैं। ये दशम स्कन्ध २९वे अध्याय तक की हैं। इस ग्रन्थ के १ से २८ अध्याय अमृतसर के वकील बा० कर्मचन्द गुग्लानीजी ने सन् १९३२ ई० मे प्रकाशित किये थे। उसकी प्रस्तावना मे उन्होने लिखा है कि पुस्तक का प्रकाशन संवत् १७६४ वि० की एक प्रति के आधार पर और सवन् १७८९ वि०, सं० १७८७ वि० तथा स० १८०९ की प्रतियों से मिलान करके किया गया गया है। उन्होने उसी प्रस्तावना मे सूचना दी है,—'१—२८ तक अध्याय इस पुष्प मे दिये गये हैं, उन्तीसवाँ अध्याय दूसरे पुष्प मे और ग्रन्थो के साथ प्रकाशित किया जायगा। तीस से लेकर शेष अध्याय खोज करने पर भी नही मिले।" लेखक ने भी इस ग्रन्थ की जितनी हस्तलिखित प्रतियाँ देखी हैं, वे या तो १—२८ अध्याय तक की हैं या १—२९ अध्याय तक की, २९वे अध्याय से आगे की रचना कही भी देखने को नही मिली। डा० भवानीशङ्कर याज्ञिक और मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी आदि सज्जनो तथा काँकरोली आदि स्थानो से प्राप्त 'दशम स्कन्ध' की प्रतियों के आधार से 'नन्ददास' मे दशम स्कन्ध का सम्पादन श्रीउमा-शङ्कर शुक्लजी ने किया है।

१ से २९ अध्याय तक का उक्त ग्रन्थ नन्ददास-कृत ही है, इस बात के प्रमाण, ग्रन्थ की भाषा, शैली और उसमे व्यक्त भावों के आधार से, प्रचुर मात्रा मे मिल जाते हैं। यह ग्रन्थ दोहा-चौपाई तथा चौपाई शैली मे लिखा गया है। उस शैली मे नन्ददास ने विरह मञ्जरी, रसमञ्जरी, रूपमञ्जरी, सुदामा-चरित्र और गोवर्द्धन-लीला ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थो के साथ 'दशम स्कन्ध' का मिलान करने पर यह प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगता है कि इन सब ग्रन्थो का लेखक एक ही कवि है। इस ग्रन्थ में भी, ग्रन्थ-रचना मे मित्र की प्रेरणा ही, कवि ने हेतु बताई है। उसके अतिरिक्त छन्द-शैली मे लिखे हुये अन्य ग्रथो की शब्दावली और भाव इस ग्रन्थ मे भी मिलते हैं। इस कथन की पुष्टि मे कुछ उद्धरण दिये जाते हैं--

परम विचित्र मित्र इक रहे, कृष्ण चरित्र सुन्यो जो चहे।

—दशम स्कन्ध, प्रथम अध्याय

परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आज्ञा दीनी,

—रास पञ्चाध्यायी।

ताके इक कमनीय सुकन्या
जेहि अस जनी जननि सोई धन्या। ५८

—रूपमञ्जरी।

१—खोज-रिपोर्ट ने नन्ददास के सम्पूर्ण 'दशम स्कन्ध भागवत' की उपलब्धि का लेख नहीं दिया, उसमें १ से २८ अध्यायो के मिलने का ही उल्लेख है।

देवक जादव के इक कन्या, जिहि अस जनी जननि सो धन्या।

—दशम स्कन्ध, प्रथम अध्याय।

तहाँ हौ कवन निपट मतिमन्द, वौना पै पकरावहु चन्द

—दशम स्कन्ध, प्रथम अध्याय

रूप मंजरी छबि कहन इन्दुमती मति कौन
ज्यों निर्मल निसिनाथ कों हाथ पसारे बौन। १४८

—रूपमञ्जरी।

परन लगी नान्ही बुंदवारी, मोटे थंभनहू तै भारी।
तब ब्रजजन जहाँ तहाँ ते धाए, सुंदर नंद कुँवर पै आए।

× × ×

झट दै उचकि लियो गिरि ऐसे, साँप बैठना कौ सिसु जैसे
गोपी गोप गाइ वछ जिते, अपने सुख रहे तिहि तर तिते।

× × ×

इन्द्रहु अपने वज्र चलाए पातनि लगि तेऊ नहि आए।
सात दिवस अद्भुत उरु ठान्यो, ब्रज वासिनि तनकै नही जान्यो।
सुंदर वदन विलोकनि आगे, भूप प्यास भय को नही लागे।
निकसे जब तब गिरिधर भाष्यो, गोवरधन फिर तहांई राख्यो।
प्रेम भरी गोपी घिरि आई वारहि अभरन लेहिं वलाई।

—दशम स्कन्ध, पच्चीसवाँ अध्याय।

२५वे अध्याय की उक्त पंक्तियाँ ज्यो की त्यो नन्ददास-कृत 'गोवर्द्धन-लीला' नामक ग्रन्थ में आती हैं। इसके अतिरिक्त दशम स्कन्ध के २९वे अध्याय में रास का वर्णन, भाव और भाषा में उनके रास-पञ्चाध्यायी ग्रन्थ के वर्णन से बहुत मिलता है। उदाहरणार्थ :—

तव लीनी कर कंजनि मुरली, षंडादिक जु सात सुर जुरली।
सोई जोगमाया गुन भरी, लीलाहित हरि आश्रित करी।

—दशम स्कन्ध, २९वाँ अध्याय।

तव लीनी कर कमल, जोग माया सी मुरली
अघटित घटना चतुर, वहुरि अधरन सुर जुरली।

—रास पञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय।

पुनि रंचक हिय में धरि ध्यान, कीनौ परिरंभन रस पान।
कोटि नुरग सुख छिन में लिए, मंगल सकल छिनहि करि दिये।
—दशम स्कन्ध, २९वाँ अध्याय।

पुनि रंचक धरि ध्यान पिया परिरंभ दियो जब।
कोटि स्वर्ग सुख भोग छिनहिं मंगल कीनों तव।
—रास पञ्चाध्यायी।

नूपुर धुनि जव श्रवननि परी, सव अंग श्रवन भरे उहिघरी
दृष्टि परी जव तव सव अंग, दृगनि में हरे भरे रस रंग
—दशम स्कन्ध, २९वाँ अध्याय।

जिनके नूपुर नाद सुनत जव परम सुहाए,
तव हरि के मन नयन, सिमिट सब श्रवनन आए।
रुनुक झुनुक पुनि भली भाँति सों प्रकट भई जव,
पिय के अँग अँग सिमिटि मिले हैं रसिक नयन तव।
—रास पञ्चाध्यायी।

नन्ददास ने अपने नाम की छाप प्रत्येक अध्याय के अन्त में दी है। उपर्युक्त ग्रन्थ की रचना के विषय में "दो सौ वावन वैष्णव की वार्ता" तथा "अष्टसखान की वार्ता" में एक प्रसङ्ग आया है। इसका आशय इस प्रकार है—"एक समय नन्ददास के मन में ऐसी आई कि जैसे तुलसीदास ने 'रामायण' भाषा में रची है, हम भी 'भागवत' भाषा मे करें। इसके अनन्तर उन्होने संपूर्ण भागवत भाषा में लिखी। जव मथुरा के ब्राह्मणो ने नन्ददास की भाषा भागवत सुनी तो वे गुसाई विट्ठलनाथजी के पास गये और निवेदन किया—महाराज, भागवत कथा से हमारी जीविका चलती है, अब इस भाषा भागवत के प्रचार से हमारी कथा कोई नही सुनेगा और हमारी जीविका जाती रहेगी। गुसाईजी ने ब्राह्मणों के कहने से नन्ददास को आज्ञा दी कि वे ब्राह्मणों के क्लेश मे न पडे। नन्ददासजी ने गुसाईंजी के कहने से रास-लीला तक की भाषा भागवत रख ली और वाकी यमुनाजी में वहा दी।"

पीछे कहा गया है कि लेखक ने नन्ददास के 'दशम स्कन्ध भाषा' की कई प्रतियां देखी हैं। एक प्रति नाथद्वार में वस्ता नं० १३/७ मे है। यह प्रति २९वे अध्याय तक की ही है। इसमे कोई सवत् नही दिया हुआ है, परन्तु प्रति लगभग १५० वर्ष पुरानी अवश्य प्रतीत होती है। इसमें लिपिकार ने ग्रन्थ की पुष्पिका मे दो दोहे दिये हैं जिनका आशय यह है कि नन्ददास ने, २९वें अध्याय के वाद पण्डितों के आग्रह से इस ग्रन्थ का लिखना छोड़ दिया—

कीनी भाषा नंद जब, तब सब द्विज मिलि आइ।
कहन लगे अब जिनि करो लागत तुम्हरे पाइ।
तबहि कह्यो अब नहिं करौं जाहु आपने गेह।
देहु असीस इहै सबै रहै नंद नंदन सो नेह।
इति श्री दशम भाषा नन्ददासजी-कृत सम्पूर्ण।

उक्त प्रसङ्गो से ज्ञात होता है कि नन्ददास-कृत दशम स्कन्ध भाषा, रास-लीला तक की ही विद्यमान है अन्य अध्याय हैं ही नहीं। रासलीला के अध्यायो में भी केवल २९वाँ अध्याय ही लेखक के देखने में आया है। वार्ता की कथा यदि कल्पित है तो, सम्भव है, इस लीला के आगे के अध्याय भी खोज करने पर मिल जायँ। उपर्युक्त विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि नन्ददास ने इस ग्रन्थ की रचना महात्मा तुलसीदास के रामचरित-मानस की रचना के बाद की थी। रामचरितमानस की रचना सवत् १६३१[1] वि० में आरम्भ हुई थी। इसकी रचना नन्ददास ने १६३१ वि० के अनन्तर ही की होगी। श्रीउमाशङ्कर शुक्लजी ने अपने ग्रन्थ 'नन्ददास' में इसे नन्ददास का प्रामाणिक ग्रन्थ माना है।

शिवसिंह सेंगर और डा० ग्रियर्सन को छोड़कर हिन्दी-साहित्य के लगभग सभी इतिहास लेखकों ने नंददास-कृत 'श्याम-सगाई', रचना का उल्लेख किया है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] में भी इस ग्रन्थ का उल्लेख है। इस रचना की सबसे प्राचीन प्रति काँकरौली विद्याविभाग, पुस्तकालय में सुरक्षित है। वास्तव में यह ग्रन्थ नन्ददास का एक बड़ा पद है जो बिलावल राग के अन्तर्गत[3] वल्लभ-सम्प्रदायी 'वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रह' में भी छपा है।

श्याम-सगाई

पं० मयाशङ्कर याज्ञिक संग्रहालय में श्याम-सगाई रचना की चार हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक के देखने में आई हैं। इन चारो प्रतियो में बहुत पाठान्तर है। इनमे से तीन

१—संवत् सोरह से इकतीसा. करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।
रामचरितमानस, श्यामसुन्दरदास, प्रथम संस्करण, पृ० ४२।

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट सन् १९१७, १८, १९ ई०, नं० ११९ (सी)।
तथा ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट सन् १९०६, ७, ८ ई०, नं० २०१।

३—वर्षोत्सव, ठाकुरदास सूरदास, पृ० ४००-४०४।
तथा वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रह देसाई, भाग २, पृ० ९०-९३।

रुक्मिणीमङ्गल और श्याम-सगाई का सम्पादन श्रीविश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा ने किया है। 'नन्ददास' ग्रन्थ में, श्रीउमाशङ्कर शुक्ल ने इसे प्रामाणिक ग्रन्थ मान कर इसका सम्पादन किया है।

प्रतियो के अन्त मे नन्ददास की छाप है और एक प्रति में 'तारपाणि' का नाम इस प्रकार दिया हुआ है :—

"वजत वधाई नंद के तारपाणि वल जाय ।"

'तारपाणि आधुनिक काल का ही कोई कवि है, जिसका उल्लेख हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारो ने नही किया। याज्ञिक जी के संग्रहालय मे तारपाणि द्वारा लिखित 'भागी-रथी-लीला' नामक ग्रन्थ की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ विद्यमान है। यह ग्रन्थ भी दोहा-रोला की मिश्रित छन्द शैली में लिखा गया है। मनोहर पुस्तकालय, मथुरा से 'श्याम-सगाई' नाम की एक छोटी सी पुस्तिका 'नारायण' कवि के नाम से भी छपी है। नन्ददास छापवाली प्रति और इस नारायण छापवाली प्रति के पाठो में कही-कही अन्तर है, अन्यथा दोनो रचनाएँ एक सी है। इन प्रतियो के देखने से सन्देह होता है कि यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत है अथवा किसी अन्य कवि-कृत। रोला-दोहा के सम्मिश्रणवाली छन्द शैली में वहुत से कवियो ने रचनाएँ की हैं, इस वात का उल्लेख 'भँवरगीत' के विवेचन में किया जा चुका है। लेखक का विचार है कि यह रचना नन्द-दास-कृत ही है और 'तारपाणि अथवा 'नारायण' छाप वाद को जोड़ी हुई है। 'श्याम-सगाई' की हस्तलिखित प्रतियो की अधिक सख्या मे नन्ददास की ही छाप है। इसके आरम्भ में न तो कवि ने वन्दना दी है और न अन्त में ग्रन्थ के माहात्म्य का वर्णन किया है जैसा कि उसने अपने अन्य स्वतन्त्र ग्रन्थो में किया है। इसी से ज्ञात होता है कि यह नन्ददास का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है। रचना कवि की ही है, परन्तु यह उसका एक लम्वा पद मात्र है। सम्पूर्ण रचना में २८ छन्द है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारो मे केवल तासी महोदय ने नन्ददास-कृत सुदामा-चरित का उल्लेख किया है। मथुरा के विद्वान पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी जी के पास उस ग्रन्थ की एक प्रति है जो वे भरतपुर स्टेट लाइब्रेरी मे

सुदामा-चरित

सुरक्षित नन्ददास-कृत 'सुदामा-चरित' की नकल वताते हैं। इस ग्रन्थ की कुछ प्रतियाँ श्रीव्रजरत्नदासजी के पास भी हैं, जिनके आधार पर उन्होने एक शोधित प्रति वनाई है। लेखक ने उस प्रति का अवलोकन किया है। काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्टों[१] में लगभग आठ 'सुदामा चरित' लेखको के नाम दिये हुए है, परन्तु नन्ददास-कृत सुदामा-चरित का उसमें कोई उल्लेख नही है।

---

१. ग्र—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९०० ई०, नं० २६ कविगङ्ग-कृत 'सुदामा-चरित'। यह गङ्ग कवि अकवरी दरवार के कवि गङ्ग नहीं है। रिपोर्ट मे लिखा है कि यह दादूपन्थी कोई गङ्ग कवि हैं। ग्रन्थ कवित्तों में लिखा गया है। भाषा व्रज है।

नन्ददास के १ से २९ अध्याय तक उपलब्ध 'दशम स्कन्ध' की भाषा, छन्द, शैली आदि से 'सुदामा-चरित' की भाषा शैली बहुत मिलती है। लेखक का अनुमान है कि यह रचना नन्ददास-कृत सम्पूर्ण भागवत भाषा का, जो अब अप्राप्य है, अंश है, इसके अन्तिम छन्दों[1] में कवि ने दशम स्कन्ध भागवत का उल्लेख भी किया है। नन्ददास-कृत 'सुदामा-चरित', श्याम सगाई की तरह, कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रतीत नही होता। इस रचना के आरम्भ में कवि ने कोई वन्दना नही दी। पुस्तक के अन्त में दो स्थानो पर नन्ददास का नाम आया है। प्रथम नाम का उल्लेख नन्ददास की स्वय दी हुई छाप है और दूसरा उल्लेख लिपिकार द्वारा किया जान पड़ता है। जैसे—

चरित स्याम को इहि है ऐसो, बरन्यो नंद यथा मति जैसो।
दशम स्कन्ध विमल सुखवानी, सुनत परीछित अति रति मानी।
परम चरित्र सुदामा नित सुनि, हृदय कमल में राखो गुनि गनि।
नंददास की कृति सम्पूरन, भक्ति मुक्ति पावै सोई पूरन।

सुदामा चरित की भाषा शैली के आधार से लेखक इस रचना को नन्ददास-कृत ही मानता है। नन्ददास के ग्रन्थों की शब्दावली तथा भावसाम्य इस ग्रन्थ मे अवलोकनीय हैं; यथा—

"लगे जु नग जगमग रहे ऐना, मानहु सरस भवन के नैना"[2]

सुदामा चरित।

आ—खोज-रिपोर्ट सन् १९०१ ई० नं० ५३, कवि प्राणनाथ-कृत, स० १८३० वि०, छन्द कवित्त, भाषा व्रजभाषा है। उपर्युक्त रचना से भिन्न है।

इ—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट १९०९ १०, ११ ई०, नं० ३५ (ब), कवि व्रज-वल्लभ-दास कृत, छन्द दोहा, रोला का मिश्रित रूप। टेक नहीं है, व्रज भाषा में है।

ई०—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९१२ १३, १४ ई०, न० १४८, राघन कविकृत, सुदामा-चरित, सं० १९५७ वि० व्रजभाषा, उपर्युक्त रचनाओं से भिन्न है।

उ—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०६, ७, ८, ई०, नं० १३३ (अ) सुदामा-चरित, बालकदास फकीर-कृत, १५६ छन्द।

ऊ—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०६, ७, ८ ई०, नं० २०१ (अ) तथा १९२०, २१, २२ ई०, नं० ११७, सुदामा चरित, नरोत्तमदास-कृत।

ऋ—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट १९०६, ७, ८, ई० न० २५३ (अ) सुदामा-चरित, गोपाल-कृत, २३० छन्द।

१—चरित स्याम को इहि है ऐसो, बरन्यो नन्द जथामति जैसो।
दशम स्कन्ध बिमल सुख बानी, सुनत परीछित अति रतिमानी।
—'नन्ददास', शुक्ल, परिशिष्ट, पृ० ४५४।

२—सुदामा-चरित 'नन्ददास' शुक्ल, परिशिष्ट भाग, पृ० ४५२।

निष्क पदिक अरु वज्र पुनि हीरा वने जु ऐन
सकुचति तिन तन देखि जनु भूप भवन के नैन[१]

—मान मञ्जरी।

नन्ददास के 'गोवर्द्धन लीला' नामक ग्रन्थ का उल्लेख तासी महोदय को छोड़कर हिन्दी साहित्य के अन्य किसी भी इतिहास लेखक ने नही किया। लेखक को इस ग्रन्थ की प्रति श्रीव्रजरत्नदासजी, वनारस, से प्राप्त हुई थी। लेखक ने इसकी एक हस्तलिखित प्रति संवत् १८१० वि० की नाथद्वार के श्रीनाथजी पुस्तकालय मे भी देखी है। नाथद्वार प्रति के आरम्भ में ग्रन्थ का नाम 'गोवर्द्धन-पूजा' और अन्त में 'गोवर्द्धन-लीला' दिया हुआ है। यह प्रति कुछ पाठ भेद से श्रीव्रजरत्नदासवाली प्रति से मिलती है। मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदीजी के पास भी इसकी एक प्रतिलिपि है जिसको वे मथुरा के वैद्य श्रीराधामोहनजी के पास सुरक्षित हस्तलिखित प्रति की नकल वताते हैं। उसको भी लेखक ने देखा है। नन्ददास-कृत दशम स्कन्ध भाषा, अध्याय २४ तथा २५, में भी गोवर्द्धन धारण और उसकी पूजा की कथा है। इस ग्रन्थ की, तथा दशम स्कन्ध अध्याय २४ तथा २५ की, कुछ पक्तियां थोड़े से पाठान्तर से एक सी हैं। 'रास पञ्चाध्यायी' की पक्तियों की पुनरुक्ति जैसे कवि के 'सिद्धान्त पञ्चध्यायी' ग्रन्थ में भी देखने को मिलती है, उसी प्रकार से गोवर्द्धन-लीला' मे भी दशम स्कन्ध के छन्दो का समावेश है। ग्रन्थ के आरम्भ में गुरु-चरणों की[२] वन्दना-रूप में मङ्गलाचरण है। रचना के अन्तिम छन्द में कवि के नाम की छाप भी है। ग्रन्थ की भाषा और उसमे व्यक्त भावो की जाँच करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह रह रचना अष्टछापवाले नन्ददास की ही है।

गोवर्द्धन-लीला

नन्ददास की रास-पञ्चाध्यायी के साथ इस ग्रन्थ की भाषा-शैली और व्यक्त भावों के मिलाने से यही सिद्ध होता है कि यह रचना अष्टछापवाले नन्ददासजी की ही है। इस ग्रन्थ में कवि ने अपने जो साम्प्रदायिक विचार दिये है वे भी वल्लभ-सिद्धान्तो से मिलते हैं। रास-पञ्चाध्यायी तथा इस ग्रन्थ की शब्दावली तथा भाव के साम्य नीचे लिखे उद्धरणो से प्रकट होते हैं—

सिद्धान्त पञ्चाध्यायी

सिसु, कुमार पौगंड, धरम पुनि वलित ललित लस
धरमी नित्य किसोर, नवल चितचोर एक रस।[३]

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

१—मान मञ्जरी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृष्ठ ६६।

२—श्रीगुरुचरण मनाओं, गिरि गोवरधन लीला गाओं।
कलमल हरनी मंगल करनी मन हरनी श्रीशुकमुनि वरनी।—गोवर्धन लीला।

३—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृष्ठ १८३।

वाल कुमार पौगंड, धर्म आक्रान्त ललित तन।
धर्मी नित्य किसोर, कान्ह मोहत सब कौ मर्न।[1]

—रास पञ्चाध्यायी।

तिहि छिन सोइ उड़राज उदित, रस राज सहायक।
कुम कुम मंडित प्रिया वदन, जनु नागर नायक।[2]

--सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

ताही छिन उड़राज उदित, रस रास सहायक
कुंकुम मंडित प्रिया वदन, जनु नागर नायक।[3]

—रास पञ्चाध्यायी।

जे अरबर में अति अधीर, रुकि गई भवन जव।
गुनमय तन तजि चित्सरूप धरि पियहिं मिली तव।[4]

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

जे रुकि गई घर अति अधीर गुनमय सरीर बस।
पुण्य पाप प्रारब्ध रच्योतन नाहि पच्यो रस।[5]

—रास पञ्चाध्यायी।

मनिमय नूपुर किंकिन कंकन झनकारा।[6]

--सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

नूपुर कंकन किंकिनी, करतल मंजुल मुरली।[7]

—रास पञ्चाध्यायी।

राग रागिनी सम जिनकौ वोलिवौ सुहायौ।
सु कौन पै कहि आवै, जो व्रज देविन गायौ।[8]

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी तथा रास पञ्चाध्यायी।

१—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १५६।

२—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १८५।

३—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १५६।

४—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, नन्ददास', शुक्ल, पृ० १८६।

५—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १६० (पाठ-भेद से)।

६—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १८७।

७—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १७६।

८—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १९४ तथा राम पञ्चाध्यायी, 'नन्द-दास', शुक्ल, पृ० १७८।

अद्‌भुत रस रह्यौ रास, कहत कछु कहि नहि आवै
सेस सहस मुख गावै अजहूँ अंत न पावै।[१]

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी।

यह अद्‌भुत रस रास कहत कछु कहि नहि आवै
सेस सहस मुख गावै, अजहूँ अंत न पावै।[२]

—रास पञ्चाध्यायी।

रुक्मिणी मङ्गल

नन्ददास के रुक्मिणी-मङ्गल ग्रन्थ का उल्लेख तासी, शिवसिंह सेंगर, श्री मिश्रबन्धु, नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट तथा मिश्रबन्धु-विनोद के बाद में लिखनेवाले सभी हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने किया। नागरी-प्रचारणी-सभा की खोज रिपोर्ट[३] में नन्ददास-कृत 'रुक्मिणी-हरण की कथा' नाम से इस ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है। खोज-रिपोर्ट में दिये हुये उद्धरणों का, प्राप्त प्रतियों के पाठ से मिलान करने पर ज्ञात होता है कि 'रुक्मिणी-मङ्गल' और खोज-रिपोर्ट मे दिया हुआ 'रुक्मिणी-हरण की कथा' नामक ग्रन्थ दोनों एक हैं। नन्ददास कृत रुक्मिणी-हरण कथा के अतिरिक्त इस कथा पर लिखनेवाले अन्य कई लेखको का उल्लेख खोज-रिपोर्ट में दिया गया है जैसे हीरालाल[४], मिहिरचन्द[५], नरहरि भाट[६], रामलाल[७],

---

१—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल, पृ० १९५।

२—रास पञ्चाध्यायी, 'नन्ददास', शुक्ल पृ० १८१।

नोट—नन्ददास के ग्रन्थों की सूची देनेवाले किसी भी लेखक ने संवत् १९९३ वि० तक सिद्धान्त पञ्चाध्यायी का उल्लेख नहीं किया था। पहले पहल उदयनारायण तिवारी द्वारा सम्पादित रास पञ्चाध्यायी की भूमिका में इस ग्रन्थ का उल्लेख हुआ है। लेखक ने इस ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि संवत् १९९४ वि० में बनारसमें श्रीव्रज-रत्नदासजी के पास देखी थी और उससे कुछ नोट भी लिये थे। उसी प्रति के आधार पर लेखक ने इस ग्रन्थ का विवेचन करते हुये एक लेख प्रयाग में भारतीय हिन्दी-परिषद् के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर पढ़ा था। अक्टूबर सन् ४२ में इस ग्रन्थ का सम्पादन श्रीउमाशङ्कर शुक्ल ने 'नन्ददास', ग्रन्थ में किया है।

३—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट सन् १९१२, १३, १४ ई०, नं० १२०।

४—खोज-रिपोर्ट सन् १९०५ ई०, नं० ९४।

५—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९१२, १३, १४ ई०, नं० ११४।

६— " " " " " " १९०३ ई०, नं० ११।

७— " " " " " " १९१२, १३, १४ ई०, न० १४७।

नवलसिंह[1], रामकृष्ण चौबे[2] तथा ठाकुरदास[3], परन्तु रिपोर्ट मे इन कवियों की रचना के दिये हुये उद्धरणो से पता चलता है कि ये सब ग्रन्थ नन्ददास के 'रुक्मिणी मंगल' ग्रन्थ से भिन्न हैं। इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ मयाशङ्कर याज्ञिक सग्रहालय में तथा एक काशी के विद्वान् बा० ब्रजरत्नदास के पास, लेखक के देखने में आई हैं। दोनों प्रतियो में कई स्थानों पर पाठान्तर है, परन्तु दोनो की छन्द-संख्या में कोई अन्तर नही है। श्री उमाशङ्कर शुक्ल जी ने नन्ददास के प्रामाणिक ग्रन्थो में इसकी गणना कर इसका 'नन्ददास-ग्रन्थावली' मे सम्पादन किया है।

इतिहासकारो के उल्लेख के अतिरिक्त रुक्मिणी मंगल ग्रन्थ में भी नन्ददास के अन्य ग्रन्थों की शब्दावली और भाव-साम्य मिलते हैं, निम्नलिखित साम्य इस बात का प्रमाण देते है कि यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत ही है।

चकित चहूँ दिशि चहति, विछुरि मनु मृगी माल तें,
भयो बदन कछु मलिन नलिन जनु गलित नाल तें।[४]

—रुक्मिणी मंगल।

लाल रसाल के वंक बचन सुनि चकित भई यो,
बाल मृगन की पाँति सघन बन भूलि परी ज्यों।

—रासपञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय।

पढ़न लग्यो द्विज गुनी रुक्मिणी वचन सुहाए।
तब हरि के मन नैन सिमिट सब स्रवनन आए। ५६

—रुक्मिणी मंगल।

रुनुक झुनुक पुनि भली भाँति सो प्रकट भई जब,
पिय के अंग अंग सिमिट मिले है रसिक नैन तब।

—रासपञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय।

जो नगधर नंदलाल मोहि नही करि हौ दासी,
तो पावक परजरि हों, बरिहों तन तिनका सी। ६९

—रुक्मिणी मंगल।

जो न देउ यह अधरामृत तो सुनि सुन्दर हरि,
करि हैं यह तन भस्म विरह पावक में गिरि परि।

—रासपञ्चाध्यायी, प्रथम अध्याय।

१—ना० प्र० सभा खोज-रिपोर्ट १९०६, ७, ८, ई० नं० ७९ (पी)।
२—,, ,, ,, ,, ,, ,, १९०६, ७, ८, ई०, ई०, न० १००।
३—,, ,, ,, ,, ,, ,, १९०६, ७, ८, ई०, न०, ३३७ (ए)।

उज्वल मनिमय अटा घटा सों बाते करही।

—रुक्मिणी मंगल।

ऊँची अटा घटा दतराही, तिन पर केकी केलि कराही। ३८

—रूप मञ्जरी।

कुंज कुंज प्रति पुंज भँवर गुंजत अनुहारे।
मनु रवि डर तम भजे तजे रोवत है वारे। ३४

—रुक्मिणी मंगल।

कंज कज प्रति पुंज अलि, गुंजत इम परभात।
जनुरवि डर तम त्यजि, भज्यो रोवत ताके तात। ५२

—रूप मञ्जरी।

भँवरगीत

नन्ददास के 'भँवरगीत' का प्रथम उल्लेख तासी महाशय द्वारा दी हुई नन्ददास के गन्थो की सूची मे हुआ है। इसके बाद इसका उल्लेख शिवसिंह सेंगर और मिश्रबन्धुओ को छोड़ हिन्दी साहित्य के सभी इतिहासकार तथा नन्ददास के ग्रन्थो पर लिखनेवाले विद्वानो ने किया है। प्रथम बार इस ग्रन्थ का प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित सूरदास के अन्तिम भाग के साथ हुआ। इसके बाद अब तक यह ग्रन्थ कई स्थानों से छप चुका है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की सन् १६३६ ई० तक की खोज रिपोर्टों में निम्नलिखित कवियों के भँवर-गीतों का उल्लेख है।—नन्ददास,[१] जनमुकुन्द,[२] रसिकराय,[३] तथा वृन्दावनदास।[४] नन्ददास के नाम से भँवरगीत का जो उल्लेख खोज-रिपोर्ट में किया गया है उसमें नन्ददास के साथ जनमुकुन्द का भी नाम 'नन्ददास या जनमुकुन्द' लेखक रूप मे दिया हुआ है। खोज-रिपोर्ट के सन्दिग्ध उल्लेखो के आधार पर, तथा शिवसिंह सेंगर द्वारा इस ग्रन्थ का उल्लेख न किये जाने पर, कुछ विद्वानो को इस ग्रन्थ के नन्ददास-कृत होने मे सन्देह भी हुआ था। परन्तु अब इस ग्रन्थ को लगभग सभी विद्वान् नन्ददास-कृत मानते हैं। उपर्युक्त लेखको मे भवरगीतो के अतिरिक्त व्रजभाषा मे सूरदास, भावन कवि, महाराज रघुराजसिंह

१—खोज-रिपोर्ट १६२०, २१, २२ ई०, नं० ११३ (ऐफ)।
२—खोज-रिपोर्ट १६०२, ई०, न० १०४ (ग)।
खोज-रिपोर्ट १६०६, १०, ११, ई०, नं० १८४ (ग)।
खोज-रिपोर्ट १६०६, ७, ८ ई०, नं० २७२।
३—खोज-रिपोर्ट १६०६, ७, ८ ई०, नं० ३१६।
४—खोज-रिपोर्ट १६१२, १३, १४ ई०।

तथा सत्यनारायण कविरत्न के भँवरगीत भी प्रसिद्ध है स्वर्गीय रत्नाकर जी के 'उद्धव-शतक' का विषय भी गोपीउद्धव-सम्वाद है, इसलिए यह भी भँवरगीत की कोटि में रखा जा सकता है। मथुरा के स्वर्गीय कवि नवनीत चतुर्वेदी की भी भँवरगीत विषय 'गोपी-प्रेम-पीयूष-प्रवाह' नामक एक उत्कृष्ट रचना है जो अभी अप्रकाशित है।

पीछे कहा गया है कि नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों मे 'भँवरगीत' ग्रन्थ जनमुकुन्द-कृत कहा गया है। लेखक ने भँवरगीत की आठ हस्तलिखित प्रतियाँ याज्ञिक-संग्रहालय में देखी है। उनमें, तीन प्रतियो के अन्तिम भाग मे जनमुकुन्द की छाप है, शेष मे नन्ददास की। यथा :—

जनमुकुन्द पावन भयो, जो यह लीला गाइ,
पाय रस प्रेम कौ।

नन्ददास पावन भयो, जो यह लीला गाइ।
प्रेम रस पुञ्जिनी।

इन दोनो पाठों मे केवल अन्तिम टेक मे अन्तर है, शेष पाठ एक सा है। याज्ञिक सग्रहालय मे जनमुकुन्द छापवाली एक प्रति सवत् १८५७ वि० की है, दूसरी सवत् १८९० की है, परन्तु नन्ददास छापवाली प्रति अधिक पुरानी है। इस प्रकार जनमुकुन्द छापवाली एक प्रति की अन्तिम पुष्पिका मे लिखा है—"इति भ्रमर गीत कवि मुकुन्द विरचत"। इस विषय में दो मत हो सकते है। या तो 'जनमुकुन्द' नन्ददास जी का ही दूसरा नाम है अथवा लेखकों ने 'नन्ददास' नाम के स्थान पर 'जनमुकुन्द' जोड़ दिया है। वैष्णव वार्ता तथा नन्ददास के जीवन सम्बन्धी प्राचीन लेखो मे कहीं भी 'नन्दनन्दनदास' को छोड़कर नन्ददास का कोई उपनाम अथवा अन्य नाम नही दिया गया। इसलिए नन्ददास का दूसरा नाम जनमुकुन्द मानने का कोई आधार नहीं है। व्रज के वैष्णव मन्दिरों मे और रास-मण्डलियों मे गोपी-विरह लीला का अभिनय दिखाया जाता है, उसमें प्रस्तुत भँवरगीत ही गाया जाता है और यह गीत वहाँ नन्ददास-कृत ही प्रसिद्ध है। भँवरगीत की हस्तलिखित प्रतियो में नन्ददास की छाप बहुत पुरानी और अधिक सङ्ख्या में मिलती है। इसलिये जनमुकुन्द-छाप पीछे से डाली हुई प्रतीत होती है।

श्रीवल्लभाचार्य जी के एक सेवक[1] मुकुन्ददास भी थे जो एककवि थे। उन्होने भी कुछ कवित्त और पद वनाये थे जिनका समावेश 'मुकुन्द सागर' नामक अप्राप्य ग्रन्थ मे

१ – चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वें० प्रे०, पृष्ठ ९८। सो मुकुन्ददास आप कवि हुते सो कवित्त करते। सो कवित्त वहुत कवित्त कीये हैं। श्रीआचार्य जी महाप्रभून के तथा श्रीगुसाईं जी के तथा श्रीठाकुर जी के बहुत कीये है और मुकुन्द सागर एक ग्रन्थ कीयो।

वताया जाता है। इनकी उपलब्ध रचनाओं में इनकी तीन छाप मिलती हैं, जनमुकुन्द, प्रभु मुकुन्द तथा मुकुन्द माधव। इनका देहान्त श्रीआचार्य जी के जीवन काल में ही हो गया था। सम्भव है, वाद के किसी वल्लभसम्प्रदायी भक्त ने भँवरगीत की कुछ प्रतिलिपियो में नन्ददास के स्थान पर जनमुकुन्द का नाम रख दिया हो। मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी जी का इस विषय में कहना है कि प्रत्येक अष्टकवि के साथ सुर देनेवाले (सुरैया) आठ सहायक गवैये कीर्तन में वैठते थे, कदाचित् उनके अनुमान से, जनमुकुन्द, नन्ददास के साथ वैठनेवाले किसी गवैये का नाम हो। इस कथन की सत्यता को पुष्टि करनेवाली कोई किंवदन्ती लेखक ने वल्लभसम्प्रदायी मन्दिरो में नही सुनी।

नन्ददास की भाषा-शैली और उनके अन्य ग्रन्थो में आये हुए भाव-साम्य के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि यह ग्रन्थ नन्ददासजी का ही रचा हुआ है। नन्ददास की रासपञ्चाध्यायी और भँवरगीत मे कई स्थानो पर इसके शव्द तथा भावो का साम्य है। इससे भी, इसके नन्ददास-कृत होने की पुष्टि होती है। यह साम्य नीचे लिखे उद्धरणो से ज्ञात होगा .—

विपते जलते व्याल अनलते दामिनि झरते।
क्यों राखी नहि मरन दई नागर नगधर ते।
—रासपञ्चाध्यायी, तीसरा अध्याय।

कोऊ कहै अहो स्याम चहत मारन जो ऐसे,
गिरि गोवर्द्धन धरि करी रक्षा तुम कैसे।
व्याल अनल अरु ज्वाल ते राखि लये सव ठौर,
अव विरहानल दहत हौ हँसि हँसि नन्दकिशोर,
चोर चित लै गए।
—भँवरगीत।

उपर्युक्त दोनो उद्धरणो मे 'व्याल-अनल' शव्द आया है और भाव का तो साम्य है ही।

जसुदा सुत जनु तुम न भये पिय अति इतराने।
—रासपञ्चाध्यायी।

रूप उदधि इतराति रगीली मीन पाँति जस।
—रासपञ्चाध्यायी।

कोऊ कहै अहो स्याम कहा इतराय गये हो।
—भँवरगीत।

इन उद्धरणो में भी 'इतराना' शव्द कई वार प्रयुक्त हुआ है। यह शव्द नन्ददास

को वहुत प्रिय है। उनके कई ग्रन्थों में इसका प्रयोग भावपूर्णता के साथ हुआ है। इसी तरह 'प्रेम पुञ्ज, शब्द रासपञ्चाध्यायी और भँवरगीत दोनो मे कई स्थानों पर आया है। भँवरगीत की जितनी प्रतियाँ लेखक के देखने में आई है। उन सभी में कुल ७५ छन्द है। इससे विदित होता है कि इस ग्रन्थ में क्षेपक नही मिले।

नन्ददास के भँवरगीत के आरम्भ मे कोई वन्दना नही है जैसा कि उनके अन्य कई काव्य ग्रन्थो मे है और कृष्ण द्वारा उद्धव के भेजने की कथा का ही वर्णन है। ग्रन्थ के आरम्भिक भाग को देखने से प्रतीत होता है कि यह रचना किसी बृहन् रचना का एक अङ्ग मात्र है। परन्तु अव तक खोज में, इस छन्द-शैली मे लिखित नन्ददास के भँवरगीत का कोई पूर्व वृत्तान्त नही मिला। सूरदास ने मुक्तक पदों के अतिरिक्त इस छन्द-शैली में भी भँवरगीत का प्रसङ्ग गाया है। सूरदास के भँवरगीत उनकी वृहत् रचना सूरसागर के, जिसमें व्रज-कृष्ण-लीला के अनेक प्रसङ्गो का वर्णन है, प्रसङ्ग मात्र हैं। इसलिए सूर द्वारा निर्मित प्रत्येक कृष्ण-लीला मे अलग-अलग वन्दना या मङ्गलाचरण नही है। नन्ददास ने कृष्ण-लीला के इन प्रसङ्गों को स्वतंत्र रूप देकर लिखा है। परन्तु नन्ददास के भँवरगीत का आरम्भ सूरदास के छन्द-शैली के भँवरगीत की तरह ही हुआ है। सूरदास ने इस प्रसङ्ग के अन्त मे वर्णित लीला के माहात्म्य का उल्लेख नही किया। नन्ददास ने रास पञ्चाध्यायी की तरह भँवरगीत के अन्त मे भी इस लीला के पवित्र प्रभाव का उल्लेख किया है। यथाः—

"नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय,प्रेम रस पुञ्जनी"।

दानलीला

नन्ददास-कृत दानलीला ग्रन्थ का उल्लेख शिवसिंह सेगर श्री मिश्रबन्धु, डा० ग्रियर्सन तथा स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थो मे पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी' में, और श्रीवियोगीहरिजी ने 'व्रजमाधुरी सार' में किया है। इतिहासकार तथा कविता-सग्रह-कर्ताओ ने नन्ददास-कृत यह ग्रन्थ देखा है अथवा नही, यह कहा नही जा सकता। लेखक ने स्वामी नन्ददास के नाम से लीथो टाइप की छपी हुई, दानलीला पं० मयाशंकर याज्ञिक के पुस्तकालय में देखी है। यह पुस्तक १८८३ ई० में मुंशी कन्हैयालाल सम्पादक के प्रवन्ध से मथुरा मे प्रकाशित हुई थी। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट में नन्ददास-कृत दानलीला का कोई उल्लेख नही है। खोज-रिपोर्ट में कई अन्य दानलीलाओं का हवाला दिया हुआ है जैसे परमानन्द-कृत,[1] कृष्णदास-कृत,[2] ध्रुवदास-कृत,[3] प्रियादास-कृत,[4]

१—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट सन् १९०२ ई०, नं० १४२।

२—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९०२ ई०, नं० १४८।

३—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९०९-१०, ११ ई०, नं० ७३ (जे)

४—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९१२, १३, १४ ई०, न० १६७।

राज्यप्रसाद कृत,[1] मनचित कृत[2] और चरणदास-कृत[3] दानलीलाएँ। इन उपर्युक्त कवियो की दानलीलाओ के जो उद्धरण खोज-रिपोर्ट मे दिये गये है वे मथुरा मे नन्ददास के नाम से छपी दानलीला से भिन्न है। स्वामी नन्ददास जी के नाम से छपी दानलीला, एक छोटी आठ पन्ने की पुस्तिका है, जिसमे केवल १४ छन्द हैं। इसमें राधाकृष्ण का प्रश्नोत्तर रूप में वार्तालाप है। कृष्ण की उक्ति वाले छन्द की टेक 'वृषभानु लड़ेती दान दे' है और राधा को उक्ति वाले छन्द की टेक 'नँदलाल लला घर जान दे' है। यह दानलीला इस प्रकार आरम्भ होती है—

आदि:—अहो प्यारी, वृन्दाविपिन सुहावनो, अरु वंशीवट की छाँह हो
(श्री) राधा दधि ले नीकसी, श्रीकृष्ण जो रोकी राह हो
वृपभान लड़ेती दान दे।१
अहो लाला, सबे सयाने साथ के, औरु तुमहु सयाने लाल हो
प्यारे, लिप्यौ दिपाऔ सांवरे, कब दान लियो पशुपाल हो
नँदलाल लला घर जाने दे।२
अन्त.—प्यारे, मिस ही मिस झगरो भयो, (श्री) वृन्दावन के मांझ हो
प्यारे, रसिक मन आनन्द भयो, (स्वामी) नन्ददास वल जाइ हो।
इति श्री नन्ददास कृत दानलीला समाप्तम्।

इस दानलीला का यह पाठ सूरदास ठाकुरदास और लल्लूभाई छगनलाल के वर्षोत्सव कीर्तन-सग्रहो[4] मे छपा है जिसमे 'स्वामी नन्ददास वल जाय हो' के स्थान पर द.स वली बनि जाइ हो' दिया हुआ है। मथुरा के विद्वान् पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी जी के पास वर्षोत्सव कीर्तन की सं० १८७६ वि० की एक हस्तलिखित प्रति है, उसमें भी यह दानलीला 'दास वलि' के नाम से दी हुई है। श्री वसन्तराम हरिकृष्ण शास्त्री द्वारा सम्पादित कीर्तन-कुसुमाकर, के जो सवत् १६६० वि० में प्रकाशित हुआ था, पृष्ठ १२७ पर यही दानलीला कुछ पाठ भेद से दी हुई है और उसमें भी 'दासवली' की छाप है। मिश्र-बन्धुओ ने मिश्रबन्धु-विनोद' मे 'वलिदास'[5] नाम के एक कवि का उल्लेख किया है जिसका समय उन्होने सवत् १५६७ वि० दिया हुआ है और उसकी रचना 'दानलीला' लिखी है। 'दास वलि' नाम के किसी भी कवि का उल्लेख इतिहासकारो ने नही किया है। ज्ञात होता

१—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १६२०, २१, २२, ई०, नं० १४१।
२—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १६०६, ७, ८ ई०, नं० ७१ (ए)।
३—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १६०६, ७, ८, ई०, न० १४७ (जी)।
४—वर्षोत्सव कीर्तन-सग्रह, भाग १, सूरदास ठाकुरदास, पृष्ठ २१०।
वर्षोत्सव कीर्तन-सग्रह, भाग १ देसाई, पृष्ठ २४५।
५—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग ३, द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ६८६।

है 'वलिदास' और 'दासवलि' कवि एक ही हैं और उसी की दानलीला का कुछ अश 'नन्ददास' के नाम से प्रचलित हो गया है।

दानलीला का कुछ थोड़े अन्तर से यही पाठ, वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित 'राग-रत्नाकर' के पृष्ठ ६६ (संवत् १९८३ वि० का संस्करण) पर दिया हुआ है। राग-रत्नाकर में दी हुई दानलीला में रचयिता का नाम 'अलि भगवान् दिया हुआ है। इसमें नन्ददास का कही भी नाम नही है। मिश्रबन्धु-विनोद में 'अलि भगवान्' कवि का उल्लेख इस प्रकार मिलता है.—"अलि भगवान् ने स्फुट पद लगभग सम्वत् १५४० वि० में कहे। यह महाशय हित हरिवश जी के समकालीन थे। यह भी हित-सम्प्रदाय के वैष्णवो में माने गये हैं।"[1] यह भी सम्भव हो सकता है कि यह दानलीला 'अलि भगवान्' के पदो में से एक पद हो। परन्तु, जैसा कि पीछे कहा गया है, 'वलिदास' की दानलीला का भी उल्लेख मिश्र-बन्धुओ ने किया है और वर्षोत्सव कीर्तनो में दी हुई दानलीला में भी 'दास वली' की छाप है, इसलिए यह कृति 'वलिदास' कवि की रचना ही प्रतीत होती है। यह रचना किसी भी कवि की हो इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मथुरा में नन्ददास के नाम से छपी दानलीला नन्ददास-कृत नही है। भाषा और शैली की दृष्टि से भी यह रचना नन्ददास कृत प्रतीत नही होती। इसकी भाषा बहुत शिथिल है। 'नन्ददास' ग्रन्थ मे श्री उमाशकर शुक्ल ने, काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के विद्यार्थी श्री महावीर सिह गहलौत से प्राप्त हुई नन्ददास कृत कही जाने वाली दानलीला के कुछ उद्धरण दिये हैं। यह दानलीला वही है जिसके विवरण और उद्धरण लेखक ने दिये हैं। इसमे भी नन्ददास की, अन्त में, छाप है। परन्तु इसकी भाषा-शैली के आधार से उन्होने भी इस ग्रन्थ को अष्टछाप के नन्ददास द्वारा रचित नही माना।

उक्त दानलीला ग्रन्थ में छन्द आता है जिसमे गुजराती डाकौतिया ब्राह्मणो का उल्लेख है।[2] उनके विषय में कवि ने कहा है कि वे ग्रहण का दान लेते हैं। ब्रज मे गुजराती ब्राह्मण तो बहुत हैं, परन्तु ग्रहण मे दान लेने वाले डाकौतिया ब्राह्मण कहीं नही सुने गये। ब्रज में तो महाब्राह्मण कहलाने वाले भड्डरी ही ग्रहण का दान लेते हैं। नन्ददास के अन्य ग्रन्थो के देखने से ज्ञात होता है कि उन्होने ब्रज के लोक-व्यवहार के विरुद्ध कोई बात नही कही। यह रचना किसी तुक्कड़ कवि की है। सम्भव है, नददास ने दानलीला लिखी हो जिसकी अभी खोज नही हुई।

अष्टछाप कवियो के बहुत से लम्बे पद, जिनकी रचना छन्द-शैली मे हुई है, स्वतत्र

१—मिश्रबन्धु-विनोद प्रथम भाग, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ १९२।

२—(प्यारे) गुजराती डाकोतिया और ग्रहण में दान हो,
(लाला) जो तुम बनमें साँवरे, ब्रजभान बबा मेरे देहे हो।
नन्दलाल लला घर जाने दे।

ग्रन्थ के नाम से मान लिये गये हैं। कुम्भनदास ने तो दानलीला नन्ददास के भँवर गीत वाले (दोहा, रोला और टेक) छन्द में एक पद रूप मे रची है जो व्रजभाषा के सौष्ठव की दृष्टि से एक सुन्दर रचना है, परन्तु नन्ददास का दानलीला के ऊपर लिखा हुआ कोई लम्बा पद भी लेखक के देखने मे नही आया। इस विषय पर छोटे-छोटे पद उन्होंने कुछ अवश्य लिखे हैं। सम्भव है 'दानलीला' के पदो का कोई संग्रह ही नन्ददास की 'दानलीला' नाम का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लिया गया हो जो मथुरा से प्रकाशित दानलीला से भिन्न है। व्रज मे सबसे प्रसिद्ध दानलीला रसिकराय की है। दस मात्रा की टेक-सहित रोला-दोहा वाले छन्द मे लिखी दानलीला सूरदास जी की भी वल्लभ सम्प्रदायियों मे प्रसिद्ध है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट[1] में नन्ददास-कृत जोगलीला नामक ग्रन्थ का उल्लेख है। उसी के आधार पर, डा० रामकुमार वर्मा जी ने अपने हिन्दी-साहित्य के

जोगलीला

इतिहास में इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत लिखा है। इनके अतिरिक्त तासी, मिश्रबन्धु, शिवसिंह सेंगर, ग्रियर्सन आदि किसी भी लेखक ने इस ग्रन्थ का नन्ददास-कृत होने का उल्लेख नही किया। लेखक को श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी मथुरा और श्री व्रजरत्न दास जी काशी के पास नन्ददास की कही जानेवाली जोगलीला की नवीन हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ देखने को मिली। लेखक ने इन दोनो प्रतिलिपियो का मिलान भी किया है। मथुरावाली प्रति की आरम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार है :—

एक समै मन मित्र मोहि यह आज्ञा दीनी
याही ते मति उकति जोग लीला में कीनी
सिव सनकादिक सारदा, नारद सेस महेस
देहु वुद्धि वर उदै कर अच्छर उकति बिसेस
यहै विनती अहै।

और इस प्रति की अन्तिम पक्तियाँ इस प्रकार हैं:—

नित्य वसौ नददास के करि संकेत सधाम,
स्याम स्यामा दोऊ।

श्रीव्रजरत्नदास वाली प्रति मे आरम्भिक छन्द की तृतीय पक्ति में 'देहु वुद्धिवर उदै कर' के स्थान पर 'देहु वुद्धि वर उदै उर' पाठ है और अन्तिम छन्द मे नन्ददास के नाम की छाप नही है। ग्रन्थ के अन्त में यह अवश्य लिखा है 'इति श्रीनन्ददास-कृत जोगलीला सम्पूर्ण।'

१—ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट, सन् १९०६, १९०७, १९०८, ई० इस रिपोर्ट में उद्धरण नहीं दिये गये हैं।

इसी ग्रन्थ की चार प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ लेखक ने मयाशङ्कर याज्ञिक के संग्रहालय मे देखी है। उन चारो मे लेखक का नाम 'उदै' दिया हुआ है जैसा कि श्रीव्रजरत्नदास वाली प्रति से भी ज्ञात होता है। इन सभी प्रतियो के आरम्भिक छन्दो मे यही पाठ है—'देहु बुद्धि वर उदै उर' जिसमे 'उदै' कवि का नाम प्रत्यक्ष दिखाई देता है और अन्तिम पंक्तियों मे भी 'उदै' नाम की छाप आई है, यथा —

कपट रूप धरि किती भाँति बहु भेष बनावे,
गोपी ग्वाल गुपाल नित्य खेलेरु खिलावै।[1]
रूप सिरोमनि राधिका रसिक सिरोमनि स्याम,
बसत उदै उर में सदा करि सकेत सधाम
स्याम स्यामा सहित।

याज्ञिक संग्रहालय[2] मे 'उदै' के छै ग्रन्थ विद्यमान हैं। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[3] मे याज्ञिक-संग्रहालय के 'उदै' कृत १४ ग्रन्थो का उल्लेख है। उक्त खोज-रिपोर्ट में उदै-कृत 'जोगलीला' का भी उल्लेख है जिसके उद्धरण नन्ददास के नाम से श्रीव्रजरत्नदास तथा पं० जवाहरलाल द्वारा कही हुई प्रति से मिलते हैं।

मिश्रबन्धु-विनोद मे उदैनाथ बन्दीजन, बनारस-निवासी एक कवि का उल्लेख है, परन्तु उसके किसी ग्रन्थ का नाम विनोदकारो ने नही दिया।[4] इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ५३८ पर उदय का भी, उपनाम कवीन्द्र कवि, जो महाकवि कालिदास के पुत्र और दूलह के पिता कहे गये है, विवरण है। उदय कवीन्द्र के ग्रन्थो की सूची मे सन् १६०० ई० की खोज-रिपोर्ट के आधार से एक ग्रन्थ 'जोगलीला' का भी उल्लेख है। पं० राम चन्द्र शुक्ल ने भी अपने इतिहास ग्रन्थो मे 'उदय', उपनाम कवीन्द्र, द्वारा रचित एक ग्रन्थ 'जोगलीला' लिखा है। ज्ञात होता है कि शुक्लजी ने मिश्रबन्धु-विनोद का ही अनुकरण किया है। लेखक ने, जैसा कि ऊपर कहा गया

१—पाठान्तर 'गोपी गोप गुपालन को नित खेल खिलावै।'

२—अ—चीरहरण-लीला (जिसको चीर चिन्तामणि भी कहा है।)
आ—रामकरुना नाटक ('रामकरुना करें', टेक) रोला-दोहा-टेक सहित मिश्रित छन्द में।
इ—हनूमान-नाटक ('रजायस राम की' टेक) रोला-दोहा-टेक सहित मिश्रित छन्द में।
ई—अहिरावण-लीला ('कुंवर ये कौन के' टेक) मिश्रित छन्द मे।
उ—जोगलीला।
ऊ—दामोदर-लीला

३—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९०० ई०, नं० ६८ (एन, एन)।

४—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृष्ठ ५१०।

है, उदय-कृत सन् १६०० ई० की खोज-रिपोर्टवाली जोगलीला के उद्धरण, नन्ददास के नाम से कही जानेवाली जोगलीला, नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट के १५वें त्रैवार्षिक विवरण मे दी हुई जोगलीला के उद्धरण तथा याज्ञिक-संग्रहालय की उदै-कृत प्रतियो के पाठ मिलाये हैं। इन सबके पाठ, कुछ थोड़े पाठ-भेद के साथ ज्यों के त्यो मिलते है। यदि उपर्युक्त १४ ग्रन्थों के कर्ता 'उदय' को उदयनाथ कवीन्द्र से भिन्न माने, लेखक के विचार से ये दोनों कवि भिन्न ही हैं, जो हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो मे उदयनाथ कवीन्द्र द्वारा रचित जोगलीला सन् १६०० ई० की खोज-रिपोर्टवाली जोगलीला नही होनी चाहिए, वह कोई अन्य जोगलीला होगी। लेखक का विचार है कि खोज-रिपोर्ट सन् १६०६, ७, ८ ई० तथा खोज-रिपोर्ट सन् १६०० ई० की जोगलीला न तो नन्ददास की है और न कवीन्द्र उपनामवाले कवि की। यह १८वी शताब्दी ई० के अन्त तथा १६वी शताब्दी ई० के आरम्भ मे होनेवाले कवि 'उदयराम' की है जिसके ग्रन्थो का संग्रह स्व० मयाशङ्करजी ने किया था। 'उदय' की रचना-शैली नन्ददास की रचना-शैली से बहुत मिलती है। वास्तव मे ऐसा जान पड़ता है कि नन्ददास की भाषा और छन्दो के अध्ययन के बाद उसी शैली पर 'उदै' ने अपने ग्रन्थों की रचना की थी। प्रस्तुत जोगलीला की आरम्भिक पक्तियो में कवि लिखता है कि यह रचना वह अपने मित्र की आज्ञा से कर रहा है। नन्ददास ने भी अपने कई ग्रन्थो मे मित्र की आज्ञा की प्रेरणा का उल्लेख किया है। जोगलीला के भाव, नन्ददास के भँवरगीत से बहुत मिलते है। भाषा भी नन्ददास की शब्दावली से प्रभावित है। इन कारणो से यह जोगलीला ग्रन्थ नन्ददास-कृत माना जाने लगा है; परन्तु नन्ददास-कृत न होने के भी यथेष्ट कारण मिल जाते है।

१—'उदै' की इस ग्रन्थ मे स्पष्ट छाप है, नन्ददास की छाप इसकी प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियो मे नही मिलती। 'उदै' के ग्रन्थों की पोथी मे इसकी प्रतियाँ भी मिलती हैं। २—इसी भाषा और छन्द-शैली पर 'उदय' के अनेक अन्य ग्रन्थ उपलब्ध है। ३—ग्रन्थ की 'सिव सनकादिक सारदा नारद सेस महेस' पंक्तियाँ इस बात का भारी प्रमाण है कि ग्रन्थ नन्ददास का नही है। इन पंक्तियो मे कवि ने शिव सनकादिक ऋषि, शारदा, नारद और शेष भगवान् की वन्दना की है। नन्ददास ने अपने ग्रन्थो मे भगवान् श्रीकृष्ण अथवा उनके स्वरूप भक्त शुकदेव जी और ईश्वर-रूप गुरु के सिवाय अन्य किसी देवता की वन्दना नही की। यहाँ शिव की वन्दना नन्ददास जैसे वल्लभसम्प्रदायी भक्त के अनन्याश्रय-सिद्धान्त के विरुद्ध है। इन्ही पंक्तियो मे एक पुनरुक्ति दोष भी है, जैसे 'शिव' और 'महेस' शब्दो का प्रयोग। इस प्रकार की त्रुटि नन्ददास जैसे सिद्धहस्त लेखक से नही हो सकती। इस प्रकार का दोष उनके किसी भी ग्रन्थ मे देखने को नहीं मिलता।

भाषा की परीक्षा करने पर इस ग्रन्थ मे दो, चार फारसी के ऐसे शब्द भी मिलते है जिनका प्रयोग नन्ददास ने अन्य ग्रन्थो मे नही किया; दूसरे, उन शब्दों का प्रयोग, लेखक की समझ मे, बहुत प्राचीन नही है; जैसे—'फतै,' 'खरावी,' 'जमा' आदि। यद्यपि यह रचना

भाषा और व्यक्त विचारों की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है परन्तु उक्त कारणों से यह अष्टछाप के नन्ददास का ग्रन्थ नहीं है। सम्भव है, नन्ददास ने कोई अन्य जोगलीला ग्रन्थ लिखा हो जो अभी तक अप्राप्य है।

'नन्ददास'[1] ग्रन्थ में श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने भी इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत न मान कर उदय-कृत माना है। परन्तु उन्होंने इसके रचयिता उदय को कालिदास त्रिवेदी के पुत्र दूलह का पिता कहा है जो लेखक की दृष्टि में उनकी भूल है।

१—'नन्ददास' की भूमिका, शुक्ल, पृष्ठ २२।
मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ४८४, में कालिदास त्रिवेदी का समय संवत् १७४९ वि० उनके 'वारवधू-विनोद' ग्रन्थ के रचनाकाल संवत् १७४९ वि० के आधार से दिया हुआ है। और कालिदास त्रिवेदी के पुत्र उदैनाथ, उपनाम कवीन्द्र का रचना-काल खोज-रिपोर्ट सन् १९०५ ई० में दिये हुये कवीन्द्र के 'रसचन्द्रोदय' ग्रन्थ के रचनाकाल संवत् १८०४ वि० के आधार पर संवत् १८०४ वि० है। जोगलीला, दामोदर-लीला आदि १४ ग्रन्थों के रचयिता उदैराम (स्वर्गीय याज्ञिक जी इनके ४० ग्रन्थ बताते थे) का रचना-काल सं० १८५२ वि० है। याज्ञिक-संग्रहालय की उदय-कृत पुस्तक दामोदरलीला में ग्रन्थ का रचना-काल यही संवत् १८५२ वि० दिया हुआ है और ग्रन्थ की पुष्पिका में कवि का नाम 'उदैराम' दिया है। यदि दामोदर-लीला, जोगलीला आदि के रचयिता उदय को उदय कवीन्द्र मान लें तो उनका रचना-काल सं० १८५२ वि० तक ले जाना पड़ेगा। उनके पिता कालिदास का रचनाकाल ऊपर संवत १७४९ वि० बताया गया है। इस हिसाब से, पिता-पुत्र के रचना-कालों में १०० वर्ष का अन्तर मानना पड़ेगा। जो बात कुछ असङ्गत सी जँचती है। दूसरे, दोनों कवियों के नामों में भी अन्तर है। एक उदय नाथ है और दूसरा उदैराम। ना० प्र० स० की खोज-रिपोर्ट सन् १९०० ई० में भी जोगलीला के रचयिता उदै को उदै कवीन्द्र से मिला दिया गया था, परन्तु इस भूल का शोध ना० प्र० पत्रिका, माघ, संवत् १९९६ वि०, वर्ष ४०, पृ० २६७ में प्रकाशित खोज-रिपोर्ट के अन्तर्गत कर दिया गया है तथा इन दोनों कवियों को उक्त विवरण में भिन्न-भिन्न कवि बताया गया है। स्व० पं० याज्ञिक की खोज के अनुसार, जिसका हवाला ऊपर कहे खोज रि० के विवरण में भी (पत्रिका संवत् १९९६ वि०, वर्ष ४४, पृ० २६७) है, उदैराम कवि मथुरा जिले का निवासी था तथा उदैनाथ कवीन्द्र बनपुरा निवासी कान्यकुब्ज तिवारी ब्राह्मण था। मथुरा जिले में कान्यकुब्ज ब्राह्मण नहीं रहते। मिश्रबन्धुओं ने खोज के साथ, उदयनाथ कवीन्द्र का जन्म-संवत् विनोद के पृ० ६७६ दूलह कवि के वर्णन के साथ संवत १७३७ वि० दिया है।

नन्ददास के इस ग्रन्थ का उल्लेख, शिवसिंह सेगर, डा० ग्रियर्सन, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० रामनरेश त्रिपाठी तथा वियोगी हरि ने अपने इतिहासों और कविता-संग्रहों में किया है।

मान-लीला

यह ग्रन्थ अभी तक लेखक के देखने मे नहीं आया। उपर्युक्त सज्जनो ने यह ग्रन्थ देखा है अथवा नही, यह नही कहा जा सकता; परन्तु अनुमान यही होता है कि शिवसिंह सेगर के कथन के आधार पर ही अन्य लेखको ने इस ग्रन्थ का नाम दे दिया है। वल्लभ सम्प्रदायी मन्दिरो मे अष्टछाप कवियो के मान के पद गाये जाते हैं जो साम्प्रदायिक कीर्तन संग्रहो में दिये हुये है। नन्ददास के भी 'मान'-सम्बन्धी पद पुष्टिमार्गीय पद-संग्रह, भाग ३ मे तथा अन्य कीर्तन-संग्रहो मे दिये हुये है। सम्भव है, नन्ददास-कृत मान के पदो का कोई संग्रह 'मानलीला' के नाम से विद्यमान हो। ऐसा कोई संग्रह अथवा स्वतन्त्र ग्रन्थ लेखक के देखने मे नही आया। नन्ददास के मान के पदो मे से कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जाते है। उनकी भाषा, वर्णनशैली और भाव-चित्रण वैसे ही काव्यरस पूर्ण है जैसे कि नन्ददास के उत्कृष्ट स्वतन्त्र ग्रन्थो मे है।

राग अड़ानो, ताल चौताला

तेरी भौंह की मरोर तें ललित त्रिभंगी भये,
अंजन दै चितए तबै भये स्याम बाम री।
तेरी मुसकानि हिए दामिनि सी कौंधि जात,
दीन ह्वै है जात राधे आधौ लीने नाम री।
ज्यों ही ज्यों नचावै बाल त्योंही त्योंही नाचे लाल,
अब तो मया करि चलि निकुंज सुख धाम री।
नन्ददास प्रभु तव बोलै तो बुलाइ लेहुँ,
उनको तो कलप बीतै तेरें घरी जाम री।

राग अड़ानो

तुम पहिले तो देखौ लाल आइ मानिनी की सोभा,
पाछे तो मनाइ लीजो प्यारे हो गोविन्द।
कर पै धरि कपोल रही री नैन मूंदि,
कमल बिछाइ मानों सोयो सुख सों चन्द।
रिस भरी भौंह तो पै भँवर से अरबरात बैठे,
इन्दुतर आयो मकरन्द भरयो अरविन्द।
नन्ददास प्रभु ऐसी काहे को रुसैये बलि,
जाको मुख निरखे ते मिटत सकल दुख द्वन्द।

इस प्रकार दूती द्वारा मानिनी राधा के मनाने पर तथा उसके रिस भरे रूप पर अनेक पद नन्ददास ने लिखे है।[1] भाव-प्रदर्शन की दृष्टि से वे सुन्दर हैं; परन्तु किसी पूर्ण कथानक के क्रम मे वे नही है।

नन्ददास की मान-मंजरी के विवेचन मे बताया गया है कि वह ग्रन्थ केवल कोषग्रन्थ ही नही है, वरन् उसने दूती द्वारा मानिनी राधा के मनाने और उसको मनाकर कृष्ण के पास ले जाने की कथा भी वर्णित है। सम्भव है, नन्ददास का मानमंजरी ग्रन्थ ही मानलीला के नाम से किसी ने मान लिया हो और सरोजकार ने उसको नन्ददास के ग्रन्थो की सूची मे सम्मिलित कर लिया हो। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट मे नन्ददास के इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं है। सन् १९०६, ७, ८, ई० की खोज-रिपोर्ट मे एक नन्द व्यास-कृत तथा दूसरी व्यानदास-कृत मानलीलाओ का तो उल्लेख अवश्य है, परन्तु उनके उक्त रिपोर्ट मे उद्धरण नही दिये गये।

तासी से लेकर अब तक के किसी भी हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक ने नन्ददास के ग्रन्थो की सूची मे 'फूलमंजरी' ग्रन्थ को सम्मिलित नही किया। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] में इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत बताया गया है।

फूलमंजरी

जिस प्रति के आधार से उक्त रिपोर्ट मे विवरण दिया गया है, उसमे इसका लिपिकाल अथवा रचनाकाल नही है। ग्रन्थ के विषय के बारे मे लिखा है कि इसमे ३१ दोहों मे नवदुलहिनी नायिका के रूपादि का वर्णन है और प्रत्येक दोहे मे एक फूल का नाम आया है। जो उद्धरण उक्त रिपोर्ट ने दिये है वे इस प्रकार हैं:—

आदि.—सीस मुकुट कुण्डल झलक, सङ्ग सोहै ब्रज बाल,
पहरे माल गुलाब की आवत है नन्दलाल।
चंपक बरन सरीर सब, नैन चपल है मीन,
नव दुलहिन को रूप लखि लाल भए आधीन।

अन्त:—पीताम्बर कटि काछनी सोहत स्याम सरीर,
कुसुम केतकी मुकुट धरि, आवत है बलबीर।

इति श्री फूलमंजरी नन्ददास किरत सम्पूर्ण समाप्तं।

१—पुष्टिमार्गीय पद-संग्रह, भाग ३, वैष्णव सूरदास ठाकुरदास, पृष्ठ २०६, २०७ और २१०।

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९२९ : ३१ ई०, नं० २४४ (एच)।

उक्त रिपोर्ट के आदि-अन्त के उद्धरणो मे नन्ददास के नाम की छाप कही नही आई। नन्ददास की पंचमंजरी[1] वल्लभसम्प्रदाय मे बहुत प्रसिद्ध है। इन पंचमजरियों की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ भी नन्ददास की छाप-सहित मिलती हैं। संवत् १९४३ वि० मे ये पाँचो मजरियाँ सूरदास ठाकुरदास द्वारा प्रकाशित भी हो चुकी है। इन मंजरियों के अतिरिक्त खोज-रिपोर्ट को छोडकर लेखक ने अन्य किसी वल्लभसम्प्रदायी भाषा-साहित्य के विद्वान् के मुख से नही सुना कि नन्ददास की कोई फूलमजरी नामक छठी मंजरी भी है। ग्रन्थ की, विषय-वर्णन-शैली से अवश्य इस बात का अनुमान होता है कि जैसे नन्ददास ने अनेकार्थमजरी और मानमंजरी मे कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-चरित्र का समावेश कर कोषग्रन्थ लिखे है, उसी प्रकार फूलमंजरी मे कृष्ण को नायक और राधा को नवदुलहिनी नायिका मानकर उनके शृंगार-वर्णन के प्रसंग से फूलो के नाम भी गिनाये है। पर यह अनुमान ही इस बात का पुष्ट प्रमाण नही है कि वह ग्रन्थ नन्ददास का लिखा हुआ है।

नन्ददास की शैली की नकल करनेवाले कई कवि हुये है। उनमे से एक उदै कवि का उल्लेख पीछे हो चुका है, जिसके ग्रन्थो का सग्रह याज्ञिक-संग्रहालय मे विद्यमान है। याज्ञिक-सग्रहालय मे लेखक ने फूल-मंजरी की दो प्रतियाँ दो भिन्न-भिन्न कवियो की देखी है। उनमे से एक पुरुषोत्तम कवि की है। यह फूल-मंजरी ग्रन्थ दोहा छन्द मे लिखा गया है। इसमे ३२ दोहे हैं। ३१वे दोहे पर ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। इसके आदि और अन्त के दोहे एक दो शब्द के पाठ-भेद से वही है जो नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट मे नन्ददास के नाम से उद्धृत है। अन्त मे दोहे के साथ कवि पुरुषोत्तम ने अपनी छाप का एक दोहा और दिया है। इस प्रति के निम्नलिखित उद्धरणो के साथ खोज-रिपोर्ट के उद्धरणो का पाठक मिलान करे ---

आदि:—सीस मुकुट कुंडल झलक, सङ्ग सोहत ब्रजबाल।
पहरे माल गुलाब की, आवत है नन्दलाल। १
चम्पक बरन सरीर सुख, नैन चपल दृग मीन।
नव दुलहनि तव रूप लखि लाल भये आधीन। २

अन्त:—पीताम्बर की छवि बनी सोहत स्याम सरीर।
कुसुम केतकी मुकुटधर, आवत हैं बलवीर। ३१
पौहप बन्ध धरि ग्रन्थ है कह्यो पुहपन कौ नाम।
पुरुपोत्तम याको भजै लै पुहपन कौ नाम।

इति श्री पौहोप मंजरी सम्पूर्ण।

[1]—विरह मंजरी, रस मंजरी, मान मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, तथा रूप मंजरी।

यह पुरुपोत्तम कवि किस समय का है, इसका उक्त पुस्तक से कोई विवरण ज्ञात नही होता। मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १[1] और भाग ३[2] मे तीन प्राचीन पुरुपोत्तम कवियो का उल्लेख है, परन्तु उनके रचित ग्रन्थो मे फूल मजरी ग्रन्थ नही दिया हुआ है। चतुर्थ भाग मे भी पुरुषोत्तम नाम के लेखको का नाम आया है, परन्तु वे आधुनिक लेखक है जो प्राचीन ग्रन्थ फूलमंजरी के लेखक नही हो सकते। उक्त पुरुपोत्तम नाम के लेखको मे एक पुरुपोत्तम राधावल्लभसम्प्रदायी का भी 'विनोद' मे उल्लेख है। सम्भव है, इस फूलमंजरी का रचयिता यही पुरुपोत्तम कवि हो।

उक्त फूलमजरी के अतिरिक्त याज्ञिक संग्रहालय मे एक केशवसुत मोहन कवि-कृत फूलमंजरी की भी प्रति है। इसका रचनाकाल सम्वत् १८४५ वि० है। यह भी उपर्युक्त फूलमंजरी की शैली में दोहा-छन्दो मे लिखी गई है, परन्तु उस मंजरी के दोहे पुरुपोत्तम की अथवा नन्ददास के नाम से खोज-रिपोर्ट मे दी हुई फूलमंजरी के दोहो से नही मिलते। इसके उद्धरण भी नीचे दिये जाते है--

आदि:—कमल नैन कन्हर लला, सुन्दर स्यामल गात,
वन ते आत सुरभि सङ्ग, ·····मन मुसकात।
पीत पगा कौनौं झगा, कर वसूम की माल,
नगन जटत कर मुरलिका वाजत सब्द रसाल।

अन्त:—दाऊदी फूली बिमल, अलि मिलि लेत सुवास,
पिय प्यारी मिल आजु ही हिलि मिलि करै विलास।
पाण्डु(५) वेद(४) वसु(८) चंद(१)ये बसत कुम्हेर सुगाम,
केवसुत मोहन रची, फूलमंजरी नाम।

एक फूलमंजरी कवि मतिराम की भी लिखी हुई है जिसको पं० कृष्णविहारी मिश्र जी ने साहित्य समालोचक[3] में सम्वत् १९८५ वि० मे छपवाया था। इसका पाठ उक्त दो फूलमंजरियो से भिन्न है, परन्तु शैली उसकी भी वही है----

आदि:—चम्पक बरनी यों कहे, छूटे वासु सुवास,
चम्पक माल पहरे हिये, तेहि राखे पिय पास।

१—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, सम्वत् १९९४ संस्करण, पृ० १९६ पुरुषोत्तम कवि, रचनाकाल सम्वत् १५५८ वि०।
मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृ० २०२। पुरुपोत्तम बुन्देलखण्डी।

२—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग ३, पृ० ९८३, पुरुपोत्तमराधावल्लभी सम्प्रदाय के। ग्रन्थ, भक्तमाल-माहात्म्य।

३—साहित्य-समालोचक, भाग २, संख्या ५, चैत्र-वैसाख, संवत् १९८५ वि० बसंत।

अन्त—हुकम पाय जहँगीर कौ नगर आगरे धाम,
फूलन की माला करी, मति सों कवि मतिराम।

सन् १६०६, १०, ११, ई० की खोज-रिपोर्ट मे एक कवि मनोहरदास-कृत 'फूलचरित्र' नामक ३१ दोहो के ग्रन्थ का उल्लेख है और एक महाराज सावन्तसिह नागरीदास-कृत 'फूल-विलास' का भी उल्लेख उक्त खोज-रिपोर्ट में है। इस प्रकार हम देखते है कि अनेक कवियो ने 'फूलमजरी' जैसी रचनाएँ की हैं। उपर्युक्त जाँच के बाद लेखक की यही धारणा है कि फूल-मंजरी नन्ददास का कोई ग्रन्थ नहीं है। नन्ददास की शैली देखकर पुरुषोत्तम कवि की फूलमंजरी को किसी प्रतिलिपिकार ने नन्ददास-कृत लिख दिया है।

राजनीति हितोपदेश

तासी, शिवसिंह सेगर और डा० ग्रियर्सन ने नन्ददास-कृत 'राजनीति हितोपदेश' ग्रन्थ का उल्लेख नही किया। इन सज्जनो को छोडकर हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहास-लेखकों ने नन्ददास के इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। नन्ददास-कृत इस ग्रन्थ की सूचना नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट सन् १६०५ ई०, मे दी हुई है। खोज-रिपोर्ट १६०४ ई० मे एक नारायण पण्डित-कृत 'हितोप-देश' की भी सूचना है। इसके बाद सन् १६०६, १०, ११, ई० की खोज-रिपोर्ट मे लल्लूलाल-कृत राजनीति हितोपदेश का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अन्य सालो की रिपोर्टों मे अन्य लेखको के भाषा हितोपदेशो की सूचना भी दी गई है। नारायणपण्डित-कृत हितोपदेश और नन्ददास- कृत हितोपदेश के उद्धरण तो उक्त रिपोर्ट मे दिये है, परन्तु लल्लूलाल-कृत हितोपदेश के उद्धरण नही दिये गये है। उपर्युक्त उद्धरणो के मिलान करने से ज्ञात होता है कि दोनो सूचनाओ मे एक ही प्रकार के उद्धरण है।

खोज-रिपोर्ट सन् १६०४ ई०, नं० ६, नारायण पण्डित-कृत, अनुवाद संस्कृत हितोपदेश —

आदि.—सिद्धि साधु के काज में, सोहर करै कृपाल।
गंग फैन की लीक सी, सिर ससिकला विसाल।

अन्त.—जौ लौं गौरि गिरीस को बढ़त जात नित नेह,
राजनीति यह सिर धरै करै सो राज अछेह।
ज्यौं लौं लक्ष्मी राम उर बसति गगन रविचन्द्र,
तौ लौं नारायण कथा सुने सुजान अनन्द।

खोज-रिपोर्ट सन् १६०५ ई०, नं० ३६। राजनीति हितोपदेश नन्ददास-कृत। लिपि-काल १८४२।

आदि —राजनीति लिख्यते।

सिद्धि साधु के काज में सोहर करै कृपाल।
गंग फेनु की लीक सी, सिर ससिकला विसाल॥

अन्तः——जौं लौं गिरिजा को सदा बढ़त जात नित नेह,
जौ लौं लच्छि मुरारि उर लगी तड़ित ज्यों मेह।
जौ लौं सुर घर कनक गिरि, फिरि सूरज और चन्द,
जौ लौं नारायण कथा सुनै सूजन जन नन्द।

इति श्री हितोपदेशे नन्ददास कृतौ चतुर्थो समाप्त।············सम्वत् १८४२ वि० लिपि-कृत वैष्णव हरिदास जयपुर मध्ये। लिपायतं मीहिलाल जी।

इस रिपोर्ट के साथ एक नोट भी रिपोर्ट के लेखक ने दिया है। उसका आशय है—"मैं नही कह सकता कि यह हितोपदेश उन्ही नन्ददास का है जिनके बहुत से प्रशंसनीय ग्रन्थ हमे मिलते है।"

उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है कि दोनो हितोपदेश एक ही ग्रन्थ है। इन दोनो रिपोर्टो के उद्धरणो के अन्तिम भाग मे किसी 'नारायण' की छाप आती है। लेखक ने मथुरा के पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी के पास एक प्रति 'भाषा हितोपदेश' की देखी है। उसके लेखक है लल्लूलाल जी। उसका पाठ भी उपर्युक्त उद्धरणो से मिलता है। एक ही ग्रन्थ तीन लेखको के नाम से प्राप्त होता है, तब प्रश्न है कि इसका रचयिता तीनो लेखको मे से कौन है। लेखक का अनुमान है कि जो उद्धरण खोज-रिपोर्ट मे मिलते है और जो प्रति पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी के पास है वह भक्तवर नन्ददास की लिखी हुई नही है। संस्कृत हितोपदेश के आरम्भ मे वन्दना रूप मे महादेव जी की कृपा का आवाहन किया गया है, उसी वन्दना के अनुवाद से उपर्युक्त भाषा-उपदेश-ग्रन्थ आरंभ होते है। नन्ददास कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने के बाद की यह रचना नही हो सकती। एक तो नन्ददास इस ग्रन्थ के आदि मे श्रीकृष्ण अथवा, अपने गुरु अथवा किसी अनन्य कृष्ण-भक्त की वन्दना अवश्य देते, सो इस ग्रन्थ मे ऐसा नही है दूसरे, नन्ददास ने जितने ग्रन्थ लिखे है वे या तो कृष्ण-चरित्र से सम्बन्धित है अथवा उनमे किसी न किसी रूप मे कृष्ण-भक्ति का विषय अवश्य जोड दिया गया है। कृष्ण-चरित्र से इतर नन्ददास के सर्वसम्मति से मान्य अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी और रूपमंजरी ग्रन्थ है। परन्तु इनमे भी, जैसा कि लेखक ने इन ग्रन्थो के विवरण मे कहा है, कृष्ण-भक्ति के विषय का लगाव है। लेखक का तो यह विचार है कि कृष्ण-चरित्र अथवा कृष्ण-भक्ति से रहित नन्ददास ने कोई ग्रन्थ लिखा ही नही। कृष्ण-भक्ति-भाव से रहित जो ग्रन्थ नन्ददास के नाम से मिलते है, वे या तो किसी अन्य नन्ददास के है अथवा वे उनके वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहिले के है। सन् १९०५ ई० की खोज-रिपोर्ट के हवाले के आधार पर 'मिश्रबन्धुविनोद' में नन्ददास-कृत राजनीति हितोपदेश का उल्लेख है।[1] परन्तु इसी ग्रन्थ के भाग दो की कवि-नामावली के पृष्ठ १२ पर

१—मिश्रबन्धु-विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ८२४।

हितोपदेशकार नन्ददास के विषय मे लिखा है,—"नन्ददास कदाचित् वृन्दावन वाले।" खोज-रिपोर्ट मे नन्ददास के हितोपदेश से दिये हुये उद्धरणो के अन्तिम छन्द मे 'नारायण' नाम के साथ 'नन्द' नाम भी आता है, नारायणपण्डित-कृत हितोपदेश के 'सुने सुजान अनन्द' पाठ को नन्ददास-कृत बतानेवाले लेखक ने "सुने सुजन जन नन्द" कर दिया है।

वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले नन्ददास पद गाते थे, इस बात का प्रमाण "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" से मिलता है।[1] उनसे यह भी सिद्ध होता है कि नन्ददास बड़े विद्वान् थे। परन्तु वार्ताकार ने वल्लभसम्प्रदाय मे आने से पहले उनको विवेकहीन रूप मे ही चित्रित किया है। हितोपदेश जैसे ग्रन्थ का विवेक रखनेवाला व्यक्ति पूर्ण कवि-कुशल होना चाहिए, परन्तु वार्ताकार ने नन्ददास को ऐसा चतुर और विवेकी नही लिखा। इसलिए यह ग्रन्थ नन्ददास के वल्लभसम्प्रदाय मे आने के पहले का लिखा भी नहीं कहा जा सकता।

उपर्युक्त विचारों के आधार से लेखक इस ग्रन्थ को नन्ददास कृत नही मानता। मिश्रबन्धु-विनोद के आधार पर या तो यह ग्रन्थ वृन्दावनवाले नन्ददास का है अथवा किसी नारायण कवि का अथवा लल्लूलालजी का है।

नासिकेत भाषा (गद्य-ग्रन्थ)

तासी, शिवसिंह सेंगर और जार्ज ए० ग्रीयर्सन ने नन्ददास के ग्रन्थो की सूची मे इस ग्रन्थ का नाम नही दिया। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] और मिश्रबन्धु विनोद मे इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत बताया गया है। इन्ही के आधार पर हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखको ने भी इसे नन्ददास-कृत लिखा है। लेखक ने इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ एक खण्डित और दूसरी पूर्ण, मयाशंकर याज्ञिक संग्रहालय मे देखी है। इनमे से एक प्रति संवत् १८५५ वि० की प्रतिलिपि है और दूसरी मे कोई तिथि नही है। इन दोनो प्रतियो की पुष्पिकाओ मे ग्रन्थकर्ता का नाम स्वामी नन्ददास दिया है। एक मे लिखा है कि नन्ददास ने इस ग्रन्थ का अपने मित्र के कहने से अनुवाद किया। दूसरी मे लिखा है कि स्वामी नन्ददास ने भाषा मे करके अपने शिष्य को सुनाया। जिस प्रति के आधार पर खोज-रिपोर्ट मे विवरण दिया गया है वह संवत् १८१३ वि० की लिपि है। उस प्रति मे भी यही लिखा गया है कि स्वामी नन्ददास अपने शिष्य विप्र से इस कथा को कहते है।

उपर्युक्त तीनो प्रतियो की अन्तिम पुष्पिकाओ मे बहुत पाठ-भेद है। यह भाषा-

---

१—अष्टछाप, काँकरोली, पृष्ठ २२६। गोस्वामी विट्ठलनाथजी की शरण में आने से पहले नन्ददास ने जमुना की स्तुति मे पद गाये थे।

२—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट, सन् १९०९, १०, ११ ई०, नं० १०८ (ए)।

वैषम्य खोज-रिपोर्ट के और याज्ञिक-संग्रहालय की प्रतिलिपियो के नीचे लिखे उद्धरणो से स्पष्ट होगा—

खोज-रिपोर्ट, आदि:—

"सिद्धि श्रीगणेशायनम , अथ नासकेत पुराण भाषा लिप्यते । अर नासकेत कथा कैसी है, बहुत श्रेष्ठ है और सर्व पाप कटत है । सो अब स्वामी नन्ददास जी आप विप्र ने भाषा करि कहत है । सिषि पूछत है । गुसाईं मेरे नासकेत पुराण सुनिवा की अभिलाषा बहुत है । मृने भाषा करि के कहो । मे सहंसकृत समुझ नाही । तदि नन्ददास जी सिखि को कहत है, और अब वैसम्पायन ऋषि राजा जन्मेजय को कहत है ।"

अन्त—

"और अब नन्ददासजी आप सिखन को कहत है, अहो विप्र, तहि राजा जन्मेजय नासकेतु पुराण सुणत ही कृतारथ होन भयो है और नासकेतु पुराण कैसो है, महापवित्र है, जैसे कोई प्राणी एकाग्रचित है करि सुणै पढ़े जो पारग्रामी होय जैसे राजा जन्मेजय पार होत भयो और सहस्र गऊ दिये को फल होय । इति श्री नासकेतु महापुराणे रिष नासकेतु संवादे नाम अष्टादशोध्याय १८ ।"

संवत् १८१३ वि० वर्ष वैशाखे कृस्न पक्षे तिथौ द्वितीयाया भृगुवासरे ।

याज्ञिक संग्रहालय की संवत् १८५५ वि० की प्रतिलिपि से —

"इति श्रीनासकेत पुराने रीषी नासकेत संवादे अष्टादशोध्याय यह कथा जन्मेजय सु कही और भाषा करी स्वामी नन्ददासजी ने अपना मित्र नै कही श्रीमते रामानुजायनम; श्री वासुदेवायनम आदि······"

याज्ञिक संग्रहालय की खण्डित प्रति से —

"इति श्री नासकेत महापुराने रिषि नासकेत संवादे अष्टादशोध्याय १८ । यह कथा रिपि राजा जन्मेजय ने सहसकृती करि कही है, अर भाषा करी स्वामी नन्ददास अपने शिष सूं कहि है । इति नासकेत कथा सम्पूर्ण शुभं ।"

जैसा कि ऊपर कहा गया है, उपर्युक्त उद्धरणो के उल्लेख से यह बात ज्ञात होती है कि स्वामी नन्ददास ने अपने मित्र अथवा शिष्य के कहने से नासिकेतपुराण का हिन्दी मे अनुवाद किया । इस कथन मे नन्ददास के मित्र का उल्लेख यह सिद्ध करनेवाला माना जा सकता है ग्रन्थ अष्टछापवाले नन्ददास का रचा हुआ है । ग्रन्थ के लेखक, नन्ददास के साथ 'स्वामी' शब्द इस गन्थ की सभी प्रतियो मे लगा हुआ है । वल्लभसम्प्रदाय मे'

अष्टछाप कवियो मे केवल चार कवि स्वामी कहलाते है। नन्ददास स्वामी कहलानेवाले उन चार कवियो मे नही हैं। अष्टछापी नन्ददास के प्रामाणिक ग्रन्थों मे भी किसी-किसी हस्त-लिखित प्रति मे नन्ददास का नाम स्वामी नन्ददास दिया हुआ है। सम्भव है कि नन्ददास परम भक्त और पण्डित होने के कारण स्वामी कहलाने लगे हो। इसलिए इस ग्रन्थ मे 'नन्ददास' के साथ 'स्वामी' शब्द का जोड इस बात का बहुत शिथिल प्रमाण है कि ग्रन्थ अष्टछापी नन्ददास-कृत नही है। परन्तु ग्रन्थ-रचना मे मित्र की प्रेरणा का उल्लेख इस ग्रन्थ के लिपिकार ने किया है। कवि के शब्दो मे कही पर भी यह उल्लेख नही है, "मैं अपने मित्र के कहने से इस ग्रन्थ को रच रहा हूँ," जैसा कि कवि ने अपने अन्य ग्रन्थो मे अपने मित्र की आज्ञा का उल्लेख किया है। सम्भव हो सकता है कि किसी व्यक्ति ने नन्ददास के मित्र का हवाला देकर इस ग्रन्थ को उनके नाम से प्रसिद्ध कर दिया हो अथवा किसी अन्य स्वामी नन्ददास की वह रचना हो और भ्रमवश इसे अष्टछापी नन्ददास का समझकर किसी प्राचीन प्रति-लिपिकार ने इसमे मित्र का प्रसङ्ग बढा दिया हो।

पीछे अन्य ग्रन्थो के विवरण मे कहा गया है कि नन्ददास ने कृष्णचरित्र अथवा कृष्णभक्ति से सम्बद्ध विषय ही अपने काव्य के लिए चुने है, कवि ने वे ग्रन्थ भी, जो कृष्ण चरित्र के विषय से दूर, कोष और काव्य-शास्त्र के ग्रन्थ हैं, कृष्णभक्ति के भाव से सम्बद्ध कर दिये है। नासिकेत भाषा मे कृष्ण का कोई चरित्र अथवा कृष्णभक्ति का कोई भाव नही आता। यही बात अष्टछाप के अन्य कवियो पर भी लागू होती है। उन्होने भी अपने काव्य का विषय भगवान् की भक्ति अथवा भगवान की लीला को ही चुना है। इस प्रकार ग्रन्थ मे कृष्ण-चरित्र का अभाव, ग्रन्थ के नन्ददास-कृत होने मे सन्देह उत्पन्न करता है।

यह ग्रन्थ गद्य मे लिखा गया है। नन्ददास के अन्य ग्रन्थ तथा उनके समकालीन सभी अष्ट कवियो के ग्रन्थ पद्य-बद्ध ही मिलते हैं। गद्य मे इस रचना के सिवाय और कोई रचना उनकी नही मिलती। यह भी एक प्रश्न हो सकता है कि नन्ददास ने कृष्ण-भक्ति और लीला का कोई ग्रन्थ गद्य मे क्यो नही लिखा? यदि यह मान लिया जाय कि यह रचना उनके वल्लभसम्प्रदाय मे आने के पहले की है, तो ग्रन्थ मे मित्र का प्रसङ्ग इस विश्वास को पुष्ट नही होने देता। नन्ददास ने अपने जिस मित्र का प्रसङ्ग अपने ग्रन्थो मे दिया है वह भी माधुर्यभाव से भक्ति करनेवाला रसिक व्यक्ति है और उनका सहधर्मी है। इस बात को ध्यान मे रखते हुये यदि इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत माना जाय और मित्र के उल्लेख को भी सही समझा जाय तो यह उनके सम्प्रदाय मे आने के बाद की ही रचना होनी चाहिए। सम्प्रदाय मे आने के बाद नन्ददास की यह धारणा दृढ हो गई थी कि "सुर नर चाम के धाम सब चर्बहि बीच बिकराल"[1] अर्थात् सुर और नर सब नश्वर है, केवल कृष्ण ही सतत है। नन्ददास की इस धारणा की पुष्टि नासिकेत भाषा ग्रन्थ के विषय से नही

१—रूप-मञ्जरी, दोहा १५७, भाई बलदेवदास करसनदास कीर्तनियाँ।

होती। इसलिए यह ग्रन्थ नन्ददास के वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले का भी नही हो सकता।

स्वामी नन्ददास के नाम से प्रचलित नासिकेत पुराण भाषा की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि इसकी भिन्न-भिन्न प्रतियो मे भाषा का बड़ा भारी रूपान्तर है। किसी प्रति मे मारवाड़ी शब्दो का अधिक प्रयोग है तो किसी मे पंजाबी रेख़्ता का। इसमे एक भाषा का नमूना देखना बड़ा कठिन है। भाषा की गहरी दृष्टि से जाँचने के लिए याज्ञिक-संग्रहालय की दोनो प्रतियो से नीचे कुछ और उद्धरण दिये जाते है —

"जदी गाला रीषी कैहैत है, अहो कन्या तेरौ कौन वंश विषै जनम है सो तु मोकूं सती वचन कही। तदी चन्द्रावती कहैती है, गुसाईं जी, हुं राजा रघु की कन्या हूं। तदि गाला रिषी कैहैत है, अहो कन्या यह बात कौं करी सम्भवै। राजा रघु की कन्या बन मे क्यौ फीरति है। जब चन्द्रावती समाचार सारा कहैती है। गुसाईं जी हूँ कँवारी कन्या हूं। गुसाईं जी हुँ माता के गरभ मे पैदा भये पिछै ससार को व्यौहार मै जानु नाही। सो दई गुसाईं जी कौ चरित्र है। ए वचन कन्या का रिषी नै सुना। जदी गाला रिषी कहैत है अहों कन्या तु मेरी धरम की पुत्री है तु चिंता मति करै।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण की भाषा का रूप एक मिश्रित भाषा का सा है जिसमे ब्रजभाषा, मारवाड़ी, पंजाबी, रेख़्ता आदि के शब्दो का प्रयोग हुआ है। शब्दो का रूप बहुत विकृत और अशुद्ध भी है जैसे 'सत्य' अथवा 'सच' के लिए 'सती', 'फिरति' के लिये 'फीरति', 'पीछे के लिये 'पिछै।' इसी प्रति मे 'गुसाईं जी हूँ थां की बात कहूँ' आदि वाक्यो मे 'थाकी' जैसे शब्द मारवाड़ी भाषा के है। 'तदी', 'जदी' शब्द पंजाबी बाँगरू के है। 'एक वचन कन्या का रिषी नै सुना' इस वाक्य मे रेख़्ता भाषा का प्रयोग है। याज्ञिक-सङ्ग्रहालय की दूसरी खण्डित प्रति की भाषा का नमूना इस प्रकार है—

'गालिब रिषी उवाच, जब गालिब रिषी कहत है, अहो, कन्या तेरो कौन बंस विषै जनम भयौ है, सो मोसूं सति वचन कहि। तब चन्द्रावती कहति है गुसाईं जी हू राजा रघु की कन्या हूं। तब गालिब रिषि कहत है, और कन्या यह बात क्यों करि सम्भव है, राजा रघु की कन्या अर बन मैं क्यो फिरति है। जब चन्दावती समाचार पाछिले भानि भाति करि कहति है। गङ्गाजी कौ वा कमल कौ, वा गरभ कौ जा भांति गरभ धारयो सो सगरो समाचार कहति है अरु कह्यौ गुसाईं जी हूं ववारी कन्या ही, गुसाईं जी हूं माता गरभ विषे उतपंनि भई पाछै संसार कौ व्यौहार मैं सुपने हु जान्यो नही सो देव गुसाईं जी कौन चरित्र कीयौ है सोहू न जानूं, ए वचन कन्या के रिषि सुने, जदि गालव रिषि कहत है, अहो कन्या तू मेरी धरम की पुत्री है तू चिन्ता मति करै।'

१—सम्वत् १८५५ की प्रति, तीसरा अध्याय।

इस प्रति के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि भाषा पहली प्रति से अधिक पुष्ट है। इसका रूप अधिकांश मे ब्रजबोली का ही है। ग्रंथ मे कही कही पूर्वी हिन्दी तथा 'जदी' 'कदी' जैसे बाँगरू भाषा के शब्द अवश्य आ गये हैं; परन्तु इस ब्रजभाषा मे भी नन्ददास के अन्य ग्रन्थो की भाषा की छाया किसी मात्रा मे भी नही दिखाई देती। ग्रन्थ की भाषा की इस अव्यवस्थित दशा मे नन्ददास की शब्दावली नही मिल सकती। सम्भव है कि कोई प्राचीन प्रति नन्ददास के समय की अथवा उससे कुछ समय बाद की किसी के पास हो। यदि ऐसी कोई प्रति मिल जाय तो उसकी भाषा की जाँच से कहा जा सकता है कि ग्रन्थ अष्टछापवाले नन्ददास का है। अपनी देखी हुई प्रतियो के आधार पर लेखक का कथन है कि उसे नासिकेत-भाषा ग्रन्थ अष्टछापी नन्ददास-कृत नही प्रतीत होता।

पीछे कहा गया है कि 'नासिकेत-भाषा' ग्रन्थ किसी अन्य नन्ददास का हो सकता है। भक्तमाल मे दो भक्त नन्ददासो का उल्लेख है एक अष्टछापवाले और दूसरे बरेलीवाले नन्ददास। मिश्रबन्धुओ[1] ने 'मिश्रबन्धु-विनोद' मे एक वृन्दावन वाले नन्ददास का भी उल्लेख किया है। बरेली वाले नन्ददास की किसी रचना का उल्लेख किसी भी इतिहासकार ने नही किया। सम्भव है कि स्वामी नन्ददास, वृन्दावन वाले ने, जो स्वामी कहलाते होगे, इस ग्रन्थ की रचना की हो। मिश्रबन्धुओ ने नन्ददास-कृत कहे जानेवाले राजनीति हितोपदेश ग्रन्थ को इन्ही वृन्दावन वाले नन्ददास-कृत बताया है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट को छोड कर किसी भी ऐतिहासिक अथवा हिन्दी काव्य-सङ्ग्रह-ग्रन्थ मे नन्ददास के 'रानी माँगो' ग्रन्थ का उल्लेख नही हुआ है।

रानी माँगो

खोज-रिपोर्ट[2] के विवरणकार ने इसकी रचना तथा लिपि के काल को अज्ञात लिखा है। इस पुस्तक के अधिकारी का पता रिपोर्ट मे इस प्रकार दिया हुआ है। "ग्राम राटौटी, डाकखाना होलीपुरा, जिला आगरा निवासी ठाकुर प्रतापसिंह।" उक्त रिपोर्ट मे जो उद्धरण दिये गये है वे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं--

आरम्भ --अथ रानी मंगो लिख्यते।

मै जुवति जाचन व्रत लीन्हों।
जहि जहि जौनि जाउँ तहि तहि अंक भुजा पर दीन्हों।
पुरुष जाति ही हों दान मान देति जनम नेक न हैरों।
केसरि वलय महावरि मण्डित इनको अलप न फेरौं।
राजसिंहासन हय रथ हाथी ल्यो नहि नटवर कोट।
अँगिया, उडिया, लहङ्गा मुदरी इनको मेरे कोट।

१—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, कवि नामावली, पृ० १२।

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९२९ : ३१ ई०, नं० २४४ (आइ)।

सिंह सुता बैकुण्ठ की रानी मङ्गति मुकतिक कर बरषै ।
जिके चित यह होत अजाची जाचिय जुग जुग हरपैं ।
जाचिग सकल जगत कवला को, किरतघ्नी कृत न मानै ।
वार मुखी को बेटा मानो पिता नही पहिचानै ।
पारवती रति को अति प्यारी, सदा रहै अरधाङ्गी ।
ब्रतमानी जग मङ्गल माता अनन्त पुत्र जिन जानि ।
प्यारा पुसनी जठरा कीरति सुमित बेद पुरान बखानि ।
पुत्र भाई परसोत्तम जांच्यो संख चक्र गदा पानी ।
अदित उधार सची नीधी सोभा सति रूपा ससि रानी ।

अन्त:—आठ आठ झुमवा चहौं फैरै मानो कुमुदनी फूली अरध मुख हेरैं ।
जुय जुय चहुँ फेरै धनी में कफसो सुन्दरि बनि ।
तबहिते आनन्दराम सावधान भये मोहन दानी खोरि खांबरी
मोहन रोकि ललिता सखि पहली ही रोकी ।
अहो मारग माँझ कोन तुम डारै बृषभानु गोपि ते नाहिन डरै,
अरी वृपभान गोप को कहा डर मानौ, दानी दान ल्यो सब जानि ।
अहो बहुत भाँति के दान कहावै, तुम कौन भाँति के दानी ।
आये एक गहन बेद बलि भो जल में पीसि लोक सब देइ
एक अमखस संकई मंगै, अगर सिरी अपने पद रज इनकी प्यारी रानी मंगौ ।
नन्ददास ।

खोज-रिपोर्ट के इन उद्धरणों के अतिरिक्त सम्पूर्ण ग्रन्थ लेखक के देखने मे नही आया, फिर भी यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत है अथवा नही, इस बात के विवेचन के लिए उपर्युक्त उद्धरण पर्याप्त है। खोज-रिपोर्ट मे इस ग्रन्थ के विपय का परिचय देते हुये रिपोर्टकार ने लिखा है,—"इसमें कृष्ण राधिका के प्रेम-चरित्र का वर्णन है। कूवरी को ध्यान मे रखकर कृष्ण पर बड़े मनोहर उपालम्भ किये गये है।" ऊपर दिये हुये उद्धरणो के आधार से भी ग्रन्थ के विपय का अनुमान सहज ही मे लग जाता है कि इसमे राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओ के अन्तर्गत दानलीला का वर्णन है। परन्तु रिपोर्टकार ने जिस 'मनोहरता' का उल्लेख किया है उसका परिचय इन उद्धरणो मे नही मिलता। इनकी भाषा-पद-रचना और भावो के व्यक्त करने की शैली से प्रतीत होता है कि इनका लेखक कोई साधारण, अनपढ कवि है। इन उद्धरणो की भाषा की गठन शिथिल, शब्दो के रूप विकृत, पदों मे लय की कमी, वाक्यो मे भावो की अस्पष्टता आदि दोष स्पष्ट रूप से पाठक को दीखते है। नन्ददास के पदो मे तथा छन्दो मे जो भाव और भाषा का सौंदर्य

है इन उद्धृत पंक्तियों मे नही है। दानलीला पर नन्ददास के पद अनेक छपे हुये तथा हस्तलिखित कीर्तन-संग्रहो मे मिलते है। उनमे यद्यपि कहीं-कही भाषा का दोष है, परन्तु फिर भी भाव की उत्कृष्टता और लय का माधुर्य सर्वत्र मिलेगा। उन पदो मे से दो पद मिलान के लिए नीचे दिये जाते है। जिससे ज्ञात होगा कि दोनो रचनाओ मे कितना अन्तर है—

राग बिलावल

अहो, तोसों नन्द लाड़िले झगरूँगी।
मेरे संग की दूरि जाति हैं, मटुकि पटकि के डगरूँगी।
भोर ही ठाढ़ी कित करी मोकों, तुमें जानि कछू काज न करूँगी।
तुम्हरे संग सखन के देखत, अब ही लाड़ उतारि धरूँगी।
सूधे दान लेहु किन मौपै और कहा कछु पाय परूँगी।
नन्ददास प्रभु कछु न रहेगी, जब बातन उघरूँगी।[1]

राग टोड़ी

गिरधर रोकत पनघट घाट।
जमुना जल जो भरि भरि निकसे, डारि काँकरी फोरत माट।
नख सिख ते सब अङ्ग भीजत, तब कहत बचन के साट।
नन्ददास प्रभु भले पढ़े हो, यहि विधि को आवै या बाट।[2]

'रानी माँगो' के उपर्युक्त उद्धरण की इस पंक्ति मे 'तबहि ते आनन्दराम साव-धान भये', 'आनन्दराम' नाम आता है। नन्ददास-नाम की छाप कही नही आती। लेखक का विचार है कि यह पुस्तक किसी आनन्दराम की बनाई हुई है। मिश्रबन्धु-विनोद मे एक आनन्दराम कवि का उल्लेख है[3] जिसमे उक्त कवि का रचनाकाल सन् १६०१ ई० की खोज-रिपोर्ट के आधार पर सं० १७२७ वि० दिया गया है और वह कवि भगवद्गीता भाषा का रचयिता कहा गया है। सम्भव है, 'रानी माँगो' के यही 'आनन्दराम' कवि रचयिता हो। 'रानी माँगो' से रिपोर्ट मे जो उद्धरण दिये गये है उनके आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ नन्ददास-कृत नही है।

नन्ददास-ग्रन्थावली की भूमिका मे भी श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने नागरी-प्रचारिणी-सभा के खोज-रिपोर्टकार की त्रुटि बताते हुये कहा है,—"रिपोर्टर महोदय ने पुष्पिका का संक्षिप्त

१—कीर्तन-संग्रह, भाग १, देसाई, पृ० २१६।
२—कीर्तन-संग्रह, भाग १ देसाई, पृ० २३४।
३—मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ६२२।

रूप 'रानी माँगौ' देकर नन्ददास शब्द बढ़ा दिया है जो स्पष्ट ही निराधार है।'' शुक्ल जी ने 'रानी माँगो' का रचयिता कोई राधावल्लभीय लेखक माना है।

प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक

इस ग्रन्थ का उल्लेख केवल तासी महोदय ने किया है। लेखक के देखने मे यह ग्रन्थ नही आया। उसका अनुमान है कि यह ग्रन्थ अष्टछापी नन्ददास का नही है।

ज्ञानमञ्जरी

इस ग्रन्थ को मिश्रबन्धु-विनोद मे नन्ददास-कृत कहा गया है।[1] लेखक के देखने मे यह ग्रन्थ भी नही आया। ज्ञात होता है, मिश्रबन्धुओ के कथन के आधार पर ही, पण्डित रामचन्द्र शुक्ल आदि इतिहासकारो ने इस ग्रन्थ को नन्ददास-कृत लिख दिया है। नन्द दास की केवल पंच मजरी ही प्रसिद्ध है जिनमे ज्ञान मंजरी नही है। वल्लभ सम्प्रदायी संग्रहालयों मे यह ग्रन्थ प्राप्य नही है।

विज्ञानार्थ-प्रकाशिका

इसका उल्लेख भी उक्त मिश्रबन्धु-विनोद मे ही हुआ है। लेखक को यह ग्रन्थ भी प्राप्त नही हो सका। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल जी ने मिश्र-बन्धुओ का ही अनुकरण किया है। लेखक के विचार से यह ग्रन्थ नन्ददास का नही है।

पनिहारिन-लीला

इस ग्रन्थ का उल्लेख पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी को छोड़कर किसी भी लेखक ने नही किया। लेखक ने चतुर्वेदी जी से इस ग्रन्थ का परिचय पूछा। उनका कहना है कि उन्होने इस ग्रन्थ को एक वैष्णव के पास देखा है और वह नन्ददास-कृत है। ग्रन्थ के अभाव मे इसके विषय मे कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेखक का अनुमान है कि यह कोई महत्व का ग्रन्थ नही होगा। सम्भव है कि यह पनघट लीला का कोई लम्बा पद या पद-सग्रह हो।

रासलीला

नन्ददास के नाम से काँकरौली विद्या-विभाग पुस्तकालय मे वस्ता नं० १७/५/२ मे लेखक ने 'रासलीला' नामक पुस्तक देखी थी। इसमे दोहा, ढाल, चौपई, फिर दोहा इस प्रकार के क्रम से छन्द है; भाषा इसकी बहुत शिथिल है। इसमे कोई सवत् नही है। इसी छोटी सी पुस्तक का उल्लेख श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने नन्ददास ग्रन्थावली की भूमिका मे भी किया है। उसमे उन्होने, काँकरौली विद्या-विभाग से प्राप्त उक्त प्रति ही के आधार से, कुछ उद्धरण भी दिये है। शुक्ल जी ने इस लीला की भाषा-शैली, तथा नन्ददास के अन्य ग्रन्थो मे प्रयुक्त भाषा तथा काव्य-उक्तियो का मिलान करके इसको नन्ददास-कृत नही माना।[2]

नन्ददास ने रासलीला का तीन ग्रन्थो मे वर्णन किया है, 'रास पञ्चाध्यायी, दशम

१—मिश्रबन्धु-विनोद, द्वितीय संस्करण, १९२६ ई०।

२—नन्ददास, ग्रन्थावली, भूमिका, पृष्ठ २३-२४।

स्कन्ध भाषा', तथा 'सिद्धान्त पञ्चाध्यायी ।' चौथे, उन्होने अन्य अष्ट कवियो की तरह, पदो मे भी गोपी-कृष्ण-रास का चित्रण किया है। वल्लभसम्प्रदायी नित्य तथा वर्षोत्सव कीर्तन-संग्रहो मे इस विषय के नन्ददास-कृत बहुत से पद मिलते है। अष्ट कवियो के लम्बे पदों को भी, जैसा कि पीछे कहा गया है, लोगों ने अलग से लिखकर स्वतन्त्र ग्रन्थ का नाम दे दिया है। कृष्ण जन्माष्टमी के, नन्ददास-कृत पदो मे एक बड़ा पद है—'ऐरी सखी प्रकटे कृष्ण मुरारि,'[1] इसको यदि अलग से लिख दिया जाय तो नन्ददास का इसे भी, उक्त रास-लीला की तरह, एक ग्रन्थ कह सकते है। सूरसागर के पदों से तो इससे भी बड़े अनेक ग्रन्थ निकाले जा सकते है। लेखक के भी विचार से यह 'रासलीला' नन्ददास-कृत नहीं है। सम्भव है, यह किसी अन्य नन्ददास नामक कवि की हो; और यदि इसमे आनेवाली नन्ददास की छाप के आधार से हम इसे नन्ददास-कृत ही कहे तब भी यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है, एक लम्बा पद मात्र है। छपे हुए कीर्तन-सङ्ग्रह, तथा श्री जवाहरलाल जी से प्राप्त लेखक के पास नन्ददास के एकत्र पदो मे उक्त रासलीला का पद नही है। इस पद मे दो बार नन्ददास की छाप है और दोनो स्थानो पर 'नन्ददास दयाल' की छाप है। इसलिए यह ग्रन्थ अष्टछापी नन्ददास का नही है।

बाँसुरी लीला तथा अर्थ-चन्द्रोदय (पद्य-बद्ध शब्दकोश)

इन दो ग्रन्थो की सूचना श्री उमाशङ्कर शुक्ल ने नन्ददास-कृत ग्रन्थावली मे दी है। शुक्ल जी ने ये ग्रन्थ देखे नही हैं, और उन्होंने इन ग्रन्थो के नन्ददास कृत होने मे सन्देह भी प्रकट किया है। लेखक के देखने मे भी ये ग्रन्थ नही आये। इसलिए इनके विषय मे कुछ नही कहा जा सकता।

नन्ददास की पदावली

पीछे दिये हुये ग्रन्थों के अतिरिक्त नन्ददास के बहुत से पद भी मिलते हैं। वार्ता के कथन से यह सिद्ध ही है कि नन्ददास जी भी एक उच्च कोटि के गायक थे और पद-रचना करके उन्हे गाते थे। अन्य अष्टछाप कवियो के पदों की तरह इनके पद भी वल्लभ-सम्प्रदायी 'नित्य कीर्तन', 'वर्षोत्सव कीर्तन' 'वसन्त धमार कीर्तन', 'रागरत्नाकर' तथा कृष्णानन्द व्यास जी के 'राग-कल्पद्रुम' मे मिलते हैं। ये सभी ग्रन्थ, जैसा कि पीछे कहा गया है, प्रकाशित हो चुके है, नन्ददास के पद भी वल्लभसम्प्रदायी सेवा-विधि के अनुसार मन्दिरों मे गाये जाते है, उक्त कीर्तन-ग्रन्थो के अतिरिक्त नन्ददास के कुछ स्फुट पद पुष्टिमार्गीय कीर्तनियाँओ के पास भी है।

उपर्युक्त छपे ग्रन्थो के आधार से तथा फुटकर रूप से मिलनेवाले पदो को लेकर श्री पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी जी ने नन्ददास के पदो का एक संग्रह तैयार किया है। चतुर्वेदी जी का कहना है कि उनके संग्रह मे नन्ददास के ७०० पद हैं। इसी संग्रह के लगभग २०० पद लेखक के पास हैं। इधर 'नन्ददास' ग्रन्थ मे श्री उमाशङ्कर शुक्ल जी ने कुछ पं० जवाहर लाल के संग्रह से प्राप्त तथा कुछ मयाशङ्कर याज्ञिक-सग्रहालय से प्राप्त नन्ददास के २८३ पद

१—कीर्तन-सङ्ग्रह, भाग १, पृष्ठ ७४, लल्लूभाई छँगनलाल देसाई।

प्रकाशित किये है[1]। वर्षोत्सव आदि कीर्तन-संग्रहो की हस्तलिखित प्रतियाँ वल्लभसम्प्रदायी कई मन्दिरो मे लेखक ने देखी, परन्तु अन्य अष्टछाप के कवियो के पद-संग्रह के समान नन्ददास के पदों का कोई बृहत् संग्रह देखने को नही मिला। नाथद्वार तथा कांकरौली विद्या-विभाग मे भी लेखक ने नन्ददास के पदो का कोई अच्छा संग्रह नही देखा। कांकरौली मे दो पोथियो मे उसे अलग से लिखे नन्ददास के पद मिले।

पोथी न० ४२/६ कांकरौली:—इस पोथी मे नन्ददास के लगभग ४० पद है। पोथी नं० १६/७ मे भी कवि के लगभग ४० ही पद है जो विषय के अनुसार विभाजित है।

मयाशङ्कर याज्ञिक संग्रहालय मे नन्ददास के ग्रन्थों का तो एक महत्वशाली सग्रह है, परन्तु उनके पदों का वहाँ भी लेखक ने कोई महत्वपूर्ण संग्रह नही देखा। वहाँ हस्त-लिखित रूप मे नन्ददास के पद, अष्टछाप तथा अन्य वैष्णव कवियो के पदो के साथ मिले हुये मिलते है। याज्ञिक संग्रहालय मे नन्ददास के प्राप्य पदो का ब्योरा श्री उमाशङ्कर शुक्ल जी ने अपने ग्रन्थ 'नन्ददास' मे दिया है।[2]

नन्ददास के थोड़े से पदो को छोडकर, उनकी सब पदावली का अभी तक कोई प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित नही हुआ। परन्तु जो पद प० जवाहरलाल चतुर्वेदी ने सग्रह किये है, जो 'नन्ददास' ग्रन्थ मे छपे है और जो लेखक के पास संगृहीत है, वे पाठभेद से नन्ददास द्वारा ही लिखित पद है। नन्ददास ने उन पदों को किसी एक समय मे नही लिखा। अपने साम्प्रदायिक सम्पूर्ण जीवन मे उन्होने इन्हे लिखा था। वार्ता मे दी हुई उनकी जीवनी से यह बात सिद्ध है। पीछे दिये हुये विवेचन के आधार पर नन्ददास के निम्निलिखित ग्रन्थो को लेखक प्रामाणिक मानता है—

नोट:—मथुरा मे लेखक को ज्ञात हुआ था कि गोकुल के श्री जमुनादास कीर्तनियाँ के पास नन्ददास के पदों का एक बृहत् संग्रह है। गोकुल मे बहुत परिश्रम करने पर भी उसे वे पद उक्त सज्जन से देखने को न मिल सके। वहाँ अन्यत्र कुछ और कीर्तनियाँओं के पास उसे कई कीर्तन-संग्रह देखने को मिले, परन्तु उनमे सभी अष्टछाप के पद छपे कीर्तनों की तरह मिले-जुले थे। उनमें से एक संग्रह लेखक के पास है।

१—इन प्रकाशित पदों के विषय में श्री उमाशङ्कर शुक्ल जी कहते है—"जो पद पोथियों में मिले भी, उनमें पाठ की गडबड़ी इतनी अधिक मिली कि उनका सम्पादन नहीं हो सका। अतएव मूलपाठ मे केवल ३५ पद दिये गये है, अवशिष्ठ २४८ पद परिशिष्ट (ग) में संगृहीत हैं।" 'नन्ददास', भूमिका, पृष्ठ ८६, शुक्ल।

२—'नन्ददास', शुक्ल, भूमिका, पृ० ८५।

और काव्य की दृष्टि से ये ग्रन्थ रस शास्त्र के अंग नायक-नायिका-भेद तथा भाषा की शक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। शेष और सब ग्रन्थ कृष्णलीला से सम्बन्ध रखते है। वैसे नन्ददास के सभी ग्रन्थ कृष्ण-भक्ति अथवा कृष्ण-चरित्र से लगाव रखते है।

नन्ददास के ग्रन्थ उनके विषयानुसार निम्नलिखित चार वर्गों मे रखे जा सकते है—

१—कृष्ण-लीला के प्रसङ्गो से सम्बन्धित—रास पञ्चाध्यायी, भँवरगीत, श्यामसगाई, गोवर्द्धन-लीला, दशम स्कन्ध भाषा, रुक्मिणी-मङ्गल और पद।

२—कृष्ण-भक्ति, तथा कृष्ण-चरित्र से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य व्यक्तियो के प्रसङ्गो से युक्त—रूप मंजरी, विरह मंजरी, सुदामा-चरित्र और पद।

३—कृष्ण-भक्ति और कवि के आचार्यत्व के द्योतक ग्रन्थ अथवा रस रीति और भाषा ग्रन्थ—मान मंजरी, अनेकार्थ मजरी और रस मंजरी।

४—कृष्ण-भक्ति के प्रकीर्णक विषयो से सम्बन्धित रचना, इस वर्ग के अन्तर्गत उनके सिद्धान्तात्मक ग्रन्थ और गुरु-महिमा, नाम-महिमा, विनय आदि के स्फुट पद है—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, और पद।

नन्ददास के ग्रन्थों का काल-क्रमानुसार वर्गीकरण

नन्ददास की रचनाओ का निश्चय रूप से काल-क्रम निर्धारित करना कठिन है। नन्ददास ने अपने ग्रन्थो मे कही भी रचना का संवत् नही दिया। कतिपय विद्वानो के कथनानुसार नन्ददास ने कुछ ग्रन्थो की वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले रचना की। लेखक का विचार है कि जिन ग्रन्थो को पीछे प्रामाणिक रूप से नन्ददास कृत माना गया है वे सब कवि ने वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने के बाद मे ही लिखे थे। 'अष्टसखान की वार्ता' मे लिखा है कि नन्ददास वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से पहले रामानन्दी सम्प्रदाय मे थे। उपर्युक्त सम्पूर्ण ग्रन्थो का विषय कृष्णभक्ति से सम्बन्ध रखता है। इससे यही अनुमान होता है कि ये रचनाएँ सम्प्रदाय बदलने के बाद में ही कवि ने की। जिन ग्रन्थो मे नन्ददास ने अपने रसिक मित्र का हवाला दिया है वे निश्चयात्मक रूप से वल्लभ-सम्प्रदाय मे आने से बाद की ही रचनाएँ है, इसका प्रमाण यह है कि वह मित्र भी कवि द्वारा कृष्ण-लीला सुनने का इच्छुक, एक रसिक भक्त कहा गया है। इसके अतिरिक्त नन्ददास के इन १३ ग्रन्थो मे तथा पदावली मे वल्लभ-सम्प्रदायी भक्ति और सिद्धान्तो का किसी न किसी अंश मे कथन अवश्य हुआ है, जिसका स्पष्टीकरण लेखक ने प्रत्येक ग्रन्थ के विवरण के साथ किया है।

'अष्टसखान की वार्ता' के आधार से पता चलता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय मे जाने से

पहले नन्ददास जी पद बनाकर गाते थे,[1] और उन्हे नाचने-गाने का वड़ा शौक था। परन्तु इस वार्ता में उनके किसी ग्रन्थ रचने का उल्लेख नहीं है। इस प्रकार नन्ददास के जितने ग्रन्थ लेखक ने प्रामाणिक माने है, उन सब को, कवि के वल्लभ-सम्प्रदाय मे जाने के बाद की ही रचना माना है। अब प्रश्न यह होता है कि कवि ने इन ग्रन्थो को किस क्रम से लिखा। पदो के विषय मे तो हम कह सकते हैं कि वे एक समय पर नही लिखे गये; कुछ पद, जैसा कि 'अष्टछाप वार्ता' में लिखा है, वल्लभ-सम्प्रदाय मे जाने के पहले भी वनाये गये होगे। बाकी पदो को नन्ददास साम्प्रदायिक सेवा-विधि के अनुसार समय-समय पर जीवन पर्यन्त बनाते रहे। कवि ने किसी भी ग्रन्थ मे ग्रन्थ का रचनाकाल नहीं दिया, इसलिए निश्चित रूप से रचनाकाल-क्रम का निर्धारण करना कठिन है। ग्रन्थों की रचनाशैली, भावगाम्भीर्य और भाषा-विचार के आधार पर इस विषय में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

नन्ददास जी सवत् १६१६ वि० के लगभग वल्लभ-सम्प्रदाय मे प्रविष्ट हुये और इसके वाद कुछ समय तक उन्होने साम्प्रदायिक ग्रन्थो का अध्ययन और अपने समकालीन सम्प्रदायी तथा अन्य सम्प्रदायी सन्तों का सत्सङ्ग किया। नागरी प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्ट[2] मे नन्ददास के 'मान मजरी' तथा 'अनेकार्थ मंजरी' दोनो ग्रन्थो का रचना-काल संवत् १६२४ वि० दिया हुआ है। खोज-रिपोर्ट मे दिए हुये इस संवत् को उक्त ग्रन्थों का, निश्चयात्मक रूप से, रचनाकाल नही मान सकते, क्योकि नन्ददास की 'मान मजरी' अथवा 'अनेकार्थ मंजरी' की किसी भी प्राचीन प्रति के पाठ मे रचना-काल का संकेत, लेखक के देखने मे नही आया। 'नाम माला' अथवा 'मान मंजरी' ग्रन्थ के आरम्भ मे कवि ने अपने गुरु के चरण-कमल और कृष्ण के कमल-नेत्रों की वन्दना की है और कृष्ण-रूप गुरु का स्थान गोकुल वताया है।[3] श्री विट्ठलनाथ जी अपनी सम्प्रदायी गद्दी पर बैठने के बाद अधिकतर गोकुल मे ही रहा करते थे, परन्तु परिवार-सहित वे अडेल से व्रज-गोकुल मे सवत् १६२३ वि० मे आये। वहाँ कुछ महीने रहने के बाद मथुरा चले गये और संवत् १६२८ वि० तक वही रहे। संवत् १६२८ वि० मे ही विट्ठलनाथ जी ने गोकुल को स्थायी रूप से अपना निवास-स्थान बनाया। यदि 'गोकुल जाको ऐन' का अर्थ कृष्ण और कृष्ण-रूप श्री विट्ठलनाथ जी, दोनो के अर्थ मे लेते हुये यह करे कि वे गोकुल मे स्थायी रूप से रहते हैं तब तो यह रचना संवत् १६२८ वि० के बाद की होनी चाहिए और यदि साधारण रूप से कहे कि "गोकुल जिसका स्थान है" उस दशा मे इस ग्रन्थ का कोई रचना-काल सं० १६२३ के बाद लगभग सं० १६२४ हो सकता है।

१—अष्टछाप, काँकरोली, पृष्ठ, ३३६-३३७।

२—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट सन् १९०३ ई०, नं० १५३, अनेकार्थ नाम माला।

३—तन्नमामि पद परम गुरु, कृष्ण कमल दल नैन।
जगकारण करुणार्णव, गोकुल जाको ऐन।
नाममाला, लहरी प्रेस, बनारस, १९१४ संस्करण, दोहा १।

लेखक का विचार है कि नन्ददास ने पहले 'रस मंजरी' की रचना की, क्योंकि कवि ने उस ग्रन्थ के आदि मे लिखा है,—"संसार मे जो रूप,[1] जो प्रेम और आनन्द-रस विद्यमान है वह सब श्रीकृष्ण से ही प्रसूत है। और प्रेम-तत्त्व को मनुष्य तब तक नही समझ सकता जब तक कि वह प्रेम के भेदो को नही जानता। प्रेम-तत्त्व के भेदो को जाने बिना प्रेम का 'परिचय' (अनुभव) नहीं हो सकता। इसलिए मैं, हे मित्र! तुम्हे, रस-मंजरी सुनाता हूँ।" प्रेममार्गीय मित्र के और अपने प्रेम परिचय के लिए नन्ददास ने रस-मंजरी ही पहला ग्रन्थ लिखा होगा। अपनी काव्य-रचना के आरम्भिक काल मे नन्ददास ने संस्कृत ग्रन्थो का सहारा लिया। कवि ने लिखा है कि वह 'अनेकार्थ' और 'नाममाला' ग्रन्थो को अपने मित्र की जानकारी के लिए लिख रहा है। परन्तु हम यह भी कह सकते हैं कि मित्र की ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ अपने ज्ञान का उत्कर्ष भी नन्ददास ने इन दो ग्रन्थो को लिखकर बढाया था। इसके बाद जब कवि ने मित्र को भाषा और प्रेम के तत्वो का ज्ञान करा दिया, तब उसने कृष्ण के लीलात्मक ग्रन्थों को लिखा। लीलात्मक ग्रन्थो मे पहले 'दशम स्कन्ध', श्याम-सगाई' और 'गोबर्द्धन-लीला' ग्रन्थ लिखे जान पडते है। इन ग्रन्थों की भाषा-शैली बहुत प्रौढ नहीं है, कथानक मे न तो वर्णन अधिक है और न भाव-प्रदर्शन का उत्कर्ष ही अधिक है। 'दशम स्कन्ध' पर तो श्रीधर स्वामी के प्रभाव की भी छाप है, जिससे अनुमान होता है कि भागवत की 'सुबोधिनी' टीका के प्रभाव मे आकर भी कवि, 'श्रीधर स्वामी की टीका के जिसको उसने सम्प्रदाय मे आने से पहले पढा होगा, भावो का किसी हद तक पक्षपात नही छोड सका है। इसलिए ये रचनाएँ भी आरम्भिक काल की ही होनी चाहिए।

उक्त ग्रन्थो के रचने के अनन्तर कवि की ख्याति फैली होगी जैसा कि 'अष्टसखान' की तथा अष्टछाप वार्ताओ से प्रकट है और फिर तभी कवि की प्रतिभा का विकास उत्तरोत्तर होता

१—ऐसेई रूप प्रेम रस जो है, तुम ते है तुम ही कर सोहै। ७
रूप प्रेम आनन्द रस, जो कछु जग में आहि।
सो सब गिरिधर देव को, निधरक बरनों ताहि। ८

× × ×

अरु जु भेद नायक के गुने, तेऊ में नीके नहिं सुने।
हाव भाव हेलादि जिते, रति समेत समझावहु तिते।
जब लग इनके भेद न जाने, तब लगि प्रेम तत्व नहीं आने।

× × ×

बिन जाने यह भेद सब प्रेम न परिचय होय।
चरण हीन ऊँचे अचल, चढत न देख्यो कोय।
'नन्ददास', शुक्ल रसमञ्जरी पृ० ३९।

गया होगा। इसके बाद कवि ने 'विरहमंजरी', 'रूपमंजरी', लिखी। इन दोनो ग्रन्थो की भाषा, और भाव-व्यंजना की शैली, पीछे कहे हुये ग्रन्थो से अधिक प्रौढ है। परन्तु इन ग्रन्थो मे भी 'रीति' प्रणाली का प्रभाव विद्यमान है। इसके बाद कवि ने रोला छन्दो मे 'रुक्मिणी-मङ्गल' ग्रन्थ लिखा होगा। इसमे भाषा की गठन अधिक प्रौढ और भावव्यंजना अपेक्षाकृत अधिक कवितामय है। लेखक का अनुमान है कि 'रुक्मिणी-मङ्गल' के बाद कवि ने, 'रास पंचाध्यायी', 'भँवरगीत' और 'सिद्धान्त-पंचाध्यायी' की रचना की, क्योकि इनकी भाषा, विचार और भाव सभी प्रौढ है और वर्णन-शैली भी अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। उपर्युक्त कथन के आधार पर नन्ददास के ग्रन्थ, रचना के काल क्रमानुसार, नीचे लिखे क्रम मे रखे जा सकते है—

१—रस-मजरी।
२—अनेकार्थ मंजरी।
३—मान-मंजरी।
४—दशम स्कन्ध।
५—श्याम-सगाई।
६—गोवर्द्धन-लीला।
७—सुदामा-चरित्र।
८—विरह-मंजरी।
९—रूप-मंजरी।
१०—रुक्मिणी-मङ्गल।
११—रास-पंचाध्यायी।
१२—भँवरगीत।
१३—सिद्धान्त पंचाध्यायी।

चतुर्भुजदास की रचना

चतुर्भुजदास के अध्ययन की आधारभूत सामग्री तथा लेखक की खोज के आधार से अष्टछापी चतुर्भुजदास के नाम पर दी जानेवाली निम्नलिखित रचनाएँ है, जिनकी प्रामाणिकता पर नीचे की पङ्क्तियों मे विवेचन किया जायगा—

१—मधुमालती।
२—भक्ति-प्रताप।
३—द्वादश यश।
४—हितजू को मङ्गल।
५—चतुर्भुजदास के छपे कीर्तन-संग्रहो मे पद।
६—कांकरौली तथा नाथद्वार से लेखक को हस्तलिखित रूप मे प्राप्त पद-संग्रह।

मधुमालती ग्रन्थ के अष्टछापी चतुर्भुजदास-कृत होने का उल्लेख मिश्रबंधुओं ने नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट[1] के आधार से किया है। प्रेममार्गीय कवि मझन-कृत एक

१—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९०२, नं० ४४, तथा १९२२–२४, नं०४

मधुमालती

'मधुमालती' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। मधुमालती के एक रचयिता चतुर्भुजदास कायस्थ का भी उल्लेख खोज रिपोर्ट[1] मे तथा मिश्रबन्धु-विनोद[2] मे आता है। मधुमालती की कथा की एक पद्यबद्ध खण्डित प्रति मयाशङ्कर याज्ञिक-संग्रहालय मे भी है, परन्तु प्रति खण्डित होने के कारण उसके रचयिता का नाम ज्ञात नही होता। इस प्रति की भाषा-शैली इस बात को स्पष्ट बताती है कि यह ग्रन्थ अष्टछाप के चतुर्भुजदास का नही है। उक्त उल्लेखों के अतिरिक्त अन्य किसी मधुमालती नामक ग्रन्थ के रचयिता का नाम सुनने अथवा किसी इतिहास-ग्रन्थ मे देखने मे नही आता। लेखक को यह ग्रन्थ प्राप्त नही हुआ। इसलिए ग्रन्थ की अन्तरङ्ग परीक्षा तो हो ही नही सकती; परन्तु लेखक का अनुमान है कि अष्टछापी चतुर्भुजदास ने इस नाम का कोई ग्रन्थ न लिखा होगा। पीछे कहा जा चुका है कि अष्टछाप का काव्य कृष्ण चरित्र अथवा कृष्ण-भक्ति को छोडकर किसी भी लौकिक विषय अथवा नायक के चरित्र से सम्बन्ध नही रखता। अपने गुरु और गुरुवंश का वर्णन उन्होने अवश्य किया है, परन्तु उन्होने गुरु और गुरु के वंशज, दोनों को अभौतिक विभूतियां हो मानकर ऐसा किया है। मधुमालती के शीर्षक से ज्ञात होता है कि मंझन की मधुमालती के कथानक की तरह इसका विषय भी लौकिक ही होगा। वल्लभ-सम्प्रदायी संग्रहालयो मे भी यह ग्रन्थ नही मिलता। यह ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास-कृत नही कहा जा सकता।

भक्ति-प्रताप

अष्टछाप के चतुर्भुजदास द्वारा रचित, 'भक्ति-प्रताप' नाम का कोई ग्रन्थ लेखक के देखने मे नही आया। कवि के प्राप्त पदो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसने 'भक्तन की लीला', 'भक्तन की प्रार्थना', 'आसक्त की अवस्था', 'भक्तन की आसक्ति को वर्णन' आदि विषयों पर भक्ति-सम्बन्धी अनेक पद लिखे है। इससे अनुमान हो सकता है कि 'भक्ति-प्रताप' शीर्षक के अन्तर्गत इनके ऐसे ही कुछ पद कही एकत्र होगे। परन्तु जब तक ग्रन्थ देखने को न मिले तब तक उसके विषय मे केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

हित हरिवंश जी के शिष्य एक चतुर्भुजदास भक्ति कवि और हुये है जिनका उल्लेख अष्टछापी चतुर्भुजदास की जीवन चरित्र-सामग्री के विवेचन मे पीछे हो चुका है। नाभादास जी ने हित सम्प्रदायी चतुर्भुजदास के विषय मे लिखा है कि इन्होने 'भक्ति-प्रताप' गाकर सबकी दास-भक्ति को दृढ कर दिया। इससे अनुमान होता है कि 'भक्ति-प्रताप' ग्रन्थ के रचयिता हित हरिवंश सम्प्रदायी चतुर्भुजदास ही है। 'मिश्रबन्धु-विनोद' मे भी हित सम्प्रदाय के एक चतुर्भुजदास का उल्लेख है, उनके बनाये हुये (विनोद मे) निम्नलिखित पद तथा ग्रन्थ दिये हुये है[3] —

१—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९०२, नं० ४४।

२—मिश्रबन्धु-विनोद, नवीन संस्करण, पृ० ८१७।

३—मिश्रबन्धु-विनोद, पुराना संस्करण, पृ० ४०१-४०२।

१—धर्म-विचार ५० पद ।
२—बानी ६८ पद ।
३—भक्ति-प्रताप ।
४—सन्त-प्रताप ।
५—सिच्छाचार ।
६—हितोपदेश ।
७—पतितपावन ।
८—मोहिनी-जस ।
९—अनन्य भजन ।
१०—राधा-प्रताप ।
११—मंगल-सार ।
१२—विमुख सुख भजन ।
१३—द्वादश यश ।
१४—हित जू को मगल ।

'मिश्रबन्धु-विनोद' मे जिन ग्रन्थो को हित सम्प्रदाय के चतुर्भुजदास के लिखे कहा गया है, उन्ही मे से कुछ को मिश्रबन्धुओ ने अष्टछाप के चतुर्भुजदास के नाम पर दे दिया है। लेखक के विचार से 'विनोद' की यह भूल है। 'विनोद' के बाद के किसी इतिहासकार ने इस भूल की ओर ध्यान नही दिया। खोज-रिपोर्ट[1] मे डा० श्यामसुन्दरदास ने स्पष्ट शब्दो मे बता दिया है कि मिश्रबन्धु-विनोद मे चतुर्भुजदास नाम के कवियो की रचनाओ के विषय मे गड़बड मत है।

खोज-रिपोर्ट मे चतुर्भुजदास-कृत 'भक्ति-प्रताप' ग्रन्थ की सुरक्षा का स्थान दतिया राज पुस्तकालय दिया गया है। दतिया से लेखक ने इस ग्रन्थ के विषय मे सूचना मँगाई थी। वहाँ से प्राप्त, इस ग्रन्थ के उद्धरणों से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि यह ग्रन्थ हित सम्प्रदायी चतुर्भुजदास का ही है। दतिया से प्राप्त इस ग्रन्थ के उद्धरणो का परिचय नीचे दिया जाता है:—

आदि —सिद्धि श्री गणेशायनम , भक्ति प्रताप लिख्यते

नमो नमो श्री हित हरिवंश, सुमिरन होइ कलुप मनंस।
विमल भक्ति गति रति मनुवसै, हरिगुन सागर अन्तु न लहै।
भक्ति प्रताप कछू कथि कहौं, दृढ प्रतीति सन्तन की लहौं।
जैसे नीरु षीरु मिलि रहै, हंसनु बौरै और न लहै।
ज्यों जु भक्ति भक्तन लही।
विश्रित आगम निगम पुरान, पुनि काढे सुक परम सुजान।
भक्ति प्रतापहि गाइहौं।[2]

× × ×

१—ना० प्र० स०, खोज-रिपोर्ट, सन् १९२२-२४, नं० ४।

२—अन्तिम चरण "भक्ति-प्रतापहिं गाइहौं" कुछ पंक्तियों के बाद टेक-रूप से बार-बार ग्रन्थ में दुहराया गया है।

अन्तः—जो यह जसु नीके करि सुनै, अर्थ विचारि कथै मन गुनै।
ताहि भगति उपजै घनी ॥६०॥
मुरली धरनु चरनु प्रतिवास, सुमिरतु निकै चतुर्भुजदास।
भक्ति प्रतापहि गाइहौं।

इति श्री भक्ति प्रताप सम्पूर्ण। समर्प सुभमस्तु कुवार सुदी १० सं० १९६४ वि०।

इस विवरण से तथा लेखक के उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि 'भक्ति-प्रताप' ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास द्वारा रचित नही है।

मिश्रबन्धुओ ने 'विनोद मे, अष्टछाप के चतुर्भुजदास का परिचय देते समय शंका की है कि 'द्वादश यश' ग्रन्थ, सम्भव है, अष्टछाप के चतुर्भुजदास का लिखा नही है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल उन्होने संवत् १५६० वि० दिया है।[1] परन्तु

द्वादश-यश

उन्होने निश्चयपूर्वक यह नही कहा कि यह ग्रन्थ अष्टछापी कवि का नही है। अष्टछापी चतुर्भुजदास जी का जन्म-समय लेखक ने लगभग संवत् १५९७ वि० निर्धारित किया है और चतुर्भुजदास के गुरु गोस्वामी विट्ठलनाथ का जन्म-सम्वत् १५७२ वि० है। इसलिए सम्वत् १५६० वि० का रचा हुआ ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास का किसी प्रकार भी नही माना जा सकता, जब कि कवि का इस सवत् तक जन्म ही नही हुआ था। खोज-रिपोर्ट मे इस बात की सूचना है कि द्वादश यश के रचयिता चतुर्भुजदास ने अपने गुरु हित जी को आदरसूचक शब्दो मे कई स्थानो पर याद किया है। फिर 'विनोद' मे यही ग्रन्थ हितसम्प्रदायी चतुर्भुजदास के नाम पर दिया भी गया है। इससे सिद्ध है कि यह ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास का नही है। हित हरिवंश सम्प्रदायी चतुर्भुजदास का है।

'भक्तमाल', 'विनोद' तथा नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज-रिपोर्टों से सिद्ध है कि चतुर्भुजदास नाम के कई कवि हो गये है। दो चतुर्भुजदास तो गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के ही

हितजू को मङ्गल

शिष्य थे, अष्टछापी चतुर्भुजदास गोरवा क्षत्री थे और दूसरे मिश्र ब्राह्मण थे जिन्होने २५२ वार्ता के अनुसार गोवर्द्धननाथ जी के कवित्त लिखे थे।[2] ये दोनो चतुर्भुजदास गोस्वामी विट्ठलनाथ तथा गोवर्द्धननाथ जी के अनन्य भक्त थे और अपने गुरु तथा अपने इष्ट भगवान् की प्रशसा के अतिरिक्त इन्होने किसी अन्य मार्गीय गुरु की प्रशसा या स्तुति-निन्दा नही की। पीछे कहा जा चुका है, नाभादास जी द्वारा कथित, दो चतुर्भुजदासो मे, एक राजा चतुर्भुजदास थे, और दूसरे हितहरिवंश सम्प्रदायी चतुर्भुजदास थे, जो वृन्दावन मे रहा करते थे। नाभादास जी कहते है—"चतुर्भुज ने श्री हरिवंश के चरण बल से राधावल्लभ भजन की अनन्यता

१—मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० २४६।

२—२५२ वैष्णवन की वार्ता, चतुर्भुजदास ब्राह्मण-वार्ता, पृ० ३३३, वें० प्रे०।

बढाई और गौड़ देश को एक पवित्र तीर्थ स्थान बना दिया। इनकी कविता मे मुरलीधर की छाप रहती थी और वह निर्दोष होती थी। ये सदा प्रेम-रस मे लीन रहते थे।"[1]

उक्त विवरण से सिद्ध होता है कि 'हितजू को मङ्गल' नामक ग्रन्थ भी हितहरिवंश सम्प्रदायी चतुर्भुजदास का लिखा हुआ है। भक्तमाल मे दिए हितहरिवंश सम्प्रदायी चतुर्भुजदास के वृत्तान्त को न देखने की भूल हिन्दी साहित्य के कई इतिहासकारो ने की है। मिश्रबन्धु-विनोद मे, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, हित सम्प्रदाय के चतुर्भुजदास के नाम से 'हित जू को मङ्गल' नामक ग्रन्थ दिया हुआ है।[2]

अन्य अष्टछाप कवियो की तरह चतुर्भुजदास के पद भी तीन भागो मे प्रकाशित वल्लभ

छपे कीर्तन-सङ्ग्रहो में पद

सम्प्रदायी कीर्तन-सङ्ग्रह, 'राग सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' तथा 'राग-रत्नाकर' मे मिलते है। 'राग-सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' के प्रथम तथा द्वितीय भागो मे कवि के ५९ पद तथा राग-रत्नाकर' मे ५ पद मिलते है। वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-सङ्ग्रह के तीनो भागो मे चतुर्भुजदास के पदों की सङ्ख्या विषयानुसार इस प्रकार है —

वल्लभसम्प्रदायी छपे कीर्तन-संग्रहों में चतुर्भुजदास जी के पद

कीर्तन-संग्रह, भाग १

वर्षोत्सव, अंश पहला

विषय	पद संख्या	विषय	पद संख्या
१—जन्माष्टमी बधाई के पद	३	२—पालना के	२
३—ढाढी के	१	४—बाललीला के	३
५—श्री राधाजी की बधाई के	३	६—दान के	३
७—दशहरा के	१	८—रास के	५
वर्षोत्सव, अंश दूसरा			
९—गाय जगायवे के	२	१०—कान जगायवे के	१
११—गोवर्धन पूजा के	४	१२—इन्द्र-मान-भङ्ग के	२
१३—गोचारन के	१	१४—देव प्रबोधनी के	१
१५—श्री गोसाईं जी की बधाई के	१२	१६—फूल मण्डली के	६
१७—चन्दन के	४	१८—मल्हार कुसुम्बी घटा के	७
१९—श्यामघटा के	१	२०—चुनरी के	१
२१—छाक के	२	२२—हिंडोरा के	६
			६६

१—भक्तमाल, नाभादास, छंद नं० १३२।

२—मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० ४०१—४०२, पुराना संस्करण।

विषय	पद-संख्या	विषय	पद-संख्या
कीर्तन संग्रह, भाग २			
२३—वसन्त के	७	२४—धमार के	११
२५—डोल के	१		
			१९
			कुल ८५

कीर्तन-संग्रह, भाग ३

२६—श्री आचार्य महाप्रभु के	१	२७—जगायवे के	४
२८—कलेऊ के	२	२९—मंगलआरती के	४
३०—खण्डिता के	६	३१—हिलग के	४
३२—दधिमथन के	१	३३—शृंगार के	८
३ —उराहने के	४	३५—भोजन के	१
३६—छाक के	१	३७—भोग समय के	२
३८—गाय बुलायवे के	१	३९—आवनी के	२
४०—धैया के	३	४१—सेन के	२
४२—मान छुटवे के	१	४३—पौढिवे के	१
४४—वैष्णवन के नित्य नेम के	१		
			५२
			कुल १३७

हस्तलिखित रूप में चतुर्भुजदास के पद

कांकरोली विद्याविभाग तथा नाथद्वार के पुस्तकालयो मे लेखक को चतुर्भुजदास के पदो के संग्रह उपलब्ध हुये है । उक्त दोनो पुस्तकालयो के जिन हस्तलिखित पद-सग्रहों का अध्ययन लेखक ने किया है उनका विवरण नीचे दिया जाता है—

कॉंकरौली विद्या-विभाग में चतुर्भुज-दास के कीर्तन सङ्ग्रह

प्रति नं० ६/३—कुम्भनदास के कीर्तनो के परिचय मे इस प्रति का विवरण दिया जा चुका है । इस प्रति मे सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास तथा गोविन्द स्वामी के पदो का संग्रह है । पीछे यह भी कहा गया है कि यह प्रति सम्वत् १७५१ वि० की लिखी हुई है । इसमे चतुर्भुजदास के पदो का संग्रह "कीर्तनावलि चतुर्भुजदास" के नाम से है तथा इन्ही पदों के साथ एक पोथी 'चतुर्भुजदास की दानलीला' नाम की है । कीर्तना-लि मे कवि के १८६ पद हैं जो विषयानुसार विभाजित है । विभिन्न विषयो के शीर्षको मे दिये हुये पदों की संख्या इसमे नीचे लिखे प्रकार से है —

विषय	पद-संख्या	विषय	पद-संख्या
१—कृष्णजन्म समय	१	२—प्रभु जू को शयनोछित के	१
३—मंगलआरती समय	५	४—वाललीला के	३
५—उराहना, गोपीजन को श्री यशोमति सों	१	६—यशोदा जू के वचन गोपिन प्रति, उराहने को प्रत्युत्तर	१
७—श्री यशोदा जू के वचन साक्षात् श्री कन्हैया जू के प्रति	२	८—खण्डिता के	१४
९—वन पाउ धारण वर्णन	२	१०—वन-क्रीडा के	३
११—श्री प्रभुजी को वनते पाउ धारन के	८	१२—वेनु-गान के	३
१३—दीपमालिका तथा अन्नकूट समय के	८	१४—आसक्त की अवस्था के	१०
१५—साक्षात् प्रभु के वचन आसक्त के श्री गोपी जन सो	१	१६—आसक्त के वचन, भक्तन के	१६
१७—साक्षात् भक्तन की आसक्ति को वर्णन	११	१८—अथ दानलीला के	५
१९—मानापनोदन के	२१	२०—युगल स्वरूप कौ सुरतांत वर्णन के	७
२१—प्रभु जी को स्वरूप वर्णन के	९	२२—स्वामिनी जू कौ स्वरूप श्रृङ्गार वर्णन के	५
२३—युगल रस-वर्णन के	१	२४—स्वामिनी जू की कुमार लीला के	१
२५—गोदोहन-प्रसग के	५	२६—श्री वल्लभ-वंशोद्गान के	११
२७—वर्षा ऋतु-वर्णन के	३	२८—हिंडोल, प्रभु जू को झूलिवे के	६
२९—भक्तन की प्रार्थना के	५	३०—अक्षय तृतीया के समय के	३
३१—राम के	६	३२—भ्रमरगीत विरह दसा को प्रसंग, उद्धव जू को गोकुल आगमन मथुरा विषे प्रभु प्रति कहनि के	१
३३ भक्तनि की लीला के	१	३४ फूल मण्डली के समय के	२
३५ वसन्त समय के	३	३६ समीप विरह के	१

कुल पद संख्या १८६

प्रति नं० २ / १—"कीर्तन-संग्रह चतुर्भुजदास"—इस प्रति मे लिपि अथवा प्रतिलिपि का कोई सम्वत् नहीं दिया हुआ है। परन्तु देखने से पुस्तक लगभग १५० वर्ष पुरानी प्रतीत होती है। पदों का विभाजन इसमे, कृष्णदास के पदो के समान, रागो के

अन्तर्गत किया गया है। इस प्रति मे दिये हुये, चतुर्भुजदास के पदो की रागानुसार संख्या नीचे लिखे प्रकार से हैं। इसमे कुल पद-संख्या १८६ है।

राग	पद-संख्या	राग	पद-संख्या
भैरव	१२	मलार	११
विलावल	१२	नरनारायण चर्चरी	११
देव गन्धार	७	गौरी	२३
टोडी	१	कल्याण	४
धनासिरी	१४	कानरो	८
जैत श्री	३	केदारा	१४
रामश्री	६	विहागरो	१
आसावरी	४	सामेरी	१
सारंग	४८	वसन्त	३
मालव गौरा	३		कुल पद १८६

प्रति नं० १६/५—"चतुर्भुजदास जी के पद"—इस पोथी मे भी कोई संवत् नही दिया हुआ है, परन्तु पोथी यह भी लगभग १५० वर्ष पुरानी ज्ञात होती है। इसमे कवि के १६२ पद है जो रागो के अनुसार विभाजित है। लीला अथवा विषय का विभाजन इसमे नही है। इसमे दिये हुए रागो की सख्या तथा राग वे ही है जो ऊपर प्रति नं० २/१ मे आये हैं।

प्रति नं० ७२/१—इस पोथी मे चतुर्भुजदास मिश्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सेवक द्वारा विरचित "भाषा संग्रह शान्त रस" नामक ग्रन्थ है जिसकी रचना का संवत् १७०२ वि० दिया हुआ है। ये चतुर्भुजदास मिश्र, अष्टछाप के चतुर्भुजदास गोरवा क्षत्री से भिन्न है।

संवत् सत्रह सै वरस वीती द्वै अधिकाइ।
आश्विन सुदि दशमी शनौ ग्रन्थ भयो सरसाइ

प्रति नं० ७४/७—"चतुर्भुजदास जी के पद"। इस पोथी मे चतुर्भुजदास के २६२ पद हैं जो विषय और लीला के अनुसार विभाजित है। पोथी मे पदो की प्रतिलिपि का समय

नाथद्वार निज-पुस्तकालय में चतुर्भुजदास के कीर्तन संग्रह

संवत् १८२७ वि० दिया हुआ है। ये पद कांकरोली वाली प्रति के पदों से कही-कहीं पाठभेद के साथ मिलते है। कांकरोली की प्रतियो के अतिरिक्त जो पद इसमे है वे पीछे कहे विषयो मे ही थोड़े थोड़े बँटे हुये है।

चतुर्भुजदास की प्रामाणिक रचना

ऊपर दिये हुये विवेचन का यह निष्कर्ष है कि चतुर्भुजदास की प्रामाणिक रचना, लेखक के विचार से, काँकरौली तथा नाथद्वार मे प्राप्त होनेवाले पद-संग्रह तथा वल्लभसम्प्रदायी छपे कीर्तन-संग्रहों मे प्राप्त पद ही हैं। एक दूसरी प्रामाणिक रचना 'दानलीला' भी है जो वास्तव मे कवि का एक लम्बा पद है। इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ नही कहा जा सकता। सम्भव है, अन्यत्र वैष्णव मन्दिरो में इनके और भी पद हो। लेखक ने चतुर्भुजदास के काव्य तथा विचारों के अध्ययन के लिए इन्ही दो प्रकार के पद-सग्रहो का आधार लिया है। 'मधुमालती', 'भक्ति प्रताप', 'द्वादशयश' तथा 'हितजू को मंगल' ग्रन्थ अष्टछापी चतुर्भुजदास की रचना नही है।

गोविन्दस्वामी की रचनाएँ

हिन्दी साहित्य के इतिहासकार तथा लेखको ने गोविन्दस्वामी के किसी ग्रन्थ अथवा पद-संग्रह का उल्लेख नही किया। अब तक दस-बीस स्फुट पदो को छोड़कर हिन्दी-ससार को इनका कोई पद-संग्रह उपलब्ध नही हुआ था; लेखकों ने बहुधा यही कथन किया है, "इनके स्फुट पद इधर-उधर मिलते हैं।"[1] अष्टछाप के अन्य कवियो के पद-संग्रह की भाँति इस कवि का भी पद-संग्रह लेखक को खोज मे प्राप्त हुआ है। हस्तलिखित पद-संग्रह के अतिरिक्त, पीछे कहे वल्लभ सम्प्रदायी छपे हुये कीर्तन-संग्रहों मे गोविन्दस्वामी के पद मिलते हैं। नीचे की पंक्तियो में इन दोनों प्रकार के पद-संग्रह का परिचय दिया जाता है।

छपे कीर्तनो मे, 'राग-सागरोद्भव राग-कल्पद्रुम' मे गोविन्ददास स्वामी के विविध रागो के अन्तर्गत लगभग ६५ तथा 'राग-रत्नाकर' मे केवल दस पद हैं। वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहो के पीछे कहे तीनो भागों मे इस कवि के पदो की सख्या विषयानुसार नीचे लिखे प्रकार से हैं :—

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों में गोविन्ददास जी के पद।

कीर्तन संग्रह, भाग १

वर्षोत्सव, अंश पहला

१—जन्माष्टमी की बधाई के पद	६	२—पालना के	३
३—ढाढी के	२	४—बाललीला के	१
५—राधाजी की बधाई के	३	६—दान के	१८
७—वामन जी के	१	८—देवी पूजन के	१
९—दशहरा के	१	१०—रास के	५

१—हिन्दी-साहित्य का इतिहास, संवत् १९९७ संस्करण, पृ० २१७। हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६७७।

वर्षोत्सव, अंश दूसरा

११—हटरी के	१	१२—गोवर्द्धन-लीला के	१
१३—इन्द्रमान-भङ्ग के	२	१४—गोचारन के	२
१५—देव-प्रबोधनी के	१	१६—गुसाईं जी की बधाई के	११
१७—गिरधर जी की बधाई के	३	१८—फूल मण्डली के	५
१९—रामनवमी की बधाई के	१	२०—श्री आचार्य जी की बधाई के	६
२१—चन्दन के	२	२२—स्नान-यात्रा के	१
२३—श्री रथयात्रा के	३	२४—मल्हार के	११
२५—ग्वाल पगा के	१	२६—चुनरी के	१
२७—लहरिया के	१	२८—हिंडोरा के	११
२९—पवित्रा के हिंडोरा के	३		
			१११

कीर्तन-संग्रह, भाग २

३०—वसन्त के पद	४	३१—धमार के	१७
३२—डोल के	२		
			२३
			कुल १३४

कीर्तन-संग्रह, भाग ३

३३—श्री आचार्य जी महाप्रभु के	१	३४—यमुना जी के	२
३५—जगायवे के	१	३६—खण्डिता के	१०
३७—कलेऊ के	२	३८—न्हवायवे के	१
३९—व्रतचर्या के	१	४०—दधिमथन के	३
४१—कूल्हे के	३	४२—पनघट के	१
४३—फलफलारी के	१	४४—भोजन बुलायबे के	१
४५—राजभोग सम्मुख के	९	४६—कुंज के	३
४७—मान कुंज के	५	४८—उत्थापन के	
४९—भोग समय के	१४	५०—गाय बुलायवे के	१
५१—आवनी के	९	५२—मान के	१५
५३—शृङ्गार बड़े होयवे के	१	५४—बीरी के	९
५५—सेन के	३१	५६—पौढ़वे के	४
५७—विनती के	१	५८—वैराग्य के	१
			१२३
			कुल २५७

उक्त छपे पदों के अतिरिक्त गोविन्दस्वामी के २५२ पदो का एक और छपा हुआ पद-संग्रह लेखक के देखने में आया है।[1] यह प्रति लीथो की छपी है और इसमे पदों के अतिरिक्त कोई भूमिका नहीं दी गई है। उक्त संग्रह के अतिरिक्त जो हस्तलिखित संग्रह लेखक को अध्ययन के लिए उपलब्ध हुए हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है :—

लेखक के पास गोविन्दस्वामी के हस्तलिखित कीर्तन

सात वर्ष पहले गोविन्दस्वामी के २५२ पदो का एक हस्तलिखित पद-संग्रह लेखक को गोकुल मे प्राप्त हुआ था जो अब लेखक के पास है। वल्लभ-सम्प्रदायी मुख्य मन्दिरों तथा विद्या-केन्द्रों मे, इस कवि की रचनाओं के विषय मे लेखक को सूचना मिली कि इनके केवल २५२ पद ही प्रसिद्ध है। बाद को भी गोविन्दस्वामी के जितने पद-संग्रह लेखक के देखने मे आये उनमें भी २५२ पदों के संग्रह बहु संख्या मे थे। कुछ पद-संग्रहों मे केवल दस-बीस पद अधिक थे। लेखक के पद-संग्रह के पद रागों के अनुसार विभाजित हैं। विभाजन इस प्रकार है :—

राग	पद-संख्या	राग	पद-संख्या
१—विभास	१२	११—गौरी	२२
२—विलावल	४	१२—राग श्री	५
३—रामकली	३	१३—इमन	३१
४—देव गन्धार	२	१४—कान्हरो	२८
५—आसावरी	३	१५—केदारो	२६
६—टोड़ी	६	१६—विहाग	६
७—धन्याश्री	४	१७—संकराभरन केदारो	६
८—सारंग	३७	१८—मलार	१५
९—नट	२३	१९—वसन्त	२
१०—पूरवी	८		
		कुल पद	२५२

इस प्रति मे प्रतिलिपि की कोई तिथि नहीं दी हुई है। देखने मे संग्रह लगभग पचास-साठ वर्ष पुराना ज्ञात होता है। बहु संख्या में पद राधाकृष्ण की कुंज और किशोर-लीलाओं से सम्बन्ध रखते हैं। कुछ पद गोदोहन, गोचारण तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की स्तुति के है।

१—इस प्रति का नाम "गोविन्दस्वामी के कीर्तन" है। ज्योतिर्विद चतुर्भुजदास कृष्णदास ने बम्बई जगदीश्वर छापेखाने से संवत् १९४० वि० अथवा सन् १८८३ ई० में प्रकाशित किया था।

काँकरौली विद्या विभाग में गोविन्दस्वामी के पदों के संग्रह

प्रति न० १६/३—"गोविन्दस्वामी के कीर्तन" नामक प्रति मे रागो मे विभाजित कवि के २५२ पद है। यह प्रतिलिपि सवत् १८६२ वि० अथवा १८६३ वि० माघ शुक्ल १ की लिखी है। लेखक की प्रति के पाठो से इसमे कही-कही अन्तर है।

प्रति न० ४६/२—"गोविन्दस्वामी के पद।" इस प्रति मे भी रागानुसार कवि के वे ही २५२ पद है जो प्रति नं० १६/३ मे है। प्रतिलिपि का कोई इसमे सम्वत् नही है।

प्रति न० ३४/५—"गोविन्दस्वामी के २५२ कीर्तन।" इस प्रति मे भी २५२ ही पद हैं। परन्तु इसमे पीछे कही प्रतियो से कुछ राग अधिक है। जैसे मालव राग, सुधक कल्याण तथा सोरठ। यह प्रति देखने मे अन्य प्रतियो की तुलना मे अधिक पुरानी ज्ञात होती है।

प्रति न० ६/३—पीछे कहा जा चुका है कि इस प्रति मे अष्टछाप के कई कवियो का पद-संग्रह है तथा यह सम्वत् १७५१ वि० या १७६१ वि० की लिखी हुई है। इसमे भी गोविन्दस्वामी के २५२ पदो ही का सग्रह है जो रागानुसार विभाजित है।

नाथद्वार निज पुस्तकालय में गोविन्दस्वामी का पद-संग्रह

प्रति नं० १६/६—"गोविन्दस्वामी के पद।" इस प्रति मे रागानुसार विभाजित गोविन्दस्वामी के २५२ पद है और लेखक के पास की तथा काँकरौली की प्रतियों मे दिये हुये पद ही इसमे है। प्रतिलिपि सम्वत् १७३२ वि० सावन सुदी १० बुधवार की लिखी है। पदो के अन्त मे यही तिथि दी हुई है।

प्रति न० १६/४—यह संग्रह भी कवि के २५२ पदो का सग्रह है जो अनुमान से सम्वत् १७७८ वि० की प्रतिलिपि है। पदो के अन्त मे कुछ हिसाव सम्वत् १७७८ वि० का दिया हुआ है, उससे अनुमान होता है कि प्रतिलिपि इस सम्वत् से पहले ही हुई होगी।

प्रति न० १६/५—"गोविन्दस्वामी के २५२ पद।" इस प्रति मे कोई तिथि नही है।

प्रति नं० १६/२—"गोविन्दस्वामी के २५२ पद।"

प्रति न० १६/७—"गोविन्दस्वामी के पद।" इस प्रति मे कवि के २५६ पद हैं, जिनका विभाजन रागानुसार ही है। इस प्रति मे कोई सम्वत् नही है। पदो का विषय वही है, जो पीछे कहे २५२ पदो का है। पीछे कहे २५२ पदो का समावेश २५६ पदो मे है। जो चार पद अधिक है वे युगल लीला के ही है।

प्रति नं० १६/८—इस प्रति मे भी रागानुसार विभाजित २५२ पद है। प्रतिलिपि सम्वत् १८७६ वि०, अगहन सुदी १२ की है।

प्रति नं० १६/६—"गोविन्दस्वामी के पद।" इसमे भी २५२ ही पद है। साथ मे कुछ पद छीतस्वामी के भी है।

प्रति नं० १६/१०—इस प्रति मे गोविन्दस्वामी के २५१ पद है। गोविन्द स्वामी के पदों के अतिरिक्त इसमें सूरदास के कुछ दृष्टकूट पद भी अर्थ-सहित दिये हुये है। प्रतिलिपि का कोई सम्वत् नही दिया गया है।

प्रति नं० १६/३—"गोविन्दस्वामी के पद।" इस प्रति मे गोविन्द स्वामी के पदो की संख्या २७५ है। पदों का विषय वही है जो पीछे कहे २५२ पदो का है और जिनमे इन २५२ पदों का भी समावेश है। प्रति देखने मे पुरानी है, इसमे कोई तिथि नही दी हुई है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि गोविन्द स्वामी के २५२ पद ही उनकी प्रामाणिक रचना है। २५२ पदों के अतिरिक्त जो पद उनके मिलते हैं जिनमे से कुछ तो छपे कीर्तन-संग्रहो मे है और कुछ नाथद्वार की प्रति न० १६/३ मे है, वे कवि की सन्दिग्ध रचना कही जा सकती है। सम्भव है, कवि ने अपने २५२ पदो के संग्रह को बनाने के बाद अधिक पद लिखे हो, अथवा वल्लभ-वैष्णवों ने २५२ वार्ता के अनुसार कवि के केवल २५२ पद ही एकत्र किये हों, बाकी दस-पाँच यों ही प्रचलित हों। तीसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि किसी संग्रहकर्ता ने अतिरिक्त पदो को बना कर जोड़ दिया हो। भाषा-शैली के आधार से उन पदों को प्रक्षिप्त कहना कठिन है। लेखक ने इस अध्ययन में कवि के २५२ पदों के संग्रह से ही काम लिया है।

छीतस्वामी की रचना

अष्टछाप के अन्य कई कवियों की तरह छीतस्वामी की रचनाओं के विषय मे, हिन्दी-साहित्य के इतिहास[1] तथा कविता संग्रहो मे कोई स्पष्ट सूचना नही है। केवल मिश्रबन्धुओ ने इनके ३४ पदो का संग्रह अपने पास बताया है।[2] छीतस्वामी के पद भी वल्लभ-सम्प्रदायी कीर्तन संग्रहो मे मिलते हैं। पीछे कहे कीर्तन-संग्रह के तीन भागों मे कवि द्वारा रचित पदों की संख्या निम्नलिखित प्रकार से हैं :—

१—शिवसिंह सरोज, पृ० ४१८।
हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० १९९७ संस्करण, पृ० २१७।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६७६।
२—मिश्रबन्धु विनोद, प्रथम भाग, पृ० २२७, चौथा संस्करण।

वल्लभ सम्प्रदायी छपे कीर्तन संग्रहों में छीतस्वामी के पद

कीर्तन सग्रह, भाग १

वर्षोत्सव, अंश पहला

विषय	पद सख्या	विषय	पद संख्या
१—जन्माष्टमी की वधाई के	×	२—पालना के	२
३—दान के	१	४—रास के	१
वर्षोत्सव, अश दूसरा			
५—गाय खिलावन के	१	६—इन्द्रमान भंग के	१
७—श्री गोसाईं जी की वधाई के	२४	८—फूल मण्डली के	२
९—श्री आचार्यजी की वधाई के	२	१०—कलेऊ के	१
११—गंगादशमी के	१	१२—मल्हार के	४
१३—हिंडोरा के	१	१४—राखी के	१
कीर्तन सग्रह, भाग २			
१५—बसन्त के	३	१६—धमार के	३
कीर्तन संग्रह, भाग ३			
१७—श्री आचार्य महाप्रभु के	१	१८—गुसाईं जी की वधाई के	१
१९—यमुना जी के	१	२०—न्हवायवे के	१
२१—खण्डिता के	२	२२—शृङ्गार के	३
२३—श्रावनी के	२	२४—सैन के	१
२५—विनती के	३	२६—आसरे के	१
			कुल ६४

राग-रत्नाकार—१ पद ।

छपे हुये पदो के अतिरिक्त छीतस्वामी के पदो के जो संग्रह लेखक के देखने मे आये हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है ।

काँकरोली विद्या-विभाग में छीतस्वामी का पद-संग्रह

प्रति नं० २४/८—छीतस्वामी के इस पद-संग्रह मे केवल ७२ पद हैं जो रागों के अनुमार लिखे हुए है । इस प्रति मे कोई रचना अथवा प्रतिलिपि-काल नही है । देखने मे पोथी पचास-साठ साल पुरानी ज्ञात होती है। इस सग्रह के अन्त मे लिखा है—"इति श्री छीतस्वामी के पद सम्पूरण दसकत द्वारकादास बेटा नन्दान्ददास के ।" लेखक ने इस सग्रह से ३८ पद छाँटकर लिये हैं ।

उपर्युक्त पद संग्रह के अतिरिक्त काँकरौली तथा नाथद्वार मे लेखक को छीतस्वामी का अन्य कोई संग्रह नही मिला। मथुरा मे पण्डित जवाहरलाल चतुर्वेदी जी के पास भी छीतस्वामी के पदों का एक छोटा संग्रह है, जो उन्ही का संगृहीत किया हुआ है। छपे कीर्तन-संग्रहो मे मिलनेवाले तथा कुछ मौखिक रूप मे, कीर्तन रूप मे प्रचलित पदो को ही चतुर्वेदी जी ने संगृहीत किया है। चतुर्वेदी जी का संग्रह रागानुसार तथा विषयानुसार, दोनो प्रकार का है। इस संग्रह से भी लेखक ने कुछ पद लिये है।

मिश्र-बन्धुओं के पास के ३४ पदों का संग्रह लेखक ने इस सग्रह के देखने का प्रयत्न किया। परन्तु खेद है कि मिश्रबन्धुओं को अपने पुस्तकालय मे ढूंढने पर भी अब ये पद नही मिले। इसलिये संग्रह के विषय मे कोई विचार नही दिये जा सकते।

काँकरौली विद्याविभाग से, पं० जवाहरलाल जी के पद-संग्रह से तथा छपे कीर्तन-संग्रहों से एकत्र कर लेखक ने छीतस्वामी के पदों का एक संग्रह किया है जिसको वह कवि की प्रामाणिक रचना समझता है। इन पदो की प्रामाणिकता का 'सबूत' यही है कि ये पद वल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहो मे तथा विद्या-केन्द्रों मे मिलते है। इस अध्ययन मे कवि के इन्ही पदो का आधार लिया गया है।

●●●